देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला—६

मश्रासिरुल् उमरा

(मुग़ल दरबार के हिन्दू सरदारों की जीवनियाँ)

अनुवादक

ब्रजरत्न दास, बी. ए., एल-एल. बी.

प्रकाशक

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा

सं० १९८८ वि०

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला—६

प्रकाशक—
काशी नागरी-प्रचारिणी सभा

प्रथम संस्करण
मूल्य ३)

मुद्रक—
कृष्णाराम मेहता,
लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

विषय-सूची

नाम	पृष्ठ-संख्या

नाम		पृष्ठ-संख्या

नाम		पृष्ठ-संख्या
५१	महेशदास राठौर	२८२
५२	माधोसिंह कछवाहा	२८६
५३	माधोसिंह हाडा	२८८
५४	मानसिंह कछवाहा, राजा	२९१
५५	मालोजी और फर्सोजी	३०४
५६	मुकुन्द नारनौली, राय	३०९
५७	मुकुन्दसिंह हाडा	३११
५८	मुहकमसिंह खत्री, राजा	३१३
५९	रघुनाथ, राजा	३१६
६०	रत्न हाडा, राव	३१७
६१	रामरूप, राजा	३२१
६२	राजसिंह कछवाहा, राजा	३२६
६३	रामचंद्र चौहान	३२८
६४	रामचन्द्र बघेला, राजा	३३०
६५	रामदास कछवाहा, राजा	३३५
६६	रामदास नरवरी, राजा	३३९
६७	रामसिंह कछवाहा, राजा	३४२
६८	रामसिंह राठौर	३४६
६९	रामसिंह हाडा, राजा	३४८
७०	रामसाल दरबारा, राजा	३५१
७१	रायसिंह, राय	३५४

नाम | पृष्ठ-संख्या

इस ग्रंथ के अनुवाद तथा संपादन में सहायता देनेवाली पुस्तकों की सूची

फ़ारसी

१ मआसिरुल्उमरा भाग १-३ —समसामुद्दौला शाहनवाज़ खाँ कृत।

२ इक़बालनामा जहाँगीरी या जहाँगीरनामा—सम्राट् जहाँगीर का लिखा हुआ आत्मचरित जिसमें उसके राज्य-काल के प्रथम बारह वर्षों का वृत्तांत है। हस्तलिखित प्राचीन प्रति है।

३ रियाज़ुस्सलातीन—ग़ुलाम हुसेन सलीम कृत। इसमें बंगाल का इतिहास दिया गया है। बंगाल एशाटिक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित।

४ मुंतखबुत्तवारीख, अब्दुलक़ादिर बदायूनी कृत। भारत पर मुसलमानी आक्रमण से अकबर के राज्य-काल के प्रायः अंत तक का वर्णन है।

५ तबक़ाते अकबरी, ख़्वाजा निज़ामुद्दीन अहमद रचित। बंगाल एशाटिक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित।

६ तारीख़ गुजरात, शाह अबू तुराब वली कृत। अकबर की चढ़ाइयों का वृत्तांत विशेष रूप से दिया है। ब० एशा० सो० द्वारा प्रकाशित।

७ इंशाए-माधोराम—इसमें फारसी के बहुत से पत्र संगृहीत हैं जिनसे इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। हस्तलिखित प्रति।

८ दस्तूरुलइंशा—प्राचीन हस्तलिखित अपूर्ण प्रति। १४० पृ० की पुस्तक है। यह दस मुकद्दमों में विभाजित है, जिनमें से प्रत्येक बाबों तथा फसलों में पुनर्विभाजित है। पहाड़े से आरंभ होता है। बाटों की नाप, जमाबंदी आदि का पूरा वर्णन है। स्यात् इसी पुस्तक के कुछ अंश को प्रो० सर्कार ने दस्तूरुलअमल नाम दिया है जिसमें दीवानी तथा फौजदारी के सरिश्ते का बयान है।

९. अमल मुमालिक—(मुग़ल बादशाहों के सूबों की तुमनात-साफ आय) यह भी अपूर्ण हस्तलिखित प्रति दस्तूरुलइंशा के साथ एक जिल्द में बँधी हुई एक मित्र से प्राप्त हुई है। इसमें अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब तथा मुहम्मद शाह के समयों के प्रत्येक प्रांत तथा सर्कार की आय दामों तथा रुपयों में दी गई है।

१० नादिरशाह नामा, मीर कृत। गद्य पद्य में भारत पर नादिर शाह की चढ़ाई का वर्णन है। इसका अनुवाद ना० प्र० सभा की पत्रिका भा० ५ सं० १९८१ में दिया जा चुका है। हस्तलिखित प्रति।

११ पत्र-संग्रह—इसमें प्रायः पाँच सौ पत्र संगृहीत हैं।

हिंदी

१ हुमायूँनामा, गुलबदन बेगम कृत। ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित।

२ मआसिरे-आलमगीरी, मुहम्मद साक़ी मुस्तैद ख़ाँ कृत। मुं० देवीप्रसाद कृत हिंदी अनुवाद।

३ बुंदेलों का इतिहास, व्रजरत्नदास द्वारा लिखित।

४ छत्र प्रकाश, गोरेलाल कृत। इसमे बुंदेलों का तथा विशेषतः पन्ना राज्य के संस्थापक महाराज छत्रसाल का चरित्र वर्णित है।

५ वीरसिंह देव चरित, महाकवि केशवदास कृत। ओड़छा-नरेश महाराज वीरसिंह देव का चरित्र वर्णित है।

६ राज-विलास, मान कवि कृत। इसमें महाराणा राजसिंह के विवाह आदि तथा सन् १८७९-८१ ई० के युद्ध का वर्णन है।

७ प्राचीन राजवंश भा० ३, विश्वेश्वरनाथ रेऊ कृत। राठौड़ वंशी राजाओं का विवरण दिया है।

८ मूता नैणसी की ख्यात, अनु० रामनारायण दूगड़। काशी ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित।

९ आनंदांबुनिधि, (भागवत) रीवाँ नरेश महाराज रघुराजसिंह कृत। बघेला राजवंश का आरंभ में वर्णन है।

१० सुजान चरित, सूदन कृत। इसमें भरतपुर के जाट नरेश महाराज सूरजमल का जीवन-वृत्तांत दिया गया है।

११ भूषण-ग्रंथावली।

उर्दू

१ तवारीख-बुंदेलखंड, श्यामलाल कृत। यह एक वृहत् इतिहास है। किंवदंतियाँ भी विशेष नहीं हैं, पर इसमें सनदों का जो संग्रह दिया है, वह इसकी एक विशेषता है।

२. तारीख फ़िरिश्ता, मुहम्मद बिन कासिम कृत। नवल-किशोर प्रेस द्वारा प्रकाशित। यह अकबर के समय तक का वृहत् इतिहास है। उस समय तक के अन्य भारतीय मुसलमान राज-वंशों का भी वर्णन अलग अलग दिया है।

३. सवानिहाते सलातीने अवध, सय्यद कमालुद्दीन हैदर कृत। इसमें अवध की नवाबी का विस्तृत इतिहास दिया है।

४ सियारुल् मुताख्रिरीन, गुलाम हुसेन ख़ाँ कृत। पहिला भाग मुन्तखिबुत्तवारीख तथा ख़ुलासतुत्तवारीख के आधार पर लिखा गया है और दूसरा भाग स्वतंत्र है जिसमें सन् १७०० ई० से १७८१ ई० तक का इतिहास है। उर्दू अनुवाद।

अंग्रेज़ी

१ मआसिरुलउमरा, बेवरिज कृत अनुवाद। यह अनुवाद पूरा नहीं हुआ। इसकी केवल ३ संख्याएँ अर्थात् ६०० पृष्ठ प्रका

शित हुए हैं। अंतिम जीवनी का शीर्षक हैदर कुली खाँ मुईजुद्दौला है जो अपूर्ण रह गया है।

२. इलिअट एंड डाउसन कृत 'हिस्टरी औव् इंडिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरिअन्स' (अर्थात् भारतीय इतिहासज्ञो द्वारा कथित भारत का इतिहास) भा० ४—८। फारसी इतिहासो के उद्धरण दे देकर इतिहास का क्रम बैठाया गया है।

३ आईन अकबरी, ब्लॉकमैन कृत अनुवाद । इसके परिशिष्ट में अकबर के समय के दरबारियों, सरदारों तथा राजाओं के जीवन-वृत्तांत दिए गए हैं। इसके लिखने में मआसिरुल् उमरा से विशेष सहायता ली गई है।

४ मराठों का इतिहास, किनकेड तथा पारसनीस कृत, भाग १—३। इसमें मराठों के उत्कर्ष के पहिले दक्षिण का इतिहास संक्षेप मे तथा मराठा साम्राज्य का इतिहास विस्तारपूर्वक दिया गया है।

५. सरकार कृत 'शिवाजी'। छत्रपति महाराज शिवाजी का विस्तृत जीवन चरित्र।

६ सरकार कृत 'औरंगजेब' भाग १—५। इसमें शाहजहाँ के राज्य-काल के अंतिम भाग, राज्य के लिये भाइयों में युद्ध तथा औरंगजेब के राज्य का विशद इतिहास दिया गया है।

७. हुमायूँनामा, जौहर आफ़ाबची कृत, अनुवादक स्टुअर्ट साहब।

८. हिस्टरी ऑफ द फ्रेंच इन इंडिया, मैलेसन कृत। इसमें भारत में फ्रेंच जाति के आगमन, भारत साम्राज्य के लिये देशीय तथा यूरोपीय जातियों से युद्ध आदि का अच्छा विवरण दिया है।

९. 'ए कॉम्प्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया' भा० १—३, एडवोकेट बेवरिज कृत, सन १८५० ई० की प्रकाशित। यह माधुरी आदि पत्रिकाओं के साइज के ढाई सहस्र पृष्ठों से अधिक का बृहत् इतिहास है जिसमें मुगलों का संक्षिप्त और अंग्रेजों के समय का गदर बलवे तक का विस्तारपूर्वक इतिहास है। इसमें कई सौ चित्र तथा मानचित्र दिए हैं।

१०. टॉड कृत 'राजस्थान' भा० १—२। राजपूताने के अनेक राजवंशों का प्रसिद्ध विस्तृत इतिहास।

११. कीन कृत 'भारत का इतिहास'।

१२. बुंदेलों का इतिहास, सिल्बेराड कृत। यह मजमूत सिंह लिखित हिंदी में एक इतिहास का प्रायः अनुवाद है और एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल भाग ७१, सन् १९०२ ई० में प्रकाशित हुआ है।

१३. इंपीरियल गजटियर भा० १—१४।

१४. कनिंघम कृत 'सिक्खों का इतिहास'।

१५. शिवाजी, रॉलिन्सन कृत।

१६. मराठा शक्ति का उत्कर्ष, जस्टिस रानडे कृत।

१७. बर्नियर की यात्रा, अनु० ओल्डेनबर्ग।

१८. 'मेमॉयर्स ऑव दिहली एंड फैजाबाद' भा० १—२। डाक्टर होई द्वारा फैजबख्श कृत तारीख फरहबख्श का अनुवाद है। पहिले भाग मे मुग़ल सम्राटों का और दूसरे भाग मे अवध के नवाबों का वर्णन है।

१९ 'अर्ली ट्रैवेल्स इन इंडिया', संकलनकर्ता फॉस्टर। इसमें टेरी, मिल्डनहॉल आदि सात अंग्रेज यात्रियों की जीवनी तथा उनका भ्रमण-वृत्तांत सकलित है। ये सब अकबर के समय या पहिले आए थे।

२०. 'इंडिया एट द डेथ ऑव् अकबर' मौरलैंड कृत। इसमें अकबर के राज्य के अंत के समय का विस्तृत वर्णन दिया हुआ है।

८. हिस्टरी ऑव द फ्रेंच इन इंडिया, मैलेसन कृत। इसमें भारत में फ्रेंच जाति के आगमन, भारत साम्राज्य के लिये देशीय तथा यूरोपीय जातियों से युद्ध आदि का अच्छा विवरण दिया है।

९ 'ए कॉम्प्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑव इंडिया' भा० १—३, एडवोकेट बेवरिज कृत, सन् १८६० ई० की प्रकाशित। यह माधुरी आदि पत्रिकाओं के साइज का ढाई सहस्र पृष्ठों से अधिक का बृहत् इतिहास है जिसमें मुगलों का संक्षिप्त और अंग्रेजों के समय का बड़े वलवे तक का विस्तारपूर्वक इतिहास है। इसमें कई सौ चित्र तथा मानचित्र दिए हैं।

१० टॉड कृत 'राजस्थान' भा० १—२। राजपूताने के अनेक राजवंशों का प्रसिद्ध विस्तृत इतिहास।

११ कीन कृत 'भारत का इतिहास'।

१२. बुंदेलों का इतिहास, सिल्बेराड कृत। यह मजबूत-सिंह लिखित हिंदी में एक इतिहास का प्रायः अनुवाद है और एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल भाग ७१, सन् १९०२ ई० में प्रकाशित हुआ है।

१३. इंपीरियल गजटियर भा० १—२४।

१४. कनिंगहम कृत 'सिक्खों का इतिहास'।

१५. शिवाजी, रॉलिन्सन कृत।

१६ मराठा शक्ति का उत्कर्ष, जस्टिस रानडे कृत।

भूमिका

प्रत्येक जाति का यह सर्वदा ध्येय रहता है कि वह अपने को सजीव बनाए रखने तथा उन्नति पथ पर दृढ़ता से सर्वदा अग्रसर होने का प्रयत्न करती रहे। इसका एक प्रधान साधन उसके पूर्व गौरव की स्मृति है, जो सदा संजीवनी शक्ति का संचार करती हुई उसको अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिये उत्साहित करती रहती है। इस स्मृति की रक्षा उस जाति के साहित्य-भांडार में उसे सुरक्षित रखने ही से हो सकती है, और इसको सुरक्षित न रखना अपने ध्येय को नष्ट करना है। साथ ही जिस साहित्य भांडार में इतिहास तथा जीवनचरित्र रूपी रत्न संचित न किए गए हों, वे कभी पूर्ण नहीं माने जा सकते। हमे अपनी प्रिय जन्मभूमि भारत माता के प्राचीन इतिवृत्त को बड़े यत्न से सुरक्षित रखना होगा। हम भारतवासियों के लिये यह पूर्व गौरव की स्मृति अभी तक अत्यधिक आवश्यक है, क्योंकि उसके न रहने पर संसार की जाति-प्रदर्शिनी में हमें स्यात् कोई स्थान मिलना असंभव हो जायगा। प्रकृति ने जगती-तल के एक अंश, हमारे इस प्यारे भारत पर ऐसी कृपादृष्टि बना रखी है कि यहाँ सभी प्रकार के जलवायु, नदी, निर्झर, अन्न, फल, फूल, पशु आदि वर्तमान हैं और यहाँ के रहनेवालों को जीवन की किसी आवश्यक वस्तु के लिये परमुखापेक्षी नहीं होना पड़ता। इसी

वर्षों मे अनेक स्वतंत्र राज्य स्थापित तथा अंतर्हित हुए होंगे और कितने प्रसिद्ध राजवश उदित तथा अस्तमित हुए होंगे, पर उन सब का कोई सिलसिलेवार इतिहास उपलब्ध नहीं है। यह तो निर्विवादत. सिद्ध है कि ऐसे शृंखलाबद्ध इतिहास सक्षेप में काव्यादि के रूप में अवश्य लिखे जाते थे। इन राजाओं की वंशावलियो तथा ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेख अब भी प्राप्त पुराणादि ग्रंथो मे मिलते हैं। सूर्य, चन्द्र, मौर्य, शुग आदि राजवंशों की नामावली तथा उनके राजत्व काल इन्हीं विशद ग्रंथों में दिए हुए हैं। सस्कृत के आदि कवि वाल्मीकि जी ने रामायण में रघु-वंश का विस्तृत इतिहास लिखा है। महाभारत भी कुरु वश का विशुद्ध इतिहास है। राजतरंगिणी में काश्मीर के अनेक राजवशों का शृंखलाबद्ध इतिहास दिया गया है। हर्ष-चरित, नवसाहसांक चरित, गौड़वहो, पृथ्वीराज विजय आदि बीसों काव्य हैं, जिनमें इतिहास का प्रचुर साधन प्राप्त है। इन ऐतिहासिक ग्रथों के सिवा अन्य विषयों के ग्रंथों में प्रसंगवश या अपने आश्रयदाताओं के यश-वर्णन के संबध में बहुत से ऐतिहासिक वृत्त दिए हुए मिलते हैं, जिनसे इतिहास पर विशेष प्रकाश पड़ता है। पाश्चात्य तथा देशीय इतिहासवेत्ता विद्वानों ने प्राचीन भाषाओं के ग्रंथो का परिशीलन कर इतिहास पर जितना प्रकाश डाला है, उतना परिश्रम आधुनिक भाषाओं के ग्रंथों पर नहीं किया गया है। अर्वाचीन तथा आधुनिक इतिहास अधिकतर फ़ारसी तथा उसी के आधार पर लिखे गए अंग्रेजी

कृपादृष्टि के कारण उस जगन्नियंत्रिणी प्रकृति ने इसे सुरक्षित बनाने को उच्चाति उच्च पर्वत-मालाओं तथा उत्ताल सागर-तरंगों से घेर रखा है। पर अन्य देशवासियों ने, स्यात् इसी भाव के द्वेष के कारण, इन पर्वत-मालाओं को भेदकर तथा समुद्र के वक्षस्थल को चीरकर इस भारत पर चढ़ाई कर इसे युद्ध क्रीड़ा का क्षेत्र बना डाला। इस मृत्युलोक के संसार विजयी कहलाने-वाले अगम्य उत्साहपूर्ण शूर वीर इस देश पर प्राचीन काल से अपनी कृपादृष्टि का चिह्न छोड़ते गये हैं। इस देश पर शताब्दियों से इन आक्रमणकारियों की दुर्द्धर्ष वाहिनियों को रोकने के लिये यहाँ के वीरों के प्रयत्न से रणचंडी के जो नृत्य होते रहे हैं, उनसे यह देश बराबर पद-दलित होता रहा है। भारत के ऐतिहासिक काल के आरंभ होने के बहुत पहिले से इस देश में रणभेरी का घोर रव सुनाई पड़ता रहा है। ऐसी अवस्था में भारत के शृंखला-बद्ध इतिहास का मिलना कहाँ तक संभव है, यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी जो सामग्री उपलब्ध है या प्रयत्न द्वारा उपलब्ध की जा सकती है, उसके चार विभाग किए जा सकते हैं— (१) देशीय विद्वानों द्वारा लिखी गई प्राचीन पुस्तकें; (२) प्राचीन शिलालेख तथा दानपत्र, (३) सिक्के, मुद्रा तथा शिल्प और (४) विदेशियों के लिखे हुए यात्रा-विवरण तथा इतिहास।

(१) प्रथम प्रकार की सामग्री में संस्कृत, प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओं तथा उन्हीं से उत्पन्न आधुनिक देशी भाषाओं की पुस्तकें हैं। भारतवर्ष सरीखे विशाल देश में इस कई सहस्र

भी इतिहास के साधन हैं। इनके सिवा राजपूताने के अनेक राजवंशों की ख्यातें भी मिलती हैं, जिनकी संख्या कम नहीं है और जो भारत के इतिहास के मध्य युग के लिये बहुत उपयोगी हैं। रॉयल एशाटिक सोसाइटी ने स्यात् ऐसी ख्यातों की एक वर्णनात्मक सूची भी निकाली है। मराठी इतिहास के साधन स्वरूप बहुत से बखर, शकावली आदि प्राप्त हैं जिनसे भी बहुत कुछ सहायता मिलती है। सभासद कृत "शिवछत्रपति यांचे चरित्र" सबसे प्राचीन है। जेधेशकावली आदि कई पुस्तिकाएँ इतिहास की छोटी छोटी घटनाएँ भी समय आदि सहित ठीक ठीक बतला रही हैं। पर्णाल ग्रहण आख्यानं, शिवभारत आदि संस्कृत में लिखे ग्रंथ भी मराठी इतिहास पर प्रकाश डालने में सहायक हैं। इस प्रकार के अनेक बखरों तथा ऐतिहासिक पत्रों के संग्रह दक्षिण में इतिहास के साधन रूप में कई भागों में निकल चुके हैं।

(२) भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के निर्माण में सबसे अधिक उपयोगी तथा सत्य इतिवृत्त बतलानेवाले शिलालेख और दानपत्र ही हैं। शिलालेख प्रायः शिलाओं पर खुदे हुए मिलते हैं, जो गुफाओं, देव-मन्दिरों, मठों, बौद्ध स्तूपों, तालाबों आदि में लगे हुए होते हैं। शिलाओं के अतिरिक्त स्तंभों पर भी लेख खुदे हुए मिलते हैं। कभी कभी ऐसे शिलालेख मूर्तियों के आसनों तथा पीठों पर खुदे मिलते हैं या स्तूप आदि के भीतर रखे हुए प्रस्तर-निर्मित पात्रों पर खुदे हुए रहते हैं। ग्रामों आदि में कभी कभी ऐसे शिला-

ई हालों म तैयार किया गया है। देशी भाषाओं की पुस्तकों से भी, जो वास्तव में अधिक नहीं हैं, इस इतिहास के प्रस्तुत करने में सहायता मिल सकती है; पर उसका उपयोग नहीं किया गया है।

हिन्दी के साहित्य-भाण्डार की प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तकों में पृथ्वीराज रासो, खुम्माण रासो, राना रासो, रामपाल रासो, हम्मीर रासो, बीसलदेव रासो आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। इन ग्रंथों के अनन्तर अर्वाचीन समय में भी बहुत से ग्रंथ प्रस्तुत किए गए हैं, जिनमें कवियों ने अपने आश्रयदाता नरेशों के चरित्र वर्णन किए हैं। इन चरित्रों, रासों तथा बिरुदावलियों में कोरे इतिवृत्त ही नहीं दिए गए हैं, प्रत्युत उन्हें कवियों ने अलंकारादि से खूब सजाकर पाठकों के सम्मुख रखा है। इन सब के होते हुए भी ऐतिहासिक विवरण शुद्ध रूप में ही पाया जाता है, अर्थात् पक्षपात करके ये कविगण सत्यभ्रष्ट होना उचित नहीं समझते। महाकवि केशवदास कृत वीरसिंह देव चरित तथा रतनबावनी और गोरेलाल कृत छत्रप्रकाश मे बुँदेला नरेशों का इतिहास संक्षिप्त रूप में तथा चरितनायकों का विशद रूप में वर्णित है। राजविलास में प्रसिद्ध महाराणा राजसिंह और सुजानचरित्र में भरतपुर नरेश सूरजमल जाट का चरित्र दिया गया है। जंगनामा, हिम्मत बहादुर-बिरुदावली आदि में ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण दिया गया है। गुजराती भाषा के कान्हड़ दे प्रबन्ध विमल प्रबंध आदि और तामिल के विक्रमशोलनुला, राजराजनुला आदि

भी इतिहास के साधन हैं। इनके सिवा राजपूताने के अनेक राजवंशों की ख्यातें भी मिलती हैं, (जिनकी सख्या कम नहीं है और जो भारत के इतिहास के मध्य युग के लिये बहुत उपयोगी हैं। रॉयल एशाटिक सोसाइटी ने स्यात् ऐसी ख्यातो की एक वर्णनात्मक सूची भी निकाली है। मराठी इतिहास के साधन स्वरूप बहुत से बखर, शकावली आदि प्राप्त हैं जिनसे भी बहुत कुछ सहायता मिलती है। सभासद कृत "शिवछत्रपति यांचे चरित्र" सबसे प्राचीन है। जेधेशकावली आदि कई पुस्तिकाएँ इतिहास की छोटी छोटी घटनाएँ भी समय आदि सहित ठीक ठीक बतला रही हैं। पर्णाल ग्रहण आख्यान, शिवभारत आदि संस्कृत में लिखे ग्रंथ भी मराठी इतिहास पर प्रकाश डालने में सहायक हैं। इस प्रकार के अनेक बखरों तथा ऐतिहासिक पत्रों के संग्रह दक्षिण में इतिहास के साधन रूप में कई भागो में निकल चुके हैं।

(२) भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के निर्माण में सबसे अधिक उपयोगी तथा सत्य इतिवृत्त बतलानेवाले शिलालेख और दानपत्र ही हैं। शिलालेख प्राय. शिलाओं पर खुदे हुए मिलते हैं, जो गुफाओं, देव-मन्दिरों, मठों, बौद्ध स्तूपो, तालावों आदि में लगे हुए होते हैं। शिलाओं के अतिरिक्त स्तभों पर भी लेख खुदे हुए मिलते हैं। कभी कभी ऐसे शिलालेख मूर्तियों के आसनों तथा पीठों पर खुदे मिलते हैं या स्तूप आदि के भीतर रखे हुए प्रस्तर-निर्मित पात्रों पर खुदे हुए रहते हैं। ग्रामों आदि में कभी कभी ऐसे शिला-

लेख गड़े हुए भी मिल जाते हैं। ये शिलालेख समग्र भारत में मिलते हैं, पर दक्षिणापथ में प्राचीन ग्रंथों के समान इनका कुछ आधिक्य है। कारण यही है कि उत्तरापथ से उधर विदेशियों का अत्याचार कम हुआ है। इन शिलालेखों की भाषा संस्कृत, विशेष कर प्राकृत तथा हिन्दी, कनाड़ी आदि होती है और ये गद्य तथा पद्य दोनों ही में रचे हुए मिलते हैं, जिनमें कभी कभी मनोहर कवित्व शक्ति की छटा दिखलाई पड़ती है। इनमें राजाओं, रानियों तथा उनके आश्रित अनेक वंशों का संक्षिप्त परिचय मिलता है। इनसे तत्कालीन समाज तथा धर्म-विषयक अनेक बातों का भी पता मिलता रहता है। कभी कभी बड़े बड़े लेखों में नाटिका, काव्य आदि पूरे के पूरे लिखे हुए मिल जाते हैं, जिनसे साहित्य भांडार की शोभा बढ़ जाती है। भोज रचित कूर्मशतक, बीसलदेव रचित हर केलि नाटक, रामप्रशस्ति महाकाव्य आदि इसी प्रकार मिले हैं। इस प्रकार अब तक सहस्रों शिलालेखों के मिलने से भारत का प्राचीन इतिहास तैयार करने में बहुत सहायता पहुँची है।

इन शिलालेखों के सिवा ताम्रपत्र पर खुदे हुए दानपत्र भी मिलते हैं, जो राजाओं तथा धनाढ्य सामंतों की ओर से मंदिरों, मठों, ब्राह्मणों आदि को धर्मार्थ दिए हुए ग्रामों या निर्मित किए हुए कूएँ आदि की सनदों के रूप में दिए गए हैं। ऐसे दानपत्र एक ही बड़े या छोटे ताम्रपत्र पर मिलते हैं या कई पत्रों पर खुदे रहते हैं। जब ऐसे दानपत्र कई पत्रों में रहते हैं, तब बीच के पत्र तो दोनों ओर, पर पहिले और अंतिम केवल भीतर की ओर खुदे रहते

हैं। ऐसे कई पत्रों के होने पर वे एक या कभी दो कड़ियों से जुड़े मिलते हैं। इन दानपत्रों की भाषा तथा शैली शिलालेखों की भाषा आदि सी रहती है और ये भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इन में भी समय, राजवंश, स्ववंश तथा आश्रयदाताओं का विवरण दिया रहता है, जिस से ये भी प्राचीन इतिहास के लिये बड़े उपकारी होते हैं। इनके सिवा उस समय के अनेक दानियों, धर्माचार्यों, मन्त्रियों आदि का भी इनसे परिचय मिल जाता है।

(३) भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के लिपिबद्ध न मिलने के कारण शिलालेखों तथा पत्रों के समान प्राचीन सिक्के भी लुप्त इतिहास का उद्धार करने के एक प्रधान कारण होते हैं। प्राचीनतम काल के वस्तु-विनिमय में सुभीता करने के लिये मानव समाज ने सिक्कों का आविष्कार कर विनिमय का स्थायी साधन खोज निकाला। पहिले ये सिक्के गोली की आकृति के होते थे, जिन पर ठप्पे से कुछ भद्दी शक्ल उठा दी जाती थी। ईरान आदि पश्चिम के ये सिक्के धातु के टुकडे मात्र होते थे, जो बड़े भद्दे होते थे। भारत ही में सर्व प्रथम चिपटे, चौकोर या गोल सुंदर सिक्के बने थे, जो कार्षापण कहलाते थे। ये सिक्के पहिले चाँदी के और तब सोने के बनने लगे। विक्रमाब्द के पूर्व की चौथी पाँचवीं शताब्दी के लेखयुक्त सिक्के मिलते हैं। प्राचीन शिलालेखों में जिन राजवंशों की नामावली नहीं मिलती या अधूरी रह जाती है, वह कभी कभी इन सिक्कों

पर के लेखों से मिल जाती है या पूरी हो जाती है। पंजाब के यूनानी राजाओं के नाम विशेषतः सिक्कों द्वारा से प्राप्त हुए हैं, जो सोने, चाँदी, ताँबे तथा निकल के हैं। इनमें से केवल एक अंतिअल्किद (Antialkida) का शिलालेख मिला है और सिक्के अट्ठाइस राजाओं के मिल चुके हैं। गुप्त वंश के सिक्कों पर कवितामय लेख अंकित किए जाते थे। यूनानी सिक्कों पर एक ओर ग्रीक भाषा में तथा दूसरी ओर वही बात खरोष्ठी लिपि में प्राकृत भाषा में रहती थी। पर कुछ सिक्के ऐसे भी मिलते हैं जो पुराने कार्षापण के ढंग पर बने हुए हैं और उन पर एक ओर यूनानी तथा दूसरी ओर ब्राह्मी लिपि में राजा का नाम तथा पदवी दी हुई है। जितने राजवंशों, जातियों तथा स्थानों के सिक्के मिल चुके हैं, उन सब का उल्लेख करने के लिये यहाँ अवकाश नहीं है और वे मुद्रातत्त्व के अंतर्गत आ जाते हैं।

राजमुद्रा अर्थात् मुहर लगाना भी प्राचीन काल से भारत में प्रचलित है। पकाए हुए मिट्टी के गोलों पर मुहर बनी हुई मिलती है। ताम्रपत्रों तथा उनकी कड़ियों पर ऐसी राजमुद्राएँ लगी हुई दिखलाई पड़ती हैं। अँगूठी तथा अकीक पत्थर पर बनी हुई मुहरें भी मिली हैं। ये सब भी इतिहास में कभी कभी अच्छी सहायता दे जाती हैं। गुप्त तथा कन्नौज के राजवंश की बहुत सी मुद्राएँ मिली हैं, जिनसे प्राचीन इतिहास में महत्त्वपूर्ण सहायता पहुँची है। इस प्रकार की बहुत सी राजमुद्राएँ मिल चुकी हैं।

प्राचीन शिल्पविद्या की उत्तमता का परिचय देनेवाली मूर्तियों, गुफाओं, विशाल मंदिरों, पुराने स्तंभों आदि से भी प्राचीन इतिहास में सहायता पहुँचती है। प्राचीन चित्रों से भारतीय प्राचीन चित्र कला के ज्ञान के साथ साथ तत्कालीन वस्त्राच्छादन और सामाजिक तथा धार्मिक रीति-व्यवहारों का भी ज्ञान संपादन किया जा रहा है। अजंता आदि गुफाओं के रंगीन चित्र अभी तक दर्शकों को मुग्ध कर देते हैं।

(४) इतिहास की इस सामग्री के दो प्रधान विभाग किए जा सकते हैं। एक तो वह जो शुद्ध यात्राविवरण हैं, पर उनसे भी इतिहास की बहुत कुछ सामग्री प्राप्त होती है। कोरी घटनावाली के सिवा इनमें यात्रियों के आँखों देखे वर्णन से स्थान स्थान की रीति-रस्म, भाषा, धर्म आदि सभी विषयों पर प्रकाश पड़ता है। अन्य देशीय विद्वान हम लोगों के व्यवहार आदि पर क्या विचार प्रकट करते हैं, इन सब का इनमें खासा वर्णन मिलता है। दूसरे विभाग में विदेशियों द्वारा लिखे हुए इतिहास ग्रंथ हैं जो इसी दृष्टि से लिखे गए हैं। इनमें विदेशीय भाषाओं में लिखे हुए वे काव्य आदि अन्य विषयक ग्रथ भी आ जाते हैं, जिनसे ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। जैसे अमीर खुसरो के काव्यों में बहुत कुछ ऐतिहासिक तथ्य भरा पड़ा है।

जिन विदेशियों ने अपनी भारत-यात्रा का विवरण या देश का कुछ वृत्तान्त लिखा है, उनमें यूनानी लोग सबसे प्राचीन हैं। हेरोडोटस 'इतिहास का पिता' कहलाता था और ईसवी सन् के

पर रेले की पाँचवीं शताब्दी में वर्तमान था। इसने भी भारत के के भूप में कुछ लिखा है। मेगास्थिनीज शाम देश के राजा सिल्यू हुए द्वारा चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में भेजा हुआ राजदूत था। एक ई० पू० तीसरी शताब्दी के भारत का अच्छा वर्णन किया और डायोडोरस सिकुलस ई० पू० प्रथम शताब्दी में वर्तमान था सिसिली और इसने संसार का इतिहास लिखा है। प्लुटार्क बोटिया का रहनेवाला था तथा ई० सन् की प्रथम शताब्दी में वर्तमान था। यह जीवनचरित्र लेखन में सिद्धहस्त था और इसने पचासों जीवनियाँ लिखी हैं। रूफस क्विंटस कर्टियस ई० सन् की पहिली या दूसरी शताब्दी में था और इसने सिकंदर की जीवनी दस भागों में लिखी थी। इसके सिवा कसियस, टालेमी आदि कई विद्वानों ने भी भारत के विषय में लिखा है, जो स्वतंत्र ग्रंथों में या अन्यत्र उद्धृत होकर प्राप्त हुआ है।

यूनानियों के अनंतर चीनवालों का नंबर आता है। यद्यपि अशोक के प्रयत्न से चीनवालों में बौद्ध धर्म की ख्याति फैल गई थी और वह दिनों दिन उन्नति कर रहा था, पर सन् ६० ई० में जब चीन के सम्राट् मिंगटी ने दूत भेजकर बौद्ध आचार्यों को बुलवाया, तब से वहाँ इस धर्म का प्रचार बहुत बढ़ने लगा। इसी के अनंतर भिक्षु-संघटन होने पर धर्म-ग्रंथों की खोज में ये चीनी भारत आने लगे। सबसे पहिला यात्री फाहियान था, जो सन् ३९९ ई० में चीन से चला और पंद्रह वर्ष यहाँ रहकर सन् ४१४ ई० में स्वदेश लौटा था। इसके बाद तावयुग, चोयिंग तथा सुगसुन

आया। सन् ५१७ ई० में सुगयुन हुईसंग के साथ आया था और तीन वर्ष बाद लौट गया। इसके उपरांत सुयेनच्वांग या हुयेन्स ने सन ६२९ ई० में भारत-यात्रा आरंभ की और यहाँ सोलह वर्ष रहकर चीन लौटा था। इसका यात्राविवरण विशद है, जिसके दूसरे भाग मे इसकी जीवनी भी दी है। ६७१ ई० में इत्सिंग भारत आया था। इनके अतिरिक्त हुइनि, सुयेनचिउ, सुयेनताई, तिपिन आदि अनेक अन्य चीनी यात्री आए और अपनी यात्राओं का विवरण आदि लिख गए।

तिब्बत तथा लंकावाले बौद्धों से भी भारत का संपर्क प्राचीन है और इन देशों के साहित्य भांडार मे भी भारत विषयक इतिहास की सामग्री मिलती है।

भारत तथा उसके पश्चिम के देशों से प्राचीन समय से व्यापार होता चला आ रहा है, जिसका प्रधान मार्ग फारस, रूम आदि देशों से होकर युरोप तक गया था। उन देशों के भी कई यात्री भारत आए और उन लोगों में से कई ने अति विशद वर्णन भी दिया है। इन भ्रमण वृत्तान्तों में तत्कालीन भारत के ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक तथा विद्या सबधी ज्ञान की पूरी सामग्री है। इन यात्रियों में से कई ने अपना सारा जीवन ही इस कार्य में बिता दिया था। सबसे पहिला मुसलमान यात्री सुलेमान सौदागर था, जिसकी यात्राओं का विवरण सन् ८५१ ई० में लेखबद्ध किया गया था। इसके अनंतर अबूजैद हसन सीराफी ने भी सन् ९१६ ई० में भारत के विषय में कुछ वृत्तान्त लिखा था। इन दोनों की इस

पर ईसे की पाँचवीं शताब्दी में वर्तमान था। इसने भी भारत के के विषय में कुछ लिखा है। मेगास्थिनीज ग्राम देश के राजा सिल्यूकस द्वारा चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में भेजा हुआ राजदूत था। एक ई० पू० तीसरी शताब्दी के भारत का अच्छा वर्णन किया और डायोडोरस सिकुलस ई० पू० प्रथम शताब्दी में वर्तमान था और इसने संसार का इतिहास लिखा है। प्लुटार्क बीटिया का रहनेवाला था तथा ई० सन् की प्रथम शताब्दी में वर्तमान था। यह जीवनचरित्र लेखन में सिद्धहस्त था और इसने पचासों जीवनियाँ लिखी हैं। रूफस क्विंटस कर्टिअस ई० सन् की पहिली या दूसरी शताब्दी में था और इसने सिकंदर की जीवनी दस भागों में लिखी थी। इसके सिवा कलिभस, टालेमी आदि कई विद्वानों ने भी भारत के विषय में लिखा है, जो स्वतंत्र ग्रंथों में या अन्यत्र उद्धृत होकर प्राप्त हुआ है।

यूनानियों के अनंतर चीनवालों का नंबर आता है। यद्यपि अशोक के प्रयत्न से चीनवालों में बौद्ध धर्म की ख्याति फैल गई थी और वह दिनों दिन उन्नति कर रहा था, पर सन् ६० ई० में जब चीन के सम्राट् मिंगटी ने दूत भेजकर बौद्ध आचार्यों को बुलवाया, तब से वहाँ इस धर्म का प्रचार बहुत बढ़ने लगा। इसी के अनंतर भिक्षु-संघटन होने पर धर्म-ग्रंथों की खोज में ये चीनी भारत आने लगे। सबसे पहिला यात्री फाहियान था, जो सन् ३९९ ई० में चीन से चला और पंद्रह वर्ष यहाँ रहकर सन् ४१४ ई० में स्वदेश लौटा था। इसके बाद सावयुन, तोर्मिग तथा सुगयुन

आया। सन् ५१७ ई० में सुंगयुन हुईसंग के साथ आया था और तीन वर्ष बाद लौट गया। इसके उपरांत सुयेनच्वांग या हुयेन्सांग ने सन ६२९ ई० में भारत-यात्रा आरंभ की और यहाँ सोलह वर्ष रहकर चीन लौटा था। इसका यात्राविवरण विशद है, जिसके दूसरे भाग में इसकी जीवनी भी दी है। ६७१ ई० में इत्सिंग भारत आया था। इनके अतिरिक्त हुइनि, सुयेनचिउ, सुयेनताई, लिपिन आदि अनेक अन्य चीनी यात्री आए और अपनी यात्राओं का विवरण आदि लिख गए।

तिब्बत तथा लकावाले बौद्धों से भी भारत का संपर्क प्राचीन है और इन देशों के साहित्य भांडार में भी भारत विषयक इतिहास की सामग्री मिलती है।

भारत तथा उसके पश्चिम के देशों से प्राचीन समय से व्यापार होता चला आ रहा है, जिसका प्रधान मार्ग फारस, रूम आदि देशों से होकर युरोप तक गया था। उन देशों के भी कई यात्री भारत आए और उन लोगों में से कई ने अति विशद वर्णन भी दिया है। इन भ्रमण वृत्तान्तों में तत्कालीन भारत के ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक तथा विद्या सबधी ज्ञान की पूरी सामग्री है। इन यात्रियों में से कई ने अपना सारा जीवन ही इस कार्य में बिता दिया था। सबसे पहिला मुसलमान यात्री सुलेमान सौदागर था, जिसकी यात्राओं का विवरण सन् ८५१ ई० में लेखबद्ध किया गया था। इसके अनतर अबूजैद हसन सीराफी ने भी सन् ९१६ ई० में भारत के विषय में कुछ वृत्तान्त लिखा था। इन दोनों की इस

पर हेले की पाँचवीं शताब्दी में वर्तमान था। इसने भी भारत के के भूप में कुछ लिखा है। मेगास्थिनीज शाम देश के राजा सिल्यू हुए द्वारा चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में भेजा हुआ राजदूत था। यह ई० पू० तीसरी शताब्दी के भारत का अच्छा वर्णन किया और डायोडोरस सिकुलस ई० पू० प्रथम शताब्दी में वर्तमान था और इसने संसार का इतिहास लिखा है। प्लुटार्क बोठिया का रहनेवाला था तथा ई० सन् की प्रथम शताब्दी में वर्तमान था। यह जीवनचरित्र लेखन में सिद्धहस्त था और इसने पचासों जीवनियाँ लिखी हैं। रूफस क्विंटस कर्टिअस ई० सन् की पहिली या दूसरी शताब्दी में था और इसने सिकंदर की जीवनी दस भागों में लिखी थी। इसके सिवा कसियस, टालेमी आदि कई विद्वानों ने भी भारत के विषय में लिखा है, जो स्वतंत्र ग्रंथों में या अन्यत्र उद्धृत होकर प्राप्त हुआ है।

यूनानियों के अनंतर चीनवालों का नंबर आता है। यद्यपि अशोक के प्रयत्न से चीनवालों में बौद्ध धर्म की ख्याति फैल गई थी और वह दिनों दिन उन्नति कर रहा था, पर सन् ६७ ई० में जब चीन के सम्राट् मिंगटी ने दूत भेजकर बौद्ध आचार्यों को बुलवाया, तब से वहाँ इस धर्म का प्रचार बहुत बढ़ने लगा। इसी के अनन्तर भिक्षु-संघटन होने पर धर्म-मर्मों की खोज में ये चीनी भारत आने लगे। सबसे पहिला यात्री फाहियान था, जो सन् ३९९ ई० में चीन से चला और पंद्रह वर्ष यहाँ रहकर सन् ४१४ ई० में स्वदेश लौटा था। इसके बाद शावयुग, तोयिंग तथा सुगयुन

आया। सन् ५१७ ई० में सुंगयुन हुईसंग के साथ आया था और
तीन वर्ष बाद लौट गया। इसके उपरांत सुयेनच्वांग या हुयेन्सीन
ने सन ६२९ ई० मे भारत-यात्रा आरंभ की और यहाँ
सोलह वर्ष रहकर चीन लौटा था। इसका यात्राविवरण
विशद है, जिसके दूसरे भाग मे इसकी जीवनी भी दी है।
६७१ ई० में इत्सिंग भारत आया था। इनके अतिरिक्त हुइनि,
सुयेनचिङ, सुयेनताई, सिपिन आदि अनेक अन्य चीनी यात्री
आए और अपनी यात्राओं का विवरण आदि लिख गए।

तिब्बत तथा लंकावाले बौद्धो से भी भारत का संपर्क प्राचीन
है और इन देशों के साहित्य भांडार में भी भारत विषयक इतिहास
की सामग्री मिलती है।

भारत तथा उसके पश्चिम के देशो से प्राचीन समय से व्यापार
होता चला आ रहा है, जिसका प्रधान मार्ग फारस, रूम
आदि देशों से होकर युरोप तक गया था। उन देशों के भी कई
यात्री भारत आए और उन लोगों में से कई ने अति विशद वर्णन भी
दिया है। इन भ्रमण वृत्तान्तों में तत्कालीन भारत के ऐतिहासिक,
सामाजिक, धार्मिक तथा विद्या सबधी ज्ञान की पूरी सामग्री है।
इन यात्रियों में से कई ने अपना सारा जीवन ही इस कार्य में बिता
दिया था। सबसे पहिला मुसलमान यात्री सुलेमान सौदागर था,
जिसकी यात्राओं का विवरण सन् ८५१ ई० मे लेखबद्ध किया गया
था। इसके अनतर अबूज़ैद हसन सीराफी ने भी सन् ९१६ ई० में
भारत के विषय में कुछ वृत्तान्त लिखा था। इन दोनों की इस

पर ईसा से पूर्व की पाँचवीं शताब्दी में वर्तमान था। इसने भी भारत के के पूर्व में कुछ लिखा है। मेगास्थिनीज़ शाम देश के राजा सिल्यूकस के द्वारा चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में भेजा हुआ राजदूत था। एक ई० पू० तीसरी शताब्दी के भारत का अच्छा वर्णन किया और डायोडोरस सिकुलस ई० पू० प्रथम शताब्दी में वर्तमान था और इसने संसार का इतिहास लिखा है। प्लुटार्क बीटिया का रहनेवाला था तथा ई० सन् की प्रथम शताब्दी में वर्तमान था। यह जीवनचरित्र लेखन में सिद्धहस्त था और इसने पचासों जीवनियाँ लिखी हैं। रूफस क्विंटस कर्टियस ई० सन् की पहिली या दूसरी शताब्दी में था और इसने सिकंदर की जीवनी दस भागों में लिखी थी। इसके सिवा कसियस, टालेमी आदि कई विद्वानों ने भी भारत के विषय में लिखा है, जो स्वतंत्र ग्रंथों मे या अन्यत्र उद्धृत होकर प्राप्त हुआ है।

यूनानियों के अनंतर चीनवालों का नंबर आता है। यद्यपि अशोक के प्रयत्न से चीनवालों में बौद्ध धर्म की ख्याति फैल गई थी और वह दिनों दिन उन्नति कर रहा था, पर सन् ६० ई० में जब चीन के सम्राट् मिंगटी ने दूत भेजकर बौद्ध आचार्यों को बुलवाया, तब से वहाँ इस धर्म का प्रचार बहुत बढ़ने लगा। इसी के अनंतर भिक्षु-संघटन होने पर धर्म-ग्रंथों की खोज में ये चीनी भारत आने लगे। सबसे पहिला यात्री फाहियान था, जो सन् ३९९ ई० में चीन से चला और पंद्रह वर्ष यहाँ रहकर सन् ४१४ ई० में स्वदेश लौटा था। इसके बाद तावयुग, तोर्यिंग तथा सुगयुन

है और उसमें ऐतिहासिक तथा भौगोलिक सामग्री के सिवा उस समय तक ज्ञात संस्कृत आदि भाषाओं के साहित्य का भी बहुत सा ज्ञान संचित है। यह यात्राविवरण 'अलबेरूनी का भारत' नाम से हिंदी में प्रकाशित भी हो चुका है। अबू अब्दुल्ला मुहम्मद इब्नबतूता का जन्म अफ्रीका के मोरोक्को प्रांत के टैंजिअर नगर में सन् १३०४ ई० में हुआ था और यह सन् १३७७ ई० में मरा था। इसने एशिया के दक्षिण भाग में तीस वर्ष तक पर्यटन किया था। यह दिल्ली में भी कुछ दिन रहा था। इसका यात्रा-विवरण भी विशद है।

अरबी भाषा में लिखे हुए इन यात्राविवरणों के सिवा बहुत से इतिहास ग्रंथ लिखे गए हैं, जिनसे भारत के इतिहास के मुसलमान काल का विस्तृत विवरण मिलता है। इनमें दो प्रकार के इतिहास हैं जिनमें विशेषतः वे हैं जो बादशाहों तथा सुलतानों की आज्ञा से लिखे गए हैं, और कुछ ऐसे भी हैं जो सरदारों के आश्रय में या 'स्वांत- सुखाय' लिखे गए हैं। कुछ ऐसे ग्रंथ भी लिखे गए हैं जिनमें प्रांत, जिले आदि के विवरण, उन स्थानों की तहसील, स्थानिक अफसरों के कार्य आदि भी विस्तार से दिए हुए हैं। देश के धर्म आदि पर भी पुस्तकें लिखी गई हैं। इस काल के पत्र हजारों की संख्या में मिले हैं, जिनसे ऐतिहासिक खोज में बहुत सहायता मिलती है। ऐसे पत्रों के अनेक संग्रह भी मिलते हैं, जो इशाए माधोराम, बहारे सखुन, इशाए निगारनामा, रुक्कआते आलमगीरी आदि नाम से प्राप्त हैं।

सामग्री को मिला कर अरबी भाषा में एक ग्रंथ प्रस्तुत हुआ जिसका नाम 'सिलसिलातुत्तवारीख' रखा गया। इसका प्रथम भाग अर्थात् सुलेमान सौदागर का यात्रा-विवरण इसी माला में निकल चुका है। इसके बाद मुहम्मद इब्न हौकल का नाम आता है, जिसकी मृत्यु ९७६ ई० में हुई थी। इसका जन्म बगदाद में हुआ था और यह भूगोलवेत्ता तथा यात्री था। यह अपनी पुस्तक 'मसालिक वल्‌ममालिक' (मार्गों तथा देशों का वर्णन) के लिये तीस वर्ष तक अटलांटिक महासागर से सिंधु नदी तक यात्रा करता रहा था। अबुल् हसन अली मसऊदी सन् ९०० ई० में बगदाद में पैदा हुआ था और सन् ९५७ ई० में मरा था। इसने अपना सारा जीवन भारत, चीन तथा अन्य पूर्वीय स्थानों में भ्रमण करने में व्यतीत किया था। इसने 'सोने के खेत' तथा 'किताबुल् तंबीह' दो पुस्तकें लिखी थीं। इसके बाद सुप्रसिद्ध यात्री तथा विद्वान अबूरैहाँ मुहम्मद इब्न अहमद अलबेरूनी हुआ, जिसका जन्म सन् ९७३ ई० म खीवा में हुआ था। महमूद गजनवी सन् १०१७ ई० मे खीवा विजय कर इसे गजनी लाया। यह राजनीतिक क़ैदी होने के कारण महमूद के भारतीय आक्रमणों में बराबर साथ था और हिंदुओं की विद्याओं का महत्व देख कर इसने संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया। इसने भारतीय विषय लेकर अरबी में लगभग बीस पुस्तकें लिखी हैं और कई पुस्तकें संस्कृत में भी लिखी हैं। यह गणित तथा ज्योतिर्विद्या का प्रकांड पंडित था। इसकी मृत्यु सन् १०४८ ई में हुई। इसका यात्रा-विवरण विशद

के खुलासतुल् अखबार, दस्तूरुल् वज़रा और हबीबुसियर में अन्तिम पुस्तक कुछ महत्त्व की है। इसमें ग़ज़नवी वंश का वृत्तान्त दिया गया है। यह पुस्तक सन् १५२१ ई० में आरम्भ हुई थी। मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर के समय के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसी बादशाह का लिखा आत्मचरित्र प्रधान साधन है। यह एक सहृदय, उदार-चेता तथा प्रसन्न-चित्त वीर सम्राट् की रचना है और इसमें इतिहास, यात्रा के समय स्थानों के सूक्ष्म निरीक्षण के फल तथा हार्दिक भावों के निदर्शन बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किए गए हैं। इस ग्रन्थ का नाम तुज़ुके बाबरी या वाक़ेआते बाबरी है। यह तुर्की भाषा में लिखा गया है और इसका फारसी अनुवाद नवाब अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ ने किया है। इसके एक से अधिक अँग्रेज़ी अनुवाद भी हो चुके हैं, पर दुःख है कि वह हिन्दी में अप्राप्य हैं। इसी की पुत्री गुलबदन बेगम ने यादादाश्त से एक हुमायूँनामा लिखा था, जिसकी केवल एक हस्तलिखित प्रति अपूर्ण ही मिली है। इसमें भी बाबर तथा उसके पुत्र हुमायूँ का वृत्तान्त दिया गया है। इसका हिन्दी अनुवाद इसी ग्रन्थ-माला में प्रकाशित हो चुका है। हुमायूँ तथा शेरशाही सुलतानों के इतिहास के लिये जौहर आफ़ताबची का तज़किरतुल् वाक़ेआत, ख़ोंदामीर का हुमायूँनामा, हैदर मिर्ज़ा दोगलात को तारीखे रशीदी, अब्बास खाँ शेरवानी कृत तारीखे शेरशाही और अहमद यादगार को तारीखे सलातीने अफ़ग़ाना में पूरा मसाला है। निज़ामुद्दीन

मुसलमानों के आरम्भिक आक्रमणों के समय के या उसके पहिले के इतिहास के लिये विशेष सहायक न होने पर भी उस समय का कुछ वृत्तान्त चचनामा, चच नामा, मआसिरुल् उमराय, बेग्लर नामा, तारीखे मासूमी आदि पुस्तकों से मिल जाता है। ऐनुल् अख़बार, जामेउल् हिकायात, तवारीख अल-मुलूकर्मी, ख़लासतुत्तवारीख, खुलासतुल् अख़बार, तबक़ाते नासिरी, मीराते मसऊदी और ताजुल् मआसिर से पठान सुलतान कहे जानेवाले कई राजवंशों का पूर्ण ऐतिहासिक वृत्त मिलता है। फ़ारसी के सर्वश्रेष्ठ भारतीय कवि अमीर ख़ुसरो की मसनवियों तथा तारीखे अलाई में भी ऐतिहासिक सामग्री मौजूद है। इनके सिवा और भी बहुत सी पुस्तकें उस समय की मिलती हैं, जिनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक नहीं है।

तारीखे मुबारकशाही के लेखक याहिया बिन अहमद सरहिंदी का काल पन्द्रहवीं शताब्दी का मध्य है। यह सैयद सुल्तानों के समय की एक मात्र पुस्तक है, जिससे तबक़ाते अकबरी, बदायूनी तथा फिरिश्ता आदि ने अपने ग्रंथ में सहायता ली है। प्रथम ग्रंथ न तो उससे बड़े बड़े उद्धरण ही उठा कर अपना लिए हैं। कमालुद्दीन अब्दुर्रज्जाक़ कृत मतलअस्सादैन व मजमअल् बहरैन भी एक अच्छा ग्रंथ है, जिसमें तैमूर की चढ़ाई का संक्षिप्त वर्णन करने के बाद ग्रंथकर्ता की विजयनगर की यात्रा तथा वहाँ के विशद वर्णन से पन्द्रहवीं शताब्दी के भारत का अच्छा वृत्तान्त मिल जाता है। रौज़तुस्सफ़ा के लेखक मीर ख़ोंद के पुत्र ख़ोंदामीर

के खुलासतुल् अखबार, दस्तूरुल् वज़ारा और हबीबुस्सियर में अन्तिम पुस्तक कुछ महत्व की है। इसमें गज़नवी वंश का वृत्तान्त दिया गया है। यह पुस्तक सन् १५२१ ई० में आरम्भ हुई थी। मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर के समय के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसी बादशाह का लिखा आत्मचरित्र प्रधान साधन है। यह एक सहृदय, उदार-चेता तथा प्रसन्न-चित्त वीर सम्राट् की रचना है और इसमें इतिहास, यात्रा के समय स्थानों के सूक्ष्म निरीक्षण के फल तथा हार्दिक भावों के निदर्शन बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किए गए हैं। इस ग्रन्थ का नाम तुज़ुके बाबरी या वाक़ेआते बाबरी है। यह तुर्की भाषा में लिखा गया है और इसका फारसी अनुवाद नवाब अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ ने किया है। इसके एक से अधिक अँग्रेजी अनुवाद भी हो चुके हैं, पर दु:ख है कि वह हिन्दी में अप्राप्य हैं। इसी की पुत्री गुलबदन बेगम ने याददाश्त से एक हुमायूँनामा लिखा था, जिसकी केवल एक हस्तलिखित प्रति अपूर्ण ही मिली है। इसमें भी बाबर तथा उसके पुत्र हुमायूँ का वृत्तान्त दिया गया है। इसका हिन्दी अनुवाद इसी ग्रन्थ-माला में प्रकाशित हो चुका है। हुमायूँ तथा शेरशाही सुलतानों के इतिहास के लिये जौहर आफ़ताबची का तज़किरतुल् वाक़ेआत, खोंदामीर का हुमायूँनामा, हैदर मिर्ज़ा दोग़लात की तारीख़े रशीदी, अब्बास खाँ शेरवानी कृत तारीख़े शेरशाही और अहमद यादगार की तारीख़े सलातीने अफ़गाना में पूरा मसाला है। निज़ामुद्दीन

अहमद नख्शी के तबकाते अकबरी, अब्दुल्क़ादिर बदायूनी की मुन्तखिबुत्तवारीख तथा अबुल् फज़ल के अकबरनामा तथा आईने अकबरी से भी इस काल के इतिहास में सहायता मिलती है। ये ग्रन्थ अकबर के राजत्व काल के इतिहास के लिये प्रधान साधन हैं। तारीखे फरिश्ता, जिसका लेखक मुहम्मद क़ासिम हिन्दूशाह फरिश्ता था, एक विराट इतिहास है, जिसमें भारत के मुसलमानी राज्य के आरम्भ से लेकर अकबर के राज्य के प्रायः अन्त तक का इतिहास समाविष्ट है। इसकी विशेषता यह भी है कि इसमें दिल्लीश्वरों के सिवा अन्य प्रांतिक मुसलमानी राजवंशों का भी शृंखलाबद्ध इतिहास दिया गया है, जिससे इसका विशेष महत्व है। जहाँगीर ने स्वयं तुज़ुके जहाँगीरी लिखा है और इसके समय के इतिहास पर मोतमिद खाँ का इक़बालनामः, कामगार खाँ का मआसिरे जहाँगीरी तथा मुहम्मद हादी कृत तत्तमए वाक़ेआते जहाँगीरी आदि लिखे गये हैं। अब्दुल हामिद लाहौरी तथा मुहम्मद वारिस कृत बादशाहनामों, इनायत खाँ के शाह जहाँ नामा और मुहम्मद सालह कंबो के अमले सालह में शाह जहाँ के राजत्व काल का विस्तृत वर्णन किया हुआ है। मुहम्मद काज़िम का आलमगीरनामा, मुहम्मद साक़ी मुस्तैद खाँ का मआसिरे आलमगीरी तथा खफी खाँ का मुन्तखिबुल्लुबाब औरंगज़ेब की बादशाहत के प्रधान इतिहास हैं। अंतिम पुस्तक में बाबर के भारत पर आक्रमण से लेकर मुहम्मद शाह के राजत्व के चौदहवें वर्ष तक का वृत्तांत दिया है। औरंगज़ेब न इतिहास

लिखने की मनाही कर दी थी; और इस ग्रन्थ में उसके पूरे जीवन का वृत्तांत दिया गया है, इससे इसका विशेष महत्व है। इसके अनंतर मुगल साम्राज्य की अवनति होने से प्रांतिक सूबेदारों तथा नवाबों के आश्रय में बहुत सी पुस्तकें लिखी गईं, जिनमें मआसिरुल् उमरा, सियारुल् मुताखिरीन आदि महत्व की हैं।

मुसलमानों के राजत्व काल में यूरोपीय यात्री तथा व्यापारी भी बराबर भारत में आते रहते थे और इन लोगों ने भी अपने अनुभव से बहुत कुछ उपयोगी बातें लिखी हैं। इनमें से कितनों ने तो बड़े भारी भारी पोथे तैयार कर डाले हैं, जिनमें तत्कालीन भारतीय व्यापार, यहाँ की धार्मिक संस्थाओं पर उनके विचार, ईसाई धर्म के भारत में प्रवेश आदि का अच्छा वर्णन मिलता है। राजनीतिक क्षेत्र में इन लोगों ने कुछ सत्य घटनाएँ भी लिखी हैं और कुछ सुनी सुनाई बाजारू गप्पें भी भर दी हैं। पीट्रो डलावाल, निकोलाओ मैनूसी, मार्को पोलो, बर्नियर, टैवर्नियर, फ्रायर, सर टामस रो, टेरी आदि अनेक फ्रेंच तथा अँग्रेज जाति के यात्री भारत में आए और अपने अपने भ्रमण वृत्तांत लिख गए, जिनसे उनके समय के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। वर्तमान युग अर्थात् अँग्रेजी राज्य के आरम्भ से आज तक के इतिहास के लिये प्रचुर साधन हैं और इन सब के वर्णन के लिये यह स्थान उपयुक्त नहीं है।

यहाँ तक भारतेतिहास के जिन साधनों का उल्लेख किया जा चुका है, उनका नवीन ग्रंथों के लिखने में बराबर प्रयोग

अहमद बख्शी के तबकाते अकबरी, अबुलक़ादिर बदायूनी की मुतख़िबुत्तवारीख़ तथा अबुल् फ़ज़ल के अकबरनामा तथा आईने अकबरी से भी इस काल के इतिहास में सहायता मिलती है। ये ग्रन्थ अकबर के राजत्व काल के इतिहास के लिये प्रधान साधन हैं। तारीख़े फ़रिश्ता, जिसका लेखक मुहम्मद क़ासिम हिन्दूशाह फ़रिश्ता था, एक विराट इतिहास है, जिसमें भारत के मुसलमानी राज्य के आरम्भ से लेकर अकबर के राज्य के प्रायः अन्त तक का इतिहास समाविष्ट है। इसकी विशेषता यह भी है कि इसमें दिल्लीश्वरों के सिवा अन्य प्रांतिक मुसलमानी राजवंशों का भी शृंखलाबद्ध इतिहास दिया गया है, जिससे इसका विशेष महत्व है। जहाँगीर ने स्वयं तुज़ुक साल जहाँगीरी लिखा है और इसके समय के इतिहास पर मोतमिद ख़ाँ का इक़्बालनामः, कामगार ख़ाँ का मआसिरे जहाँगीरी तथा मुहम्मद हादी कृत तत्मए वाक़ेआते जहाँगीरी आदि लिखे गये हैं। अब्दुल हामिद लाहौरी तथा मुहम्मद वारिस कृत बादशाहनामों, इनायत ख़ाँ के शाह जहाँ नामा और मुहम्मद सालह कबो के अमल सालह में शाह जहाँ के राजत्व काल का विस्तृत वर्णन दिया हुआ है। मुहम्मद काज़िम का आलमगीरनामा, मुहम्मद साक़ी मुस्तैद ख़ाँ का मआसिरे आलमगीरी तथा ख़फ़ी ख़ाँ का मुंतख़िबुल्लुबाब औरंगज़ेब की बादशाहत के प्रधान इतिहास हैं। अंतिम पुस्तक में बाबर के भारत पर आक्रमण से लेकर मुहम्मद शाह के राजत्व के चौदहवें वर्ष तक का वृत्तांत दिया है। औरंगज़ेब ने इतिहास

आदि अन्य भाषाओं मे हमारे भाषाभाषियों के लिये बद सा पड़ा है, उसे तो अपनाइए। एक साथ सर्वांगपूर्ण बृहत् इतिहास न तैयार कर सकें तो कम से कम ऐसी मालाएँ तो निकालिए जिनमें एक एक प्रांत, एक एक राजवंश, एक एक जाति पर स्वतंत्र ग्रथ प्रकाशित हों। ऐसी मालाएँ ही बृहत्तम इतिहास का काम दे जायँगी। भारत का इतिहास चाहे कितना ही बड़ा लिखा जाय, पर उसमें प्रांतिक, स्थानीय, जातीय, सामाजिक, धार्मिक आदि कितनी ही बातों का उतना समावेश न हो सकेगा, जितना उन पर अलग अलग ग्रथ लिखने से हो सकेगा। बंगाल, गुजरात, विजयनगर आदि के जो अलग अलग इतिहास लिखे जायँगे उनमें उन प्रांतों के जितने विशद वर्णन हो सकेंगे, उतने कभी भारत के इतिहास में न दिए जा सकेंगे। इसी प्रकार भारतीय वीरों, सम्राटों तथा भारत ही के विदेशीय बादशाहों, आक्रमणकारियों तथा गवर्नर जेनरलों के सच्चे इतिहास यदि एक माला के रूप में निकाले जायँ तो वे भी मिलकर एक बड़े इतिहास का काम अवश्य दे सकेंगे।

ग्रंथ-परिचय

ऊपर इतिहास-साधन के जो चार विभाग किए गए हैं, उनमें चौथा विभाग वह सामग्री है जो प्रायः अरबी या फ़ारसी भाषा में प्राप्त है। इसी विभाग की एक पुस्तक के कुछ अंश का यह अनुवाद आज हिंदी के पाठकों के सन्मुख उपस्थित किया जाता है। यह

हो रहा है, और ज्यों ज्यों इस प्रकार के नए साधन खोज से मिलते जायेंगे, त्यों त्यों हमारे देश के इतिहास पर विशेष प्रकाश पड़ता जायगा। पर एक प्रकार से इस कुल सामग्री का शतांश भी हमारी मातृ भाषा तथा भारत की राष्ट्र-भाषा हिंदी में प्राप्त नहीं हैं। यह सब सामग्री तथा इन पर विद्वानों ने जो कुछ मनन कर विचार प्रकट किये हैं, वे सब अंग्रेजी में प्रस्तुत हैं। नइ खोजों तथा अन्वेषणों के फल भी प्राय: अंग्रेजी ही में प्रकाशित होते हैं। इतिहास की ओर अभी तक हिंदी-प्रेमियों तथा पाठकों की बहुत कम रुचि है; और यही कारण है कि हिंदी साहित्य में यह विभाग प्राय: खाली है। हिंदी इस विषय में अंग्रेजी भाषा की क्या समानता कर सकती है! यह उसके आगे नहीं सी है। अंग्रेजी में तो प्राय: समस्त संसार के देशों जातियों, स्थानों आदि के बड़े से बड़े तथा छोटे से छोटे इतिहास ही नहीं, प्रत्युत उन्हें तैयार करने के साधन आदि तक प्राप्त हैं। यहाँ हिन्दी में अपने देश ही के इतिहास के लिये केवल दुःख प्रकट करना या कभी सम्मेलनादि में प्रस्ताव कर देना ही रह गया है। ये संस्थाएँ ऐसे प्रस्ताव पास कर फाइल में पड़ा कर बन्द कर देती हैं कि यह बहुत बड़ा काम है। सत्य ही आलस्यप्रिय भारत के दुर्भाग्य से यह बहाना इतने दिन बीतने पर भी इसके मस्तिष्क से नहीं निकल रहा है। "दो दिल यक शवद बिशकनद कोहरा" (दो हृदय यदि एक हो जायें तो वे पहाड़ को तोड़ डालें) वाले मसले का यहाँ कम आदर है। भारत का पूरा इतिहास मत लिखिए, पर उसका जो साधन अंग्रेजी

आदि अन्य भाषाओं में हमारे भाषाभाषियों के लिये बंद सा पड़ा है, उसे तो अपनाइए। एक साथ सर्वांगपूर्ण बृहत् इतिहास न तैयार कर सकें तो कम से कम ऐसी मालाएँ तो निकालिए जिनमें एक एक प्रांत, एक एक राजवंश, एक एक जाति पर स्वतंत्र ग्रंथ प्रकाशित हों। ऐसी मालाएँ ही बृहत्तम इतिहास का काम दे जायँगी। भारत का इतिहास चाहे कितना ही बड़ा लिखा जाय, पर उसमें प्रांतिक, स्थानीय, जातीय, सामाजिक, धार्मिक आदि कितनी ही बातों का उतना समावेश न हो सकेगा, जितना उन पर अलग अलग ग्रंथ लिखने से हो सकेगा। बंगाल, गुजरात, विजयनगर आदि के जो अलग अलग इतिहास लिखे जायँगे उनमें उन प्रांतों के जितने विशद वर्णन हो सकेंगे, उतने कभी भारत के इतिहास में न दिए जा सकेंगे। इसी प्रकार भारतीय वीरों, सम्राटों तथा भारत ही के विदेशीय बादशाहों, आक्रमणकारियों तथा गवर्नर जेनरलों के सच्चे इतिहास यदि एक माला के रूप में निकाले जायँ तो वे भी मिलकर एक बड़े इतिहास का काम अवश्य दे सकेंगे।

ग्रंथ-परिचय

ऊपर इतिहास-साधन के जो चार विभाग किए गए हैं, उनमें चौथा विभाग वह सामग्री है जो प्रायः अरबी या फ़ारसी भाषा में प्राप्त है। इसी विभाग की एक पुस्तक के कुछ अंश का यह अनुवाद आज हिंदी के पाठकों के सन्मुख उपस्थित किया जाता है। यह

ग्रंथ अब्दुर्रज्ज़ाक़ ने लिखा है, जिनकी पदवी नवाब शाह नवाज़ ख़ाँ समसामुद्दौला था। इनकी जीवनी आगे ग्रंथ में दी गई है, जिसे इन्हीं के एक मित्र मीर गुलाम अली आज़ाद ने लिखा है। इस जीवनी के देखने से ज्ञात होता है कि य नवाब साहब राजनीतिक क्षेत्र में कितने व्यस्त रहते थे पर इतना होते हुए भी वे इतिहास ज्ञान के ऐसे प्रेमी थे कि थोड़े ही समय में इन्होंने इतना बड़ा ग्रंथ तैयार कर डाला था। सन् १७४२ ई० में निज़ाम आसफ़जाह के विरुद्ध उनके पुत्र नासिरजंग का साथ देने के कारण इन्हें दंड स्वरूप अपना पद त्याग कर एकांत वास करना पड़ा था; और पाँच वर्ष के अनंतर निज़ाम साहब ने पुनः इन पर कृपा कर इन्हें बरार की दीवानी दी थी। इसी पाँच वर्ष में इन्होंने इस बड़े ग्रंथ की रचना की थी। इसके अनंतर मृत्यु काल तक इन्होंने द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ निज़ाम के समयों में उस राज्य के उच्चतम पद को सुशोभित किया था और दक्षिण के तत्कालीन राजनीतिक क्षेत्र के जटिल षड्यंत्रों में योग देते हुए उसी में अपने प्राण तक विसर्जित कर दिए थे। इस प्रकार की अशांति में मृत्यु होने से इस पुस्तक की पांडुलिपि कई टुकड़ों में बँटकर भिन्न भिन्न स्थानों में पहुँच गई, जिन्हें ग्रंथकर्ता के मित्र मीर गुलाम अली आज़ाद ने बड़े परिश्रम से एकत्र किया और ग्रंथकर्ता के पुत्र ने उसका संपादन किया। इस एकत्रीकरण, संपादन, परिशिष्ट-लेखन संपादन-सामग्री आदि का इन दोनों सज्जनों ने स्व लिखित भूमिकाओं में विस्तार से वर्णन किया है। ग्रंथकर्ता के पुत्र

अबुलहई खाँ को भी इस ग्रंथ का रचयिता कहना संपादक कहने से विशेष उपयुक्त होगा, क्योंकि इस ग्रथ का अर्धांश इनका रचित है। बंगाल एशाटिक सोसाइटी ने इस विशद ग्रथ को प्राय. आठ आठ सौ पृष्ठों के तीन भागों में प्रकाशित किया है, और मिस्टर बेवरिज द्वारा इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हो रहा है, जिसके छ सौ पृष्ठ प्रकाशित हो चुके हैं। इस समग्र ग्रथ में ७२६ जीवनियाँ सगृहीत हैं, जिनमें से ३४१ जीवनियाँ अब्दुलहई खाँ लिखित हैं। इस अनुवाद ग्रंथ के ९१ जीवनचरित्रों में से ६९ चरित्र ग्रथकर्ता के इन्हीं पुत्र के लिखे हुए हैं, जिससे इस ग्रंथ के मुखपृष्ठ पर पिता पुत्र दोनों ही का नाम देना उचित है।

इस ग्रंथ में सम्राट् अकबर के राज्यारभ से लेकर मुहम्मद शाह बादशाह तक के मुगल दरबार के प्राय सभी हिंदू तथा मुसलमान प्रसिद्ध वार सरदारों, राजाओं आदि के चरित्र समाविष्ट हैं, जिससे यह ग्रथ मुगल साम्राज्य के लगभग ढाई सौ वर्षों का भारी इतिहास बन गया है। इसी कारण भारतीय इतिहास के प्रेमियों के लिये यह एक अलभ्य वस्तु हो गई है। इसके चरित्र लिखने में ग्रथकारों ने बड़ी योग्यता, अध्ययनशीलता तथा अध्यवसाय से काम लिया है और इस ग्रंथ में ऐतिहासिक घटनाओं को उनके महत्व के अनुरूप ही विस्तार या संक्षेप से लिखा है। एक ही घटना में योग देनेवाले कई सरदारों की जीवनी लिखते समय उस घटना का जब एक में विस्तृत वर्णन दे दिया है, तब अन्य में उसका उल्लेख मात्र करते चले गए हैं। तात्पर्य यह कि ग्रथ बढ़ाने

का प्रयास न करने पर भी यह ग्रंथ इतना वृहत् हो गया है। इस ग्रंथ को पढ़ने पर यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि ग्रंथकारों ने अपने समय के सरदारों की जीवनी तथा घटना का वर्णन करने के लिये अच्छी तरह जाँच पड़ताल की है। इनमें पक्षपात की बहुत कमी थी और धार्मिक द्वेष तथा कट्टरपन भी नहीं था। वास्तव में ये शाहनवाज़ नवाब थे और अपने उच्च वंश के योग्य ही इन्होंने किसी के गुण-वर्णन में कमी नहीं की।

इस ग्रंथ की गद्य-लेखन शैली भी बड़ी ही सरल तथा प्रसाद गुण पूर्ण है। छोटे छोटे वाक्यों में जीवन की राजनीतिक घटनावली का वर्णन किया गया है और फारसी की वह शब्दाडंबरी नहीं दिखलाई गई है, जिसमें एक एक वाक्य कहीं कहीं कई कई पृष्ठों तक चला गया है। यह इतिहास लिखते थे और इन्होंने इतिहास ही के उपयुक्त भाषा का उपयोग किया है। 'तहरीरे व तकरीरे मसायव के पुतले' प्रायः सभी फ़ारसी इतिहास-लेखक अपने हृदय की धार्मिक दुर्बलता तथा क्षोभ के प्रभूत उदाहरण अपनी अपनी रचनाओं में छोड़ गए हैं, पर इनकी रचना में ऐसा कहीं नहीं हुआ है। प्रत्युत् जहाँ कहीं इन्होंने हिंदू धर्म की बातों का उल्लेख भी किया है, वहाँ द्वेष का लेश भी नहीं प्रकट होता।

इसी विशाल ग्रंथ का केवल अष्टमांश इस अनुवाद पुस्तक के रूप में आ सका है। इसका कारण यह नहीं है कि ग्रंथकार ने केवल इतने ही हिंदू सरदारों की जीवनी दी है और पुस्तक के सात भाग मुसलमान सरदारों ही के लिये रक्षित रख छोड़े थे।

वास्तव में मुग़ल सम्राटों में एक अकबर ही ऐसा हो गया है जिसने दोनों धर्मवालों को समान दृष्टि से देखा था और जिसमें धर्मान्धता नहीं थी। जहाँगीर तथा शाहजहाँ के समय में धर्मान्धता बढ़ती गई और औरंगज़ेब के समय तो इसका दौरदौरा ही था। मुगल सम्राटों के अवनति काल में भी यही हाल था। इन कारणों से मुगल दरबार में हिंदू सरदारों की कमी थी। इन सरदारों में भी अधिकतर वे ही राजा हैं, जिन्होंने मुगल साम्राज्य की अधीनता स्वीकृत कर ली थी और इस कारण उसके दरबारी कहलाए थे। वास्तव में वे इस साम्राज्य ही के बनाए हुए उन सरदारों में से नहीं थे, जिनका सब कुछ इसी दरबार का दिया हुआ था। उदाहरणार्थ देखिए कि जयपुर, जोधपुर आदि के राजवंश मुग़ल साम्राज्य के पहिले के थे और वे मुग़ल वाहिनी का सामना न कर सकने पर इस दरबार के अधीनस्थ माडलिक हो गए थे। आज भी वे उसी प्रकार बने हुए हैं। इसके विपरीत जहाँगीर के प्रधान मंत्री एतमादुद्दौला ग़ियास बेग, उनके पुत्र वजीर आज़म आसफ़ ख़ाँ तथा उनके पुत्र अमीरुलउमरा शायस्ता ख़ाँ कौन थे ? ग़ियास बेग जिस समय फारस से भारत आए थे, उस समय उनकी वह अवस्था थी कि वह अपनी नवजात कन्या मेहरुन्निसा का पोषण करने में असमर्थ थे और उसे रेगिस्तान में त्याग देने को उद्यत थे। भारत में इस समय सबसे बड़े तथा समृद्धिशाली देशी राज्य के संस्थापक नवाब आसफ़ जाह के पितामह कुलीज ख़ाँ तथा पिता मीर शहाबुद्दीन ख़ाँ तूरानी भारत आकर बहुत ही साधारण

सेवा में नियुक्त हुए थे। इस प्रकार देखा जाता है कि इस अनुवाद ग्रंथ में प्रायः अधिकतर उन्हीं हिंदू नरेश गण की जीवनियाँ संकलित हैं जो मुग़ल साम्राज्य की उन्नति के समय उनके अधीन हो गए थे। राजा टोडरमल, राजा विक्रमाजीत आदि ऐसे भी कुछ सरदार हुए, जो इसी साम्राज्य के बनाए हुए थे और उसी की सेवा में उनका अंत हो गया।

इस अनुवाद ग्रंथ में कई भारतीय राजवंशों की पाँच पाँच और सात सात पीढ़ियों तक का वर्णन आया है, जिससे उन राज्यों के प्रायः दो सौ वर्ष के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। यद्यपि यह सब सामग्री फारसी के अनेक ग्रंथों में मिल सकती है, पर उनका मनन करने के लिए काफी अवकाश चाहिए। इसमें उक्त साधन के साथ सामयिक मौलिक अन्वेषण का भी उपयोग सम्मिलित है, जिससे इसका महत्व बहुत बढ़ जाता है। स्थान स्थान पर इस प्रकार की पूछ ताछ तथा अध्ययन का आभास मिलता रहता है। जयपुर राजवंश ही के भारमल, भगवंतदास, मानसिंह, बहादुरसिंह (भावसिंह) महासिंह, जयसिंह मिरज़ा राजा रामसिंह और जयसिंह सवाई भी राजाओं की जीवनियाँ इस ग्रंथ में दी गई हैं। भारामल की जीवनी उसके अकबर की अधीनता स्वीकार करने से आरंभ की गई है जो अकबर के राज्य काल से आरंभ होती है। सवाई जयसिंह की मृत्यु सन् १७४३ ई० में हुई थी। अर्थात सन् १५५६ ई० से लेकर सन् १७४३ ई० तक के प्रायः दो सौ वर्ष का इतिहास दिया गया है। अंतिम

जीवनी के अंत में दो तीन पीढ़ी बाद तक का कुछ परिचय भी दे दिया गया है। इनके सिवा छः अन्य कछवाहे सरदारों का भी वृत्तांत दिया गया है, जिनसे इस इतिहास पर और भी प्रकाश पड़ता है। इसी प्रकार उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, बूँदी, ओड़छा आदि राज्यों के इतिहास का यह ग्रंथ एक सच्चा साधन कहा जा सकता है।

जैसा कि लिखा जा चुका है, यह अनुवाद मूल ग्रंथ के प्रायः आठवें भाग मात्र का है और मुगल काल के भारतीय इतिहास का विशिष्ट वर्णन अधिकतर मुसल्मान प्रधान मंत्रियों, अमीरुलउमराओं (प्रधान सेनापतियों) तथा सरदारों की जीवनियों में दिया गया है, जिससे इस पुस्तक में संकलित हिंदू सरदारों की जीवनियों में उल्लिखित घटनाएँ बहुत संक्षेप में हैं और वे कहीं कहीं बेसिलसिले सी जान पड़ती हैं। इन कारणों से भूमिका में मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर से पानीपत के अंतिम युद्ध तक का अति संक्षिप्त शृंखलाबद्ध इतिहास यहाँ दे दिया जाता है, जिससे पाठकों को बहुत कुछ सुभीता हो जायगा।

मुगल बादशाहों का संक्षिप्त इतिहास

जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर तैमूर लंग से छठी पीढ़ी में था। यह अपने पिता उमर शेख मिरजा की मृत्यु पर ग्यारह वर्ष की अवस्था में मध्य एशिया के फर्गान या खोकंद राज्य की राजधानी अंदीजान में सन् १४९४ ई० में गद्दी पर बैठा। इसको अपना

यौवन काल अपने राज्य की रक्षा के निष्फल प्रयत्न में व्यतीत करना पड़ा। अंत में अट्ठाईस वर्ष की अवस्था तक पहुँचते ही यह अपने पैतृक राज्य से निकाल बाहर हुआ। इसी बीच में इसने दो बार समरकंद विजय किया और खो दिया था। सन् १५०४ ई० ही में बाबर ने काबुल विजय कर वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया था, इससे यह वहीं चला गया और मध्य एशिया में सफलता मिलने की आशा न देखकर इसने भारत की ओर दृष्टि फेरी।

सन् १५०५ ई० में बाबर ने गजनी पर अधिकार कर लिया और सिंध नदी के तट तक आकर यह लौट गया। सन् १५१९ ई० में सिंध नदी पार कर इसने पंजाब के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। इस लड़ाई में बाबर यूरोपियन आग्नेयास्त्र काम में लाया था जो उस समय पूर्व में एक नई चीज था। सन् १५२४ ई० में पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ और इब्राहीम लोदी के चाचा आलम खाँ के सहायता माँगने पर बाबर लाहौर तथा दीपालपुर आया और उसने दोनों स्थानों को लूटा। दौलत खाँ के साथ न देने पर बाबर पंजाब में अपना सूबेदार नियत कर सेना एकत्र करने लौट गया।

सन् १५२६ ई० में बाबर बारह सहस्र सैनिक और सात सौ तोपें लेकर पानीपत के मैदान में इब्राहीम लोदी की सेना के सामने पहुँचा, जो संख्या में एक लाख के लगभग थी। २१ अप्रैल को

युद्ध हुआ, जिसमें इब्राहीम पद्रह सहस्र सैनिको के साथ मारा गया। बाबर ने दिल्ली और आगरे पर अधिकार कर लिया और २७ अप्रैल को दोनों स्थानो पर अपने बादशाह होने का घोषणा-पत्र निकाला। बाबर ने जो कुछ लूट मे पाया था, उसमें से उसने काबुल आदि तक के निवासियों के लिये पुरस्कार भेजा था। बाबर के सैनिकों ने भी यद्यपि बहुत लूट प्राप्त की थी, परन्तु वे देश को लौटने के लिये बड़े उत्सुक हो रहे थे। पर बाबर के बहुत कहने पर वे रुक गए।

बाबर के जीवन के जो थ,ड़े दिन बच गए थे, वे भारत में राज्य की जड़ जमाने में ही बीत गए और नैतिक प्रबध करने का उसे समय नहीं मिला, बाबर के सब से बडे शत्रु महाराणा संग्राम सिंह थे, जो मेवाड़ के राजा और राजपूताने के राजाओं के प्रधान थे। यह राणा साँगा के नाम से अधिक प्रसिद्ध है और इन्होंने मालवा-नरेश महमूद खिलजो को परास्त कर मिलसा, सारगपुर, चँदेरी और रणथंभौर छीन लिया था। इब्राहीम लोदी से इनसे दो बार युद्ध हुआ और दानों ही बार परास्त होकर लोदी को लौट जाना पड़ा था। मृत्यु के समय इनके शरीर पर अस्सी घावों के चिह्न थे और एक आँख, एक हाथ और एक पाँव युद्ध में खो चुके थे। बाबर ने बड़ी तैयारी के साथ राणा पर चढ़ाई को और १६ मार्च सन् १५२७ ई० को सीकरी के पास कन्हवा के मैदान में दानो सेनाओं का सामना हुआ। घोर युद्ध के अनंतर राणा परास्त होकर लौट गए। सन १५२८ ई० में चँदेरी का दुर्ग टूटा

और राजपूत लोग बड़ी वीरता से लड़ते रहे। इसी वर्ष राणा ने रणथम्भौर दुर्ग विजय किया था।

सन् १५२९ ई० में सुलतान इब्राहीम लोदी के भाई महमूद ने बिहार और बंगाल के अफ़ग़ान सरदारों को इकट्ठा कर सेना सहित पूर्व की ओर से चढ़ाई की। बाबर भी मुकाबले ससैन्य आगे बढ़ा और घाघरा तथा गंगा जी के संगम पर मई महीने में युद्ध हुआ। इस बार भी बाबर की विजय हुई। इस ने बंगाल के स्वतन्त्र सुलतान नसरत शाह से सन्धि कर ली, जिससे बिहार दिल्ली साम्राज्य में मिल गया। सन् १५३० ई० में अड़तालीस वर्ष की अवस्था में बाबर का आगरे में मृत्यु हो गई।

बाबर के चारों पुत्रों में सब से बड़ा पुत्र हुमायूँ गद्दी पर बैठा। उसके साम्राज्य का विस्तार नाम मात्र के लिये कर्मनाशा नदी से वंक्षु (औक्सस) नदी तक और हिमालय पर्वत से नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। गद्दी पर बैठते ही उसने पिता के इच्छानुसार कामराँ को काबुल और पंजाब दे दिया, जिससे वह स्वतन्त्र स्वामी बन बैठा। अब हुमायूँ को नई सेना भरती करने में कठिनाई पड़ने लगी, क्योंकि वह अफ़ग़ानिस्तान से नए रंगरूट नहीं बुला सकता था। गुजरात के सूबेदार बहादुर शाह के विद्रोह करने पर हुमायूँ ने उस पर चढ़ाई कर उसे परास्त किया; परन्तु इधर बिहार के सूबेदार शेर शाह के बलवा करने पर वह वहाँ से लौट आया, जिससे फिर बहादुर स्वतंत्र बन बैठा। शेरखाँ ने बिहार में अपना राज्य जमा लिया था। वह हुमायूँ को पहिली बार कर्मनाशा और

गंगा के संगम के पास चौसा में सन् १५३९ ई० मे और दूसरी बार दूसरे वर्ष कन्नौज में परास्त कर शेर शाह के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा। सूर जाति का अफ़गान होने से इसका वंश सूरी वंश कहलाया।

हुमायूँ ने कामराँ से सहायता माँगी परंतु वह पंजाब भी शेर शाह के लिये छोड़ कर काबुल चला गया। इसके अनंतर हुमायूँ ने सिंध के सरदारों और मारवाड़-नरेश मालदेव से सहायता माँगी, पर वह कहीं सफल-प्रयत्न नहीं हुआ। इस प्रकार घूमता हुआ जब वह अमरकोट दुर्ग में पहुँचा, जो सिंध में है, तब वहाँ २३ नवम्बर सन् १५४२ ई० को जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर का जन्म हुआ। यहाँ से हुमायूँ कंधार होता हुआ फ़ारस के शाह तहमास्प के यहाँ पहुँचा। कंधार का सूबेदार कामराँ के अधीन उसी का भाई अस्करी था, जिसने अकबर को वहीं क़ैद कर लिया, और वह बहुत दिनों तक माता पिता से अलग उसी के पास रहा।

शेर शाह का अधिकार बिहार, बंगाल और संयुक्त प्रांत पर हो चुका था और सन् १५४५ ई० में इसने मालवा भी विजय किया। उसी वर्ष जब यह बुंदेलखंड में कालिंजर दुर्ग घेरे हुए था, तभी बारूद में आग लग जाने से इसकी मृत्यु हो गई। शेर शाह का उत्तराधिकारी उसका द्वितीय पुत्र इसलाम शाह सूरी था, जिसने योग्यता के साथ सात वर्ष तक राज्य किया। इसकी मृत्यु पर इसके अल्पवयस्क पुत्र को मारकर उसका मामा मुबारिज़ खाँ मुहम्मद शाह आदिल के नाम से गद्दी पर बैठा। परन्तु

और राजपूत लोग बड़ी वीरता से लड़ रहे। इसी वर्ष राणा ने रणथम्भौर दुर्ग विजय किया था।

सन् १५२९ ई० में सुलतान इब्राहीम लोदी के भाई महमूद ने बिहार और बंगाल के अफगान सरदारों को उभाड़ कर सेना सहित पूर्व की ओर से चढ़ाई की। बाबर भी युद्धार्थससैन्य आगे बढ़ा और घाघरा तथा गंगा जी के संगम पर मई महीने में युद्ध हुआ। इस बार भी बाबर की विजय हुई। इसने बंगाल के स्वतन्त्र सुलतान नसरत शाह से संधि कर ली, जिससे बिहार दिल्ली साम्राज्य में मिल गया। सन् १५३० ई० में अड़तालीस वर्ष की अवस्था में बाबर की आगरे में मृत्यु हो गई।

बाबर के चारों पुत्रों में सब से बड़ा पुत्र हुमायूँ गद्दी पर बैठा। उसके साम्राज्य का विस्तार नाम मात्र के लिये कर्मनाशा नदी से वक्षु (औक्सस) नदी तक और हिमालय पर्वत से नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। गद्दी पर बैठते ही उसने पिता के इच्छानुसार कामराँ को काबुल और पंजाब दे दिया, जिससे वह स्वतन्त्र स्वामी बन बैठा। अब हुमायूँ को नई सेना भरती करने में कठिनाई पड़ने लगी, क्योंकि वह अफगानिस्तान से नए रंगरूट नहीं बुला सकता था। गुजरात के सूबेदार बहादुर शाह के विद्रोह करने पर हुमायूँ ने उस पर चढ़ाई कर उसे परास्त किया परन्तु इधर बिहार के सूबेदार शेर शाह के बलवा करने पर वह वहाँ से लौट आया, जिससे फिर बहादुर स्वतंत्र बन बैठा। शेरखाँ ने बिहार में अपना राज्य जमा लिया था। यह हुमायूँ को पहिली बार कर्मनाशा और

अधिकार कर लिया। हेमूँ भो आँख में तीर लगने से मूर्च्छित हो गया और पकड कर अकबर के सामने लाया गया। बैरामखाँ ने उसे स्वय मार डाला और दूसरे दिन दिल्ली पर अधिकार कर लिया। तीन वर्ष के अदर सूरी वश का अंत हो गया और अजमेर, ग्वालियर तथा जौनपुर पर भी अधिकार हो गया। सिकदर सूर के फिर सैना सहित पहाड़ो से निकलने का वृत्तान्त सुनकर वह पजाब गया। सिकंदर हार कर मानकोट में जा बैठा, जो आठ महीने के घेरे पर टूटा और वह भाग कर बंगाल चला गया।

बैरामखाँ जाति का तुर्क था। वह हुमायूँ के साथ फारस तक गया और इसी के साथ लौटा था। हुमायूँ ने उसे अकबर का शिक्षक नियत किया था। पहिला कार्य, जिससे अकबर का मन इसकी ओर से फिरा, यह था कि इसने एक तुर्की सरदार तर्दी बेग को केवल दिल्ली शीघ्र छोड़ देने के कारण बिना पूछे मरवा डाला था। पानीपत की विजय पर इसे और भी गर्व हो गया और अकबर को यह तुच्छ समझने लगा। सन् १५६० ई० में अकबर आगरे से दिल्ली चला गया और यह आज्ञा देता गया कि राज्य का कुल प्रबध मैंने अपने हाथ मे ले लिया। यह सुनकर बैरामखाँ खिसिया कर विद्रोही हो गया, परतु पराजित होने पर अकबर की शरण में चला आया। अकबर ने इसका अपराध क्षमा करके इसके लिये मक्का जाने का प्रबंध कर दिया, पर रास्ते ही में पाटन के पास गुजरात में एक पठान ने इसे मार

आदिल (न्यायी) होने के प्रतिकूल यह बड़ा विषयी था और इसने राज्य का कुल भार हेमूँ नामक बक्काल के हाथ में छोड़ दिया, जिससे चारों ओर विद्रोह हो गया। इब्राहीम सूरी ने दिल्ली और आगरा तथा अहमद खाँ ने सिकंदर शाह सूरी के नाम से पंजाब विजय कर लिया।

सन् १५५५ ई० में हुमायूँ उपयुक्त अवसर देखकर ससैन्य सिंध पार कर हिन्दुस्तान में आया। इस सेना का योग्य सेनापति बैराम खाँ खानखानाँ था। जुलाई में दिल्ली पर फिर से हुमायूँ का अधिकार हो गया, पर वह बहुत दिनों तक गद्दी का सुख नहीं भोग सका। सन् १५५६ ई० के जनवरी महीने में वह एक दिन संध्या समय सीढ़ी पर से गिरकर परलोक सिधारा।

हुमायूँ की मृत्यु के अनंतर सन् १५५६ ई० म उसका प्रसिद्ध पुत्र अबुल् मुजफ्फर जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर चौदह वर्ष की अवस्था में बादशाह हुआ। बैराम खाँ खान बाबा की पदवी के साथ अकबर का अभिभावक नियत हुआ। हुमायूँ की मृत्यु के समय यह पंजाब मे सिकंदर शाह सूरी से लड़ रहा था। उसी समय मदख्शाँ के बादशाह सुलेमान शाह ने काबुल पर अधिकार कर लिया और इधर पूर्व में मुहम्मद शाह आदिल के सरदार हेमूँ ने आगरा ले लिया तथा मुगलों को पराजित कर दिल्ली पर भी अधिकार कर लिया।

सन् १५५६ ई० में पानीपत के मैदान में बैराम खाँ तथा हेमूँ के बीच घोर युद्ध हुआ। आग्नेयास्त्रों ने हेमूँ की कुल तोपों पर

अधिकार कर लिया। हेमूँ भी आँख में तीर लगने से मूर्च्छित हो गया और पकड़ कर अकबर के सामने लाया गया। बैरामखाँ ने उसे स्वयं मार डाला और दूसरे दिन दिल्ली पर अधिकार कर लिया। तीन वर्ष के अंदर सूरी वंश का अंत हो गया और अजमेर, ग्वालियर तथा जौनपुर पर भी अधिकार हो गया। सिकंदर सूर के फिर सेना सहित पहाड़ों से निकलने का वृत्तान्त सुनकर वह पंजाब गया। सिकंदर हार कर मानकोट में जा बैठा, जो आठ महीने के घेरे पर टूटा और वह भाग कर बंगाल चला गया।

बैरामखाँ जाति का तुर्क था। वह हुमायूँ के साथ फारस तक गया और उसी के साथ लौटा था। हुमायूँ ने उसे अकबर का शिक्षक नियत किया था। पहिला कार्य, जिससे अकबर का मन इसकी ओर से फिरा, यह था कि इसने एक तुर्की सरदार तर्दी बेग को केवल दिल्ली शीघ्र छोड़ देने के कारण बिना पूछे मरवा डाला था। पानीपत की विजय पर इसे और भी गर्व हो गया और अकबर को यह तुच्छ समझने लगा। सन् १५६० ई० में अकबर आगरे से दिल्ली चला गया और यह आज्ञा देता गया कि राज्य का कुल प्रबंध मैंने अपने हाथ में ले लिया। यह सुनकर बैरामखाँ खिसिया कर विद्रोही हो गया, परंतु पराजित होने पर अकबर की शरण में चला आया। अकबर ने इसका अपराध क्षमा करके इसके लिये मक्का जाने का प्रबंध कर दिया, पर रास्ते ही में पाटन के पास गुजरात में एक पठान ने इसे मार

बाला। इसी का पुत्र अब्दुर्रहीमखाँ खानखानाँ संस्कृत और हिंदी का पंडित तथा कवि हुआ है।

सन् १५६१ ई० में सेनापति अदहम खाँ ने मालवा पर, जो उस समय बाजबहादुर के अधीन था, अधिकार कर लिया। इसके अनंतर पीरमुहम्मद खाँ वहाँ का सूबेदार हुआ। बाजबहादुर के फिर चढ़ाई करने पर इसने उसे पराजित किया, परन्तु अधिकार में आए हुए दो नगरों पर ऐसा कठोर अत्याचार किया कि अब्दुल कादिर बदायूनी ऐसे कट्टर मनुष्य का भी हृदय दहल गया। बाजबहादुर ने मालवा के जमींदारों की सहायता से फिर चढ़ाई की जिसमें पीरमुहम्मद पराजित हो भागते समय नर्मदा में डूब गया और मालवा फिर अधिकार से निकल गया। उसी वर्ष अब्दुल्लाखाँ उजबेग ने मालवा पर फिर से अधिकार कर लिया और बाजबहादुर के शरण आने पर अकबर ने उसे अपना मुसाहिब बना लिया।

सन् १५६७-६८ ई० में अकबर ने चित्तौड़ दुर्ग घेर लिया। राणा उदयसिंह पहाड़ों में चले गए, किन्तु उनके प्रसिद्ध सामंतों साहीदास, प्रताप और जयमल ने क्रमशः बड़ी वीरता से दुर्ग की रक्षा की। चार महीने के निरंतर घेरे के बाद फरवरी सन् १५६८ ई० में एक दिन अकबर ने अपनी बंदूक से अंतिम दुर्गाध्यक्ष जयमल को गोली मारी, जिसकी मृत्यु पर राजपूतों ने जौहर व्रत किया अर्थात् उनकी स्त्रियाँ अग्नि में जल मरीं और बचे हुए राजपूत युद्ध कर वीरगति को प्राप्त हुए। अकबर ने

रणथम्भौर और कालिंजर दुर्ग पर भी दो वर्ष में अधिकार कर लिया।

सन् १५६४ ई० में मालवा के उजबेग सूबेदार अब्दुल्ला ख़ाँ ने विद्रोह किया और पराजित होकर गुजरात की ओर भाग गया। सन् १५६५ ई० में कई उजबेग सरदारों ने जौनपुर के सूबेदार को मिलाकर विद्रोह का झंडा खड़ा किया। यद्यपि छपरे के पास युद्ध में शाही सेना पराजित हुई, परंतु अकबर ने विद्रोहियों को पहले ही क्षमा कर दिया था, इससे कुल सरदार उसके पास चले आए। सन् १५६६ ई० में अकबर के भाई मिरज़ा हकीम ने, जो काबुल का सूबेदार था, पंजाब पर चढ़ाई की। यह सुनकर अकबर आगरे से दिल्ली होता हुआ लाहौर गया और अपने सेनापति को विद्रोहियों के पीछे भेजा, जो सिंध पार भगा दिए गए। यह अवसर पाकर उजबेग सरदारों ने फिर विद्रोह किया, परन्तु अकबर फुर्ती से चलकर मानिकपुर पहुँचा और उन्हें पराजित किया, जिसमें कई विद्रोही सरदार मारे गए।

सन् १५७२ ई० में गुजरात पर चढ़ाई की तैयारी करके अकबर अक्तूबर में अजमेर पहुँचा। गुजरात का सुलतान मुजफ्फर शाह नाम मात्र को वहाँ का राजा था और उसके सभी सरदार स्वतन्त्र बन बैठे थे, जिस कारण वहाँ सर्वदा आपस में युद्ध हुआ करता था। अकबर को इस प्रांत के लेने में अधिक युद्ध नहीं करना पड़ा। मुजफ्फर शाह पकड़ा गया और अकबर ने अहमदाबाद को राजधानी बनाकर उस पर सूबेदार नियत कर

दिया। इसके अनन्तर उसने भड़ौच और बड़ोदा विजय किया और केड़ महोन के घेरे में सूरत दुर्ग भी ले लिया। इस प्रकार नौ महीने गुजरात में रहकर सन् १५७३ ई० के जून में अकबर आगरे पहुँचा। परन्तु कुछ ही दिनों में फिर वहाँ बलवा होने पर ११ दिन में ४०० कोस को दूरी तै कर वह वहाँ पहुँचा। दो युद्धों में विद्रोहियों को पराजित कर शांति स्थापित करके वह लौट आया। सन् १५८१ ई० में मुजफ्फर शाह भाग कर गुजरात पहुँचा और उसने वहाँ विद्रोह आरंभ किया, जो बारह वर्ष तक चलता रहा। अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ सेना सहित भेजे गए। कई युद्ध हुए, जिनमें बादशाह का बराबर विजय होती थी, पर सन् १५९३ ई० में मुजफ्फर शाह के पकड़े जाकर आत्मघात कर लेने पर वहाँ शान्ति स्थापित हुई।

बंगाल और बिहार के अफगान बादशाह सुलेमान ने अकबर की अधीनता कवल कागज पर स्वीकृत कर ली थी। उसकी मृत्यु पर उसके पुत्र दाऊद खाँ ने इस नाम मात्र की अधीनता को भी नहीं स्वीकार किया। दाऊद के एक क्रोधी सरदार ने रोहितासगढ़ में विद्रोह का झंडा खड़ा किया था, पर संधि होने पर दाऊद ने विश्वासघात करके उस पकड़वा कर मरवा डाला। इस पर जौनपुर के सूबेदार मुनइम खाँ ने जिसे अकबर ने पहिले ही आज्ञा द रखी थी, सन् १५७४ ई० में उस पर चढ़ाई की। अकबर स्वयं पटने पहुँचा, जहाँ दाऊद खाँ सेना सहित ठहरा हुआ था। अकबर क पहुँचन पर वह पराजित होकर भाग गया।

मुगल सेना ने पीछा कर पटने पर अधिकार कर लिया। दाऊद उड़ीसा चला गया और अकबर बिहार को सूबा बनाकर और सूबेदार नियत करके फतहपुर सीकरी लौट आया। उसके सेनापति राजा टोडरमल ने बंगाल पर भी अधिकार कर लिया। मुनइम खाँ सूबेदार की लखनौती में मृत्यु होने पर सन् १५७७ ई० मे दाऊदखाँ ने फिर बखेड़ा मचाया, परन्तु युद्ध मे पकड़े जाने पर वह मार डाला गया, जिससे उस समय शाति हो गई। कतलूखाँ नामक एक अफगान ने जब फिर विद्रोह किया, तब राजा मानसिंह सूबेदार बनाकर वहाँ भेजे गए। युद्ध में उनके पुत्र जगतसिंह पराजित होकर पकड़े गए, पर उसी वर्ष कतलू की मृत्यु हो जाने से विद्रोहियों को उडीसा देकर शाति स्थापित की गई। दो वर्ष के अनंतर सन् १५९२ ई० मे उसके पुत्रों को पराजित कर मानसिंह ने उड़ीसा पर भो पूर्ण अधिकार कर लिया।

महाराणा उदयसिंह की मृत्यु पर सन् १५७२ ई० मे महाराणा प्रतापसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। इनके पास न राजधानी थी और न कोष ही था, परन्तु बड़े धैर्य्य से इन्होंने राज्य सँभाला और सेना इत्यादि की तैयारी करने लगे। मानसिंह का तिरस्कार करने के कारण अकबर की आज्ञा से मानसिंह और महाबतखाँ ने बड़ी सेना लेकर इनपर चढ़ाई की। सन १५७६ ई० में गोगूँदा अर्थात् प्रसिद्ध हल्दी घाटी की लड़ाई हुई, जिसमें राणा पराजित हुए। इनकी स्वतंत्रता छीनने के लिये अकबर ने मेवाड़ में पचास

थान नियत किए और राय वहाँ प्रबंध करने के लिये गया, परन्तु मेवाड़ में उसका कभी पूर्ण अधिकार नहीं हुआ।

अकबर के सौतेले भाई मिरज़ा मुहम्मद हकीम का सन् १५५४ ई० में जन्म हुआ था और वह उसी समय में काबुल का शासक नियत हुआ था। सन् १५८२ ई० में वह भारत पर चढ़ आया था, पर परास्त होकर लौट गया था। सन् १५८५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई, जिससे वहाँ अशांति फैल गई। अकबर वहाँ शांति स्थापित करने के लिये लाहौर आया और वहाँ सन् १५९८ ई० तक रहा। काश्मीर, काबुल, बलोचिस्तान और सीमांत प्रांत पर सेनाएँ भेजीं। अतिम स्थान की चढ़ाई पर पहिले बादशाही सेना का पराभव हुआ और राजा बीरबल मारे गए; पर पुनः राजा टोडर मल तथा राजा मानसिंह ने दो बार से धावा कर यूसुफ़ज़ाइयों को परास्त कर दिया। राजा मानसिंह काबुल के सूबेदार हुए। बलूचियों ने अधीनता स्वीकृत कर ली।

सन् १३३४ ई० में काश्मीर के हिंदू राज्य के समाप्त होने पर वहाँ मुसलमानी राज्य स्थापित हुआ। सन् १५४१ ई० में बाबर का चचेरा भाई मिरज़ा हैदर दोगलात नाज़ुक शाह के नाम से गद्दी पर बैठा और दस वर्ष राज्य करने पर सन् १५५१ ई० में उसकी मृत्यु हुई। इसने तारीखे-रशीदी नामक एक ऐतिहासिक ग्रंथ लिखा था। सन् १५८६ ई० में राजा भगवानदास ने काश्मीर पर चढ़ाई की, परन्तु वे विजय प्राप्त नहीं कर सके। सन् १५८७ ई० में काश्मीर में विद्रोह होने के कारण मुग़ल सेना का बिना युद्ध के ही

उस पर अधिकार हो गया और तब से वह बराबर दिल्ली साम्राज्य के अन्तर्गत बना रहा। सन् १५९३ ई० में वहाँ विद्रोह मचा था, परन्तु शीघ्र ही शांत हो गया। वहाँ के शाह को पाँच हजारी मन्सब दिया गया।

सुमेर राजपूतों के अनंतर साम्भ राजपूतों ने सिंध में राज्य स्थापित किया था। बाबर द्वारा कंधार से निकाले गए शाहबेग अर्गून ने उस पर चढाई की और उस पर अधिकार करके अपना राज्य स्थापित किया था। इसी वंश के राजत्व काल में अकबर ने उस पर चढाई करके उसे अधिकृत कर लिया, परन्तु दो वर्ष में शान्ति स्थापित हुई। अर्गून की ओर से पोर्तुगीज और तिलंगे भी युद्ध में आए हुए थे। सन् १५९४ ई० में बिना युद्ध ही के कंधार पर अकबर का अधिकार हो गया।

अहमदनगर के मुर्तजा निजाम शाह के भाई बुरहान शाह ने सन् १५८६ ई० में अकबर से सहायता माँगी थी और वह सेना जो मालवे से भेजी गई थी, पराजित होकर लौट आई थी। सन् १५९२ ई० मे बुरहान निज़ाम शाह सुलतान हुआ। उसकी मृत्यु पर उसके राज्य के सरदारों के चार दल हो गए जिनमें से एक ने अकबर की सहायता चाही। शाहजादा मुराद और मिरज़ा अब्दुर्रहीमखाँ खानखानाँ की अधीनता में सेना भेजी गई, जिसने अहमदनगर घेर लिया। चाँद सुलताना ने, जो बहादुर निज़ाम की चाची थी, सबको अपनी ओर मिलाकर बड़ी वीरता से दुर्ग की रक्षा की और बरार देकर अंत मे संधि कर ली।

खानदेश ने मुग़ल सम्राट् की अधीनता मान ली थी। एक वर्ष के अनंतर गोदावरी के किनारे आस्टी के क्षेत्र में दो दिन तक घोर युद्ध हुआ, जिसमें एक ओर अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा की सेनाएँ सुहेलख़ाँ की अधीनता में थीं और दूसरी ओर ख़ानख़ानाँ के अधीन मुग़लों और ख़ानदेश की सेनाएँ थीं। इस युद्ध में ख़ानख़ानाँ ही विजयी हुआ, पर ऐसी विजय पर भी जब दक्षिण का राज्य नहीं सुलझा, तब अकबर ने अबुल् फ़ज़ल को वहाँ भेजा। उसकी सम्मति से अकबर स्वयं भी सन् १५९८ ई० में लाहौर से दक्षिण को गया। अहमदनगर में पहिले से भी अधिक गड़बड़ी मची हुई थी। सैनिक विद्रोह में चाँद् सुलताना मारी जा चुकी थी। शाहज़ादा दानियाल और अब्दुर्रहीमख़ाँ ख़ानख़ानाँ ने आज्ञा पाकर अहमदनगर घेर लिया और थोड़े ही समय में उस पर अधिकार कर लिया। बहादुर निज़ाम शाह पकड़ा जाकर ग्वालियर दुर्ग में कैद हुआ। परन्तु केवल राजधानी पर अधिकार होकर रह गया और इस राज्य का अन्त सन् १६३७ ई० में अकबर के पौत्र शाह जहाँ के समय में हुआ।

अहमदनगर के घेरने के पहिले ही ख़ानदेश से कुछ अनबन हो गई थी, जिस पर अकबर ने उस राज्य पर भी अधिकार कर लिया। राजनगर असीरगढ़ ग्यारह महीने के घेरे पर टूटा। बादशाह ने ख़ानदेश और बरार का एक सूबा बनाकर शाहज़ादा दानियाल को सूबेदार और अब्दुर्रहीमख़ाँ ख़ानख़ानाँ को वज़ीर

नियत किया। बीजापुर और गोलकुंडा के सुलतानों ने अपने अपने एलची और उपहार भेजे तथा बीजापुर की शाहजादी से दानियाल का विवाह भी हुआ। इसके अनन्तर अहमदनगर का कार्य पूरा करने के लिये अबुलफजल् को वहीं छोड़कर अकबर स्वयं आगरे लौट गया।

अकबर यह वृत्तान्त सुनकर ही कि सलीम ने विद्रोह किया है, आगरे लौटा था। बादशाह दक्षिण जाते समत सलीम को अजमेर का सूबेदार नियत करके महाराणा मेवाड़ से युद्ध करने के लिये उसे आज्ञा दे गया था। उसके साथ राजा मानसिंह भी नियुक्त थे, परन्तु उनकी सूबेदारी बंगाल में विद्रोह होने के कारण उनके वहाँ चले जाने पर सलीम इलाहाबाद, अवध और बंगाल पर अधिकार कर वहाँ का बादशाह बन बैठा। अकबर के पत्र लिखने पर उत्तर में बड़ी नम्रता दिखलाई और अन्त में सलीमा सुलताना बेगम के मध्यस्थ होने पर सलीम ने अकबर से भेंट की और फिर अपनी स्वतन्त्र सूबेदारी इलाहाबाद को लौट गया। इसी समय अबुल्फजल, जो थोड़े सिपाहियों के साथ दक्षिण से लौट रहा था, रास्ते में सलीम के इच्छानुसार ओड़छा के राजा बीरसिंह देव बुँदेला के हाथ से मार डाला गया। अकबर को यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ और उस ने ओड़छा विजय कर उसे लुटवा लिया।

दो पुत्र तथा कई मित्रों की मृत्यु होने के कारण यह कुछ दिनों से बराबर अस्वस्थ बना रहता था। सन् १६०५ ई० के

सितम्बर में ६३ वर्ष की अवस्था में इसने इस असार संसार को त्याग दिया।

महाराणा अमरसिंह ने सन् १६०८ ई० में खानखानाँ के भाई को देवीर युद्ध में और सन् १६१० ई० में अब्दुल्ला खाँ को रानापुर के युद्ध में पराजित किया। सन् १६११ ई० में शाहजादा पर्वेज की अधीनस्थ सेना को खमनौर घाटी में परास्त किया। तब जहाँगीर ने पर्वेज को लाहौर बुला लिया। यद्यपि राणा ने विजयों पर विजय प्राप्त की थीं, पर उनका सेना बराबर घटती जाती थी और उन्हें इतना भी अवकाश नहीं मिलता था कि वह अपने छोटे राज्य से उस घटी की पूर्ति कर सकें। सन १६१३ ई० में २० सहस्र सैनिकों को लेकर शाहजादा खुर्रम ने चढ़ाई की, जिस के साथ अजामखाँ कोका १२ सहस्र घुड़सवारों के सहित आया था। अन्त में सन् १६१४ ई० में राणा ने पराजित होकर संधि कर ली।

अकबर के अहमदनगर विजय कर लेने के अनंतर उस राज्य का प्रबंध मलिक अंबर नामक एक हब्शी के हाथ में आया। इस ने उस स्थान पर एक नई राजधानी बसाई, जिस स्थान पर अब औरंगाबाद है। अकबर की मृत्यु पर उसने अहमदनगर पर फिर से अधिकार कर लिया। राजा टोडरमल के प्रथानुसार कर लगा इन का प्रबंध चलाया। सन १६०८ ई० में जहाँगीर ने अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ और शाहजादा पर्वेज को सेना सहित अहमदनगर पर भेजा। खानखानाँ और दूसरे सेनानियों में वैमनस्य होने के

कारण अवर ने मुगल सेना को परास्त कर दिया, जिस पर जहाँगीर ने खानखानाँ को बुला लिया और उन के स्थान पर खानजहाँ को भेजा। गुजरात से अब्दुल्लाखाँ को और बुरहानपुर से राजा मानसिंह को पर्वेज की सहायता करने के लिये भेजा। अब्दुल्ला ने दूसरी सेनाओं के आने के पहिले ही आक्रमण कर दिया और पराजित हो बहुत हानि उठाकर सन् १६१२ ई० में वह गुजरात भाग गया। तब जहाँगीर स्वय माँडू गया और वहाँ से शाहजहाँ को युद्ध करने के लिये भेजा, जिसने बीजापूर को मिला लिया। अबर ने घरेलू झगडो से निर्बल होने के कारण राज्य का कुछ अश देकर सधि कर ली। एक बार उसने फिर युद्ध छेडा, परन्तु शाहजहाँ ने उसे पुन परास्त किया।

फारस के तेहरान नगर के एक उच्चपदस्थ अधिकारी का पुत्र मिरजा गयास दरिद्र हो जाने के कारण अपनी स्त्री, दो पुत्रों और एक पुत्री के साथ भारत आया। जब वह कंधार पहुँचा तब वहाँ दूसरी पुत्री पैदा हुई, जिसका नाम मेहरुन्निसा रखा गया और जिसे साथ के एक सौदागर ने पाला था। इसी के आश्रय से इन लोगों की पहुँच अकबर के दरबार में हो गई। मेहरुन्निसा बड़ी होने पर माँ के साथ महल में आने जाने लगी, जहाँ शाहजादा सलीम उसे देख कर उसके प्रेमपाश मे बँध गया। अकबर ने यह वृत्तान्त जानकर उसका विवाह शेर अफगन से कर दिया, जिसे फारस से आए थोडे ही दिन हुए थे। उसे बर्दवान में जागीर देकर बगाल भेज दिया।

जहाँगीर उस सौंदर्य का भूला नहीं था। गद्दी पर बैठते ही उसने अपने धाय-भाई कुतुबुद्दीन को बंगाल का सूबेदार बनाकर और नूरजहाँ को किसी प्रकार दिल्ली भेजने की आज्ञा देकर वहाँ भेजा। शेर अफगन ने उसकी बातों से क्रुद्ध होकर उसे मार डाला और उसी झगड़े में वह स्वयं भी मारा गया। मेहरुन्निसा दिल्ली भेजी गई और कई वर्ष के अनंतर सन् १६११ ई० में बड़े समारोह से जहाँगीर के साथ उसका विवाह हो गया। पहिले उसको नूरमहल और फिर नूरजहाँ की पदवी मिली। उसके पिता प्रधान मंत्री नियत हुए और भाई आसफ खाँ को अमीरुल् उमरा का उच्च पद मिला। राज्य का कुल प्रबंध इसके हाथ आ गया, जिसे यह योग्यतापूर्वक पिता और भाई की सम्मति से करती रही। इसका नाम तक सिक्कों पर रहने लगा। यह सन् १६४५ ई० में पंचतत्व में मिल गई और लाहौर में जहाँगीर के पास गाड़ी गई।

जहाँगीर सन् १६२१ ई० में श्वास रोग से अधिक पीड़ित हो गया और उसी समय खुसरो की ज्वर से एकाएक मृत्यु हो गई, जो दक्षिण में शाहजहाँ की क़ैद में था। नूरजहाँ के भाई आसफ खाँ की पुत्री मुमताज महल शाहजहाँ से ब्याही गई थी, जिस कारण वह इसकी सहायता करती थी। परंतु जब अपनी पुत्री का, जो शेर अफगन से हुई थी, विवाह शाहजादा शहरयार से कर दिया तब उसका पक्ष लेने लगी। इस पर शाहजहाँ ने, जिसे कावुल जाने की आज्ञा हुई थी, विद्रोह आरम्भ कर दिया। जहाँगीर लाहौर से आगरे होता हुआ सन् १६२३ ई० में बिलूचपुर पहुँचा

और शाहजहाँ के दक्षिण भागने पर परवेज तथा महावत खाँ को ससैन्य उसके पीछे भेजकर स्वयं अजमेर चला गया। तेलिगाना और मुसलीपट्टम होता हुआ शाहजहाँ सन् १६२४ ई० मे बंगाल पहुँचा और उस पर अधिकार कर लिया, परन्तु शाही सेना से पराजित होने पर फिर दक्षिण भाग गया। सन् १६२५ ई० में पिता से क्षमा माँगकर अपने दो पुत्रों–दारा और औरंगजेब–को दिल्ली भेज दिया।

इसी वर्ष नूरजहाँ की कोपाग्नि से अपनी रक्षा करने के लिये महाबत खाँ ने भी विद्रोह किया और सन् १६२६ ई० में जहाँगीर को काबुल जाते समय पाँच सहस्र राजपूतों की सहायता से कैद कर लिया। नूरजहाँ पहिले लड़ी, पर कुछ न कर सकने पर बादशाह के पास चली गई। दूसरे वर्ष बड़ी बुद्धिमत्ता से उसने अपने को और बादशाह को स्वतंत्र कर लिया और महाबत खाँ भागकर शाहजहाँ से जा मिला।

जहाँगीर लाहौर होता हुआ काश्मीर गया, जहाँ से लौटते समय २८ अक्तूबर सन् १६२७ ई० को वह ६० वर्ष की अवस्था में परलोक सिधारा। जहाँगीर अधिक व्यसनी, हठी और निर्दय था, परन्तु बड़े होने पर ये सब दुर्गुण कुछ कम हो गए थे। वह सहनशील, न्यायी और क्षमाशील था, पर क्रुद्ध होने पर यह क्रूरता का व्यवहार भी कर बैठता था।

जहाँगीर के सबसे बड़े पुत्र खुसरो और द्वितीय परवेज की मृत्यु हो चुकी थी। अब केवल शाहजहाँ और सबसे छोटे पुत्र

शहरयार मर गए थे। आसफ खाँ दिलदान को खुसरो के पुत्र दावर बख्श अर्थात् बुलाकी को बादशाह बनाकर और नूरजहाँ को कारावद्ध कर लाहौर आया और शहरयार को दानियाल के दो पुत्रों सहित पराजित कर क़ैद कर लिया। शाहजहाँ सुरत से उदयपुर आया, पहिला दरबार यहीं किया और जनवरी सन् १६२८ ई० में आगरे पहुँचकर और उन क़ैदियों का समाप्त कर गद्दी पर बैठा।

काबुल पर उजबेगों ने आक्रमण किया था, पर वे परास्त होकर लौट गए। जुझारसिंह बुँदेला ने विद्रोह किया, जो कई महीने के युद्ध पर शमन हुआ। सन् १६२९ ई० में खानेजहाँ लोदी ने, जो दक्षिण का सूबेदार था, विद्रोह किया और वहाँ के सुलतानों के सहायता देने का वचन देने पर शाहजहाँ को स्वयं दक्षिण जाना पड़ा। खानेजहाँ परास्त होकर काबुल जाने के विचार से उत्तर की ओर चला, पर रास्ते ही में बुंदेलखंड के राजपूतों के हाथ मारा गया।

खानेजहाँ क विद्रोह के कारण शाहजहाँ स्वयं दक्षि० गया और बुरहानपुर से तीन सनाएँ तीन ओर स अहमदनगर पर भेजीं। सुलतान मुर्तजा शाह दौलताबाद के पास युद्ध मे पराजित हो दुर्ग में जा बैठा, जो घेर लिया गया। दो वर्ष वर्षा न होने से दक्षिण में अकाल पड़ा हुआ था और इधर बीजापुर न भी अहमदनगर का सहायता देने के विचार से युद्ध छेड़ दिया। अहमदनगर क सुलतान मुर्तजा को मारकर उसके वजीर फतह खाँ ने

एक छोटे बच्चे को गद्दी पर बैठाकर संधि कर ली। बीजापुर के सुलतान भी परास्त होकर दुर्ग में घिर गए थे, पर अकाल के कारण मुगलों को घेरा भी उठा लेना पड़ा। सन् १६३२ ई० मे महाबत खाँ को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त कर शाहजहाँ दिल्ली लौट गए। इससे पराजित होकर फतह खाँ ने दूसरे वर्ष मुगलो की नौकरी स्वीकार कर ली और अहमदनगर के निजाम ग्वालियर दुर्ग में भेज दिए गए। बीजापुर से युद्ध चलता रहा। अहमदनगर में शाह जी भोंसला ने एक नए निजाम को गद्दी पर बैठा कर युद्ध आरम्भ कर दिया। सन् १६३५ ई० मे शाहजहाँ फिर दक्षिण आया और बीजापुर के घेरे जाने पर वहाँ के सुलतान ने कर देना स्वीकार कर लिया। सन् १६३७ ई० मे शाहजी ने भी हारकर बीजापुर के यहाँ नौकरी कर ली और अहमदनगर राज्य का अंत हो गया। गोलकुडा के सुलतान ने भी डर से कर देना स्वीकार कर संधि कर ली और उसी वर्ष शाहजहाँ दिल्ली को लौट गया।

सन् १६३७ ई० में फारस के सूबेदार अली मर्दाँ खाँ ने शाह सफी के अत्याचार के डर से दुर्ग कधार शाहजहाँ को सौंप कर उसका दासत्व स्वीकार कर लिया। वह बदख्शाँ पर भेजा गया, जिसे लूट पाटकर वह जाड़े के पहिले ही लौट आया। दूसरे वर्ष राजा जगतसिंह भेजे गए, जो उजबेगों और बरफ के अंधडों को कुछ न समझकर उस पर अधिकार जमाए रहे। सन् १६४५ ई० में शाहजहाँ स्वयं काबुल गया और सुलतान मुराद तथा

अलीमर्दाँ खाँ के अधीन वहाँ सेना भेजकर पूरा अधिकार कर लिया। सन् १६४७ ई० में नज़्र मुहम्मद खाँ को बदख्शाँ देकर शाहजहाँ ने अपनी सेना लौटा ली। सन् १६४९ ई० में जब फारस का कंधार पर फिर अधिकार हो गया, तब उसी वर्ष और सन् १६५२ ई० में दो बार औरंगजेब ने और सन् १६५३ ई० में दारा शिकोह ने उसे लेने का बड़ा प्रयत्न किया, पर सब निष्फल गया।

शाहजहाँ के चार पुत्र थे, जिनका नाम अवस्थानुसार क्रमशः दाराशिकोह, शुजाअ, औरंगजेब और मुराद था। प्रथम को यौवराज्य और बाकी को क्रमशः बंगाल, दक्षिण तथा गुजरात की सूबेदारी मिली थी। सन् १६५७ ई० में शाहजहाँ के अधिक बीमार होने पर सभी पुत्रों ने उसकी मृत्यु निश्चित समझकर साम्राज्य पर अधिकार करने की तैयारी की। धूर्तराट् औरंगजेब ने मुराद को बादशाह बनाने का लोभ देकर मिला लिया। सन् १६५८ ई० में धर्मतपुर तथा सामूगढ़ के दो युद्धों में दारा को परास्त कर औरंगजेब ने आगरे तथा दिल्ली पर अधिकार कर लिया। औरंगजेब ने धूर्तता से आगरा दुर्ग को शाहजहाँ के लिए कारागार रूप में परिणत कर दिया, जहाँ उसे केवल बड़ी पुत्री जहाँआरा का आश्रय था। इसके एक मास अनंतर मथुरा में २३ जून को मुराद को अति मद्यपान कराकर धोखे से पकड़वा ग्वालियर दुर्ग में भेज दिया। २१ जुलाई सन् १६५८ ई० को औरंगजेब दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठा।

दारा दूसरी सेना एकत्र करके अजमेर आया, पर वहीं से १३ मार्च सन् १६५९ ई० को परास्त होकर भागा। पीछा करते करते अंत में वह कच्छ में पकड़ा जाकर दिल्ली लाया गया। ३० अगस्त को एक दुबले पतले हाथी पर बैठाकर और बाज़ार में घुमवाकर औरंगज़ेब ने उसे मरवा डाला। इन पर स्वधर्म छोड़ने का दोष लगाकर प्राण-दंड की आज्ञा दी गई थी। २६ दिसम्बर को ग्वालियर में मुराद और सुलेमान शिकोह भी मारे गए। शुजाअ ने एक बार और प्रयत्न करने के विचार से ससैन्य चढ़ाई की, परन्तु खजवा में ५ जनवरी को पूर्णतया परास्त होने पर वह भी भाग गया। मीर जुमला ने पीछा कर बंगाल पर अधिकार कर लिया और शुजाअ सपरिवार अराकान चला गया, जहाँ सब नष्ट हो गए। औरंगज़ेब का साम्राज्य अब निष्कंटक हो गया।

सात वर्ष आगरा दुर्ग में कैद रहकर ८८ वर्ष की अवस्था में शाहजहाँ की २२ जनवरी सन् १६६६ ई० को मृत्यु हो गई। वह ताजमहल में अपनी स्त्री के पास गाड़ा गया।

सम्राट् आलमगीर सन् १६५९ ई० के मई मास में औरंगज़ेब आलमगीर की पदवी के साथ बादशाह बन चुका था, पर सन १६६६ ई० में उसने बड़े समारोह से द्वितीय बार अड़तालीस वर्ष की अवस्था में राजगद्दी का उत्सव मनाया था। इसी के राजत्व में मुगल साम्राज्य अपनी पूर्ण सीमा को प्राप्त हुआ। इसके राज्य-काल का इतिहास वास्तव में मुगल साम्राज्य के ह्रास का और एक बड़े साम्राज्य का, जिसमें मुख्य कर हिंदू ही बसते थे, म्लेच्छ-

धर्मानुसार शासन करने के प्रयत्न की विफलता का इतिहास है। इसने भी अकबर की तरह ५० वर्ष राज्य किया था।

बंगाल के सूबेदार और योग्य सेनाध्यक्ष मीर जुमला ने कूच बिहार और आसाम पर आक्रमण करके सन् १६६१ ई० और सन् १६६२ ई० में वहाँ की राजधानियों पर अधिकार कर लिया, पर महामारी के कारण सेना नष्ट हो गई और वह भी स्वयं मोदा हो ३१ मार्च सन् १६६२ ई० को ढाका पहुँचने के पहिले ही मर गया। इसके उपरांत इसके उत्तराधिकारी शाइस्ता खाँ ने पुर्तगीज और बर्मी समुद्री डाकुओं से सन् १६६६ ई० में चटगाँव छीन लिया और बंगाल की खाड़ी में सोन द्वीप पर अधिकार कर लिया। सन् १६६५ ई० में काश्मीर से तिब्बत पर सेना भेजी गई और बलाई लामा ने भी अधीनता स्वीकृत कर ली।

सन् १६७२ ई० से १६७५ ई० तक पश्चिम में सिंध नदी के उस पार अफ़ग़ानों का उपद्रव बना हुआ था और स्वयं औरंगज़ेब अपने सेनापतियों के कार्य की देख भाल करता था। दक्षिण में बीजापुर और गोलकुंडा से बराबर युद्ध चल रहा था। इस प्रकार उत्तरी भारत में औरंगज़ेब के राजत्व के प्रथम बीस वर्ष में बराबर शांति विराजती रही और सीमांत युद्धों से भारत में किसी प्रकार की अशांति नहीं फैलने पाई।

सन् १६६९ ई० से औरंगज़ेब की धार्मिक नीति बिगड़ने लगी, क्योंकि उसका राज्य अब दृढ़तापूर्वक जम चुका था। उसने प्रांतों

के सूबेदारों को आज्ञाएँ भेज दीं कि स्वतंत्रता के साथ हिन्दुओं के मंदिरों और संस्कृत पाठशालाओं का नाश करो और शिक्षा तथा मूर्तिपूजन को रोको। शाहजहाँ के स्वामिभक्त सरदार मारवाड़-नरेश महाराज यशवंतसिंह की काबुल में मृत्यु हो गई थी, और मृत्यु के अनंतर पैदा हुए उनके पुत्र अजीतसिंह को मुसल्मानी धर्म में दीक्षित करने के लिये औरंगज़ेब ने दिल्ली में उसे रोक रखना चाहा था। पर उसका स्वामिभक्त सरदार दुर्गादास बड़ी वीरता से अजीतसिंह को बचाकर मारवाड़ चला गया। इस घटना से राजपूताने भर में विद्रोह फैल गया और मेवाड़ तथा मारवाड़ में सन्धि हो गई। जयपुर अब तक मुग़ल सम्राट् का भक्त बना रहा। औरंगज़ेब ने मारवाड़ पर सेनाएँ भेजीं, स्वयं गया और कुछ समय के लिये उस पर उसका अधिकार भी हो गया। सम्राट् के चौथे पुत्र अकबर ने, जो मारवाड़ पर भेजा गया था, राठौड़ों से मिलकर बादशाहत लेने के विचार से विद्रोह किया; परन्तु उसके पिता की कूट नीति ऐसी सफल हुई कि उसकी सेना भाग गई और उसे स्वयं दक्षिण भाग जाना पड़ा। वहाँ से वह फ़ारस गया, जहाँ सन् १७०६ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

जब औरंगज़ेब दक्षिण का सूबेदार था, तभी से वह बीजापुर और गोलकुंडा के सुलतानों से बराबर युद्ध करता रहा, और वह सफल प्रयत्न होने ही को था, जब सन् १६५७ ई० में उसे झटपट संधि करके दिल्ली के तख़्त के लिये उत्तर जाना पड़ा। सम्राट् होने पर भी वह दक्षिण के सूबेदारों को बराबर इन सुलतानों से युद्ध

करने की आज्ञा भेजता रहा, पर इनके सफल न होने पर अंत में स्वयं दक्षिण की ओर यात्रा की। इसी बीच में यहाँ एक नया शत्रु पैदा हो रहा था, जिसे इसने पहिले तुच्छ समझा था, पर कुछ समय में उसका बल यहाँ तक बढ़ा कि औरंगजेब अपनी प्रचंड मुगल वाहिनी से भी उसका नाश करने में विफल हुआ और अंत में उसी प्रयत्न में उसका भी अंत हो गया।

औरंगजेब के दक्षिण पर चढ़ाई करने का वृत्तान्त देने के पूर्व इस नए मराठा राज्य के उत्थान और उसके स्थापक शिवाजी का कुछ इतिहास देना आवश्यक है। ताप्ती नदी के पश्चिम और सतपुड़ा पहाड़ी के दक्षिण गोआ तक जो पश्चिमी घाट का प्रांत है, उसी को महाराष्ट्र देश कहते हैं और यहीं के रहनेवाले मराठा कहलाते हैं। ये छोटे, दृढ़ परिश्रमी, धीर और कार्यकुशल होते हैं। ये जिस काम में लग जाते हैं, उसे सब सुख आदि छोड़कर किसी प्रकार से पूरा कर ही के छोड़ते हैं। महाराष्ट्र ब्राह्मण बड़े मेधावी, नीतिज्ञ और विद्वान् होते हैं।

अहमदनगर के जागीरदार शाहजी, उस राज्य का अंत हो जाने पर, बीजापुर के अधीनस्थ पूना के सूबेदार नियत हुए। इन्हीं के पुत्र प्रसिद्ध शिवाजी हुए। १९ वर्ष की अवस्था ही से शिवाजी ने आसपास के दुर्गों पर अधिकार करना आरंभ कर दिया और दस बारह वर्ष में पूना के दक्षिण में बहुत बड़े प्रांत के स्वामी बन गए। बीजापुर के सुलतान ने सन् १६५९ ई० में एक बड़ी सेना अफजल खाँ के सेनापतित्व में इनका दमन करने

के लिये भेजो, जिस पर शिवा जी ने बड़ी नम्रता दिखलाई और दोनों ने एक खेमे में भेंट की। अफजल खाँ मारा गया और उसकी सेना नष्ट हो गई। तीन वर्ष के अनंतर बीजापुर ने इनसे संधि कर ली और जो प्रांत यह अधिकृत कर चुके थे, वह इन्हीं के अधिकार में रह गया।

शिवाजी ने मुगल साम्राज्य में भी लूट पाट मचाना आरंभ कर दिया और सन् १६६२ ई० में सूरत नगर को लूट लिया, जिस पर औरंगजेब ने अपने मामा शाइस्ता खाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा। उसने पूना पर अधिकार कर लिया, जहाँ शिवाजी एकाएक थोड़े से सैनिकों के साथ गुप्त रूप से पहुँचे और रात्रि में उसके महल पर धावा किया, जिसमें उसके प्राण किसी तरह बच गए और वह बंगाल भेजा गया। शाहजादा मुअज्जम कई सेनापतियों के साथ भेजा गया, पर कुछ लाभ न हुआ। तब सन् १६६५ ई० में जयपुर-नरेश राजा जयसिंह भेजे गए जिन्होंने इन्हें परास्त करके दिल्ली जाने के लिये बाध्य किया। औरंगजेब ने मूर्खता-वश इनके योग्यतानुसार इनकी प्रतिष्ठा करने के बदले इन्हें कैद करना चाहा, पर यह वहाँ से कौशल से निकल भागे और दक्षिण पहुँचते ही फिर युद्ध आरंभ कर दिया। सन् १६६७ ई० में मुगल सेनानियों को इन्हें राजा मानने के लिये बाध्य होना पड़ा।

सन् १६७४ ई० में बड़े समारोह के साथ शिवाजी राजगद्दी पर बैठे। यह अभिषेकोत्सव रायगढ़ में सपन्न हुआ, जो नए राज्य

की राजधानी थी। शिवा जी ने उत्तर में नर्मदा नदी तक मुग़ल राज्य में चौथ लेना आरम्भ कर दिया था और जो यह कर देते थे, उनकी लूट मार से रक्षा हो जाती थी। उन्होंने दक्षिण में कर्णाटक पर चढ़ाई करके जहाँ इनके पिता और भाई की जागीर थी, दुर्ग बेलोर और जिंजी पर अधिकार कर लिया। बीजापुर के सुलतान ने भी मुग़लों के विरुद्ध सहायता करने के कारण इन्हें बहुत सी भूमि दी। सन् १६८० ई० में ५३ वर्ष की अवस्था में शिवा जी ने इस नश्वर शरीर को छोड़ दिया।

शिवा जी की मृत्यु के एक वर्ष अनंतर सन् १६८१ ई० में औरंगजेब ने दक्षिण की सेना का आधिपत्य स्वयं ग्रहण किया, और गोलकुंडा तथा बीजापुर के राज्यों का नाश करके और मराठों का दमन करके कुल दक्षिण पर मुग़ल साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा से इन पर चढ़ाई की। दक्षिण म पहुँचते ही वहाँ भी जजिया कर बड़ी कठोरता स उगाहने लगा। यह भी आज्ञा दी कि कोई हिन्दू बिना आज्ञा प्राप्त किए पालकी या अरबी घोड़े पर सवार नहीं हो सकता। इस प्रकार की आज्ञाएँ देकर औरंगजेब ने हिन्दू मात्र को अपना शत्रु बना लिया।

सन् १६७२ ई० में अबुलहसन कुतुब शाह गोलकुंडा की गद्दी पर बैठा और स्वयं विषय सुख आदि में लिप्त होकर उसने राज्य के कुल कार्य अपने मंत्रियों के हाथ में छोड़ दिए, जिनमें मदन्ना पंडित तथा मुग़ल सम्राट् का एलची प्रधान थे। औरंगजेब ने अपने पुत्र शाहज़ादा मुअज्जम को गोलकुंडा में शान्ति स्थापित

करने के लिये भेजा। शाहजादे ने कुछ दिन यों ही व्यतीत कर हैदराबाद नगर पर चढाई की, जिसे मुगल सेना ने बिना आज्ञा ही खूब लूटा। अबुलहसन गोलकुंडा दुर्ग में चला गया। सन् १६८५ ई० में शाहज़ादा मुअज्जम ने इससे सन्धि कर ली, जिससे औरंगजेब ने कुछ खफा होकर उसे बुला लिया।

सन् १६७२ ई० मे सिकन्दर आदिल शाह छोटी अवस्था में बीजापुर की गद्दी पर बैठा था। औरंगजेब ने कुछ समय के लिये गोलकुंडा का विचार त्याग कर दूसरे पुत्र शाहज़ादा आज़म को बीजापुर पर भेजा। इसके सफल-प्रयत्न न होने पर स्वय वहाँ गया और एक वर्ष से अधिक समय तक घेरा रहने पर सन् १६८६ ई० के सितम्बर महीने में वह बीजापुर पर अधिकार कर सका। तीन वर्ष कैद में रहने पर सिकंदर की भी मृत्यु हो गई। बीजापुर का विशाल वैभव-सम्पन्न नगर उजाड़ हो गया, जो आज तक प्राय उसी प्रकार है।

औरंगजेब ने अब गोलकुंडा राज्य का भी अन्त कर देने की इच्छा से अबुलहसन पर काफिर मराठों को सहायता देने और उनसे मित्रता रखने का दोष लगाया। अबुलहसन ने भी अपने राज्य का अन्त समय आता देखकर युद्ध की पूरी तैयारी की। सन् १६८७ ई० के आरम्भ में मुगल सेना ने हैदराबाद घेरा। मराठी सेना मुगलों की रसद आदि लूटने लगी, जिससे घेरने वालों को यहाँ तक कष्ट पहुँचा कि उनकी घेरा उठाने की इच्छा होने लगी। परन्तु एक विश्वासघातक ने मुगल सेना को दुर्ग के

भीतर बुला लिया और सन् १६८७ ई० के सितम्बर महीने में दुर्ग विजय हो गया। अबुलहसन सन् १७०० ई० में दौलताबाद दुर्ग में मरा, जहाँ वह कैद था। सन् १६९१ ई० म मुग़ल सना ने तञ्जौर और त्रिचनापल्ली पर अधिकार कर लिया, जो मुग़ल साम्राज्य की अन्तिम सीमा थी।

दक्षिण के सुलतानो का नाश हो जाने स अब केवल मराठों का दमन करना ही औरंगजेब के लिये एक मात्र काम बच गया था, परन्तु उसके अन्तिम बीस वर्ष इसी प्रयत्न में व्यर्थ बीत गए। मराठा ही की लड़ाइयों और युद्धों से ये दोनों अन्तिम राज्य ऐसे निर्बल हो गए थे कि बादशाह उन्हें सहज म नष्ट कर सके थ। अब मराठों का भी केवल एक ही शत्रु मुग़ल बादशाह बच गया था। ये कभी जम कर युद्ध करते ही नहीं थे। सामान या रसद लूटना, आते जाते मुर्दों का नाश करना और कैंप को दूर हो स हानि पहुँचाना इनका ध्येय था। छोटे छोटे घोड़ों पर अपना सब सामान लिए दिए वे अपना काम पूरा करके ऐसा भाग देते थे कि मुग़ल सेना पीछा करके भी उनका कुछ नहीं कर सकती थी। इधर मुग़ल कैम्प चलता फिरता शहर सा था और मुग़ल सना-ध्यक्ष बड़े आराम-तलब और अयोग्य थे जिससे वे वास्तविक प्रयत्न भी नहीं कर सकते थे।

आरम्भ म औरंगजेब की विजय होती गई। सन् १६८९ ई० मे शिवा जी के पुत्र शम्भा जी पकड़े जाकर बड़ी कठोरता स मरवा डाले गए। इसी वर्ष रायगढ़ पर भी अधिकार हो गया

तथा शम्भा जी के अल्पवयस्क पुत्र साहू कैद कर लिए गए, जो बादशाह की मृत्यु पर छूटे। सन् १७०८ ई० में यह गद्दी पर बैठे थे। बादशाह ने इस बीच में बहुत से दुर्ग विजय कर लिए थे और सन् १७०१ ई० में मराठों का बल बहुत कुछ टूट गया था; परन्तु शिवा जी के दूसरे पुत्र राजाराम की विधवा स्त्री तारा बाई ने मराठों को उत्साह दिलाकर फिर से युद्ध छेड़ा और मुग़ल साम्राज्य में लूट मार करने की सम्मति दी। यह कार्य इतने उत्साह से होने लगा कि बादशाह एक प्रकार से अपने ही कैम्प में कैद हो गए और उनके देखते देखते सारा कोष लुट गया।

मराठों की सहायता अकाल और महामारी भी कर रही थी, जिससे मुगल सेना का ह्रास होने लगा। तब अन्त में निरुपाय होकर सन् १७०६ ई० में औरंगज़ेब अहमदनगर लौट गया। यहीं ८८ वर्ष की अवस्था में अपने राजत्व के पचासवें वर्ष में सन् १७०७ ई० के मार्च महीने के आरम्भ में इसकी मृत्यु हो गई। इसका मक़बरा दौलताबाद के पास रौज़ा या ख़ुल्दाबाद ग्राम में है। अन्त समय पर औरंगज़ेब को अपने कर्मों पर पश्चात्ताप हुआ था, जो उन पत्रों से ज्ञात होता है जो मृत्यु के पहिले उसने अपने पुत्रों को लिखे थे।

औरंगज़ेब के पाँच पुत्र थे—मुहम्मद सुलतान, शाहज़ादा मुअज्ज़म, आज़म, अकबर और कामबख़्श। मुहम्मद सुलतान तथा विद्रोही अकबर की मृत्यु हो चुकी थी और अब तीन शाहज़ादे राज्य लेने का बराबर स्वत्व रखते थे। औरंगज़ेब ने वसीयत

के तौर पर राज्य के तीन भाग कर दिए थे; परन्तु कोई शाह ज़ादा कुल साम्राज्य से कम लेने की इच्छा नहीं रखता था। सब से बड़े मुअज्ज़म ने काबुल में और उससे छोटे आज़म ने दक्षिण के कैम्प में अपने मुग़ल सम्राट् होने का घोषणापत्र निकाल दिया। दोनों सेनायें एकत्र कर युद्ध को चल और आगरे के दक्षिण जाजऊ में जून सन् १७०७ ई० में युद्ध हुआ, जिसमें आज़म दो पुत्रों के साथ मारा गया। मुअज्ज़म ने आगरे पर अधिकार कर लिया और राजकोष से खूब रुपए बाँट कर सैनिकों को सन्तुष्ट किया। सन् १७०८ ई० की फ़रवरी में शाहज़ादा काम बख्श दक्षिण में परास्त हुआ और युद्ध में इतना घायल हुआ कि कुछ दिनों बाद मर गया। मुअज्ज़म अब बहादुर शाह या शाह आलम प्रथम की पदवी के साथ बादशाह हुआ।

इसने राजा साहू को क़ैद से छोड़ कर मराठों से सन्धि कर ली और राजपूतों से भी मेल हो गया। इसके समय की मुख्य घटना सिक्खों के साथ युद्ध और उनका दमन है। सिक्खों के उत्थान का कुछ वृत्तान्त देना यहाँ आवश्यक है।

नानक के चलाए हुए मत को सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ तक बादशाही अफ़सरों से किसी प्रकार का काम नहीं पड़ा था परन्तु जहाँगीर के समय खुसरो की सहायता करने के कारण सिक्ख गुरु तेग़ बहादुर दिल्ली लाए जाकर मारे गए थे। उस समय से उसके पुत्र हरगोविन्द की अधीनता में सिक्खों ने शस्त्र चलाना सीखा और वे दिल्ली सम्राट् के शत्रु बन गए। हरगोविन्द

के पोते गुरु गोविन्दसिंह ने कड़े नियम बनाकर सिक्खों को दूसरी प्रजाओं से अलग कर लिया और उनका एक खालसा (राजनीतिक समूह) नियत किया। कई दुर्ग विजय किए, पर शाही सेना से परास्त होकर औरंगज़ेब की मृत्यु तक वे छिपे रहे। सन १७०८ ई० में अंतिम गुरु की मृत्यु हो गई। इनके एक शिष्य बन्दा ने लूट मार आरम्भ की और सरहिंद विजय किया। सिक्खों को परास्त करने के लिये बहादुर शाह लाहौर आया, जहाँ सन् १७१२ ई० के फरवरी महीने में उसकी मृत्यु हो गई। यह सज्जन और दानी था, पर समयानुकूल बादशाह होने के गुण उसमें नहीं थे।

बहादुर शाह के चारों पुत्रों में से तीन आपस में मिल गए और सबसे योग्य द्वितीय पुत्र अज़ीमुश्शान को युद्ध में परास्त कर मार डाला। छोटे दोनों शाहज़ादे भी एक एक करके मार डाले गए और अंत में अयोग्य तथा विषयी जहाँदार शाह बादशाह हुआ। ज़ुल्फ़िकार ख़ाँ नसरत जंग, जिसने बराबर जहाँदार शाह का साथ दिया था, वज़ीर बनाया गया।

कुछ ही महीनों के अनंतर अज़ीमुश्शान का पुत्र फ़र्रुख़सियर, जो पिता के मारे जाने पर बंगाल भाग गया था, दो सैयद भ्राताओं की सहायता से, जो बिहार और इलाहाबाद के सूबेदार थे, जहाँदार शाह पर चढ़ आया और उसे परास्त कर सन् १७१३ ई० की जनवरी में गद्दी पर बैठा। बड़ा भाई अब्दुल्ला ख़ाँ वज़ीर के और छोटा भाई हुसेन अली ख़ाँ अमीरुल्‌उमरा के पद पर

नियत हुआ। कुछ समय तक ये दोनों जिस चाहते थे, उसे गद्दी पर बैठाते थे और जब चाहते थे, उतार देते थे।

फर्रुखसियर के समय की मुख्य घटनाओं में सिक्खों की वह हार थी, जिसमें सरदार बंदा एक सहस्र साथियों सहित पकड़ा जाकर कठोरतापूर्वक मारा गया था। इससे सिक्ख कुछ दिनों के लिये शांत हो गए। फर्रुखसियर ने अंग्रेज डाक्टर हैमिल्टन की दवा पर प्रसन्न होकर ५ पत्नी का कुछ सनद दिए थे। सन् १७१९ ई० में सैयदों के प्रतिकूल षड्यन्त्र रचने के कारण वह मारा गया।

सैयदों ने रफीउद्दर्जात् और रफीउद्दौलात् को क्रमशः गद्दी पर बैठाया, पर वे कुछ ही महीनों में मर गए। तब उन दोनों ने सन् १७१९ ई० के अक्टूबर में मुहम्मद शाह को गद्दी पर बैठाया, जिसने तीस वर्ष राज्य किया। इसके समय में साम्राज्य नाम मात्र को रह गया और कई सूबेदारों ने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिए। मुहम्मद शाह ने कई सरदारों की सहायता से सैयदों का दमन किया, जिसमें हुसैन अली मारा गया और अब्दुल्ला क़ैद हुआ।

चिकिलीच खाँ नामक एक तुर्की सरदार, जो आसफ़जाह निज़ामुल्मुल्क के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, सैयदों की शत्रुता के कारण अपनी सूबेदारी दक्षिण को चला गया और वहाँ उसने सैयदों की दो सेनाओं को परास्त किया। सैयदों के मारे जाने पर कुछ दिनों के लिये वह वज़ीर भी हुआ था, पर सन् १७२३ में वह इस पद को त्याग कर दक्षिण लौट गया। उस समय से वह प्रायः स्वतंत्र सा हो गया।

सआदत खाँ नैशापुरी, जो सैयदों की कृपा से उन्नति कर रहा था, उन्हीं के विरुद्ध उनके शत्रुओं से मिल गया। वह अवध का सूबेदार नियत हुआ और उसी ने वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया। वह केवल नवाब था, पर उसका उत्तराधिकारी और दामाद सफ़दर जंग वज़ीर होने के कारण नवाब-वज़ीर कहलाने लगा। अंग्रेज़ों ने उनके वंशधरों को बादशाही की पदवी दी थी।

बंगाल, बिहार और उड़ीसा तीनों प्रांतो के निज़ाम और दीवान सरफ़राज़ खाँ को मारकर अलीवर्दी खाँ ने सन् १७४० ई० में उन पर अधिकार कर लिया। यह नाम मात्र के लिये दिल्ली साम्राज्य के अधीन समझा जाता था और पीछे से उस प्रांत की तहसील भेजना भी इसने बंद कर दिया था। यह सन् १७५६ ई० में मर गया।

गंगा जी के उत्तर की उपजाऊ ज़मीन में, जिसे आज कल रुहेलखंड कहते हैं, रुहेला जाति के अफ़ग़ानों ने विद्रोह किया और स्वतंत्र हो गए। इस प्रकार सभी प्रांतों मे विद्रोह होने लगे और मुगल साम्राज्य तुगलक साम्राज्य के समान नाम मात्र को रह गया।

शिवा जी के वंश मे तारा बाई ही तक प्रसिद्धि रही। साहू जो बहुत वर्षों तक मुगल क़ैद में रहा था, अत उसमें मुगलों के बहुत से व्यसन आदि आ गए थे और वह पूरा मराठा नहीं रह गया था। वह महल में विषय भोग करने लगा और राज्य के सब कार्य उसने अपने ब्राह्मण मंत्री पर छोड़ दिए, जो पेशवा कहलाता था।

सन् १७१४ ई० में बालाजी विश्वनाथ इस पद पर नियुक्त किए गए, जिनका अधिकार इतना बढ़ा कि मराठे राजे एक प्रकार उन्हीं के अधीन हो गए। सन् १७१८ ई० में प्रथम पेशवा ससैन्य सैयदों की सहायता करने को दिल्ली गए। उन्होंने सन १७२० ई० में दक्षिण में चौथ सरदेशमुखी की सनद प्राप्त की और पूना तथा सितारा के चारों ओर उनका राज्य भी मुगल सम्राट् द्वारा मान लिया गया।

सन् १७२० ई० में बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु हो गई और उनके बड़े पुत्र बाजीराव प्रथम कुछ महीनों के अनंतर उस पद पर नियत हो गए, जिससे पेशवा की पदवी इस वंश में परंपरा के लिए निश्चित हो गई। सन् १७२७ ई० में साहू ने पेशवा को मराठा राज्य का पूर्ण अधिकार दे दिया और यद्यपि वह सन् १७४८ ई० तक जीवित रहा, पर पेशवा ही मराठा साम्राज्य के सच्चे स्वामी थे। सन् १७३१ ई० में मालवा और नर्मदा नदी के उत्तर चंबल नदी तक का प्रांत मुगलों से ले लिया गया। सन् १७३९ ई० में पुर्तगालिया से बसीन विजय किया। बाजीराव योग्य सेनापति और सरदार थे परन्तु नैतिक विभाग में कम योग्यता रखते थे। उन्होंने मराठा राज्य का विस्तार बहुत बढ़ाया और मुगल साम्राज्य पर अपना पूरा प्रभाव जमा लिया।

सन १७४० ई० में बाजीराव की मृत्यु पर उनका पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा हुआ। पेशवाओं के राजवंश का आरंभ सन् १७२७ ई० से ही समझना चाहिए, जब राजा साहू ने अपना

अधिकार त्याग कर उसे बाजीराव को सौंप दिया था। इस वंश का अंत मारक्विस औव हेस्टिंग्ज़ के समय सन् १८१८ ई० में हुआ। बालाजी ने निज़ाम हैदराबाद को दो बार परास्त कर उस राज्य का बहुत सा अंश ले लिया। बालाजी के एक सेनापति रघुजी भोसला ने बंगाल पर चढ़ाई की और अंत में अलीवर्दी खाँ ने उड़ीसा प्रांत और चौथ देना स्वीकार करके उससे अपना पीछा छुड़ाया। उत्तर में मराठों ने पंजाब तक अपना अधिकार जमा लिया था।

इसी समय उत्तरी भारत पर आक्रमण करनेवाले मराठे सरदारों ने नए अधिकृत प्रांतो में राज्य स्थापित किया, जिनमें बड़ौदा के गायकवाड़, इंदौर के होलकर और ग्वालियर के सेंधिया प्रसिद्ध हुए। ये सरदार उच्च जाति के नहीं थे और पेशवा बाजी-राव को अधीनता में कार्य करके इन लोगों ने धीरे धीरे ख्याति प्राप्ति की थी। सन् १८१८ ई० में इन तीनो राजवंशो के सौभाग्य से संधि द्वारा उनके राज्य मिल गए। इसी वर्ष नागपुर-वाले भोंसला महाराज के स्वातंत्र्य का और सन् १८५३ ई० में लार्ड डलहौजी द्वारा राज्य का भी अंत हो गया।

सन् १७३६ ई० के आरम्भ में तहमास्प कुली खाँ नामक एक योग्य सेनापति ने सफ़वी वंश का अंत कर दिया और नादिर शाह की पदवी धारण कर फारस को गद्दी पर अधिकार कर लिया। सन् १७३९ ई० में इसने भारत पर चढ़ाई को और बिना किसी रुकावट के गजनी, काबुल और लाहौर होता हुआ दिल्ली से

सन् १७१४ ई० में बाला जी विश्वनाथ इस पद पर नियुक्त किये गए, जिनका अधिकार इतना बढ़ा कि मराठे राज एक प्रकार उन्हीं के अधीन हो गए। सन् १७१८ ई० में प्रथम पेशवा ससैन्य सैयदों की सहायता करने को दिल्ली गए। उन्होंने सन् १७२० ई० में दक्षिण में चौथ सरदेशमुखी की सनद प्राप्त की और पूना तथा सितारा के चारों ओर उनका राज्य भी मुगल सम्राट् द्वारा मान लिया गया।

सन् १७२० ई० में बाला जी विश्वनाथ की मृत्यु हो गई और उनके बड़े पुत्र बाजीराव प्रथम कुछ महीनों के अनंतर उस पद पर नियत हो गए, जिससे पेशवा की पदवी इस वंश में परंपरा के लिये निश्चित हो गई। सन् १७२७ ई० में साहू ने पेशवा को मराठा राज्य का पूर्ण अधिकार दे दिया और यद्यपि वह सन् १७४८ ई० तक जीवित रहा, पर पेशवा ही मराठा साम्राज्य के सर्व स्वामी थे। सन् १७२६ ई० में मालवा और नर्मदा नदी के उत्तर चंबल नदी तक का प्रांत मुसल्मानों से ले लिया गया। सन् १७३९ ई० में पुर्तगालियों ने बसीन विजय किया। बाजीराव योग्य सेनापति और सरदार थे परन्तु नैतिक विभाग में कम योग्यता रखते थे। उन्होंने मराठा राज्य का विस्तार बहुत बढ़ाया और मुगल साम्राज्य पर अपना पूरा प्रभाव जमा लिया।

सन् १७४० ई० में बाजीराव की मृत्यु पर उनका पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा हुआ। पेशवाओं के राजवंश का आरंभ सन् १७२७ ई० से ही समझना चाहिए जब राजा साहू ने अपना

धिकार त्याग कर उसे बाजीराव को सौंप दिया था। इस वश अंत मारकिस और हेस्टिंग्ज़ के समय सन् १८१८ ई० मे रा। बालाजी ने निजाम हैदराबाद को दो बार परास्त कर उस ज्य का बहुत सा अंश ले लिया। बालाजी के एक सेनापति घुजी भोंसला ने बंगाल पर चढ़ाई की और अंत मे अलीवर्दी खाँ उड़ीसा प्रांत और चौथ देना स्वीकार करके उससे अपना पीछा छुड़ाया। उत्तर में मराठों ने पंजाब तक अपना अधिकार जमा लिया था।

इसी समय उत्तरी भारत पर आक्रमण करनेवाले मराठे सरदारों ने नए अधिकृत प्रांतो में राज्य स्थापित किया, जिनमें। बड़ौदा के गायकवाड़, इंदौर के होलकर और ग्वालियर के सेंधिया प्रसिद्ध हुए। ये सरदार उच्च जाति के नहीं थे और पेशवा बाजी-राव की अधीनता में कार्य करके इन लोगों ने धीरे धीरे ख्याति प्राप्ति की थी। सन् १८१८ ई० मे इन तीनो राजवंशों को सौभाग्य से संधि द्वारा उनके राज्य मिल गए। इसी वर्ष नागपुर-वाले भोंसला महाराज के स्वातन्त्र्य का और सन् १८५३ ई० में लार्ड डलहौजी द्वारा राज्य का भी अंत हो गया।

सन् १७३६ ई० के आरम्भ मे तहमास्प कुली खाँ नामक एक योग्य सेनापति ने सफवी वंश का अंत कर दिया और नादिर शाह की पदवी धारण कर फ़ारस की गद्दी पर अधिकार कर लिया। सन् १७३९ ई० में इसने भारत पर चढ़ाई की और बिना किसी रुकावट के गज़नी, काबुल और लाहौर होता हुआ दिल्ली से

पचास कोस पर कर्नाल के पास आ पहुँचा। वहाँ बादशाही सेना से युद्ध हुआ, परन्तु परास्त होने पर मुहम्मद शाह ने अधीनता स्वीकृत कर ली और दोनों साथ ही दिल्ली आए। दूसरे दिन इस झूठी गप्प के उड़ने पर कि नादिर शाह मर गया, दिल्ली की प्रजा ने बलवा कर दिया और उसके कई सौ सैनिकों को मार डाला। इस पर नादिर शाह ने २०००० सैनिकों को नगर में लूट मार करने की आज्ञा दे दी, जो ९ घंटे तक जारी रही। इसके अनंतर मार काट बंद करके लूट का माल समेटना आरंभ किया और जब राजकोष के रत्नों और मोरवाले तख्त से उसका मन नहीं भरा, तब प्रत्येक प्रजा से, चाहे अमीर या हो दरिद्र, उसकी संपत्ति का अधिकांश भाग ले लिया। मुहम्मद शाह को गद्दी पर बैठाकर और सिंध नदी के उधर का प्रांत अपने अधिकार में रखकर लूट का सारा माल लिए हुए अट्ठावन दिन के बाद वह लौट गया।

सन् १७४७ ई० में नादिर शाह के मारे जाने पर उसका एक अफगान सेनापति अहमद शाह दुर्रानी या अब्दाली अफगानिस्तान का स्वतंत्र शाह बन बैठा। दूसरे वर्ष उसने पंजाब पर चढ़ाई की परन्तु सरहिंद के पास शाही सेना से परास्त होकर भागा जो शाहज़ादा अहमद शाह और वज़ीर क़मरुद्दीन ख़ाँ के अधीन थी। इस युद्ध में वज़ीर मारा गया।

इसी वर्ष के अप्रैल में युद्ध के बाद ही मुहम्मद शाह की मृत्यु हो गई और अहमद शाह बादशाह हुआ। वज़ीर की मृत्यु के कारण अहमद शाह ने नवाब सफ़दर जंग को अपना वज़ीर

बनाया, परन्तु सरदार लोग आपस में बराबर लड़ा करते थे। इसी समय अहमद शाह दुर्रानी ने पंजाब पर अधिकार कर लिया। जब अमीरों के षड्यन्त्र से सफ़दर जंग अपना पद त्याग कर अवध चला गया, तब आसफ़जाह निज़ामुल्मुल्क का बड़ा पुत्र गाज़ीउद्दीन वज़ीर हुआ। उसने अहमद शाह को अंधा कर दिया और जहाँदार शाह के एक पुत्र को आलमगीर द्वितीय की पदवी देकर गद्दी पर बैठाया।

सन् १७५६ ई० में अहमद शाह दिल्ली पर चढ़ आया और सत्रह वर्ष के बाद फिर से नादिर शाही आरंभ की। मथुरा में भी बहुत लूट मार की और सन् १७५७ ई० की गरमी में अपने देश को लौट गया। जब गाज़ीउद्दीन के पुत्र ने अपने प्रतिद्वंद्वियों के प्रतिकूल मराठों से सहायता माँगी, तब सन् १७५८ ई० में बाजीराव प्रथम के छोटे पुत्र रघुनाथ राव या राघोबा ने दिल्ली और पंजाब पर अधिकार कर लिया। उस समय मराठा साम्राज्य का भारत में पूर्ण विस्तार हो चुका था, जिससे मुसलमान नवाब आदि उनका दमन करने के प्रयत्न में लगे।

यह समाचार सुनकर दुर्रानी बहुत बड़ी सेना के साथ भारत आया और पंजाब पर अधिकार करता हुआ पानीपत के मैदान में पहुँचा। रुहेलों और नवाब अवध आदि की सेनाओं ने भी सम्मिलित होकर उसका बल बहुत बढ़ा दिया। सदाशिव राव भाऊ, जो बाजीराव पेशवा का भतीजा था, १३ जनवरी सन् १७६१ ई० को मराठा सेना सहित पानीपत में दुर्रानी की सेना

ह्न्दी दोनो भाषाओ के प्रकांड पडितगण आजकल प्राय: उत्तरी
ारत के सभी विश्वविद्यालयो से निकलते चले आ रहे हैं और
ाशा है कि आगे इन लोगों से मातृभाषा को बहुत सहायता
मेलेगी। परन्तु फ़ारसी भाषा के अच्छे ज्ञाता होते हुए हिन्दी की
ेवा करनेवाले बहुत कम दिखाई पड़ते हैं। फारसी के विद्वान मौलवी
ोग हिन्दी जानते भी नहीं, और हिन्दी के विद्वान गण उर्दू के
ाता तो अवश्य मिलते हैं, पर फ़ारसी को भी अच्छी तरह
ानेनेवाले बहुत ही कम मिलते हैं। भारत के इतिहास का बहुत
ा साधन फारसी के ग्रंथों में सुरक्षित है, जिनमें से बहुतों का
ंग्रेज़ी मे अनुवाद हो चुका है। कुछ ही ऐसे अभागे ग्रंथ
ात् भूल से बच रहे हैं जो अनूदित नहीं हो सके हैं। हिन्दी में
से ग्रंथों के अनुवाद की ओर स्व० मुं० देवीप्रसाद जी ने बहुत
रिश्रम किया है और फारसी भाषा के कई ग्रंथों को अनूदित कर
न्दी के इतिहास-प्रेमियों के लिये पठन योग्य बना दिया है।

अभी इस प्रकार के अनेक विद्वानों को इस ओर ध्यान देकर
े ग्रंथों के सुगम सटिप्पण अनुवाद तैयार करने होंगे, जिनसे
ारी मातृभूमि के इतिहास को यह समग्र सामग्री हमारी मातृ
ाषा में संचित हो जाय। जब तक ऐसे विद्वान इस ओर नहीं
ा करते, तब तक मैं अपने अपरिपक्व फ़ारसी भाषा-ज्ञान की
ायता से ऐसी सामग्री हिंदी प्रेमियों के लिये उपलब्ध करने की
ा अवश्य करूँगा। इस ग्रंथ के प्रकाशक द्वारा गुलबदन बेगम
। 'हुमायूँ नामा' छः वर्ष हुए कि छप चुका है। उसी 'देवी-

प्रसाद ऐतिहासिक माला' में यह दूसरा ग्रंथ मआसिरुल् उमरा (मुग़ल दरबार के हिंदू सरदार) प्रकाशित हो रहा है।

इस ग्रंथ के अनुवाद में प्रायः दस वर्ष हुए कि हाथ लगाया गया था। उस समय कुछ ऐसा उत्साह था कि समग्र ग्रंथ के भाषांतर के विचार से सभी हिन्दू तथा मुसलमान सरदारों की जीवनी लिखना आरम्भ कर दिया था। इसके प्रकाशन के लिये, क्योंकि यह महत्वपूर्ण विराट ग्रंथ था, काशी नागरी प्रचारिणी सभा से लिखा पढ़ी हुई और एक जीवनी का अंश मु० देवीप्रसादजी के पास भेजा गया था। उन्होंने उसका उत्तर अपनी सम्मति के साथ मुझे भी लिखा था, जो सुरक्षित रखा हुआ है। बाद को सभा ने समग्र ग्रंथ छापने में अपनी असमर्थता प्रकट की और केवल हिंदू सरदारों ही की जीवनियों को प्रकाशित करना निश्चय किया। अस्तु, मैंने भी उसी के मतव्यानुसार अनुवाद करना उचित समझा, क्योंकि एक तो यह इतिहास का ग्रंथ और दूसरे इतना विराट। ऐसी आशा नहीं थी कि कोई प्रकाशक इसे पूरा छाप कर दूसरी पुस्तकों द्वारा अपना शीघ्र होनेवाला लाभ छोड़ देगा। न वह आशाओं की कथा थी और न समाज के नम्र मित्र ही इसमें लिखे थे। धीरे धीरे अनुवाद तैयार हो गया और टिप्पणी आदि भी यथाशक्ति देकर ऐतिहासिक गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न भी पूरा हो गया। इतने पर भी अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओं के कारण इसका प्रकाशन रुका रहा; पर अब ईश्वर की कृपा से वह प्रकाशित हो रहा है।

मूल ग्रंथ तथा उसके रचयिता की जीवनी पढ़ने से ज्ञात होता है कि जिस प्रकार उसके संपादक को वह ग्रंथ प्रकाशित करने में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा था, उसी प्रकार इस अनुवाद ग्रंथ के लिये भी अनुवादक के मार्ग मे रोड़े आ पड़े थे, पर जगन्नियंता के नियंत्रण से वे आप ही आप हट गए। इस प्रकार अब यह ग्रंथ प्रकाशित होकर पाठकों के सम्मुख उपस्थित हो रहा है। आशा है कि वे इसे अपना कर अनुवादक तथा प्रकाशक दोनों ही को अनुगृहीत करेंगे।

दोलोत्सव,
सं० १९८६ वि०

विनीत—
व्रजरत्नदास

मआसिरुल् उमरा

ईश्वर के नाम पर जो दयालु और कृपालु है[1]

असीम प्रशंसा और अगणित स्तुति उसी राजाधिराज के योग्य है जिसकी सर्वव्यापी शक्ति और पूर्णेच्छा प्रसिद्ध सम्राटों और कार्यशाली सामंतों के चरित्र का कारण है। उसी के आज्ञा-रूपी बंधन मे कुल संसार बँधा हुआ है। तुच्छ कण भी उसकी बृहत् शक्ति के बिना हिल नहीं सकता और चल वस्तु स्थिर नहीं हो सकती। वही उच्चवंशीय राजेश्वरों से बड़े बड़े सिंहासनों को सुशोभित कर प्रजा को सुख और शांति देने का प्रबंध करता है और हृदय से शारीरिक अवयवों के सबंधानुसार योग्य मंडलेश्वरों को सम्राटों का सहकारी बना कर उनके द्वारा प्रजारंजन करता है। उसकी आज्ञा होते ही एक शब्द 'कुन' ('हो' कहते ही) से कुल सांसारिक वस्तुएँ निमेष मात्र में प्रकट हो जाती हैं और जिसने संसार की इन विचित्र वस्तुओं को, जिनका बुद्धिमान बड़ी नम्रता से ज्ञान संपादन करते हैं, उत्पन्न किया है। लिखा है—

---

[1] यह भूमिका मूल ग्रंथकार के पुत्र अब्दुल हई खाँ की लिखी हुई है। मूल ग्रंथ में इसका स्थान सब के पहले है; इसलिए अनुवाद में भी उसे पहले रखा गया है।

शेर (का अर्थ)

हे ईश्वर! तेरी ही आज्ञा से विश्व के बीच, पृथ्वी अचल और आकाश चल है। जिस और मनुष्य को तू ही बड़प्पन देता है और तू ही संसार का सम्राट् है॥

अनन्त प्रणाम उस सरदार को भी है जिसने दैवी आज्ञाओं के प्रचार में मित्रों की कमी और शत्रुओं की अधिकता का कुछ भी विचार न करके सत्य मार्ग से भटके और भूले हुओं को लूट मार कर और लगातार पराजित कर उन्हें उनके कर्म का फल दिया। यहाँ तक कि उनका दृढ़ धर्म सारे संसार में फैल गया और चारों ओर उसका प्रचार हो गया। लिखा है—

शेर (का अर्थ)

संसार और धर्म के राजा मुहम्मद साहब हैं, जिनकी तलवार ने कपट को जड़ से उखाड़ डाला। रसूल जाति की सरदारी का मुकुट उन्हीं के सिर पर है और उन्हीं से सरदारी का अन्त है[1] ॥

उनकी संतानों और उच्च वंशज साथियों को भी धन्यवाद है, जो उनके अधिकार रूपी महल के दृढ़ स्तंभ और ज्ञान रूपी बस्ती के द्वार हैं।

---

१ इस शेर के दूसरे मिसरे 'कि खातम सरी बर नबूत वरोस्त।' का अर्थ मिस्टर ईलियट ने यह किया है—'उन पर शक्ति और पैगंबरी की मुहर है'। यह अर्थ अशुद्ध है। सरी—नबूत का अर्थ पैगंबरों की सरदारी है जिसका अन्त इन्हीं पर माना भी गया है। मुसलमानी धर्मशास्त्र मुहम्मद ही को अंतिम पैगंबर मानते हैं।

इस उपदेशपूर्ण खेल के दर्शकों और इस दृश्य के देखनेवालों से यह छिपा नहीं रह सकता कि इन पंक्तियों के लेखक के पिता मीर अब्दुर्रज्ज़ाक, जो समसामुद्दौला के नाम से प्रसिद्ध हुए, इतिहास के ऐसे ज्ञाता थे कि तैमूरी वंश के बादशाहों और सरदारों का वृत्तान्त उनकी जिह्वा पर था और वंशावली में वह ऐसा ज्ञान रखते थे कि बहुतेरे मनुष्य उनसे अपने पूर्वजों का वृत्तान्त पूछने आते थे। औरंगाबाद के मुहल्ला कुतुबपुरा में एकांतवास करते समय उन्होंने इस ग्रंथ की रचना (जिसमें पूर्वोक्त सम्राटों के समय के सरदारों का वृत्तांत है) आरम्भ कर दी। बहुत से जीवन वृत्तांत लिखे जा चुके थे और कुछ तैयार हो रहे थे कि इसी समय नवाब आसफ़जाह[1] ने कृपा कर इन्हें बुलाया और अपने राज्य में किसी काम पर नियुक्त कर दिया। फिर नवाब निज़ामुद्दौला शहीद[2] ने अपने राज्य की दीवानी सौंप कर इन्हें सम्मानित किया। तब से इस ग्रंथ की पूर्ति रुक गई थी। इन शब्दों के लेखक ने एक दिन उनसे कहा कि यदि इस अच्छे ग्रंथ की भूमिका लिख दी जाती तो यह समाप्त हो जाता। उन्होंने उत्तर दिया कि तुम्हीं अपने इच्छानुसार इसकी पूर्ति करो। इसके

१ हैदराबाद राज्य के संस्थापक प्रथम निज़ाम चिनक़िलीच ख़ाँ को मुग़ल दरबार से निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह की पदवी मिली थी, जो इनके वंश में अब तक प्रतिष्ठापूर्वक धारण की जाती है।

२ यह नवाब आसफ़जाह के द्वितीय पुत्र और द्वितीय निज़ाम नासिरजंग थे। यह युद्ध में मारे गए थे, इसलिए शहीद कहलाए।

अनंतर वे नवाब सलाबतजंग[1] के वकील अर्थात् प्रधान मंत्री नियत हुए और उसी कार्य में मारे गए। घर लुट गया और इस ग्रंथ के सब पन्ने लुटेरों के हाथ लग पर कुछ वर्ष के बाद थोड़े पन्ने हाथ आए। मीर गुलाम अली आज़ाद[2] ने (जिनसे पिताजी से बड़ी मित्रता थी) उन पन्नों को इकट्ठा कर भूमिका और उन मूल ग्रंथकार का परिचय लिखा। इसके अनन्तर कुछ अंश और भी मिले। उन पूज्य की आज्ञा इस लेखक को सदा खटकती थी, इसलिए मैंने इस कार्य को सन् ११८२ हि०[1] में आरंभ किया और अन्य इतिहासों से बचे हुए सरदारों का भी जीवन वृत्तान्त लिखकर इस ग्रंथ को पूर्ण किया। आरंभ में स्वलिखित प्रस्तावना, भूमिका (पिताजी की लिखी हुई, जिसे इस प्रस्तावना-लेखक ने किसी पुस्तक पर उतार लिया था) और ग्रंथकार

---

१ यह नवाब आसफ़जाह के तृतीय पुत्र और निज़ाम थे।

२ मीर गुलाम अली बिलग्रामी उपनाम आज़ाद—यह मीर अब्दुलजलील के पौत्र थे और इनका जन्म ११११ हि (११ ४ ई) में हुआ था। यह सुकवि और अच्छे गद्य-लेखक थे। इनके ग्रंथों का नाम ख़ज़ानए आमिरा, मआसिरुल्किराम, सर्वे आज़ाद और तज़किरए सर्वआज़ाद है। यह सन् १२ हि (१०८९ ई) में मरे और खुल्दाबाद या रौज़ा में गाड़े गए। इस भूमिका के लिखने के समय यह जीवित थे क्योंकि अब्दुल हई इनके चार वर्ष पहले सन् १७८२ ई में मर चुके थे। देखो बील की ओरियंटल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी और प्रेम कृत हिस्टोरिक बैकग्राउंड ऑफ़ द पैन्स पृ ४८।

१ सन् १७६८-६९ ई , स १८२५ वि ।

चय (जिसे मीर गुलाम अली आज़ाद ने लिखा था) दिया तथा चार जीवन-वृत्तांत (जो मीर आज़ाद ने लिखे थे) ग्रंथ जोड़ दिए गए हैं।

संपादन कार्य में निम्नलिखित पुस्तकों से सहायता ली थी —

अकबर नामा	शेख़ अबुल्फ़ज़ल मुबारक।
तबक़ाते-अकबरी	ख़्वाजा निज़ामुद्दीन अहमद।
मुंतख़बुत्तवारीख़	शेख़ अब्दुलक़ादिर बदायूनी।
गुलशने इब्राहीमी या फरिश्ता	मुहम्मद क़ासिम।
आलम आरा	सिकंदर बेग, जो फ़ारस के बादशाह शाह अब्बास प्रथम का मुंशी था।
हफ़्त इक़लीम	अमीन अहमद राज़ी।
ज़ुब्दतुत्तवारीख़	नूरुलहक़।
एक़बालनामा	मोतमिद ख़ाँ बख़्शी।
जहाँगीर नामा[१]	जहाँगीर ने अपने राज्यकाल के बारह वर्ष का वृत्तांत स्वयं लिखा था।

---

१. इस पुस्तक में जहाँगीर ने यहीं तक का हाल लिखा है जो दुल हई ख़ाँ ने देखा था। इस सूची में गैरत ख़ाँ के जहाँगीर नामा और कामगार हुसैनी का नाम नहीं लिखा गया है, पर गैरत ख़ाँ के जीवन रेत्र में, जो इसी लेखक ने लिखा है, इस ग्रंथ का उल्लेख है।

१० फ़वीरतुल् ख़वानीन[1]	शेख फ़रीद भक्करी।
११ मख़ज़न-अफ़ग़ानी[2]	किसी ने ख़ानेजहाँ लोदी के लिये लिखा था।
१२. बादशाह नामा	मुल्ला अब्दुलहामिद लाहौरी और मुहम्मद वारिस।
१३ अमल सालेह	मुहम्मद सालेह कम्बू।
१४ वकाए कंधार[3]	
१५. आलमगीरनामा	मुहम्मद काज़िम मुंशी।
१६ मिरातुल् आलम	बख्तावर ख़ाँ ख्वाजासरा।
१७. तारीखे आशाम[4]	
१८. ख़ुलासतुत्तवारीख़	आलमगीर के समय किसी हिंदू[5] ने लिखा।

---

१ शायद यह वही ग्रंथ है जिसका अल्बेल पंचरत्नों ने अपनी भूमिका में शेख मारूफ भक्करी द्वारा नाम कर किया है।

२. नेअमतुल्ला कृत मख़ज़ने अफ़ग़ानी हो सकता है। रा ए १ ११ २११ और इलि डा जि ५ पृ ६७।

३ फ़ायतुल् अख़बार हो सकता है जिसमें कंधार पर शाह की विजय यात्रा का वर्णन है। रा ए १ २६१ बी।

४ इसे फ़त्हे-इबरतिया भी कहते हैं और यह शहाबुद्दीन तालिश की रचना है। रा ए १ २६१ ए।

५ सुजानराय खत्री नाम था और पटियाले का रहनेवाला था। यह पुस्तक सन् १६९५ ई में लिखी गई थी। इलि डा जि ८ पृ ५। प्रो सरकार ने इसका नाम सुजानराय लिखा है वो ठीक है।

१९ तारीखे दिलकुशा	हिंदू[1] कृत जिसमें औरंगजेब के समय की कुछ घटनाओं का वर्णन है।
२० मआसिरे-आलमगीरी	मुस्तैद खाँ मुहम्मद शाकी[2]।
२१ बहादुरशाह नामा	नेअमत अली खाँ।
२२ लुब्बलुबाब	खवाफी खाँ।
२३ तारीखे-मुहम्मद शाही[3]	
२४ फतह	यूसुफ मुहम्मद खाँ[4]।
२५ तजकिरा मजमउल् नफायस[5]	सिराजुद्दीन अली खाँ उपनाम 'आर्जू'।

१. भीमसेन बुरहानपुरी जो दलपत राव बुँदेला का काम करता था। रयू १,२७१। जोनाथन स्कौट ने अंग्रेजी में इसका अनुवाद 'ए जर्नल केप्ट बाई ए बुंदेला आफिसर' के नाम से किया है। दक्षिण का हाल इसमें विस्तृत रूप से लिखा गया है।

२. साकी होना चाहिए। रयू १, २७०। हिंदी में मु० देवीप्रसाद ने इसका अनुवाद आलमगीरनामा के नाम से किया है।

३. खुशहाल चंद कृत नादिरुज्जमानी हो सकता है। रयू १,१२८, इलि० जि० ८, पृ० २०। पर यूसुफ मुहम्मद खाँ कृत 'तारीखे-मुहम्मद शाही' होना अधिक संभव मालूम होता है। इलि० जि० ८, पृ० १०३।

४. यह वही ग्रन्थकार हो सकता है, जिसका इलि० जि० ८, पृ० १०३ में उल्लेख है। या यह दूसरी पुस्तक जिनानुल्-फ़िर्दौस हो (इलि० जि० ८, पृ० ४१३)। रयू० १३८ ए और ३,१०८१ ए देखिए।

५. स्प्रेंजर्स अवध कैटलग १ १३२ देखिए। इसका नाम तज्ञ-

२६ मीरातें वारीत्[1] मुहम्मद शफ़ी उपनाम 'वारिद'।

२७ जहाँ कुशा, तारीखे नादिरशाह[2]

२८–२९ तज़किरे सर्वे आज़ाद और ख़ज़ानए आमर मीर गुलाम अली 'आज़ाद'।

३० मोरातुस्सफ़ा[3] मीर मुहम्मद अली बुरहानपुरी।

३१ तारीखे बंगाल[4]

इस ग्रंथ के पाठकों से आशा है कि यदि वे भ्रम या अशुद्धि पावेंगे तो उसे शुद्ध करने और दोषों को छिपाने का प्रयत्न करेंगे।

यह समझ लेना चाहिए कि पूज्य मृत ग्रन्थकर्ता ने यह नियम बनाया था कि जीवन-चरित्रों का, जो इस ग्रन्थ में संगृहीत हैं, सिलसिला उनके मृत्यु-समय तक रखा जाय, पर जिनका

किरए ख़ज़ाने भी है जिसमें फ़ारसी और उर्दू के कवियों के चरित दिए गए हैं। आज़ाद उर्दू तथा फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि और लेखक थे, अमरोहे के रहने वाले थे और इन्होंने अनेक से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। सन् १०८१ ई में इनकी कलकत्ता में मृत्यु हुई।

१ रयू १ १०५ और इलि जि ८, पृ ४१ देखिए।

सर विलियम जोन्स ने इसका अंग्रेज़ भाषा में अनुवाद किया है।

३ रयू १ ११६। इलि जि ८ पृ १४ का मुहम्मद अली कृत बुर्हानुल फ़ुतूह हो सकता है।

४ रयू १ ३१२ बी। इस सूची में इनायत ख़ाँ के शाहजहाँनामा का नाम नहीं दिया गया है, यद्यपि ग्रन्थ में इसका उल्लेख मिलता है।

मृत्युकाल नहीं ज्ञात हो सका, उनके वृत्तान्त का जिस वर्ष तक पता चला, उसी को मृत्यु के वर्ष के बदले मे मान लिया गया।

ईश्वर को धन्यवाद है कि यह मनोहर ग्रन्थ सन् ११९४ हि (सन् १७८० ई०) में पूर्ण हो गया। इसकी तारीख यों है—

शैरों का अर्थ

लेखनी ने लेख रूपी वर्षा ऋतु से इस बाग़ को ऐसा सजा कि वह विद्वानों को भला और बुद्धिमानो को सुखद हुआ ॥ १ ॥

लेखक ने लेखनी और स्याही से इस ग्रन्थ को पैदा : अरम[1] का गर्व और स्वर्ग की स्पृहा तोड़ दी ॥ २ ॥

ग्रन्थ-पूर्ति का वर्ष[2] बुद्धिमानों ने यो लिखा है—'वाहे अर्द -मुसाहिब मआसिरुल् उमरा' (वाह मआसिरुल् उमरा के भार विज्ञ मित्र अर्थात् लेखक) ॥ ३ ॥

---

१. पृथ्वी पर का स्वर्ग जो अरब देश का एक कल्पित बाग़

२. ७+५+१०+१+४+१०+२+४०+६०+१+
२+४०+१+५००+१००+५+२०+१+ ४०+२००+१
सन् ११९४ हि०=सन् १७८० ई०=सं० १८३७ वि०।

भूमिका जो ग्रंथकर्ता ने स्वयं आरंभ में लिखी थी

समझने की अवस्था को पहुँचने पर मुझे पठन-पाठन के अतिरिक्त इतिहास और जीवनचरित्र का पढ़ना ही अच्छा लगता था। जब कभी समय मिलता था, तब मैं प्राचीन राजाओं के शिक्षाप्रद चरित्र पढ़ता और वयस्थ सरदारों की जीवनियों से शिक्षा प्राप्त करता था। कभी विद्वानों और महात्माओं के उपदेशों से मेरी आँखें खुल जाती थीं और कभी अच्छी कविता सुनकर मेरा चित्त प्रसन्न हो जाता था। यहाँ तक कि संशयास्पद संसार के पल, मास और वर्ष (जिनसे अवस्था बढ़ती है) बाल्यत्व में बीत चले और जीविकोपार्जन में मेरे दिन बीतने लगे। इसके अनन्तर ऐश्वर्य और सुख में पड़ कर मैं अन्य कामों में लग गया और पुस्तकों के प्रति मेरा प्रेम[1] नहीं रह गया। पर कभी कभी लिखने का विचार उठता था कि एक नई भेंट वर्तमान संसार को दूँ, पर समय कह रहा था—

---

१ इस प्रति में 'मज़ाक' और अन्य दो प्रतियों में 'विलास' है। दोनों का तात्पर्य एक ही है।

शेर का अर्थ

विचार आकाश पर इतने ऊँचे चला गया है और हृदय सौन्दर्य[1] के पाँव के नीचे पड़ा है। क्या कहें, विचार कहाँ और हृदय कहाँ!

एकाएक भाग्यचक्र और समय के अनोखेपन से मैं सन् ११५५ हि० (१७४२ ई०, स० १७९९ वि०) में एकान्तवासी हो गया। प्रकट में सहस्रों शोक और संताप पैदा हो गए, पर मेरा हृदय सन्तोष और शान्ति से पूर्ण था, इसलिए मैंने इस अनीप्सित छुट्टी को लाभ ही समझा। वही पुरानी इच्छा फिर हृदय में प्रबल हो उठी और प्राचीन विचार में नए फूल आने लगे। उस विचार को दुहराने पर ग्रन्थ-रचना से मन हट गया, क्योंकि हर एक शैली और ढंग पर (जो समझ में आता है) अग्रगामियों ने पुस्तकें लिखी थीं। अन्य विषयों पर विचारशील महात्माओं और प्रसिद्ध विद्वानों ने मौलिक या अनुवाद रूप में और संक्षेपत. या विस्तार-

---

१ फ़ारसी लिपि में मेहबुताँ और मुहबुताँ एक ही प्रकार से लिखा जाता है। पहिले का अर्थ सुन्दरियों की कृपा है। दूसरा वही दक्षिणी सिक्का है जिसपर बुत अर्थात् देवता या मन्दिर बना रहता है। इसे बुत अशर्फ़ी भी कहते हैं। इससे तात्पर्य यही है कि 'मैं धन-लिप्सा में पड़ा हुआ हूँ'। सैयद इंशाअल्लाह ख़ाँ 'इंशा' भी एक शेर में कुछ ऐसा ही भाव लाए हैं, जो इस प्रकार है—

तसौव्वर अर्श पर है और सर है पाए साक़ी पर।
ग़रज़ कुछ और धुन में इस घड़ी मैख़्वार बैठे हैं।

पूर्वक लिखा ही था, इस कारण मेरा हृदय उधर नहीं झुका और मैंने उन्हें साधारण कार्य समझ लिया। एकाएक मेरे मन में यह विचार उठा कि यदि अकबर बादशाह के राज्यारम्भ से (जो वर्ष 'नसरते अकबर' से निकलता है) वर्तमान समय तक के बड़े सरदारों और वैभवशाली राजाओं के जीवनचरित्र (जिनमें से कुछ ने अपने अच्छे समय में कर्मबल और सुनीति से शुभ और बड़े कार्य करके सुप्रसिद्धि पाई थी और कुछ ने ऐश्वर्य, धन और प्रभुता के घमंड में द्रोह करके दुःख और कष्ट उठाया था) वर्णानुक्रम से लिखे जावें तो अत्युत्तम हो। इन चरित्रों में अपूर्व वृत्तान्त, आश्चर्यजनक आख्यायिकाओं, अच्छे बड़े कार्यों, कौशलपूर्ण चढ़ाइयों तथा साहस और वीरता के उदाहरणों का बयान किया जाय। इसमें हिन्दुस्तान के तैमूरी वंश के प्रसिद्ध बादशाहों के दो सौ वर्ष के बीच की घटनाओं का वृत्तांत और अन्य प्राचीन वंशों का वर्णन रहेगा, जिससे यह हर प्रकार से नए ढंग पर तैयार होगी और दूसरों की पुस्तकों से अधिक सम्मान पावेगी। मनोऽनुकूल हृदय को इस विचित्र क्रम से बहुत संतोष हुआ और इच्छा का मुख प्रफुल्लित हो गया।

इसी समय शेख मारूफ़ भक्करी कृत ज़खीरतुल् ख़वानीन[1] नामक पुस्तक मेरे देखने में आई उसमें भी सरदारों के वर्णन थे और इस ग्रंथ में उसका भी आशय ले लिया गया है, पर वह

---

[1] अन्य प्रति में ख़वातीन भी है। अम्बुलहर्द दूर्ग की पुस्तक-सूची में इसकी संख्या ८८ है।

सुनी सुनाई बातों के आधार पर लिखी गई है जो इस विषय के विद्वानो के विचार के विरुद्ध है। यह ग्रंथ विश्वसनीय पुस्तको के आधार पर बना है, जिसकी मौलिकता और उत्तमता प्रकट है। अकबर बादशाह के समय (जब मन्सबो को सीमा पाँच-हजारी तक थी और राज्य के अत मे केवल दो तीन सरदारो को सात-हजारी मन्सब मिला था) बादशाही नौकरी बड़ी प्रतिष्ठा की समझी जाती थी और मन्सब विश्वास के होते थे, इसलिए बहुत से छोटे छोटे मन्सबवाले भी ऐश्वर्य और प्रभाव रखते थे, जिस कारण उस समय के पाँच सदी तक के सरदारों का वर्णन इस ग्रथ में आया है। शाहजहाँ और औरंगजेब के राज्य के मध्य काल तक (जब कि मन्सब और पदवियाँ बहुत बढ़ गई थीं) के तीन हजारो और झंडा तथा डंका प्राप्त सरदारो ही का वृत्तान्त इस पुस्तक में संकलित किया गया है। इसके अनंतर दक्षिण की घटनापूर्ण चढ़ाइयों के कारण नौकरी के बढ़ने और देश की आय घटने से वह बात नहीं रह गई और धीरे धीरे इस (गड़बड़ी) का विस्तार बढ़ता ही गया, इसलिए उस अशुभ और अशांत समय के (जब कि बहुत से सात-हजारी समय बिगड़ने से मारे मारे फिर रहे थे और हर एक ओर बहुत से छ:हजारी और पाँच-हजारी थप्पड़ खानेवाले छः पाँच के फेर में पड़े हुए थे) पाँच और सात ही सरदारों पर सतोष किया गया। बहुत से पूर्वज (जो अज्ञात रह गए थे) अपनी प्रसिद्ध संतानो की ख्याति से सदा के लिये अमर हो गए और बहुतेरे पुत्र तथा पौत्र गण (जो

अयोग्यता के कारण ऊँचे पद तक नहीं पहुँच) अपने सत्पुत्रत्व पूर्वजों के वर्णन से विख्यात हुए। योग्य मन्सब का बिना विचार किए हुए पहुतों का चरित्र उनके अच्छे गुणों के कारण भी दिया गया है। बहुत से चरित्रों का संग्रह होने के कारण ही इस ग्रंथ का नाम मआसिरुल् उमरा[1] रखा गया है।

तैमूरी सुलतानों के वंश में प्रत्येक स्वर्गवासी पिता और शुद्ध माता के लिये पदवियाँ नियुक्त की जाती थीं (जैसे साहिब क़िर्रां[2] से अमीर तैमूर अर्थ निकलता है, फ़िर्दौस-मकानी[3] से ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर बादशाह; जिन्नत आशियानी[4] से नसीरुद्दीन मुहम्मद हुमायूँ; आदि पदवी अर्श-आशियानी[5] से जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर; जन्नत-मकानी से नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर; फ़िर्दौस-आशियानी और आला हज़रत से शहाबुद्दीन मुहम्मद साहबक़िराने सानी शाहजहाँ; खुल्दमकाँ[6] से मुहीउद्दीन

---

१ मआसिरुल् उमरा—[अ मआसिर = अच्छे कार्य + उमरा = सरदार गण] सरदारों के चरित्र।

२ क़िर्रां का अर्थ संयोग है और जन्म के समय मुश्तरी और जुहल नामक ग्रहों का संयोग होने से यह नामकरण होता है।

३ फ़िर्दौस [अ] = स्वर्ग। मकानी = जिसका घर है, घर वाला।

४ जिन्नत [अ] = स्वर्ग। आशियानी [फ़ा] = घोंसला है जिसका; अर्थात् स्वर्गवासी।

५. अर्श के छैमे के सिंहासन को अर्श कहते हैं।

६ खुल्द [अ] = स्वर्ग। मकाँ [अ] = स्थान घर।

मुहम्मद औरंगजेब आलमगीर गाजी, खुल्दमंजिल[1] से कुतुबुद्दीन मुहम्मद मुअज्जम शाहे आलम, प्रसिद्ध नाम बहादुर शाह; मरियम-मकानी से अकबर की माता हमीदःबानू बेगम, मुमताज-महल[2] से औरंगजेब की माता अर्जुमंद बानू बेगम और बेगम साहिब से उन्हीं की बड़ी बहिन जहाँआरा बेगम समझी जाती हैं। इसलिये इस ग्रंथ में आवश्यकता पड़ने पर इन्हीं संक्षिप्त पदवियों से काम लिया गया है। अन्य बादशाहों के नाम ही लिखे गए हैं, पर कहीं कहीं मुहम्मद शाह बादशाह को फिर्दौस आरामगाह[3] की पदवी से भी लिखा गया है।

मीर गुलामअली आजाद लिखित भूमिका

(जिसे उन्होंने आरंभ में कुछ अंशों के मिलने पर लिखा था)

इस लेख के ज्ञात हो जाने और इसमें मृत ग्रंथकार (शाह-नवाज खाँ) की जीवनी भी सम्मिलित रहने से इन पंक्तियों के लेखक (ग्रंथकार के पुत्र अब्दुलहई) ने इसे इस ग्रथ के साथ रहने दिया[4]।

सम्राटों के उस सम्राट् की स्तुति करना है जिसने राज्यसिंहा-

---

१. मंजिल [अ०]=स्थान, पड़ाव, घर।

२. मुमताज [अ०]=प्रतिष्ठित, सम्मानित। महल [अ०]= राजाओं का वासस्थान, बड़ा घर।

३. आरामगाह [फा०]=सुख करने का घर या स्थान।

४. द्वितीय संस्करण के संपादक अब्दुलहई की सूचना।

सनाखोनों का संसार-पालन का उच्च पद दिया है और जिसने सिंहासन की शोभा बढ़ानेवाले सरदारों को इस प्रभावशाली समूह की सहायता करने का कार्य देने की कृपा की है। प्रशंसा और प्रणाम उस संसाररक्षक को है, जिसने उम्मत[1] के कार्य का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया है और जिसने ईश्वरी कृपा से प्राप्त पैगंबरी के कारण मनुष्यों तथा जिन्नों के संसारों पर अधिकार कर लिया है। मुहम्मद साहब के अच्छे स्वभाववाले वंशधरों को, जो प्रतिष्ठित व्यक्ति[2] हैं, और उस पवित्र वंश के साथियों को, जो अच्छे मंत्री हैं, अनेक प्रणाम हैं।

इसके अनन्तर यह कहना उचित है कि यह ग्रंथ सम्मान के योग्य और अद्वितीय है। ईश्वरी कृपाओं के पात्र, मानुषिक गुणों के आकर और अद्वितीय सरदार नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज खाँ—ईश्वर सदा उन पर कृपा रखे—की यह रचना है, जिन्होंने इसे अपनी मायाविनी लेखनी से लिखा था और पाँच वर्ष तक इस कार्य में अपना मस्तिष्क लगाया था। इतिहास और पुरातत्व के जाननेवाले ही समझ सकते हैं कि ग्रन्थकर्ता ने इसके लिये

---

१ एक ही मत के माननेवालों के समूह को उम्मत कहते हैं और मतप्रवर्तक को पैगंबर कहते हैं।

२. यहाँ उन खलीफाओं से तात्पर्य है जो मुहम्मद की मृत्यु के बाद मुसलमानी धर्म के प्रधान हुए थे। इनमें कई उन्हीं के वंशज थे और कई उनके मित्रों में से चुने गए थे। इसी विचार को लेकर मुसलमान दल दो प्रधान भागों में विभक्त हुए, जो सुन्नी और शीआ कहलाए।

कितना परिश्रम किया होगा और सत्य की खोज मे इन्हे कितन. प्रयत्न करना पड़ा होगा।

पर इसकी लिखित प्रति बारह वर्ष तक भूल के आले पर पड़ी रही और यह सुन्दर मोर पिजड़े रूपी कुंज में नाचता रहा। समय न मिला कि अंधकार से निकल कर यह ग्रंथ प्रकाशित होता और जाड़े की बड़ी रात्रि को ससार प्रकाशमान करनेवाला उषा-काल प्राप्त होता। यहाँ तक हुआ कि ग्रथकर्त्ता मारे गए, उनकी सुबुद्धि के फल अनाथ हो गए, उनका घर लुट गया और सारा पुस्त-कालय एक ही बार में नष्ट भ्रष्ट हो गया। फ़क़ीर गुलाम अली उपनाम आज़ाद हुसैनी बिलग्रामी (जिसकी ग्रथकर्ता के साथ बड़ी मित्रता थी) ने इस अपूर्व ग्रन्थ के खो जाने पर बहुत दुःख उठाया और उसकी खोज मे बहुत दिनों तक चारा ओर दौड़ता रहा, पर कुछ फल न निकला। उस समय तक यह भी ज्ञात न हो सका कि वह ग्रन्थ कहाँ गया और किस के हाथ में पड़ा।

पूज्य ग्रन्थकर्ता के मारे जाने के पूरे एक वर्ष बाद खोजते हुए हम ठीक स्थान पर पहुँच गए और खोए हुए यूसुफ़ का मुख दिखलाई दिया। बड़ी प्रसन्नता हुई और उसी समय क्रमानुसार लगाने और एकत्र करने के लिये आस्तीन चढ़ाई और उन बिखरे हुए पत्रों को ठीक किया। जब यह पुस्तक ग्रथकर्ता के पुस्तकालय से हटाई जाकर दूसरे स्थान पर गई, तब कुप्रबंध से उसके सब अंश एक स्थान पर न रहे। उन पन्नों को पतझड़ के पत्तों के समान एकत्र किया। बहुत परिश्रम के अनंतर सब पत्रे एकत्र हुए,

पर मुहम्मद फर्रुखसियर बादशाह के वज़ीर कुतुबुल् मुल्क अब्दुल्ला खाँ का जीवनवृत्तांत (जो ग्रन्थकर्ता ने लिखा था) नहीं प्राप्त हुआ और पूर्वोक्त कुतुबुल् मुल्क के भाई अमीरुल् उमरा सैयद हुसेन अली खाँ बारहा का वृत्तांत भी आरम्भ से अपूर्ण मिला। नवाब आसफजाह[1] और उसके पुत्र नवाब निज़ामुद्दौला शहीद के चरित्र ग्रन्थकर्ता ने स्वयं नहीं लिखे थे, जिसके लिये दैव ने उन्हें समय ही नहीं दिया। इन चारों अमीरों का प्रमुत्व सूर्य के समान प्रकट है और इस बड़े ग्रंथ में इन चरित्रों का होना अत्यावश्यक है। दैवात् फ़क़ीर ने इन चारों चरित्रों को स्वरचित पुस्तक सर्वआज़ाद में लिखा था। कुतुबुल्मुल्क, नवाब आसफजाह और नवाब निज़ामुद्दौला शहीद के चरित्रों को सर्व आज़ाद से ले लिया। अमीरुल् उमरा सैयद हुसेन अली के चरित्र का जो अंश हाथ आया था, वह वैसा ही देकर उसके आरंभ की पूर्ति सर्वआज़ाद से कर दी। कुछ अन्य आवश्यक चरित्र भी इन पन्नों में नहीं थे, जैसे अकबरनामा के रचयिता शेख अबुलफ़ज़्ल[2] की, जिनकी उत्तमता पर टीका करने की आवश्य-

---

१ नवाब आसफजाह के पुत्र ग़ाज़ीउद्दीन और उसके पुत्र इमादुद्दीन के चरित्र भी गुलाम अली कृत ज्ञात होते हैं; क्योंकि वे इसी रूप में खज़ानए आमरः में पाए जाते हैं। यह भी हो सकता है कि गुलाम अली ही ने इस ग्रन्थ से अपनी पुस्तक में उन वृत्तान्तों को ले लिया हो।

२. अबुलफ़ज़्ल का जीवनचरित्र अब्दुलहई खाँ को मिल गया होगा, क्योंकि वह इस ग्रन्थ में दिया गया है और दोनों संस्करणों में है

कता नहीं है और स्वयं ग्रन्थकर्ता ने जिसकी शैली का इस ग्रन्थ मे अनुकरण किया है। शाहजहाँ के प्रधान मंत्री सादुल्ला खाँ की भी जीवनी इसमे नहीं है। ग्रन्थकर्ता ने कई स्थानों पर इन जीवनियो का उल्लेख किया है, पर वे मिली नहीं। मालूम होता है कि ग्रन्थकर्ता ने इन्हें लिखा था, पर घटना रूपी आँधी के झोंके मे वे नष्ट हो गईं।

ग्रन्थकर्ता ने कई चरित्रो को अपूर्ण भी छोड़ दिया है। अस्तु, जो हो गया सो हो गया, और जो है वह है। अब किसमे इतनी मानसिक शक्ति है कि उन्हें तैयार कर पूरा करे। ग्रन्थकर्ता ने ग्रन्थ की भूमिका स्वयं लिखी थी, पर स्तुति और प्रशंसा रह गई थी, इसलिये फ़क़ीर ने स्तुति के कुछ वाक्य आदि मे लिख कर इसमे जोड़ दिए। अब पहले ग्रन्थकर्ता का चरित्र दिया जाता है जिसके अनंतर मूल ग्रन्थ का आरंभ होता है। शुभमस्तु।

किसी ने भी उसे अपनी कृति होना नहीं लिखा है। सादुल्ला खाँ का जीवन-चरित्र अब्दुलहई ने लिख कर इस ग्रन्थ में लगा दिया है।

नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज़ खाँ शहीद खवाफी औरंगाबादी

इनका असली नाम मीर अब्दुर्रज्जाक था और यह ख्वाफ़[1] के सैयद सरदारों के वंश के थे। इनके पूर्वज मीर कमालुद्दीन[2] अकबर बादशाह के समय ख्वाफ से भारत आए और बादशाही अच्छी नौकरी पर नियुक्त हो गए। इनके पुत्र मीरक हुसेन जहाँगीर के समय अच्छे पद पर थे और पौत्र मीरक मुईनुद्दीन को भी अमानत खाँ की पदवी के साथ अच्छा पद मिला था। औरंगजेब के समय यह लाहौर, मुलतान, काबुल और काश्मीर की दीवानी के पद पर नियत हुए थे और (जब शाहजादा शाह आलम मुलतान का सूबेदार हुआ तब) दीवानी के साथ ही नायब सूबेदारी भी अमानत खाँ को मिली थी। उसने अपनी पदवी के नामानुसार बड़ी सचाई से कार्य किया।

---

१ मातृवंश के सम्बन्ध से।

२ यद्यपि आईने अकबरी में इस नाम के किसी पदाधिकारी का उल्लेख नहीं है पर अकबरनामा के भाग ३ में कई स्थानों पर नाम आया है। मआसिरुल् उमरा में अमानत खाँ की जो जीवनी मिली है उससे ज्ञात होता है कि मीर कमालुद्दीन के पिता मीर हसन अपने पिता मीर

दीवानी के समय इनके नाम शाही आज्ञापत्र आया कि अमुक मनुष्य को दरबार में भेज दो। अमानत खाँ ने उसे बुलाकर उससे दरबार में जाने के लिये कहा। उसने कहा कि यदि आप मेरी प्रतिष्ठा के उत्तरदायी बनें तो मैं चला जाऊँ। अमानत खाँ ने उत्तर दिया कि मैं ऐसे मनुष्य पर, जिसने पिता और भाइयों के साथ ऐसा ऐसा बर्ताव किया है (अर्थात् औरंगजेब), विश्वास ही नहीं रखता, तब उत्तरदायी कैसे हो सकता हूँ ? जासूसों ने यह समाचार बादशाह तक पहुँचाया, जिससे बादशाह ने क्रुद्ध होकर इसका मन्सब, जागीर और खालसा की दीवानी सब छीन ली। अमानत खाँ बहुत दिनों तक बेकाम रहे, पर अन्त में बादशाह जब समझ गए कि यह मनुष्य ईश्वर से डरता है और मुझे कुछ नहीं समझता, तब इस गुण से इनपर प्रसन्न होकर औरंगजेब ने फिर कृपा की और इनका मन्सब, जागीर तथा दीवानी का पद बहाल कर दिया। वह इनके मनुष्यत्व को भी समझ गए थे कि हर प्रकार के कार्यों में इनका दृढ़ विश्वास किया जा सकता है। जब बादशाह हिंदुस्तान (अर्थात् उत्तरी भारत) में थे और दक्षिण की सूबेदारी पर खानेजहाँ बहादुर कोकल्ताश नियत

हुसेन से बिगड़ कर हिरात से खवाफ़ आकर बस गए थे और कमालुद्दीन अपने पुत्र मीरक हुसेन के साथ भारत आकर अपने मामा शम्सुद्दीन खवाफ़ी के यहाँ ठहरे थे, जिनका वर्णन आईन के पृ० ४४५ में दिया गया है ग्रन्थकर्ता और आईने अकबरी मीर कमाल की नौकरी के बारे में कुछ नहीं कहते, पर गुलाम अली के कथन का मिस्टर ब्लोकमैन ने उसी पृष्ठ की पादटिप्पणी में समर्थन किया है।

थे, तब वहाँ की दीवानी, बख्शीगीरी और वाक़ेआ-नवीसी अर्थात् घटना-लेखन का कार्य अमानत खाँ को मिला था। इन्होंने इतना से दीवानी की और शाहजहाँ बहुधा इनके गृह पर जाते थे। यह औरंगाबाद के नाज़िम भी नियुक्त किए गए थे।

इनके चार पुत्रों ने प्रसिद्धि प्राप्त की थी। पहले मीर अब्दुल् क़ादिर दियानत खाँ और दूसरे मीर हुसेन अमानत खाँ थे, जिनमें से एक को दीवाने-तन और दूसरे को दीवान-खालसा का पद मिला था। अमानत खाँ को सूरत बंदर की अध्यक्षता भी मिली थी, जिसकी मृत्यु पर यह पद दियानत खाँ को दिया गया था। यह सूरत की अध्यक्षता पाने के पहिले दक्षिण की दीवानी पर नियुक्त हुए थे और उसके बाद फिर से दूसरी बार दक्षिण की दीवानी पर नियुक्त हुए। तीसरे मीर अब्दुर्रहमान वज़ारत खाँ उपनाम गिरामी मालवा और बीजापुर के दीवान नियुक्त हुए थे। यह अच्छा शैर कहते थे, जो एक दीवान में संगृहीत हुए हैं। इनमें से कुछ उदाहरण स्वरूप यहाँ दिए जाते हैं—

शैरों का अर्थ

प्रेमोन्मत्त यात्रियों का मुखिया जब तक यात्रा की साइत निकलवाता है, तब तक हमारा दीवाना जगत के किनारे पर (पहुँचकर) अपनी कमर बाँधता है।

कहाँ फूलों के फूलने का समय आ गया और कहाँ मैंने ऐसा अनुचित व्रत धारण कर लिया।

मैंने सुराही और प्याले पर कैसा अत्याचार किया ?

मैंने पहिले उद्दंडता के कारण अपने मित्रों का साथ नहीं दिया और अब अकेला ही प्रेम वन की सैर कर रहा हूँ, अफसोस !

चौथे पुत्र काज़िम खाँ मुलतान के दीवान थे। इन्हीं के पुत्र मीर हसन अली नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज़ खाँ के पिता थे। माता की ओर से समसामुद्दौला मीर हुसेन अमानत खाँ के वंशधर थे जिनका उल्लेख हो चुका है। समसामुद्दौला के पिता मीर हसन अली बीस[1] वर्ष की अवस्था मे मर गए और वे प्रसिद्धि प्राप्त न कर सके।

यह नहीं छिपा है कि मीरक मुईनुद्दीन अमानत खाँ के बहुत सतानें थीं और औरंगाबाद का एक बड़ा महल्ला (कुतुबपुरा) उसी वंशवालो से बसा हुआ है। दक्षिण को दीवानी और अन्य अच्छे पद इस वश की संपत्ति से हो गए थे। बहुत लोगों को इस वंश से खैरात मिलती रहती थी। मीर अब्दुलक़ादिर दिआनत खाँ के बाद दक्षिण की दीवानी इनके पुत्र अलीनक़ी खाँ को मिली थी और उनकी पदवी—दियानत खाँ—भी इन्हें प्राप्त हुई थी। इनकी मृत्यु पर यह भारी पद इनके पुत्र मीरक मुहम्मद तक़ी को मिला जिन्होंने वज़ारत खाँ की पदवी पाई। इनको मृत्यु पर इनके भाई मीर मुहम्मद हुसेन खाँ उस पद पर नियुक्त हुए। आसफजाह और उनके समय के बाद भी इन्होंने विश्वसनीय पदों पर ही जीवन

---

१ यह लाहौर में मरे थे और इनके पुत्र समसामुद्दौला का जन्म इनकी मृत्यु के अनतर हुआ था। मआसिरुल्उमरा जि० ३, पृ० ७२१।

व्यतीत किया था तथा यमीनुद्दौला मन्सूर जंग की पदवी पाई थी। यह और नवाब समसामुद्दौला एक ही दिन मारे गए थे।

अब नवाब समसामुद्दौला का वर्णन लिखा जाता है। इस अद्वितीय अमीर के गुण इतने हैं कि लेखनी उन्हें लिख नहीं सकती। वस्तुतः न संसार ने इतने गुणों से संपन्न कोई अमीर देखा होगा और न वृद्ध आकाश ही ने ऐसे प्रभावशाली सरदार को अपने तेज रूपी छाया में पाला होगा। जन्म ही से इनके ललाट पर योग्यता चमक रही थी और भविष्य में प्रस्फुटित होनेवाले गुण भी इनके कार्यों से प्रकट होने लगे थे। इनका जन्म २९ रमज़ान[1] सन् ११११ हि० को लाहौर में हुआ था। इनके बापदादे अधिकतर औरंगाबाद में रहते थे, इससे यह यौवन काल ही में वहाँ चले गए[2]। पहले पहल आसफ़जाह के दरबार में इन्हें मन्सब मिला और कुछ दिनों के अनंतर बरार प्रांत में बादशाह की ओर से दीवान बनाए गए। बहुत दिनों तक यह इस पद पर रहे और ऐसे अच्छे प्रकार से काम किया कि नवाब आसफ़-

---

१ २८ रमज़ान ६ मार्च सन् १० ई० को पिता की मृत्यु के पन्द्रह दिन बाद इनका जन्म हुआ था। मआ० जि० १ पृ० ७११।

२ मआ० जि० १ पृ० ६११ में लिखा है कि यह सन् ११२० हि० (सन् १७१४ ई०) में लाहौर ही में थे जहाँ इन्होंने इमामुद्दीन को देखा था। उस समय इनकी अवस्था पन्द्रह वर्ष की थी और उसी वर्ष ये दक्षिण गए। मआसिरुल्उमरा जि० १ पृ० ७११ में लिखा है कि यह उमेर हुसेन अली ख़ाँ के साथ दक्षिण गए थे जो सन् १७१५ ई० की घटना है।

जाह ने एक बार कहा था कि मीर अब्दुर्रज्जाक का कार्य साफ होता है[1]। जब दिल्ली के सम्राट् मुहम्मद शाह ने सन् ११५० हि० में नवाब आसफजाह को अपने यहाँ बुलाया और वह अपने पुत्र निजामुद्दौला नासिरजंग को दक्षिण में अपने प्रतिनिधि स्वरूप छोड़कर दिल्ली चले गए, तब समसामुद्दौला पुत्र के साथ हो गए। नवाब निजामुद्दौला ने उन्हें अपनी सरकार की दीवानी और बादशाही दीवानी दोनों सौंप दी। इन्होंने भी दोनों पदों के कार्य बड़ी योग्यता और सफाई से किए।

जब नवाब आसफजाह हिंदुस्तान से दक्षिण को लौटे, तब षड्यन्त्रकारियों ने नवाब निजामुद्दौला को पूज्य पिता के विरुद्ध उभाड़ा, जिसमें समसामुद्दौला की सम्मति नहीं थी, प्रत्युत् इन्होंने इसके प्रतिकूल उन्हें पिता से मिलने की राय दी। पर षड्यंत्र रचनेवालों के झुंड चारों ओर से ऐसे उमड़ पड़े थे कि इनकी कुछ न चली। पिता-पुत्र के युद्ध के दिन समसामुद्दौला उस हाथी पर बैठे थे, जो नवाब निजामुद्दौला के हाथी के पीछे था। जब नवाब निजामुद्दौला की सेना परास्त हो गई और उनके हाथी को आसफ़जाही सेना ने घेर लिया, तब सादुल्ला खाँ वजीर के पुत्र

सन् १७२२ ई० में यह बरार के दीवान बनाए गए थे। इसी जिल्द के पृ० ७२८ में लिखा है कि इन्होंने छ: वर्ष एकांतवास किया था। पृ० ७४० में लिखा है कि यह सन् १७२४ ई० में निजामुल्मुल्क के साथ मुबारिज खाँ की चढ़ाई पर गए थे।

१ मआ० जि० ३, पृ० ७२२।

इस्लाम खाँ[1] न (जो समसामुद्दौला के मित्र थे) इनसे कहा कि 'निज़ामुद्दौला तो अपने पिता के घर जा रहे हैं, पर तुम कहाँ जा रहे हो ? जहाँ तक चाहिए, वहाँ तक मित्रता निबाह चुके। अब इस गड़बड़ी से दूर होना चाहिए।' यह सुनकर नवाब समसामुद्दौला हाथी से उतर पड़े और उस झगड़े से अलग हो गए।

कुछ दिनों तक यह नवाब आसफ़जाह के कोपभाजन रहे और कुछ समय तक एकांत वास किया[2]। यही समय मआसिरुल् उमरा के लिखने में लगाया गया था। सन् १७४७ ई० में आसफ़-जाह न अपने राजत्व काल के अंत में इन्हें क्षमा करके पहिले की तरह इनको बरार का दीवान बना दिया। इसके बाद ही आसफ़-जाह की मृत्यु[3] हो गई और नवाब निज़ामुद्दौला गद्दी पर बैठे।

---

१ मआ० जि० २ पृ० ५११। यह ताहव्वर खाँ मआसिरों के अमीर मालूम होते हैं।

२. मआ० उमरा जि० १ पृ० १८ में लिखा है कि यह उन दिनों मुबारिज़ खाँ के पद में आकर रहते थे। यह सन् ११६४ हि० (सन् १७५१ ई०) में मरे। इसी जिल्द के पृ० ७०१ में इनकी जीवनी दी हुई है। पृ० ७६१ में लिखा है कि मुबारिज़ खाँ के ही मसल से यह दक्षिण में रह गए थे जिसका तात्पर्य यही मालूम होता है कि उसी के पक्ष में इन्होंने विवाह किया था। इसका समर्थन यों भी होता है कि पृ० ७२२ में यह लिखते भी हैं कि विवाह कर लिया था, इसी दक्षिण ही में रह गए।

३ सन् ११६१ हि० २१ मई सन् १७४८ ई० को इनकी मृत्यु हुई। (बील्स ओरिएंटल बायोग्रैफ़िकल डिक्शनरी)

इन्होंने नवाब समसामुद्दौला को बुलाकर पहिले की तरह अपना दीवान बनाया। उन्होंने भी दीवानी का कार्य (जो कि दक्षिण के छः सूबों का कार्य था) सफलतापूर्वक किया। जब निजामुद्दौला हिन्दुस्तान के बादशाह अहमदशाह के बुलाने पर दिल्ली चले, तब समसामुद्दौला को दक्षिण में अपना प्रतिनिधि बनाकर छोड़ गए और जाते समय अपनी अँगूठी देकर कहा था कि यह मुहर सुलेमानी है, इसे अपने पास रखो। पर नवाब नर्मदा नदी तक पहुँचे थे कि बादशाही आज्ञानुसार उन्हें फिर दक्षिण लौट जाना पड़ा। जब नवाब निजामुद्दौला की सेना अर्काट पहुँची और उसने मुजफ्फरजंग[१] पर विजय पाई, तब नवाब समसामुद्दौला ने निजामुद्दौला को बहुत समझाया कि अब इस प्रांत में ठहरना नीतिसंगत नहीं है और अनवरुद्दीन खाँ शहामतजंग गोपामयी के पुत्र मुहम्मद अली खाँ[२] को अंग्रेज फिरंगियों के साथ यहाँ छोड़ना चाहिए, जिसमें वे फूलफेरी के फरासीसी ईसाइय. को दंड दें। पर नवाब निजामुद्दौला ने इन बातो पर ध्यान नहीं दिया और

---

१. आसफ़जाह निज़ामुल्‌मुल्क के नाती और निज़ामुद्दौला के भाजे थे। इनका नाम हिदायतखाँ मुहीउद्दीन था। (विल्क्स) २६ रबीउल्‌अव्वल सन् ११६३ हि० (२४ मार्च १७५० ई०) को युद्ध हुआ था। (इलि० डाउ० जि० ८, पृ० ३६१)

२. नवाब अनवरुद्दीन खाँ मुज़फ्फरजग से युद्ध कर मारा गया था, जिसके अनन्तर निज़ामुद्दौला ने चढ़ाई कर मुजफ्फरजग को परास्त किया। अंग्रेज़ों ने इसी के पुत्र मुहम्मद अली खाँ का पक्ष लिया था।

कुछ अदूरदर्शियों ने (जो अपने स्वार्थ के लिये वहाँ ठहरना चाहते थे और अपने लाभ के लिये राज्य-प्रबन्ध की ओर दृष्टि न डालते थे) नवाब को वहाँ रहने पर बाध्य किया जिससे जो होना था, सो हुआ[1] ।

नवाब निजामुद्दौला के मारे जाने पर मुजफ्फर जंग नवाब हुए और वहाँ से लौटे, पर कड़प्पा पहुँच कर वह भी मारे गए[2] । तब नवाब आसफजाह के पुत्र नवाब सलाबत जंग अमीरुलमुमालिक को गद्दी मिली और वे कड़प्पा से कर्नोल आए । नवाब समसामुद्दौला यहाँ तक सेना के साथ थे, पर कर्नोल से अलग होकर जल्दी ही औरंगाबाद पहुँचे । इस जीवन-वृत्तांत का लेखक भी संयोग से नवाब समसामुद्दौला के साथ औरंगाबाद आया ।

---

१ फ्रान्सीसियों ने कर्नाटक के हिम्मत खाँ आदि अफगान सरदारों को जो निजामुद्दौला की ओर से थे मिला लिया और उनकी सहायता से १६ मुहर्रम ११६४ हि (१६ नवम्बर सन् १७५० ई) को रात्रि में निजामुद्दौला पर एकाएक आक्रमण कर दिया । (इलि डा हि भा ८ पृ ३९१) निजामुद्दौला को हाथी से भोलेभाव पक्षपाती कड़प्पा के नवाब ने गोली से मार डाला । मैलेसन्स हिस्ट्री ऑफ द फ्रेंच इन इण्डिया, पृ २६६ ।

२. जिन अफगानों की सहायता से मुजफ्फरजंग निजाम हुए थे, उन्हीं से कुछ के साथ वह पहले पौंडिचेरी गए और वहाँ के फ्रेंच गवर्नर डूप्ले से भेंट कर तथा कुछ फ्रेंच सेना साथ लेकर कर्नोल होते हुए कड़प्पा पहुँचे । यहीं इन अफगानों से इनसे भी झगड़ा हो गया और अंत में युद्ध की तैयारी हुई । १७ रबीउल् अव्वल ११६४ हि को हिम्मतखाँ आदि अफगान मारे

समसामुद्दौला शहर में पहुँच कर कुछ दिन घर ही पर रहे और ९ रज्जब सन् ११६५ हि० को नवाब अमीरुलूमुमालिक से मिलने हैदराबाद गए और मिलने के अनन्तर उन्होंने हैदराबाद की सूबेदारी पाई। कुछ समय के बाद सूबेदारी से अलग होकर औरंगाबाद आए और एकांत में रहने लगे। जब नवाब अमीरुलूमुमालिक औरंगाबाद आए, तब १४ सफ़र सन् ११६८ हि० को उन्होंने नवाब समसामुद्दौला को प्रधान मंत्री का पद दिया और सातहज़ारी, ७००० सवार का मन्सब तथा समसामुद्दौला की पदवी भी दी। चार वर्ष तक यह इस पद पर रहे और नीति तथा बुद्धि से प्रत्येक कार्य को उन्नति दी। बे-सामानी पर भी ऐसा कार्य किया कि बुद्धिमान भी चकित हो गए। उस समय (जब यह प्रधान मंत्री बनाए गए) नवाब अमीरुलूमुमालिक के राज्य की ऐसी बुरी हालत थी कि धन की कमी से घरेलू सामान तक बेचने की नौबत आ गई थी। नवाब समसामुद्दौला ने ऐसा प्रबन्ध किया कि जल फिर अपने रास्ते पर आ गया और गड़बड़ी मिट गई।

गए और मुज़फ़्फ़रजंग भी आँख में गोली लगने से मारा गया (अख़बारे मुहब्बत, इलि० डा० जि० ८, पृ० ३६२)। एक दूसरे इतिहासज्ञ का कथन है कि फ़रवरी सन् १७५१ ई० के आरम्भ में कड़प्पा के नवाब के राज्य में कर्नोल के नवाब ने इनके सिर पर भाला मारा, जिससे इन की मृत्यु हो गई (हिस्ट्री ऑव दी फ्रेंच इन इंडिया पृ० २७६)।

१. नवाब समसामुद्दौला फ्रेंच सेनापति बुसी के कहने से उस पद से हटाए गए थे और फिर उसी के प्रस्ताव करने पर नियुक्त किए गए थे।

विद्रोहियों ने अधीनता स्वीकृत कर ली और बदमाश भी सीधे हो गए। राज्य में ऐसी शांति स्थापित हो गई कि प्रजा बड़े संतोष से दिन व्यतीत करने लगी। चार वर्ष के मंत्रित्व में राज्य के आय व्यय को बराबर कर दिया और (नवाब समसामुद्दौला) कहते थे कि अगले वर्ष में ईश्वर की कृपा से व्यय से आय बढ़ा दूँगा।

मंत्रित्व पद पर रहने के जम स्थान पर नवाब अमीरुलमुमालिक की सेना का भी इन्होंने संचालित किया और बरार की ओर रघू जी भोंसला को दंड देने के लिये गए। उसे परास्त कर पाँच लाख रुपया कर लिया। बरार से निरमल[१] गए जहाँ के जमींदार सूर्यराव ने आसफजाह के समय से बलवा करके बराबर सरकारी सेना को परास्त किया था। समसामुद्दौला ने उपाय करके उसे कैद कर लिया और उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। मंत्रित्व के पहले वर्ष में इन्होंने ये दो बड़े काम किए। हैदराबाद में वर्षा ऋतु व्यतीत कर दूसरे वर्ष सन् ११६८ हि० में नवाब अमीरुलमुमालिक को मैसूर लिवा गए। वहाँ के राजा से पचास लाख रुपया भेंट लिया और वर्षा के पहले हैदराबाद लौट आए। इसी वर्ष दिल्ली के बादशाह आलमगीर द्वितीय ने नवाब समसामुद्दौला के लिये माही और मरातिब भेजा। एक मनुष्य ने

---

१ यह स्थान तेलिंगाना में है (जैरेट जि २ पृ २३०)। गोदावरी के तट पर कनेर के पूर्व में वर्तमान हैदराबाद राज्य के अंतर्गत है।

एक मिसरा तारीख निकालने का[1] कहा जिसका अर्थ है—'शाहे हिंद से माही और मरातिब[2] भी आया।'

मत्रित्व के तीसरे वर्ष सन् ११६९ हि० मे बालाजीराव की सहायता की। बालाजी ने सानोर[3] के दुर्ग को घेर लिया था और वहाँ के अफ़ग़ान दुर्ग को दृढ़ कर वीरता से डटे हुए थे। कई बार दुर्ग से निकल कर मोर्चों के मनुष्यो को मारा। बाला जी ने घबरा कर समसामुद्दौला से सहायता माँगी। धन्य है ईश्वर कि राव बाला जी (जिसने दक्खिन और हिंद के प्रांतो पर अधिकार कर लिया था और दिल्ली के सम्राट् तथा सरदारो को हिला दिया था) समसामुद्दौला से सहायता माँगे। समसामुद्दौला नवाब अमीरुलमुमालिक की सहायतार्थ लिवा गए और सेना भी सानोर पहुँच गई। मोर्चे लगाए गए और तोपख़ाने ने ऐसी ठीक आग बरसाई कि अफ़ग़ानों का रग उड़ गया तथा उन्होंने सधि का

---

१ १+७+३००+१+५+५+५०+४+१+४०+४+४०+१+५+१०+६+४०+ २००+१ +४००+२+१+४०+५ = ११६८ हि०, सन् १७५५ ई०।

२. जिस डके पर मछली का चिह्न रहता है, उसे माही कहते हैं। मरातिब का अर्थ पदवियाँ है।

३. सानोर यह सवानोर बबई प्रांत के धारवाड ज़िले के अतर्गत तुंगभद्रा नदी के पास है। इसका नाम बंकापुर भी मालूम होता है (विल्क्स जि० १, पृ० १६.)

प्रस्ताव किया। इसके अनंतर नवाब समसामुद्दौला ईसाइयों का नाश करने के विचार में पड़े[१]।

यह ज्ञात है कि जब नवाब निज़ामुद्दौला नासिर जंग मुज़फ्फर जंग का दमन करने के लिये अर्काट गए, तब उसने पौंडिचेरी के फ्रेंच ईसाइयों की सहायता से सामना किया था, पर परास्त हुआ। ईसाई पौंडिचेरी भागे और मुज़फ्फरजंग क़ैद हुआ। इसके अनंतर ईसाइयों ने अफ़ग़ानों से मिलकर फिर बलवा किया और नवाब निज़ामुद्दौला को मार कर मुज़फ्फरजंग को निज़ाम बनाया। इसके पहले (जैसा कि इस चरित्र के लेखक ने सर्व आज़ाद में विस्तार-पूर्वक लिखा है) ईसाई अपने बंदरों में ही रहते थे और अपनी सीमा से बाहर नहीं निकलते थे। निज़ामुद्दौला के मारे जाने पर उनका साहस बढ़ गया और उन्हें देश की विजय का चसका लग गया। अर्काट प्रांत के कुछ भाग पर फ्रांसीसी ईसाई अधिकार कर बैठे और कुछ भाग पर अंग्रेज़ ईसाई। अंग्रेज़ों का बंगाल पर भी अधिकार था और सूरत बंदर भी

१ निज़ाम हैदराबाद के राज्य के अंतर्गत कड़प्पा, सौर, कर्नोल तथा तबानोर के चार अफ़ग़ान नवाब थे। अंतिम नवाब पर सन् १७४० ई० में चढ़ाई कर रघोजी राव ने उसका आधा राज्य छीन लिया था। सन् १७५५ ई० में पाशा जी बाजीराव के तोपख़ाने का सरदार मुज़फ्फर ख़ाँ भाग कर तबानोर के नवाब के यहाँ चला गया। बाजीराव के उसे माँगने पर नवाब ने इन्कार कर दिया और अन्य अफ़ग़ान नवाबों तथा मराठा सरदार मुरारी राव घोरपड़े से मेल कर युद्ध की तैयारी की। बालाजी ने निज़ाम से सहायता ली और उसने सहायता से अधीनस्थ अफ़ग़ानों के उसकी अधान

उन्होंने ले लिया था। इस प्रकार ईसाइयों के अधिकार का आरंभ हो गया था।

नवाब निज़ामुद्दौला के मारे जाने पर मुज़फ़्फ़रजंग ने फ्रेंचों को नौकर रखा और मित्र बनाया। उनके मारे जाने पर वे नवाब असीरुल्‌मुमालिक के नौकर हुए और सिकाकुल, राजमंदरी आदि प्रांतों को जागीर में ले लिया तथा प्रभावशाली हो गए। ईसाइयों के सरदार मोशे बुसी की पदवी सैफ़ुद्दौला उमदतुल्‌मुल्क प्रसिद्ध हुई और उनकी सरकार का प्रबंधकर्ता हैदरजंग हुआ। हैदरजंग के जन्म तथा वंश का हाल यों है कि इसका असली नाम अब्दुर्रहमान था और इसके पिता ख्वाजा कलंदर ने बलख़ से आकर नवाब आसफ़जाह के समय विश्वास पैदा किया और मछली बंदर का फ़ौजदार हुआ। वहाँ का हिसाब भी इसी के हाथ में था। मछली बंदर ही में कुछ ईसाइयों से इसकी जान पहचान हो गई। यहाँ से वह पौंडिचेरी गया और वहीं ईसाइयों की रक्षा

बिना लिए ही युद्ध की तैयारी करने के कारण सहायता देना स्वीकार कर लिया। बाला जी ने अफ़ग़ानों तथा मराठों को युद्ध में परास्त कर दिया, जिससे वे सवानोर दुर्ग में जा बैठे और सलाबत जंग के ससैन्य आने पर दुर्ग घेर लिया गया। फ़रासीसी तोपों से दुर्ग टूटा मुरारीराव पेशवा के पास चला आया और सवानोर के नवाब ने ग्यारह लाख रुपए और ज़मीन आदि देकर प्राण-रक्षा की। (पारसनीस किनकेड कृत मराठों का इतिहास, भाग २, पृ० ३५-३६)

आगे के एक पारा में ईसाइयों पर क्रुद्ध होने के कुछ कारण दिखलाए गए हैं।

में रहने लगा। हैदरजंग उस समय मस्यरबरक था और मूरंदूर[1] नामक कमान अर्थात् पौंडिचेरी के अध्यक्ष का उस पर बड़ा स्नेह था। जब मुज़फ्फ़रजंग नवाब हुआ, तब मूरंदूर ने मारा बुसी की अधीनता में कुछ इसाइयों को मुज़फ्फ़रजंग के साथ भेजा[2] और अब्दुर्रहमान को (इसाइयों और मुसलमानों के बीच दुभाषिए का काम करने को) बुसी के साथ कर दिया। अब्दुर्रहमान योग्य था इसलिए उसने बहुत उन्नति की और फिरंगी सरकार का कुछ कार्य उसके हाथ में रहने लगा तथा उसे असदुल्ला हैदर जंग की पदवी मिली।

सानोर के अफ़ग़ानों का कार्य पूरा होने पर समसामुद्दौला ने इसाइयों को निकालना चाहा और उनकी सम्मति से नवाब अमीरुलमुमालिक ने इसाइयों को नौकरी से हटा दिया। वे हैदराबाद

---

१ उस समय पौंडिचेरी के गवर्नर जोसेफ़ फ्रैंकोयस डूप्ले थे जिनके नाम का कोई अंश मूरंदूर, मूरंदूर आदि के समान नहीं है। किसी अन्य गवर्नर के बारे में यह हो नहीं सकता, क्योंकि वाली के वाक्य में यही नाम फिर आया है जिसने बुसी को हैदराबाद भेजा था। इसके लिये अधिक तर्क या चर्चा की आवश्यकता भी नहीं। गवर्नर का पोर्तुगीज़ रूप मिस्टर केथरिक के अनुसार मोनस्यदौर है जो ठीक इसी प्रकार फ़ारसी लिपि में लिखा जायगा। मात्रा और बिन्दी के हेर फेर से इसे अनेक प्रकार से पढ़ कर तर्क करना व्यर्थ है फ़ारसी की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में बहुधा काफ़ और गाफ़ दोनों पर एक ही मर्कज़ दिया हुआ मिलता है।

२. गुलाम अली और ओर्म के अनुसार मुज़फ्फ़रजंग ने पहले पहल ईसाई सेना नौकर रखी थी।

चले गए और उस पर अधिकार कर दुर्ग में जा बैठे। नवाब अमीरुलमुमालिक ने पीछा किया और पहुँच कर उसे घेर लिया। दो महीने तक यह घेरा रहा, युद्ध भी होता रहा और अंत में संधि होने पर उमदतुलमुल्क और हैदरजग ने आकर भेंट की[1]। घेरे के समय ईसाइयों की जागीर का प्रबंध ढीला हो गया था, इसलिये उमदतुलमुल्क और हैदरजंग छुट्टी लेकर राजबंदरी और सिकाकुल चले गए और वहाँ का प्रबंध ठीक किया। समसामुद्दौला ने हैदराबाद में वर्षा व्यतीत की और मंत्रित्व के चौथे वर्ष, सन् ११७० हि० (१७५६-७) में बाहर निकले। बोदर प्रांत के अंतर्गत भालकी[2] आदि परगनों पर नवाब आसफजाह के समय से रामचंद्र मरहठा[3]

---

१. इस प्रकार बुसी को हटा कर समसामुद्दौला ने अंग्रेजों तथा पेशवा को फरासीसों को नष्ट करने के लिये बुलाया, पर किसी ने आना स्वीकार नहीं किया। बुसी नीज़ाम की सेना को भुलावा देकर हैदराबाद पहुँच गया और चारमहल में पड़ाव कर पौंडिचेरी से सहायता मँगवाई। प्राय डेढ़ सहस्र सेना सहायतार्थ आई और कई युद्ध हुए। अंत में २० अगस्त सन् १७५६ ई० को संधि हो गई।

२. ग्रांट डफ के मानचित्र में वालकी लिखा है। बीदर के उत्तर-पश्चिम में मानजेरा तथा नारायनजा नदियों के बीच में स्थित है। निजाम राज्य का एक क़स्बा है।

३. ग्रांट डफ कृत 'मरहठों का इतिहास' जि० २, पृ० १०६-७। यह चंद्रसेन जादव का पुत्र रामचंद्र जादव था। इसने पौंडिचेरी से आती हुई सहायक सेना को नहीं रोका था, इसी लिये इस पर यह चढ़ाई हुई थी। इसने आगे चल कर सलाबतजंग की सहायता की थी। (पारस० किन० मराठों का इतिहास, भा० २, पृ० ३७-८.)

का अधिकार था, जिसकी आय लाखों रुपए थी। अयोग्यता और कुविचार के कारण वह सेवा कार्य ठीक नहीं कर सका, इसलिये समसामुद्दौला ने इसकी जागीर ले लेना चाहा। रामचंद्र ने युद्ध की तैयारी की, पर सफल-प्रयत्न न होने पर उसने अधीनता स्वीकृत कर ली और मालकी को छोड़ कर उसकी और सब जागीर जब्त हो गई। वर्षा के आरंभ में समसामुद्दौला नवाब अमीरुलूमुमालिक के साथ औरंगाबाद लौट आए और उसी समय एक सेना भेज कर दौलताबाद दुर्ग को घेर लिया। दुर्गदारी सैयदों से (जो औरंगजेब के समय से उस पर अधिकृत थे) वह दुर्ग ले लिया गया। इसके बाद कुचक्री आकाश ने दूसरा पुष्प उखाड़ा और समसामुद्दौला के परामर्श पर कमर बाँधी। इनकी बुद्धि भी गुम हो गई।

यह घटना इस प्रकार है कि सैनिकों का बहुत सा वेतन नहीं दिया गया था, जिन्हें कुचक्रियों ने बहकाया। सैनिकों ने वेतन के लिये शोर मचाया। यदि समसामुद्दौला चाहते तो दो लाख रुपया व्यय कर बलवा शांत कर देते पर अवनति का समय आ गया था, इसलिये इन्होंने इसका कुछ प्रयत्न नहीं किया। ६ जीकद्र सन् ११७० हि० (स० १८१४ वि०) को सिपाहियों ने नवाब आसफजाह के पुत्र नवाब शुजाअतूमुल्क बसालतजंग को उनके घर से लाकर नवाब अमीरुलूमुमालिक के सामने खड़ा किया और समसामुद्दौला से मंत्रित्व लेकर उस पद का खिलअत इन्हें दिलवाया। विद्रोह बढ़ गया और चकलाइयों तथा बाजारवालों ने

ार मचाकर चाहा कि समसामुद्दौला का मकान लूट लें, पर कुछ
ारणों से संध्या तक यह न हो सका। रात्रि होने से बलवाई
तिर बितिर हो गए। समसामुद्दौला ने यह विचार किया, कि कल
दे आक्रमण होगा तो हम अपने मालिक का सामना न कर
केंगे, इससे अच्छा होगा कि अलग हो जायँ। अर्द्ध रात्रि में
ावश्यक सामान हाथियों पर लाद कर और लाखों की
पत्ति आदि वहीं छोड कर वह दौलताबाद दुर्ग की ओर अपने
रिवार के साथ चले गए। लगभग पाँच सौ सवारों और पैदलों
साथ दिया। मशाल जला कर ये लोग सशस्त्र घर से बाहर
कले और परकोटे के जफ़र फाटक की ओर चले। फाटक
रक्षक सामना न कर सके और भाग गए। ताला तोड़
र ये लोग बाहर निकल गए। ८ ज़ीउलक़ुदः सन् ११७० हि०
सन् १७५७ ई०) को यह दौलताबाद पहुँच गए। इनके जाने के
द इनका कुछ सामान लुट गया और बाकी सरकार के अधिकार
चला गया। कुछ दिनों के अनतर सेना नियुक्त हुई, जिसने
लताबाद दुर्ग घेर लिया और युद्ध होने लगा।

समसामुद्दौला अनेक गुणों और सुस्वभाव से विभूषित थे,
र कभी कभी ऐसा होता है कि ईश्वर अपने सेवकों को ससार
ी दृष्टि से गिरा देता है और उन्हे ससार रूपी परीक्षा स्थान में
पता ठीक परिचय देने के लिये बाध्य करता है। समसा-
द्दौला के साथ भी ऐसा ही हुआ। इतनी योग्यता रखते हुए
ी अमीर, गरीब, दरबारी और बाजारी किसी ने भी इनका

साथ नहीं दिया। सिवा पकड़ने और मारने के कोई दूसरा शब्द न कहता था। यदि किसी ने सचाई रखी और मित्रता की याद रखी तो भी उसमें इतना साहस कहाँ कि आँख पहचान करे। इसी दरिद्र ने अकेले उस गड़बड़ में बात उठाई और ससार की शत्रुता मान ली। नवाब शुजाउल्मुल्क से भेंट कर संधि की बात चलाई और संधि की बातें तै करने के लिये दो बार दुर्ग में भी गया। बातों के फेर में दुर्ग का घेरा भी कई दिनों के लिये रोका। अभी संधि की शर्तें ठीक नहीं हुई थीं कि बरार के सूबेदार नवाब निज़ामुद्दौला द्वितीय एलिचपुर से औरंगाबाद आए। नवाब अमीरुल्मुमालिक ने उन्हें अपना युवराज बनाया और निज़ामुल्मुल्क आसफजाह की पदवी दी। नवाब आसफजाह द्वितीय ने इस चरित्र के लेखक को बुलाकर समसामुद्दौला को समझाने के लिये नियत किया और उनके इच्छानुकूल संधिपत्र पर हस्ताक्षर करके मुझे दे दिया। मैं पत्र लेकर दुर्ग में गया और उन्हें दरबार में आने के लिये उत्सुक कराया। नवाब आसफजाह ने सरदारों को स्वागतार्थ भेजा। समसामुद्दौला ने १ रबीउल् अव्वल सन् ११७१ हि० (१२ सित० १७५७ ई०) को दुर्ग से निकल कर स्वागत के लिये आए हुए सरदारों से भेंट की और उसी दिन नवाब आसफजाह द्वितीय और नवाब अमीरुल्मुमालिक से भी भेंट की तथा कृपापात्र हुए।

इसी समय बालाजी राव पूना से औरंगाबाद के पास पहुँचे और अपने पुत्र विश्वासराव को अपना प्रतिनिधि बनाया। राजा

रामचन्द्र को (जो नवाब अमीरुल् मुमालिक से भेंट करने को स्वदेश से आते हुए औरंगाबाद से तीस कोस पर सिंधखेड़[1] पहुँचा था) मरहठों ने वहीं घेर लिया। नवाब आसफजाह औरंगाबाद से कूच कर सिंधखेड़ पहुँचे और रामचन्द्र को मृत्यु-मुख से बचाया[2]। रास्ते में बहुत युद्ध हुआ और आसफजाह ने बड़ी वीरता और साहस दिखलाया। बहुत से शत्रु तलवार से मारे गए। समसामुद्दौला भी साथ थे। इसी समय समाचार मिला कि उमदतुल्मुल्क मोशे बुसी और हैदरजंग जागीरों का काम निपटा कर नवाब अमीरुल्मुमालिक से भेंट करने की इच्छा रखते हुए हैदराबाद पहुँच गए हैं। हैदरजंग ने समसामुद्दौला को खत पर खत लिखे और इतनी सफ़ाई दिखलाई कि अंत में इन्होंने उस पर अच्छी तरह विश्वास कर लिया तथा उसके धोखे और कपट का कुछ ध्यान न रखा। विजयी सेना सिंधखेड़ से लौट कर शाहगढ़ पहुँची थी कि हैदरजंग आ पहुँचे और कुछ सेना ने औरंगाबाद पहुँच कर नगर के उत्तर ओर पड़ाव डाला।

समसामुद्दौला ने अपना कुल प्रबन्ध हैदरजंग को सौंप दिया और उसने चापलूसी करके कपट का जाल बिछाया। मित्रों ने, जो उसके कपट को जानते थे, बातों में तथा प्रकाश्य रूप से समसामुद्दौला को उसके बारे में समझाया, पर इन्होंने ने उनका विश्वास नहीं किया। शत्रु की सत्यता पर विश्वास कर

१. औरंगाबाद के पूर्व में है।
२ अधिक वृत्तांत ग्राट डफ जिल्द २, पृ० १०६ में देखिए।

मित्रों के बंधुत्व का विचार न किया। २६ रजब सन् ११७१ हि० (५ अप्रैल १७५८ ई०) को अमीरुलमुमालिक औरंगाबाद के बेगम बाग़ में गए थे[1] और वहीं हैदरजंग ने षड्यंत्र रचा। समसामुद्दौला और यमीनुद्दौला के, जिनका ऊपर जिक्र आ चुका है, आज्ञानुसार जब बेगम बाग़ में गए, तब उसने इन दोनों को क़ैद कर दिया। वहाँ से वे सभा में लाए जाकर अलग अलग खेमों में रखे गए। समसामुद्दौला के पुत्र मीर अब्दुलहई खाँ, मीर अब्दुस्सलाम खाँ और मीर अब्दुन्नबी को भी बुलाकर उनके पिता के खेमे में क़ैद किया, जिसके चारों ओर ईसाइयों के पहरे थे। दूसरा बार समसामुद्दौला के मकान में जो कुछ संचित हुआ था, वह भी लुट गया और सैयदों की स्त्रियाँ घर से निकाल दी गईं। समसामुद्दौला के संबंधियों और उनके विश्वासपात्रों को भी, जो योग्यता रखते थे, कड़ी क़ैद में रखा। उनका धन छीन लिया गया और सैयदों पर ऐसा अत्याचार हुआ कि कर्बला की घटना नई हो गई।

पर इन कार्यों का फल हैदरजंग के लिये शुभ नहीं हुआ। नवाब आसफजाह द्वितीय ने उसे मार डालने का विचार किया। इसका कारण[2] यह है कि हैदरजंग ने नवाब समसामुद्दौला को

---

१ अपने पिता के मज़ार पर फ़ातिहा पढ़ने को गए थे जो औरंगाबाद से कुछ कोसों पर है। (सिअरुल मु० १ पृ० १६)

२. बालाजी बाजीराव तथा सलाबतजंग खाँ ने मिलकर फरासीसी को हैदराबाद से निकालने का यह उपाय निकाला कि उसकी सरकार के विरोध

धोखा दिया था, इससे उसका विश्वास उठ गया था। दूसरा कारण यह था कि पहले हैदरजंग ने नवाब आसफ़जाह का बल तोड़ा था और अब उसने समसामुद्दौला को क़ैद कर लिया था। इसका विवरण यों है कि नवाब आसफ़जाह ने बरार से भारी सेना साथ लाकर राज्य का नैतिक और कोष का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया था। हैदरजंग ने यह देखकर कि नवाब आसफ़जाह के कारण मेरा अधिकार नहीं चलेगा, उन्हें पराजित करने का षड्यन्त्र रचा। अनेक उपायों से उसने नवाब को सेना से अलग किया और सैनिकों के वेतन का आठ लाख

दमन करने में लगे हुए बुसी के आने के पहिले सलावतजंग को कैद कर उनके छोटे भाई निज़ाम अली को गद्दी पर बैठाया जाय। इन्हीं को निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह की पदवी मिली थी। सैनिकों के विद्रोह का बहाना कर शाहनवाज़ ख़ाँ ने दौलताबाद दुर्ग पर अधिकार कर लिया और बरार प्रान्त के अध्यक्ष निजाम अली ने इस विद्रोह के दमन के बहाने हैदराबाद आकर कुछ प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। पेशवा ने तीन सेनाएँ भेजीं। जानोजी भोंसले ने उत्तर से और विश्वासराव ने गोदावरी के किनारे से चढ़ाई की तथा माधवराव सिंधिया ने रामचन्द्रराव जादव को परास्त कर उसे सिंधखेड़ में घेर लिया। निजाम अली ने मराठों पर चढ़ाई की और पेशवा के आज्ञानुसार माधवराव परास्त हो कर सिंधखेड़ से हट गए। अब निजाम अली तथा बाला जी साथ साथ औरंगाबाद गए। पर इसी बीच बुसी उत्तरी सरकार से लौट आया और उसने दौलताबाद पर अधिकार कर लिया। शाहनवाज़ ख़ाँ क़ैद हुए और निजाम अली ने इसी से क्रुद्ध होकर धोखे से हैदरजंग को मार डाला था। (पारस० किन० मराठों का इतिहास, भा० ३, पृ० ३८-९)

रुपया अपने पास से दिया। इस प्रकार नवाब को अकेला किया और उसके अनन्तर समसामुद्दौला को क़ैद करके दोनों ओर से निश्चिन्त हो गया। उसने चाहा कि आसफ़जाह को हैदराबाद का सूबेदार बनाने का बहाना कर वहाँ भेज दें और गोलकुण्डा के दुर्ग में क़ैद कर दें। ऐसा करके वह चाहता था कि अपने लिये मैदान खाली कर ले, पर नहीं जानता था कि 'कर्म कर्म पर हँसता है'।

३ रमज़ान सन् ११७१ हि० (११ मई १७५८ ई०) को दोपहर के समय हैदरजंग नवाब आसफ़जाह के ख़ेमे में आया, जिन्होंने अपने साथियों को पहिले ही से उसे मार डालने के लिये ठीक कर लिया था। वहाँ के खास रहनेवालों ने हैदरजंग को पकड़ कर मार डाला। आसफ़जाह घोड़े पर सवार होकर अकेले सेना से निकल गए[1]। फिरंगियों का तोपखाना आश्चर्य में पड़ा रह गया और साहस न कर सका, क्योंकि इस काम में रुस्तम[2]

---

१ आसफ़जाह वहाँ से भाग कर बुरहानपुर चले गए। हैदरजंग छुरे से मारा गया था। सियरुलमुताख़िरीन के अनुवाद में लिखा है कि उसका गला काट कर मार डाला था, पर यह ठीक नहीं है। ओर्मे (भा १ पृ २४६, संस्करण १००८) लिखता है कि इसे शाहनवाज़ ख़ाँ के मारे जाने का वृत्तान्त पीछे मिला और इसी से उसकी भाषा में गड़बड़ हो गया। सर्वे बाज़ार में गुलाम अली ने यह सब बातें बतलाई थीं।

२ रुस्तम फारस देश का एक बहुत ही प्रसिद्ध पहलवान वीर और सैनिक था। इसके पिता का नाम ज़ाल और पितामह का नाम साम था। इसे फारस के बादशाहों से जागीर में सीस्तान मिला था। फिरदौसी के शाहनामे में इसका पूरा चरित्र दिया है जो रम्यकथाओं से पूर्ण है।

ग्रौर अफ़रासियाब[1] के कामों को मात कर दिया था। हैदरजंग के मारे जाने से उमदतुलमुल्क मोशे बुसी और दूसरे सेनापतियों का होश उड़ गया। इसी गड़बड़ में कुछ बलवाइयों ने समसामुद्दौला, यमीनुद्दौला और समसामुद्दौला के छोटे पुत्र मीर अब्दुलग़नी को मार डाला। आश्चर्य यह कि हैदरजंग (जो वस्तुतः इन सैयदों का घातक था) इन सैयदों से चार घड़ी पहले ही मारा जा चुका था और समसामुद्दौला ने स्वयं उसके मारे जाने का वृत्तांत सुन लिया था, और यह कह कर कि 'अब हम लोग भी नहीं बच सकते' ईश्वर की याद मे पश्चिम की ओर मुँह कर बैठ गए। ईसाइयों के लछमन नामक एक आदमी ने आकर इन्हें मार डाला। पिता और पुत्र अपने पूर्वजों के मक़बरे मे (जो शहर के दक्षिण में शाहनूर[2] की दरगाह के पास है) गाड़े गए और यमीनुद्दौला भी अपने पूर्वजों के मक़बरे में (जो शाहनूर के गुंबद के नीचे की ओर है) गाड़े गए। लेखक ने तीनो सैयदों के मारे जाने की तारीख़ आयत (वजूह यूमैज मुस्फ़िर.)[3] मे निकाली, जिसका अर्थ है—

१ अफ़रासियाब भी बहुत ही बलवान वीर था। यह तुर्किस्तान के राजवंश का था और रुस्तम के हाथ से मारा गया था। यदि आसफ़जाह का ऐसा अविश्वास का कार्य वीरता कहा जाय तो वह उपहासास्पद मात्र है।

२ इस नाम के एक फ़क़ीर हो गए हैं जो २ फ़रवरी सन् १६९२ ई० को मरे थे और औरंगाबाद में जिनका मक़बरा है। (बील की ओरिएंटल डिक्शनरी, पृ० ३६७)

३ यह ८० वे सूर का ३८ वाँ शेर है। ६+३+६+५+१० +६+४०+१०+७००+४० +६० + ८० + २००+५= ११७१ हि० (१७५८ ई०, सं० १८१५ वि०)

"उस दिन कुछ मुख्य उम्मरल होंगे।" समसामुद्दौला की मृत्यु' तारीख भी इस पद में कही है—

"पवित्र रमजान महीने की तीसरी को संसार से समसामुद्दौला चल बसे।"

उस सैयद (शाहनवाज खाँ) ने स्वयं इस घटना का वर्ष ये कहा— हम अब्दुर्रहमान के मारे हुए हैं'। (मा कुश्तए अब्दुर्रहमाम)[1]।

उसी तारीख में यह पद भी कहा—

उच्चपदस्थ सरदार तथा विद्वान समसामुद्दौला।

व्यर्थ ही कपट की आड़ में मारे गए। शोक! दुःख, शोक मीर गुलाम अली 'आज़ाद' तारीख कहता है, जिसे मित्रगण सुनें —

'नीचों ने सैयदों को मार डाला'। हम लोग ईश्वर के हैं[2]।

ज्ञात हो कि मीर अब्दुलहई खाँ और मीर अब्दुस्सलाम खाँ अपने पिता के मारे जाने के दिन बच गए थे, जिसका कारण यह था कि मीर अब्दुलहई खाँ एक दिन पहले पिता से अलग किए जा चुके थे और मीर अब्दुस्सलाम खाँ बीमारी के कारण उस

---

१ ४ +२+१ +१ +४ +५+७ +१+४+१+ १०+१ +८+४ +५ =११७१। अब्दुर्रहमान हैदराबाद का नाम था।

२ कुरान का सूर ३, पद १५१।

खेमे से हटाए जा कर एक दूसरे मकान में भेजे गए थे। वस्तुतः उनका जीवन अभी शेष था कि ईश्वर ने शत्रु के हृदय में यह बात उठाई कि उन्हें पिता से अलग कर दिया था। मीर अब्दुलहई खाँ और मीर अब्दुस्सलाम खाँ के बचने से लेखक के मन में आया कि नाम आकाश से उतरते हैं। हई और सलाम[१] नामों ने अपना काम कर के अपने नामवालों की रक्षा कर ली।

हैदरजंग के मारे जाने पर नवाब अमीरुल्मुमालिक, नवाब शुजाउल्मुल्क, उमदतुल्मुल्क मोशे बुसी और हैदरजंग का भाई जुल्फिकारजंग (जो उसके मारे जाने पर उसका स्थानापन्न हुआ था) हैदराबाद को चले और वहाँ पहुँचने पर जुल्फिकारजंग अपनी जागीर राजमंदरी और सिकाकुल को गया, जहाँ के जमींदार से युद्ध में पूरी तरह परास्त हुआ। कुल सेना नष्ट हो गई और जवाहिर-खाना, तोशा-खाना, हाथी और तोपें सब जमींदार के हाथ में पड़ीं। कुछ मनुष्यों के साथ अपने प्राण लेकर वह निकल गया। समसामुद्दौला को मारनेवाला लछमन[२] मारा गया और गार्दियों[३] के जमादार मुहम्मद हुसेन (जो अपने सैनिकों

---

१ ये दोनों शब्द ईश्वर के नाम हैं और पहले का अर्थ 'जीवन' तथा दूसरे का 'जिसे हानि न पहुँचे' है।

२ ग्रांट डफ़ जि० २, पृ० ११४। उनका कथन है कि लछमन फौंदोर के युद्ध में मारा गया, जो सन् १७५८ ई० में कर्नल फोर्ड के अधीन अंग्रेजी सेना और कौन्फ्लैंस के अधीन फ्रेंच सेना में हुआ था।

३ फ्रेंचों के गार्ड शब्द से बना हुआ है।

के साथ समसामुद्दौला और उनके सम्बन्धियों तथा मित्रों का रक्षक नियत था और उनसे बुरी तरह व्यवहार किया था) ने अंग्रेजों के बंदर चीना पट्टन को घेरा और दो बार धावा किया। अंत में अंग्रेज विजयी हुए और अनवरुलमुल्क हारकर फूलचरी[1] भाग गया। कुछ ही महीनों में सैयदों का रक्त अंकुरित हुआ[2]। यों कहिए कि नवाब समसामुद्दौला। अपना बदला (जो हैदरजंग के शरीर से था) अपने कानों से सुन कर गए थे।

नवाब समसामुद्दौला गुणों के आकर तथा विद्या-निधान थे। हर एक गुण के गूढ़ तत्त्व उनके मस्तिष्क में तैयार रहते थे। काव्यमर्मज्ञ एक ही थे। फारसी भाषा के मुहावरों को ऐसा जानते थे कि परदेशी मिरजा लोग (जो उनसे मिलते थे) उनके मुहावरों के इस ज्ञान पर आश्चर्य करते थे। कहते थे कि मुझे दो बातों का गर्व है। एक न्याय का, कि घटनाओं की ग्रन्थियों को ऐसा सुलझा लेता हूँ कि झूठ और सच अलग हो जाता है, और दूसरे काव्य-मर्मज्ञता का। एक दिन इस लेखक से कहा कि फैजी का यह मतलअ[3] प्रसिद्ध है—

---

१ यही स्थान पौलिचारी कहलाता है जो अंग्रेजों की सब से प्राचीन कोठी है।

२ पौलिचेरी के युद्ध में बुरी पकड़ा गया। सलाबतजंग अमीरुल्-मुमालिक को उसके भाई निजाम अली ने कैद कर दिया और सन् १७६३ ई० में मरवा डाला। बील, सियरुल १ ३०६ और मआसिर उमरा, पृ० ६१।

३ मिस्र जिसे मतला कहते हैं यह शेर अपनी प्रकारी प्रसिद्ध

प्रम-मार्ग मे हमें दो कठिनाइयाँ मिलीं—एक तो यह कि मेरी मृत्यु आ गई है और दूसरे प्रेमी घातक मिला।

प्रकट में यही अर्थ है कि एक कठिनाई मरणोन्मुख होना और दूसरी प्रेमी का घातक होना है, इसलिये बचना कठिन है। पर मेरे विचार में यह आता है कि पहली कठिनाई यह है कि प्रेमी तो मरणोन्मुख है, इसलिये प्रेमिका को छोड़कर कहीं कोई दूसरा उसे मार न डाले। दूसरी कठिनाई यह है कि प्रेमिका घातक है और कहीं वह प्रेमी को छोड़कर अन्य को न मार डाले (मार कर अपनी इच्छा पूरी न कर ले)। ये दोनों बातें प्रेमी के लिये अरुचिकर हैं।

यह गद्य के अद्वितीय लेखक थे। उनकी पत्र-लेखन की शैली भी निज की थी। दु:ख है कि उनके पत्र इकट्ठे नहीं हुए। यदि वे होते तो पाठकों की आँखों में सुरमे का काम देते। इतिहास के ज्ञान मे भी वे एक ही थे और हिंदुस्थान के तैमूरी बादशाहों और सरदारों का वृत्तात विशेष रूप से जानते थे, क्योंकि उसी मडल के वश मे थे। मआसिरुल् उमरा ही उसका नमूना है, जिसका गुण इस विद्या के जाननेवाले पहचानेंगे। अरबी और फारसी का

पृ० ५३५ में उद्धृत है, पर जो अर्थ वहाँ दिया गया है, वह अशुद्ध है।' सन् १८७३ ई० की प्रकाशित प्रति के पृ० ५५५ पर इसका यही अर्थ दिया है, पर 'खूँगिरफ़्त' शब्द का अर्थ ठीक न समझने से अशुद्धि हो गई है। मिस्टर बेवरिज ने भी इस शब्द का अर्थ अंग्रेज़ी शब्दों—डूम्ड और स्लेन—से किया है, जो आप ही समानार्थी नहीं हैं।

उन्होंने बहुत बड़ा पुस्तकालय एकत्र किया था और इन पुस्तकों को स्वयं बहुधा शुद्ध करते थे। इस गड़बड़ में वह पुस्तकालय भी नष्ट हो गया। उनके गुण अवर्णनीय हैं। जैसे उच्च स्वभाव के थे, वैसे ही विचारों की दृढ़ता में अरस्तू को भी उसका शिष्य कह सकते हैं। गंभीरता, आत्माभिमान, मिलनसारी, दयालुता, न्याय, नम्रता, कृतज्ञता, सत्यता और सत्यनिष्ठा से वह पूर्ण थे और असत्यता से अप्रसन्न रहते तथा झूठों का कभी विश्वास न करते थे। जो कुछ धन उन्हें प्राप्त होता उसका दशमांश वे दान के लिये निकाल देते थे, और उसके लिये अलग एक कोष था, जिसमें से योग्य पात्रों को दान दिया जाता था। इस दरबार की सरदारी शोभा देती थी। जिस समय मसनद पर बैठते थे, उस समय बिना सजावट ही के अमीरी को अपने प्रभाव से शोभायमान करते थे और इनके मुख ही पर अमीरी झलकती थी। सप्ताह में दो दिन शुक्र और मंगलवार न्याय के लिये नियत थे। वे दोषी और प्रार्थी दोनों को सामने बुलाकर ठीक बात की जाँच करते थे। राज्यप्रबंध के नियम हस्तामलक थे। दिन रात में कभी प्रबंध के लिये राय करने को अवकाश नहीं मिलता था और न कोई इनका सम्मतिदाता ही था। समसामयिक विद्वान उनकी विचार शक्ति तथा ज्ञान पर आश्चर्य करते थे। सुबह की नमाज पढ़कर काम पर बैठ जाते और दोपहर को उठते थे। तीसरे पहर की नमाज पढ़कर फिर काम में लग जाते और तब अर्द्ध रात्रि या अधिक समय तक राज्य तथा कोष संबंधी कार्य करते रहते थे।

प्रार्थियों और दोषियो को बिना किसी मध्यस्थ के स्वयं जाँच करते थे। दीवान में बड़ी शान से बैठते थे, पर एकांत मे नम्रता और प्रसन्नता से मिलते थे।

नवाब सालार जंग बहादुर कहते थे—"नवाब समसामुद्दौला दौलताबाद दुर्ग से आने पर मुझ से कहते थे कि मुझे जान पड़ता है कि यह ऊपरी वैभव (जो मेरे चारों ओर एकत्र हो गया है) स्थायी नहीं है।" मैंने पूछा—'कैसे मालूम हुआ?' उत्तर दिया —'किसी प्रकार मुझे पता लगा है।' उन्हीं नवाब ने यह भी कहा था—"एक दिन (जब उनसे मंत्रित्व का अधिकार ले लिया गया था और बड़ी गड़बड़ी मची हुई थी) मैं और बहुत से दूसरे मनुष्य उसी रात को नवाब समसामुद्दौला के घर ही पर सोए थे। सबको चिंता के कारण नींद नहीं आई। सुबह (जब मैं नवाब समसामुद्दौला से मिला तब) वह कहते थे—'आज खूब नींद आई थी'। नवाब सालार जंग यह भी कहते थे कि नवाब समसामुद्दौला ने मुझसे कहा था कि दुर्ग मे जाने के पहले जब फर्राशखाने का हिसाब लिया गया था, तब दो सौ से कुछ अधिक क़ालीन और गलीचे थे। पर (जिस दिन दुर्ग में गया) उस दिन एक भी न था। ऐसी हालत में भी उनके विचारों में कुछ फर्क न आया था। इस चरित्र का लेखक अपनी अनुभूत बात वर्णन करता है कि (जिस समय नवाब निज़ामुद्दौला अर्काट गए थे और मुज़फ्फरजंग पर विजय प्राप्त की थी) उस समय वहाँ के सब आमिल बुलाए गए थे। दीवानी कचहरी

की ओर से नवाब समसामुद्दौला के दरवाजे के पास खमा खड़ा कर उन्हें स्थान दिया गया था। एक दिन समसामुद्दौला के खेमे से मैं निकला ही था कि एक मनुष्य दौड़ता हुआ आया और कहने लगा—"हाजी अब्दुलग़फ़ूर, जो मुझाया हुआ आमिल है, कहता है कि मैं वसूल करनेवालों के हाथ में हूँ और यहाँ से हिल तक नहीं सकता। क्या यहाँ तक अत्याचार किया जाता है ?" मैं उस आमिल को नहीं जानता था पर वहाँ न जाना कठोरता होती, इससे चला गया। उसने उन अफसरों के हिसाब लेन तथा क़ैद करने की शिकायत की। उसी समय समसामुद्दौला क पास गया और कहा—'हाजी अब्दुलग़फ़ूर नामक आमिल आमिलों के झुंड में बाहर दरवाजे पर खड़ा है। उसे सामने बुलाना चाहिए।' नवाब ने कहा—'ऐसा नियम नहीं है कि जिस आमिल का हिसाब जाँचा जा रहा हो, वह सामने बुलाया जाय।' मैंने कहा— मैं यह नहीं चाहता कि उसका हिसाब न जाँचा जाय, पर केवल इतनी आज्ञा हो कि वह एक बार आपके सामने उपस्थित हो सके।' नवाब अस्वीकार कर रहे थे पर मैं भी हठ करता जा रहा था। अन्त म नवाब ने उसको बुलाकर उसकी हालत देखी। उन्होंने उसकी दशा देख कर कृपा करके कहा कि कल नवाब निज़ामुद्दौला के महल के द्वार पर आना। चोबदार स कह दिया था कि जिस समय अमुक मनुष्य आव, उसी समय मुझे खबर देना। दूसरे दिन ज्योंही हाजी अब्दुलग़फ़ूर फाटक पर हाज़िर हुआ कि तुरन्त चोबदार न समाचार पहुँचा

दिया। समसामुद्दौला ने नवाब निज़ामुद्दौला से कहा—हाजी अब्दुलशकूर नामक आमिल, जो जाँचे जानेवाले आमिलों में से है, बुलाया गया है। मीर गुलाम अली ने मुझसे कहा कि उसको एक बार सामने बुलावें। मैंने उनसे कहा—'जाँच किया जानेवाला आमिल सामने नहीं आने पाता।' मैंने उनसे बहुत कुछ कहा, पर उन्होंने हठ नहीं छोड़ा। तब अन्त में निरुपाय होकर मैंने उसे सामने बुलाया था। अब मैं भी हुजूर से यही प्रार्थना करता हूँ कि एक बार उस मनुष्य को आप अपने सामने हाजिर होने की आज्ञा दें।" नवाब निज़ामुद्दौला ने आज्ञा दे दी कि बुला लो। जब वह भीतर आया और नवाब निज़ामुद्दौला की आँखें उसपर पड़ीं तो क्या देखते हैं कि नब्बे वर्ष का एक वृद्ध कपड़े पहने, सिर पर हरी पगड़ी बाँधे और हाथ में छड़ी तथा सुमिरनी लिए खड़ा है। उसकी सूरत भली थी और वह दया का पात्र था। निज़ामुद्दौला ने उसे पास बुलाकर बैठाया और कुशल मंगल पूछा। उसके हिसाब की फर्द पर क्षमा का हस्ताक्षर कर दिया। उसके लिये रोज़ीना नियत कर और अपनी घुड़साल से सवारी देकर उसे बिदा किया। यह गुणगान (जो नवाब समसामुद्दौला का किया गया है) बादलों की एक बूँद और सूर्य की एक किरण मात्र है। ईश्वर उन पर अपनी कृपा करे और स्वर्ग के अच्छे स्थान को उनसे शोभित करे।

नवाब समसामुद्दौला के मारे जाने पर जब निज़ाम की सेना हैदराबाद गई, तब मीर अब्दुलहई ख़ाँ को साथ ले जाकर गोल-

फुदा दुर्ग में क़ैद किया। मीर अब्दुस्सलाम खाँ माँदगी के कारण औरंगाबाद ही में रह गए और दौलताबाद भेजे गए। हैदरजंग के मारे जाने पर आसफ़जाह द्वितीय बरार गए और सेना तथा सामान ठीक कर उन्होंने रघू भोंसला के पुत्र जानोजी को दंड देने की तैयारी की। उन्होंने सेना कम होने पर भी शत्रु की सेना पर विजय प्राप्त की और तब हैदराबाद आए। नवाब अमीरुल मुमालिक (जो प्रबंध के लिये मछलीपट्टन गए थे) लौट आए और दोनों भाइयों की हैदराबाद के पास भेंट हुई। नवाब आसफ़-जाह पहले की तरह सौबराज्य की गद्दी पर बैठे और कुल प्रबंध अपने हाथ में ले लिया। १५ ज़ीक़द सन् ११७२ हि० (२९ जून १७५९ ई०) को मीर अब्दुलहई खाँ को दुर्ग से निकलवा कर नया जीवन दिया। अब्दुलहई खाँ की पुरानी पदवी शम्सुद्दौला दिलावर जंग थी; पर दुर्ग से आने पर पिता की पदवी (समसा-मुद्दौला समसाम जंग) और छ हज़ारी, ५००० सवार का मन्सब मिला। मीर अब्दुस्सलाम खाँ भी आज्ञानुसार दौलताबाद से लौट आए और अपने परिवार से मिले। ईश्वर क्षमा करे[1]।

उस दयालु और कृपालु ईश्वर के नाम पर।

---

१ इसके अनंतर जो कुछ लिखा गया है वह मीरगुलाम अली आज़ाद का वार्षिक अनुसार मात्र है जो उसने अपने मित्र की जीवनी के अंत में शोक तथा उसके गुणों के विस्तार पर प्रकट किया है। आज़ाद लिखित ग्रन्थकर्ता की इस जीवनी का बहुत कुछ अंश शाहनवाज़ खाँ लिखित अपने वृत्तांत तथा समसाम खाँ और मुहम्मद क़ासिम खाँ की जीवनियों से मिलान

ईश्वर स्तुत्य है और उसके माननेवाले को शांति मिले।

इसके बाद प्रार्थना करता है—

फ़कीर अब्दुर्रज्जाक अलहुसेनी अलख्वारिज़मी अलऔरंगाबादी—समझदारी आने के आरंभ से।

इति

किया जा सकता है। क़िलेदार खाँ की जीवनी लिखत
लिखा है कि इनकी माता इसकी चार पुत्रियों में से ए
मातामही जमशेद बेग की लड़की थीं। ...
पृ० ६८० में इन्होंने लिखा है कि इतिहासज्ञ काफ़ी
मित्रता थी।

विषय-सूची की भूमिका

यह जानना चाहिए कि ग्रंथकार के लिखे हुए कुछ चरित्र सामग्री की अधिकता या रुकावटों से अपूर्ण मसविदों के रूप में रह गए थे। मैंने यथाशक्ति उन्हें पूर्ण और शुद्ध करने का प्रयत्न किया। साथ में मैंने जीवनचरित्रों की एक सूची भी जोड़ दी है, और लाल रोशनाई से छाप[1] शब्द उन नामों के आगे बना दिया है जिनके जीवन वृत्तांत पीछे से जोड़े गए हैं, जिससे उस पूज्य के और मेरे लिखे हुए को लोग पहचान लें। इस बड़े समूह में सात सौ तीस चरित्र दिए गए हैं, जिनकी सूची नीचे दी गई है।

इस अनुवाद में केवल हिन्दू सरदारों की जीवनियाँ दी गई हैं, अतः मूल पुस्तक की सूची यहाँ नहीं दी गई। —अनुवादक

---

१ यह विषय-सूची तथा इसकी भूमिका ग्रंथकार के पुत्र अब्दुलहई की लिखी हुई है। शम्अ रोशन का अंतिम वर्ण है जिसका अर्थ चिराग है। अब्दुलहई ने संख्या ७१० लिखी है, पर वस्तुतः संख्या ७२१ ही है। परन्तु एक एक जीवनी में कभी कभी दो और कभी तीन तीन तथा चार चार जीवनियों का वर्णन दे दिया गया है, जिससे वास्तव में इसमें ७२१ से कहीं अधिक सरदारों और पदाधिकारियों के चरित्रों का समावेश हो गया है।

१—महाराज अजीतसिंह राठौर

यह महाराज जसवंतसिंह[१] के पुत्र थे। जब इनके पिता की जमरूद थानेदारी पर मृत्यु हुई थी, उस समय ये गर्भ ही में थे। लाहौर पहुँचने पर इनका जन्म हुआ[२]। औरंगजेब के आज्ञानुसार ये दरबार में लाए गए। बादशाह ने चाहा कि इन्हें अपने अधिकार में ले ले, पर राठौर (जो मृत राजा के पुराने सेवक थे) लड़ गए जिसमें कुछ मारे गए और कुछ उनको लेकर अपने देश चले गए[३]। इसके अनंतर बादशाह ने दो बार स्वयं अजमेर जा कर इस जाति का नाश करने का प्रयत्न किया और शाहज़ादा मुहम्मद अकबर को पीछा करने को भेजा, पर इन

---

१ इनका वृत्तांत इसी पुस्तक में अलग दिया हुआ है जिसे २४वें निबंध में देखिए।

२ वि० सं० १७३५ की चैत्र ब० ४ को इनका जन्म हुआ था।

३ औरंगज़ेब ने इन लोगों पर कड़ा पहरा बैठा दिया था, इससे राठौर सरदार दुर्गादास ने अजीतसिंह को छिपा कर मारवाड़ भेज दिया, जहाँ सिरोही के कालिंदी ग्राम में कुछ दिनों एक ब्राह्मण के यहाँ गुप्त रूप से इनका पालन हुआ। बादशाह ने यह समाचार पाते ही सेना भेजी जिससे खूब युद्ध कर बहुत से राठौर मारे गए और बचे हुए देश लौट गए। दोनों रानियाँ सती हो गईं।

लोगों के बहकाने से शाहज़ादे की बुद्धि यहाँ तक फिर गई कि वह उन लोगों में सम्मिलित हो कर बादशाही सेना से डेढ़ कोस पर लड़ने के लिये आ पहुँचा। किसी कारण से ये लोग शाहज़ादे पर शंका कर उससे बिगड़ कर चले गए[1]। निरुपाय होकर शाहज़ादा भी भागा। बादशाह ने जोधपुर में फौजदार नियत किया। बादशाह के जीवित रहने तक ये पहाड़ों में जीवन व्यतीत करते रहे। बादशाह की मृत्यु पर इन्होंने जोधपुर के फौजदार को अप्रतिष्ठित कर उस पर अधिकार कर लिया[3]। बहादुर शाह ने आज़म शाह के साथ युद्ध करने के समय इन्हें बुलाया था, पर यह नहीं गए, इससे उसने उस युद्ध से निपट कर जोधपुर पर चढ़ाई की ओर मुनइम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ के पुत्र को उस पर चढ़ाई करने के लिये नियुक्त किया। पूर्वोक्त ख़ाँ के जोधपुर के पास

१ औरंगज़ेब ने धूर्तता से अकबर को एक पत्र लिख कर भेजा, जिससे यह ध्वनि निकलती थी कि अकबर अपने पिता ही के आदेश से राठौरों से मिल गया था और उन्हें उसके नाश के लिये षड्यंत्र रचने पर उसने उत्साह प्रदान किया है। साथ ही ऐसा प्रबंध किया था कि वह पत्र अकबर को न मिल कर उसके चरित्र मित्रों को मिले। औरंगज़ेब की चाल न समझ कर राठौर बिगड़ गए और अकबर का साथ छोड़ कर लौट गए।

२ दुर्गादास अकबर को स्वयं महाराज शम्भू जी के पास दक्षिण पहुँचा आया था। वहाँ से वह फ़ारस चला गया जहाँ अपने पिता की मृत्यु के पहले ही मर गया।

३ औरंगज़ेब की मृत्यु पर अजीतसिंह ने जोधपुर के अध्यक्ष निज़ाम कुली ख़ाँ को भगा कर उस पर अधिकार कर लिया था।

पहुँचने पर यह उससे मिले और तसल्ली पाने पर सेवा में आए। क्षमा-प्राप्ति पर तीन-हजारी मन्सब से यह सम्मानित हुए।

(जब बादशाह कामबख्श का सामना करने को दक्षिण चले तब) ये रास्ते ही से राजा जयसिंह कछवाहा से मिलकर आवश्यक सामान साथ ले तथा खेमों को सेना ही में छोड़ कर देश चल दिए। दक्षिण से लौटने पर बादशाह ने इन्हें दंड देने का विचार किया, पर सिक्ख जाति के विद्रोह से (जो पंजाब में जारी पर था) उस कार्य में रुकावट पड़ गई। समय का विचार कर उनके किए न किए पर परदा डाल कर खानखानाँ के मध्यस्थ होने से यही निश्चय हुआ कि वे राजा जयसिंह के साथ खड़ी सवारी सेवा कर देश को लौट आवेंगे और वहाँ का संबंध ठीक कर तब दरबार में आवेंगे। इसके बाद (कि संसार सर्वदा नया स्वाँग लाता रहता है) बहादुर शाह की, लाहौर पहुँचने पर, मृत्यु हो गई और शाहजादों में युद्ध की तैयारी हुई। अंत में फर्रुख़-सियर बादशाह हुआ[१]। उसकी बादशाहत के दूसरे वर्ष हुसेन अली खाँ अमीरुलउमरा अजीतसिंह को दमन करने के लिये नियुक्त किया गया। वे खाँ से दब कर भेंट देना स्वीकृत करने

---

१ बहादुर शाह की मृत्यु पर उसके तीन पुत्रों – जहाँदारशाह, अजीमुश्शान तथा जहाँशाह में युद्ध हुआ, जिसमें सब से बड़ा जहाँदार शाह विजयी होकर बादशाह हुआ। अजीमुश्शान के पुत्र फर्रुख़सियर ने सैयदों की सहायता से इसे परास्त कर गद्दी पर अधिकार कर लिया।

पर क्षमा किए गए[1]। पुरानी प्रथानुसार अपनी पुत्री का फ़र्रुखसियर से विवाह किया। इन्हें गुजरात की सूबेदारी मिली। इसके अनन्तर सैयदों से मिल कर यह मुहम्मद फ़र्रुखसियर के राज्य के अंत में आज्ञानुसार अहमदाबाद से दरबार आए और इन्होंने महाराज की पदवी पाई।

पूर्वोक्त बादशाह के क़ैद करने में यह भी सैयदों के सम्मतिदाताओं में से थे[2]। इस कारण इनकी विशेष कुख्याति हुई और मुहम्मद शाह के राज्यारंभ में गुजरात की इनकी सूबेदारी भी छिन गई। इस पर इन्होंने बिगड़ कर अजमेर प्रान्त को अधिकृत कर लिया। इसके अनंतर (जब सरदार लोग ससैन्य इन पर भेजे गए

---

१ सन् ११२४ हि० (सन् १७१२ ई०) में अमीरुल्उमरा हुसेन अली खाँ महाराज अजीतसिंह का दमन करने के लिये भेजे गए थे जिन्हें फ़र्रुखसियर ने गुप्त रूप से हुसेन अली को परास्त कर मार डालने के लिये लिखा था। इसी लिये दोनों ने मेल संधि कर दरबार में अपनी शक्ति बढ़ाई।

२ सन् १७१८ ई० में फ़र्रुखसियर ने इन्हें दिल्ली बुलवाया था, पर इन्होंने सैयदों का ही पक्ष लिया। फ़र्रुखसियर और सैयद भ्राताओं में वैमनस्य बहुत बढ़ गया था और एक दूसरे का नाश करना चाहते थे। सैयदों से राजा के मिलने से बादशाह का पक्ष कमजोर पड़ गया जिससे कुछ समय के लिये फिर समझौता हो गया। परन्तु अंत में एक वर्ष के भीतर ही फ़र्रुख़-सियर मारा गया और इन्होंने उसकी रक्षा का कोई प्रयत्न नहीं किया। कहा जाता है कि यह अपनी कन्या को भी जो फ़र्रुखसियर को ब्याही थी अपने साथ लेते गए थे जो तैमूरी वंश के नियम के विरुद्ध था।

ये) यह स्वदेश चले गए[1]। पुतलीगढ मे उनकी सेना थी जिसे बादशाही सेना ने घेर लिया। अंत मे संधि हो गई और निश्चित हुआ कि बडे पुत्र अभयसिंह पिता की ओर से दरबार जायँ। दरबार पहुँचने पर वहाँ के सरदारों के बहकाने से पितृ-ऋण को भुला कर अभयसिंह ने अपने छोटे भाई बख्तसिंह को लिखा और उसने अजीतसिंह को सुप्तावस्था में स्वर्ग भेज दिया[2]। तब अभय-

१. चौथे वर्ष में शरफुद्दौला इरादतमंद ख़ाँ को बाइस सरदारों के साथ महाराज अजीतसिंह की चढ़ाई पर नियत किया था। पूर्वोक्त ख़ाँ ने अजमेर पहुँच कर थोड़े ही युद्ध के अनन्तर उसे अधीन कर लिया और दुर्ग इनसी को, जो महाराज के अधिकार में था, विजय कर उनके बडे पुत्र अभयसिंह को अच्छी भेंट सहित पूर्वोक्त सरदारों के साथ दरबार में लाए। (तारीख़मुजफ़्फ़री)

२. कुछ लोगों का कथन है कि महाराज अजीतसिंह ने विद्रोह मचा रखा था, इससे बादशाह और वजीर कमरुद्दीन खाँ वजीरुलमुमालिक एतमादुद्दौला ने बख्तसिंह को उसके पिता के कुल राज्य का अधिकार देने की प्रतिज्ञा करके पिता के मारने पर ठीक किया और उसने राज्यलिप्सा के कारण पिता को मार डाला। (तारीख़ मुजफ़्फ़री)

यह घटना आषाढ शु० १३ स० १७८१ को हुई थी (प्रा० रा० भाग ३, पृ० २२४)। फारसी के अन्य इतिहासों में इस घटना का कोई इसी प्रकार वर्णन करते हैं, कोई घटना का उल्लेख मात्र कर देते हैं और कोई, जैसे तजकिरतुस्सलातीन, यों लिखते हैं—'अजीतसिंह अपने पुत्र बख़्तसिंह की स्त्री पर आसक्त हो गया था जिससे अपमानित और दुःखित होकर बख़्तसिंह बदला लेने का अवसर ढूँढ़ने लगा। एक रात्रि में जब अजीतसिंह शराब पीकर सोया हुआ था, तब उसने उसका काम तमाम कर दिया। जो कुछ कारण रहा हो, बख़्तसिंह पितृहंता अवश्य थे और इस हत्या में बादशाह मुहम्मद शाह का हाथ भी अवश्य था।

सिंह महाराज की पदवी सहित सन् ११४० हि० (सं० १७८४) में सर बुलन्द खाँ के स्थान पर गुजरात के सूबेदार हुए और स्वदेश जाकर एक वर्ष वहाँ का प्रबन्ध ठीक करने में लगा दिया। इस पर भी मुहम्मद शाह के ११ वें वर्ष में गुजरात जाकर इन्हें मराठों को चौथ देनी पड़ी, पर जब उनका उत्कर्ष दिनोंदिन बढ़ता देखा, तब १५ वें वर्ष में अपने राज्य में वापस चले आए और वह पूरा प्रांत मराठों के अधिकार में चला गया[1]।

महाराज अजीतसिंह के दो पुत्र थे। पहले अभयसिंह थे

१ कंठाजी कदम बांडे नामक मराठा सरदार ने इस प्रांत में लूट मार आरम्भ की थी, जिसकी मृत्यु पर उसके पुत्र त्र्यंबक राव तथा सहकारी पीलाजी गायकवाड़ इसी प्रांत में रह कर यह कार्य चलाते रहे। सन् १७२८ ई० के अन्त में बाजीराव ने अपने भाई चिमना जी को ससैन्य गुजरात भेजा। सरबुलंद खाँ ने चौथ तथा सरदेशमुखी देने की प्रतिज्ञा कर संधि कर ली। सन् १७३१ ई० में त्र्यंबकराव दाभाडे के युद्ध में मारे जाने पर गायकवाड़ सरदार उन्नति करते चले गए। यद्यपि मुहम्मद शाह ने सरबुलंद खाँ की सहायता नहीं की थी पर इस संधि से क्रुद्ध होकर उसे उस पद से हटा कर अभयसिंह को सूबेदार बनाया। इन्होंने पीला जी से बड़ौदा छीन लिया, पर इसके अनन्तर यह कई युद्धों में परास्त हुए। सन् १७३२ ई० में अभयसिंह के एक दूत ने पीला जी को संधि की बातचीत करते समय मार डाला। इसके भाई महादा तथा पुत्र दामा जी ने चढ़ाई कर कुछ प्रांत अधिकृत कर लिया और अभयसिंह जोधपुर भाग गए। वह पूरा प्रांत सन् १७५२ ई० में साम्राज्य से निकल कर मराठों के हाथ चला गया। पारस निस कृत मराठों का इतिहास भा० १ पृ० ३८६–९१ तथा ४११–२।

२. वस्तुतः इनके बाईस पुत्र थे।

जिनका वृत्तांत दिया जा चुका है, और दूसरे बख्तसिंह थे जो पिता की मृत्यु पर स्वदेश के अधिकारी हुए। उनके बाद उनके पुत्र विजयसिंह[1] ग्रन्थलेखन के समय राजा थे। ये प्रजा-पालन, निर्बलों की सहायता तथा सबलों का दमन करने के लिये प्रसिद्ध थे।

सुलतान मुहम्मद अकबर का वृत्तांत इस प्रकार है कि अजमेर के पास से भागने पर (कहीं शरण न पाने से) वह शंभाजी भोंसला के यहाँ चले गए। शंभा जी ने कुछ दिन सत्कार कर अपने यहाँ रखा। (जब औरंगजेब काफिरों को मारने के लिये दक्षिण को चला तब) ये जहाज़ पर सवार होकर ईरान को चले। जब जहाज़ मसकत पहुँचा, तब वहाँ के अध्यक्ष ने इन्हें अपनी रक्षा में रखकर औरंगजेब को यह वृत्तांत लिख भेजा। इसी समय (इनके मसक़त आने का समाचार शाह सुलमान सफ़वी ने भी सुना और सुलतान मुहम्मद अकबर ने पहले ही अपनी इस इच्छा की उसे सूचना दे दी थी, इससे) शाह ने मस-क़त के अध्यक्ष को (जो ईरान के शाह का पक्षपाती था) ताकीद से लिख कर अकबर को बुलवाया और बड़े आदर से उसे अपने पास रखा। सुलतान ने सहायता चाही, पर शाह ने कहा कि अभी

---

१. अजीतसिंह की मृत्यु पर अभयसिंह जोधपुर के राजा हुए और नागौर की जागीर बख्तसिंह को मिली। अभयसिंह की मृत्यु पर उनके पुत्र रामसिंह राजा हुए। पर उन्हें गद्दी से हटा कर बख्तसिंह राजा हो गए, जिनके पुत्र विजयसिंह थे।

तुम्हारे पिता जीवित हैं, उसके अनन्तर (जब भाइयों से ही निपटना रहेगा, तब) उपयुक्त तथा योग्य सहायता दी जायगी। सुलतान ने इससे दुःखित होकर कहा कि यहाँ का जलवायु हमारे उपयुक्त नहीं है, इससे यदि हमें विदा करें तो कंधार के पास गर्मसीर में रहें। शाह ने प्रार्थना के अनुसार विदा किया और व्यय के लिये वेतन नियत कर दिया। वहाँ पहुँचने पर सुलतान अकबर सन् १११५ हि० (सन् १७०३ ई०) में मर गए।

२—राजा अनिरुद्ध गौड़

यह राजा विट्ठलदास के सब से बड़े पुत्र थे। जब इनके पिता मेर के फ़ौजदार नियत हुए, तब यह अपने पिता के प्रतिनिधि रूप उस ताल्लुके में रहते थे। १९ वें वर्ष (सन् १६४५ ई०) में शाहजहाँ ने इनका मन्सब बढ़ाकर डेढ़ हज़ारी, १००० सवार का कर दिया। इन्हें २४ वें वर्ष में झंडा मिला और २५ वें वर्ष जब इनके पिता की मृत्यु हो गई, तब इनका मन्सब बढ़ा कर तीन हज़ारी, ३००० सवार दो और तीन घोड़ेवाला[1] कर दिया और राजा की पदवी, डंका, घोड़ा और हाथी देकर सम्मानित किया। पिता की मृत्यु पर रनथँवर (रणथम्भौर) की दुर्गाध्यक्षता भी इन्हें मिली। इसके अनंतर शाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर के साथ (जो द्वितीय बार कंधार[2] की चढ़ाई पर गए थे) नियुक्त हुए। वहाँ से लौटने पर २६वें वर्ष यह अपनी जागीर पर गए। इसके अनंतर शाहज़ादा दाराशिकोह के साथ फिर कंधार की चढ़ाई पर

---

१. इनका वृत्तांत अलग ४६ वें शीर्षक में दिया गया है।

२. सन् १६४८ ई० में फ़ारस के कंधार पर अधिकार कर लेने पर उसी वर्ष और सन् १६५१ ई० में दो बार औरंगज़ेब ने तथा सन् १६५२ ई० में तीसरी बार दाराशिकोह ने उस दुर्ग को लेने का प्रयत्न किया था, पर तीनों चढ़ाइयों में वे विफल रहे।

गए। वहाँ पहुँचने पर रुस्तमखाँ बहादुर फीरोज़जंग के साथ बल्ख गए। २८ वें वर्ष सादुल्ला खाँ के साथ चित्तौड़ को गिराने और राणा को दंड देने गए[1]। ३१ वें वर्ष (सन् १६५७ ई०) में जब सुलतान सुलेमान शिकोह मिरज़ा राजा जयसिंह की अभिभावकता में शुजाअ (जिसने बुरे कर्म किए थे) का दमन करने के लिये नियत हुआ, तब यह भी, मन्सब के बढ़कर साढ़े तीन हजारी ३००० सवार का और तीन घोड़ेवाले हो जाने पर, पूर्वोक्त सुलतान के साथ नियुक्त हुए। औरंगजेब के बादशाह होने पर पहले वर्ष सेना में पहुँचकर मुहम्मद सुलतान के साथ (जो शुजाअ की चढ़ाई पर नियत हुआ था) नियुक्त हुए। इसी समय माँदगी के कारण आगरे में ठहर कर बचे हुए लोगों के साथ आने की इच्छा की थी पर राजधानी से यात्रा करने पर सन् १०६९ हि० (वि० सं० १७१६) में मर गए।

---

१ महाराणा जगतसिंह ने संधि के विरुद्ध चित्तौड़ दुर्ग का जीर्णोद्धार कराना आरंभ कर दिया था जिसे सुनकर शाहजहाँ अप्रसन्न हो गया। पर उसी समय महाराणा का देहांत हो गया, इससे उसने कुछ नहीं किया। सं० १७०९ वि० में जगतसिंह के पुत्र महाराणा राजसिंह गद्दी पर बैठे और इन्होंने अपने पिता की आरंभ की हुई मरम्मत जारी रखी, जिस पर बादशाह ने सं० १७११ वि० में सादुल्ला खाँ के अधीन तीस सहस्र सेना भेज कर मरम्मत किए हुए अंशों को ढहवा दिया। महाराणा ने दाराशिकोह की मध्यस्थता में संधि कर ली।

३—राजा अनूपसिंह बड़गूजर

यह अनीराय सिंह-दलन के नाम से प्रसिद्ध है। बड़गूजर राजपूतों की एक जाति है। इसके पूर्वजगण कृषि से दिन व्यतीत करते थे। कहते हैं कि इसका दादा दरिद्रता के कारण हरिण का शिकार किया करता था और उसी के मांस से अपना जीवन व्यतीत करता था। दैवात् एक दिन जंगल में इसने शेर की शंका कर गोली चलाई, पर वह बादशाही तेंदुए (जिसे हरिण पर छोड़ा था और जो बन में छिपा फिर रहा था) को लगी। सोने की घटी और पट्टे से वह समझ गया कि यह बादशाही है, इसलिये उसका साज उतार कर उसे कूएँ में डाल दिया। जो लोग उसकी खोज में घूम रहे थे, वे कूएँ पर पहुँच कर समझ गए कि यह काम उसी राजपूत का है जो यहाँ अहेर के लिये फिरा करता है। उन्हें उसके घर पर जाने से घटी और पट्टा मिल गया और वे उसे बाँध कर बादशाह अकबर के सामने ले गए। जब बादशाह को कुल वृत्तांत से अवगत किया, तब बादशाह ने उसके साहस और निशानेबाजी से प्रसन्न होकर उसे नौकर रख लिया। उसके शौक (जो गोली चलाने का था) के कारण उसको उसी के उपयुक्त कार्य्य पर नियुक्त किया। उसके पुत्र वीरनारायण को भी मन्सब मिला और वह पिता से भी (पदोन्नति में) बढ़ गया था। जब

इसका पुत्र अनूप अवस्था और समझ को पहुँचा, तब अपने कार्यों से अकबर के राज्य के अंत में सेवकों का सरदार (जिसे खवास भी कहते हैं) हो गया। जहाँगीर के समय में भी यह कुछ दिन यही काम करता रहा।

(जहाँगीर के तुज़ुकी) पाँचवें वर्ष में एक दिन बारी परगना में बादशाह तेंदुओं का अहेर खेल रहे थे। इसी बीच यह बनरखों[1] के एक गुट को (जो अहेर के समय बादशाह के साथ रहते हैं) कुछ दूर पर पीछे साथ ला रहा था कि एक भारी शेर का समाचार सुनकर उस ओर चला गया। बनरखों की सहायता से उसे घेर कर एक मनुष्य को बादशाह के पास समाचार देने के लिये भेजा। यद्यपि दिन का अंत हो चला था और हाथी (जो इस भयानक पशु के शिकार के लिये आवश्यक हैं) भी नहीं थे, पर शेर के शिकार की प्रबल इच्छा रखने के कारण बादशाह घोड़े पर सवार होकर उधर चले। शेर को देखकर बादशाह घोड़े पर से उतर पड़े और दो बार उस पर गोली चलाई। चोटें घातक नहीं थीं, इससे वह नीची भूमि में जा बैठा। (सूर्य्य उतर

---

१ यहाँ फ़ारसी शब्द बारह है जिसके लिये मिस्टर एच बेवरिज लिखते हैं कि मैं इस शब्द को नहीं जानता, पर मआसिर इसका अर्थ कुछ बतलाता है। किंतु इस शब्द के बहुत से अर्थ हैं, जैसे दुर्ग, दुर्ग की दीवार, तेज बोझा बोवत लगन आदि। पर यहाँ यह शब्द बनरखों अर्थात् बनरक्षकों के लिये आया है जो शिकार का पता लगाते हैं और उसे घेर कर अहेरियों को समाचार देते हैं।

गया था और बादशाह शेर का शिकार करने पर तुले हुए थे, पर सिवा शाहजादा शाहजहाँ, राजा रामदास कछवाहा, अनूप-सिंह, एतमादराय, हयातखाँ दारोगा जलघर, कमाल क़रावल तथा तीन चार ख़वासों के और कोई साथ नहीं था, तिस पर भी) वहाँ से कुछ क़दम आगे बढ़कर जहाँगीर ने गोली चलाई। दैवात् इस बार भी ऐसी चोट (कि उसे चोट करने से रोकती) नहीं पहुँची। शेर क्रोध और लज्जा के मारे गुर्राता और दहाड़ता हुआ बादशाह पर दौड़ा। पास के मनुष्य ऐसे घबराए कि उनकी पीठ और बगल के धक्कों से जहाँगीर दो एक पैर पीछे हटकर गिर पड़े। स्वयं कहते हैं कि घबराहट मे दो तीन मनुष्य हमारी छाती पर पाँव रख कर चले गए थे। इसी समय शाहजादे ने तीर चलाया, पर कुछ फल नहीं हुआ। वह क्रुद्ध शेर अनूप के पास (जो बादशाही बदूक लिए हुए बैठा था) पहुँचा। उसने वह लाठी, जो हाथ में लिए हुए था, उसके सिर पर मारी। शेर ने उसको पृथ्वी पर पटक दिया। उस समय (शेर का सिर बादशाह की ओर था, इसलिये) अनूपसिंह ने अपना एक हाथ शेर के मुँह में डाल दिया और दूसरा हाथ उसके कंधे पर डाल कर पकड़ लिया। शाहजादे ने बाईं ओर से तलवार खींच कर चाहा कि उस शेर के कधे पर मारे, पर अनूपसिंह का हाथ वहाँ देखकर उसकी कमर पर मारी। रामदास ने भी तलवार चलाई और हयातखाँ ने भी कई लाठियाँ जड़ीं। शेर अनूप को छोड़ कर भागा। उसने (कि हाथ अँगूठियों के कारण चुटैल

नहीं हुआ था) भी लपककर शेर के पीछे ही पहुँच कर तलवार मारी। जब शेर इस पर घूम पड़ा, तब इसने दूसरी तलवार चेहरे पर ऐसा मारी कि भौंह का चमड़ा कट कर उसकी आँख पर पहुँच गया। इतने ही में सब ओर से आदमी आ गए और काम पूरा समझ कर शेर का अन्त कर दिया। अनूप का अनीराय[1] सिंह-दलन की पदवी मिली और उसका मन्सब बढ़ाया गया। एक दिन जहाँगीर ने किसी कारण उसे कुछ कहा, तब उसने झट जमधर पेट में मार लिया। उस समय से उसका पद और विश्वास बढ़ता गया। कभी कभी सेना की अध्यक्षता भी मिलने लगी। शाहजहाँ के तीसरे वर्ष जब इसका पिता बीरनारायण (जिसका एक हजारी, ६०० सवार का मन्सब था) मर गया, तब अनूपसिंह को राजा की पदवी मिली। १०वें वर्ष (वि० सं० १६९२) में उसके जीवन का प्याला भर गया। तीन हजारी, १५०० सवार के मन्सब तक पहुँचा था। निर्भय और पत्रोत्तर लिखने में योग्यता रखता था। उसका पुत्र जयराम था जिसका वर्णन अलग दिया हुआ है[2]।

---

१ तुजुक में इसका पूरा विवरण दिया है जिसका वृत्तांत संक्षेप में यहाँ दिया गया है। डौ ने भी यह हाल अपने प्राय विवरण में दिया है। तुजुक में जहाँगीर ने अनी का अर्थ सरदार दिया है, पर उसका ठीक अर्थ सेना है। स्यात् जहाँगीर ने अनीराय के अर्थ सेनापति या सरदार को ही अनी का अर्थ मान लिया है। सिंहदलन का अर्थ शेर मारनेवाला ठीक किया है।

२ ३६ में दीर्घक में इसका चरित्र दिया हुआ है।

४—राव अमरसिंह

यह राजा गजसिंह राठौर के सब से बड़े पुत्र[1] थे। आरंभ ही में अच्छा मन्सब मिला था जो शाहजहाँ के दूसरे वर्ष में बढ़कर दो-हजारी, १३०० सवार का हो गया। ८ वें वर्ष में इनका मन्सब बढ़कर ढाई हजारी, १५०० सवार का हो गया और झंडा और हाथी पाकर ये सम्मानित हुए। इसी वर्ष सैयद खानेजहाँ बारह के साथ जुझारसिंह बुँदेला का दमन करने के लिये नियत हुए। जब धामुनी दुर्ग पर अधिकार हो गया, तब खानेदौराँ भीतर गए। अमरसिंह और दूसरे सरदार दुर्ग के बाहर खड़े हुए दिन होने की प्रतीक्षा कर रहे थे तथा लुटेरे लोग भीतर जाकर सामान की खोज में लगे हुए थे। उसी समय दैवात् मशाल का गुल बारूद के ढेर में (जो बुर्ज के नीचे था) गिर पड़ा और वह बुर्ज उड़ गया। पत्थर के टुकड़ों से (जो विशेषत दुर्ग के बाहर

---

१ यद्यपि यह मारवाड़-नरेश गजसिंह के सबसे बड़े पुत्र थे, पर सं० १६९० वि० कृ० वैशाख मास में उन्होंने अपने छोटे पुत्र यशवंतसिंह को युवराज की पदवी और इन्हें देश-त्याग की आज्ञा दी थी। यह बादशाह शाहजहाँ के दरबार में गए जिसने इन्हें अच्छा मन्सब, राव की पदवी तथा नागौर की जागीर दी (टाड्स कृत राजस्थान, भा० २, पृष्ठ ८७०-१)

की ओर गिरे थे) इनके कई साथी मारे गए[१]। वहाँ से लौटने पर इनका मन्सब तीन हजारी, २५०० सवार का हो गया।

नवें वर्ष में जब बादशाह स्वयं माहूजी भोंसला का दमन करने (जिसने निज़ामुलमुल्क के ग्वालियर में क़ैद हो जाने पर भी उसके एक संबंधी लड़के को लेकर विद्रोह आरम्भ कर दिया था) के लिये दक्षिण चले और नर्मदा नदी पार करके दौलताबाद दुर्ग के पास पड़ाव डाला, तब तीन सरदारों को सेनापति बना कर सेना सहित भेजा और इन्हें खानेदौराँ बहादुर के साथ किया। १०वें वर्ष में खानेदौराँ के साथ यह बादशाह के पास आए। ११वें वर्ष में अली मर्दां खाँ ने कंधार दुर्ग शाही सेवकों को सौंप दिया, और बादशाह ने इस आशंका से कि शाह स्वयं इस ओर न आवे शाहज़ादा सुलतान शुजाअ को बड़ी सेना के साथ उस ओर भेजा। इन्हें भी खिलअत, चाँदी के जीन सहित घोड़ा और डंका देकर शाहज़ादा के साथ कर दिया। इसके अनन्तर (जब इसी वर्ष इनके पिता मर गए और इनके छोटे भाई जसवंतसिंह को राजा की पदवी और गद्दी कुछ कारणों से—जिनका वर्णन गजसिंह के चरित्र[२] के अंत में दिया गया है—मिली, तब) इन्हें ५०० सवार का मन्सब बढ़ाकर तीन हजारी, ३०० सवार का मन्सब और राव की पदवी मिली। १४वें वर्ष में जब सुलतान

---

१. इस युद्ध का विशेष विवरण जुझारसिंह की जीवनी में देखिए।

२. १२ वें शीर्षक की जीवनी देखिए।

मुराद द्वितीय बार काबुल भेजा गया, तब यह भी उसी के साथ नियुक्त हुए। इसके अनन्तर राजा वासू के पुत्र राजा जगतसिंह को दंड देने के लिये आज्ञा मिली जो विद्रोही हो गया था। तब यह शाहज़ादे के साथ गए और १५ वें वर्ष में राजा के अधीनता स्वीकृत कर लेने पर (शाहज़ादा भी पिता के पास लौट आया था) इसका भी अच्छा स्वागत हुआ। इसी वर्ष जब फ़ारस के बादशाह का कंधार की ओर अग्रसर होना सुना गया, तब सुलतान दाराशिकोह उस ओर भेजे गए और यह भी एक हजारी मसब बढ़ने से चार हज़ारी, ३००० सवार का मन्सब पाकर शाहज़ादे के साथ नियुक्त हुए। वहाँ से (कि दैव योग से फ़ारस के बादशाह की मृत्यु हो गई थी और शाहज़ादा आज्ञानुसार लौट आया था) १६ वें वर्ष में यह भी लौट आए। १७ वें वर्ष में जमादिउल्अव्वल सन् १०५४ हि० (२५ जुलाई सन् १६४४ ई०) को (कुछ दिन माँदे होने के कारण दरबार में नहीं आने के अनतर) अच्छे होने पर दरबार मे आए। कोर्निश करने के अनन्तर एकाएक जमधर खींचकर सलाबतख़ाँ बख्शी को मार डाला[२]

---

[१] डच पादरी बालड्यूस लिखता है कि उक्त घटना ४ अगस्त सन् १६४४ ई० को दोपहर के बाद हुई थी, और इसका कारण यह था कि सलावत ख़ाँ ने अमरसिंह से यह पूछ कर कि वह दरबार में इसके पहिले क्यों नहीं हाज़िर हुए, उन्हें कुछ कह दिया था।)

[२] राव अमरसिंह और सलावत ख़ाँ बख़्शी में बीकानेर की सीमा के विषय में कुछ मनोमालिन्य हो गया था। बीमार होने के कारण या जैसा

(जिसका विवरण अंतिम के वृत्तांत में दिया गया है)। इस घटना पर खलीलुल्ला खाँ और राजा विट्ठलदास गौड़ के पुत्र अर्जुन[1] ने उस पर आक्रमण किया और उसने दो एक बार अर्जुन पर भी जमधर चलाया। इसी समय खलीलुल्ला खाँ ने अमरसिंह पर तलवार चलाई और अर्जुन ने भी तलवार की दो चोटें कीं। इसके साथ ही और लोगों ने पहुँच कर उसका काम तमाम किया[2]। बादशाह ने इस घटना के कारण की बहुत कुछ पूछ ताछ की, पर सिवाय इसके कि बराबर नशा खान (इससे कुछ दिन बीमार भी थे) से ऐसा हुआ और कुछ पता नहीं लगा। परन्तु इसके पहिले इसके मनुष्यों के (कि नागौर में जागीर थी)

कि अमरसिंह के कवि 'बनारसी' का कथन है, छुट्टी से अधिक दिन व्यतीत करने पर किए गए जुर्माने के रुपए न देने के कारण सलाबत ख़ाँ बख्शी ने दरबार में इनसे रुपये तकाजा किया जिस पर इन्होंने रोष प्रकट किया। सलाबत ख़ाँ ने इस पर इन्हें गँवार कहा जिससे क्रुद्ध होकर इन्होंने उसे मार डाला। दोहा भी है—

उत गँवार मुख तें कही इत निकसी जमधार।
'गर' कहन पायो नहीं कीन्हो जमधर पार॥

टाड कृत राजस्थान भाग २ पृ ८०१ में भी प्रायः ऐसा ही वाक्य बतलाया गया है।

१ इनका विशेष वृत्तांत विट्ठलदास की जीवनी संख्या ३ में देखिए।

२ बैकमस लिखता है— अमरसिंह को गजीखाँ (खलीलुल्ला ख़ाँ) और राजा विट्ठलदास के पुत्र (अर्जुन) ने मार डाला। बादशाह ने अमर के शव को नदी में फेंक देने की आज्ञा दी जिससे राजपूत बहुत क्रुद्ध हुए।

और बीकानेर के जागीरदार राव सूर मुरटिया के पुत्र राव कर्ण[1] (जो दक्षिण की चढ़ाई पर नियत था) के मनुष्यों के बीच सोमा के लिये कुछ झगड़ा[2] हुआ था, जिसमे इसके उगाहने वाले आदमी मारे गए थे। इसने अपने आदमियों को लिख भेजा था कि फिर सेना एकत्र कर कर्ण के सवारों पर आक्रमण करो। कर्ण ने यह बात सलाबत खाँ को लिख कर शाही अमीन के लिये प्रार्थना की। सलाबत खाँ ने बादशाह से यह वृत्तांत कह कर अमीन नियत करा दिया। स्यात् इस घटना को पक्षपात समझ कर उसने ऐसा साहस किया होगा।

इस घटना के अनंतर अमरसिंह के शव को मीर तुजुक मीर खाँ और दौलतखान. खास के मुंशी मुल्कचंद बादशाह की आज्ञा से दीवान खास के बाहर लाए और उनके आदमियों को बुलवाया कि उसको घर ले जाकर अन्त्येष्टि क्रिया करें। उसके पंद्रह सेवक यह सब वृत्तांत जान कर तलवार और जमधर हाथ में ले कर लड़ने को तैयार हुए। मुल्कचंद मारा गया और मीरखाँ घायल होकर दूसरे दिन मर गया। इतने में अहदियों आदि ने आकर उन लोगों को मार डाला। छः अहदी मारे गए और छ घायल. हुए। इतने पर भी यह झगड़ा नहीं निपटा और कुछ मनुष्यों ने यह निश्चित किया कि अर्जुन के घर चल कर उसे

---

१ ७ वे शीर्षक में इनका वृत्तांत दिया हुआ है।

२ बादशाहनामा भाग २, पृ० ३८२।

मार डालें। बल्लू राठौर और भाऊसिंह राठौर[1] (जो पहिले अमरसिंह और उसके पिता के नौकर थे और जिन्होंने उसके अनंतर बादशाही नौकरी कर ली थी) भी इसमें सम्मिलित थे।

जब यह बात बादशाह से कही गई, तब इस झुंड को मूर्खता को क्षमा करके एक आदमी को आज्ञा दी कि जाकर उनको समझावे कि यदि वे चाहते हों तो बाल-बच्चा के साथ अपने डेरा लौट जायँ। क्यों वे अपने पर तथा सामान के नाश के कारण होते हैं? इसके अनंतर (जब उनका हठ मालूम हो गया, तब) सैयद खानेजहाँ बारह को शरीररक्षकों और रशीदखाँ अन्सारी (जो उस समय द्वार-रक्षक था) के साथ उस झुंड को मारने काटने भेजा। इन सब ने भी सामना किया और जब तक शरीर

---

१ बादशाहनामा भा० २, पृ० ३८ और टाड कृत राजस्थान भा० २ पृ० ८०९ में इस घटना का विवरण दिया हुआ है। बल्लू चंपावत तथा भाऊ कंपावत राठौरों ने अमरसिंह का उनके देह-त्याग के समय साथ दिया था, पर इन दोनों ने बादशाह से अलग जागीरें भी पाई थीं। अमरसिंह की मृत्यु पर उनका शव जो शाही आज्ञानुसार दुर्ग के मैदान में फेंक दिया गया था लाने के लिये ये दोनों वीर अमरसिंह की रानी हाड़ी की आज्ञा से चुने हुए कुछ सैनिक लेकर किले में घुस गए और लड़ते हुए शव को लेकर चले, आप तथा रानी के सती होते होते ये दोनों वीर भी मारे गए।

में साँस रही, तब तक लड़े और अंत में मारे गए। बादशाही मनुष्यों में सैयद अब्दुर्रशीद बारह' (जो वीर युवक था), उसके भाई सैयद मुहीउद्दीन का पुत्र गुलाम महम्मद और अन्य पाँच सबंधो मारे गए। १८ वें वर्ष में अमरसिंह का पुत्र रायसिंह[१] दरबार में आया और एक हज़ारी, ७०० सवार का मन्सब पाकर प्रतिष्ठित हुआ। १९ वें वर्ष में सुलतान मुराद के साथ बलख और बदख़शाँ के काम पर नियत हुआ और २५ वें वर्ष में डेढ़ हज़ारी, ८०० सवार का मन्सब पाकर सुलतान औरंगजेब बहादुर के साथ कंधार की दूसरी चढ़ाई पर गया। २६ वें वर्ष में यह दारा शिकोह के साथ फिर वहीं गया और २८ वें वर्ष में सादुल्ला ख़ाँ के साथ चित्तौड़ को नष्ट करने पर नियुक्त हुआ। ३० वें वर्ष में २०० सवार इसके मन्सब में और बढ़े।

जब औरंगजेब बादशाह हुए और विजयी सेना मथुरा पहुँची, तब रायसिंह ने आकर अधीनता स्वीकृत की और ख़लीलुल्ला ख़ाँ के साथ दारा शिकोह का पीछा करने पर नियत हुआ। सुलतान शुजाअ के युद्ध में भी यह बादशाह के साथ था। अजमेर लौटने पर महाराज जसवंतसिंह को चिढ़ाने के लिये इसे राजा की पदवी, ख़िलअत, एक जोड़ा हाथी, जड़ाऊ तलवार, डंका, एक लाख रुपया पुरस्कार और चार हज़ारी, ४००० सवार का मन्सब देकर राठौर जाति का सरदार और जोधपुर का राजा

१ बादशाह शाहजहाँ ने पिता के औद्धत्य का विचार न कर पुत्र रायसिंह को नागौर की जागीर पर बहाल रखा।

मनाया[1]। दारा शिकोह के साथ दूसरे युद्ध में यह सेना के मध्य में था। इसके अनन्तर यह दक्षिण की चढ़ाई पर जानेवाली सेना में नियत हुआ, जहाँ मिरजा राजा जयसिंह के साथ शिवा जी भोंसला के राज्य पर धावा करने और आदिलखानी राज्य के लूटने में अच्छा काम किया। १६ वें वर्ष में (जब खानेजहाँ बहादुर कोकल्ताश दक्षिण का सूबेदार हुआ) यह खाँ के हरावल में नियत हुआ। १८ वें वर्ष में अब्दुलकरीम मियान (जो सेना सजाए था) के साथ युद्ध की तैयारी करते समय धोखा होकर मर गया। औरंगाबाद नगर के बाहर राव रायपुरा इसी के नाम पर बसा है। इसके अनंतर इसके पुत्र इंद्रसिंह को योग्य मन्सब मिला और उसने अपने देश की सरदारी पाई। २२ वें वर्ष में महाराज जसवंतसिंह की मृत्यु पर इसे राजा[2] की पदवी, खिलअत,

---

१ शुजाअ के साथ सं० १७१६ वि० में जो खजवा युद्ध हुआ था, उसमें महाराज जसवंतसिंह ने शुजाअ से मिलकर औरंगजेब को धोखा देने का भी प्रयत्न किया था। उससे चिढ़ कर औरंगजेब ने दिल्ली लौटने पर एक सेना उन्हें दमन करने को भेजी थी। इस सेना के साथ रामसिंह को जोधपुर का राजा नियुक्त करके भेजा था, पर जब दारा के सैन्य एकत्र करने के समाचार के साथ यह सुना कि जसवंतसिंह भी उसकी सहायता करने को अपनी सेना ठीक कर रहे हैं तब इस चढ़ाई को नीतिविरुद्ध समझ कर रोक दिया और महाराज जयसिंह के द्वारा पत्र व्यवहार कर उन्हें पुनः मन्सब दे और मिला लिया।

२ जब सं० १७३५ वि० में महाराज जसवंतसिंह की मृत्यु हो गई तब औरंगजेब ने मारवाड़ पर अधिकार करने के इस सुअवसर को नहीं

जड़ाऊ तलवार, सोने के साज़ सहित घोड़ा, हाथी, झंडा, तोग और डंका मिला। २४ वें वर्ष में सुलतान मुअज्जम के साथ सुलतान मुहम्मद अकबर का पीछा करने गया था[1]। इसके अनंतर बहुत दिनों तक फीरोज़ जंग[2] के साथ काम करता रहा और ४८ वें वर्ष मे तीन हज़ारी, २००० सवार का मन्सब पाया। औरंगजेब की मृत्यु पर आजम शाह के पास जाकर पाँच-हज़ारी हो गया[3]। जुल्फ़िकार खाँ के साथ सुल्तान बेदार बख्त (जो

जाने देना चाहा। उस समय तक महाराज निस्सतान ही थे, क्योंकि तीन मास बाद उनकी गर्भवती रानी से महाराज अजीतसिंह का जन्म हुआ था। बादशाह ने मारवाड़ पर अधिकार करने को सेना भेज दी और छत्तीस लाख रुपए नजराने के लेकर इंद्रसिंह को मारवाड का अधीश नियुक्त किया। जब राठौरों ने स्वतंत्रता के लिये लड़ाई आरंभ की, तब बादशाह स्वयं अजमेर आया। यहीं इसका पुत्र अकबर विद्रोही हो गया, पर औरंगजेब के कौशल के आगे सभी परास्त हुए। इतने पर भी शांति स्थापित न होती देख स० १७३८ में इंद्रसिंह से मारवाड लेकर उन्हें नागौर लौटा दिया। इसके अनंतर अकबर के मराठों के आश्रय में पहुँच जाने पर संधि कर बादशाह दक्षिण चले गए।

१ मारवाड युद्ध की एक घटना है जिसमें मुअज्जम के साथ यह तथा अन्य राजे दुर्गादास तथा अकबर पर भेजे गए थे, पर जालौर के पास राठौरों ने इन लोगों का सामान लूट लिया था।

२ दक्षिण के युद्ध में बादशाह के साथ बहुत दिनों तक वहीं रहा।

३ औरंगजेब के तीन पुत्र मुअज्जम, आजम और कामबख्श में राज्य के लिये युद्ध हुआ था। आजम और कामबख्श को मार कर मुअज्जम बहादुर शाह के नाम से बादशाह हुआ। इंद्रसिंह ने आजम का पक्ष लिया था, इसलिये देश को लौट गया।

पिता के इच्छानुसार अहमदाबाद से उज्जैन आ पहुँचा था, पर जिसके पास कुछ सेना न थी) के यहाँ आने के लिये नियुक्त हुआ, पर रास्ते से साथ छोड़ कर अपने डेरा चला गया। इसके एक पौत्र हरनाथ सिंह को इसके पहिले दक्षिण आने पर बरार प्रांत के एक महाल में जागीर मिली थी। ११९० हि० (सन् १७७६ ई०) में यह वहीं मर गया। इन्द्रसिंह का पौत्र रामसिंह[1] (जो बहुत दिन दक्षिण में रह कर डेरा को लौटा था) रास्ते में मीणों के हाथ मारा गया।

---

१ यह इस राजस्थान की एक पद टिप्पणी में रामसिंह की वंशपरंपरा यों दी हुई है—रामसिंह के पुत्र हाथीसिंह उनके अनूपसिंह उनके हठीसिंह तथा उनके मोहकमसिंह थे।

५—राजा इन्द्रमणि धँदेरा

राजपूतों में धँदेरा एक जाति है। इनमे तथा बुँदेलों और पँवारों में सम्बन्ध[1] होता है। इनका देश मालवा के अंतर्गत सरकार सांरगपुर[2] सहरा में एक गाँव है जो दफ़तर मे सहार बावा हाजी लिखा जाता है। अकबर के समय में राजा जगमणि धँदेरा सेवा में आया। शाहजहाँ के समय धँदेरा प्रांत राजा विट्ठलदास गौर के भतीजे शिवराम को मिला। उसने कुछ सेना के साथ जाकर बलात् राजा इंद्रमणि को वहाँ से (जो उस समय वहाँ का जमींदार था) निकाल दिया। इस पर इंद्रमणि ने सेना एकत्र कर विजय प्राप्त करके उस प्रांत पर पुन अधिकार कर लिया। तब १०वें

---

१. बुँदेले गहिरवार राजपूतों के वशज हैं। परन्तु राजपूताना, मालवा, बघेलखड आदि के राजपूत इनके साथ विवाह आदि का सबंध नहीं करते थे। मुग़लों के समय बुँदेलों के बड़े बड़े राज्य थे, पर उस समय भी ऐसे सबध नहीं हुए और न स्यात् अभी तक होते हैं। पँवार और धँधेरे अपने को चौहान क्षत्रिय बतलाते हैं, पर इनका भी अन्य राजपूतों से वैवाहिक संबन्ध नहीं होता। बुँदेलों से इन दोनों का संबन्ध बराबर होता आया है।

२ यह देवास राज्य के अतर्गत कालीसिंध नदी के दाहिने तट पर बसा हुआ है। इंदौर और गूना के बीच की सड़क पर पड़ता है और प्राय दोनों के मध्य में है।

वर्ष में उसी बादशाह के सरदार मोतमिदखाँ और राजा विट्ठलदास शिक्षित सेना के साथ उसे दंड देने के लिये नियुक्त हुए और आकर दुर्ग सहरा का घेर लिया। पूर्वोक्त राजा (इन्द्रमणि) क्षमा माँगकर उनके साथ दरबार में गया और आज्ञानुसार दुर्ग जूनेर में क़ैद हुआ। उस वर्ष (जब औरंगजेब ने अपने पिता की मॉदगी। देखने के लिये हिन्दुस्तान की ओर जाने का विचार किया, तब) इनका मन्सब सेहहजारी, २००० सवार तक बढ़ाकर शाहजादा मुहम्मद सुलतान के साथ आगे आगे उत्तरी भारत को भेजा। महाराज जसवंतसिंह के साथ युद्ध[1] होने के अनंतर यह झंडा और डंका पाकर सम्मानित हुआ। शाहजादा मुहम्मद शुजाअ के साथ की लड़ाई के अनंतर बंगाल में इसकी नियुक्ति हुई जहाँ अपनी मृत्यु तक बादशाही कामों में लगा रहा।

---

1 औरंगजेब तथा जसवंतसिंह के बीच धर्मत ग्राम के पास सन् १६५८ ई० में युद्ध हुआ था और औरंगजेब तथा शुजाअ के मध्य खजवा का युद्ध उसी वर्ष के अंत में हुआ था।

९—ऊदाजीराम

यह दक्षिणी ब्राह्मण था। अपनी बुद्धिमानी से यह प्रसिद्ध हुआ और माहोर से मेहकर तक की भूमि पर इसने अधिकार कर लिया। सौभाग्य, चालाकी तथा कार्य-शक्ति से मलिक अंबर का विश्वासपात्र होकर यह ऐश्वर्यशाली भी हो गया। जहाँगीर के समय मे बादशाही नौकरी पाने पर इसे चार हजारी, ४००० सवार का मन्सब मिला और यह दक्षिण की सहायक सेना में नियत हुआ। धूर्त्तता की भी इसमें कमी नहीं थी, इससे दक्षिण के सूबेदारो में भी इसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। जब विजयी सेना दक्षिणी बालाघाट में पहुँची, तब यह, उस प्रांत का अधिक हाल जानने के कारण, अच्छे कामो पर नियुक्त हुआ। इसने प्रजा का काम ऐसा मन लगा कर किया कि उनमें इसके प्रति बहुत अधिक विश्वास हो गया। जहाँगीर के १७वें वर्ष मे युवराज शाहजहाँ बंगाल जाने का साहस कर बुरहानपुर से माहोर आया। दक्षिण के सरदारों के साथ इसकी केवल दिखावट की मित्रता न थी, इससे वहाँ से विदा होते समय काम से जो कुछ अधिक सामान था, उसको हाथियों सहित ऊदाजी राम की रक्षा में माहोर के दुर्ग में छोड़ा था। इसने बादशाही कामों में

भी अच्छा प्रबन्ध किया था, इससे महाबतखाँ ने इसकी प्रतिष्ठा और बढ़ाई[1]।

१९वें वर्ष में बादशाही सरदारों को आदिलशाहियों की सहायक सेना से संयुक्त होकर मलिक अंबर के साथ अहमदनगर से पाँच कोस पर मौजा भातुरी में युद्ध[2] करने का अवसर पड़ गया। बीजापुरी सेना के अध्यक्ष मुल्ला मुहम्मद लारी के मारे जाने से उस सेना का प्रबंध बिगड़ गया तथा जादोराव और ऊदाजी राम भाग गए। इन कारणों से बादशाही सेना को भारी पराजय मिली। लश्करखाँ, अबुलहसन, मिर्जाखाँ मनोचहर,[3] दक्षिण का बख्शी आकिदखाँ—अपने पुत्र रशीद सहित—और बयालिस अन्य मन्सबदार मलिक अंबर के हाथ पकड़े गए। इस पराजय की यही बड़ी अप्रतिष्ठा थी। जादवराव खानसहिब अच्छा सरदार था। ऊदाजी राम ने लौट कर भागने का दोष सैनिकों पर मढ़ा, पर विश्वास कम हो जाने के कारण यह प्रतिष्ठा

---

१ जिस समय महाबत खाँ मुल्ला मुहम्मद लारी से मिलने बीजापुर गया उस समय बुरहानपुर में सरबुलंद राय लारी राय तथा ऊदाजी राम ही को उस नगर की रक्षा तथा समय पर सहायता करने के लिये छोड़ गया था। जादोराय के पुत्र तथा ऊदाजी राम के भाई को विश्वास के लिये साथ लिवाता गया था।

२ यह युद्ध सन् १६२४ ई० के आरंभ में हुआ था। इसका पूरा विवरण इक्बाल-नामए जहाँगीरी में दिया हुआ है। इलि० डाउ० जि० ६ पृ० ४१३-४१६ देखिए।

३ पाठान्तर मिरजा लाल मनौचर।

न रही। तीसरे वर्ष जब शाहजहाँ बुरहानपुर में आए और सेना खानेजहाँ लोदी का दमन करने पर नियत हुई, तब ऊदाजीराम को चालीस हज़ार रुपया नगद मिला और हज़ारी, १००० सवार का मन्सब बढ़ाया जाने पर उसने पाँच हज़ारी, ५००० सवार का मन्सब पाकर फिर से प्रतिष्ठा प्राप्त की। छठे वर्ष सन् १०४२ हि० (स० १६८२ वि०) में खानेखानाँ महाबत खाँ के साथ दुर्ग दौलताबाद के घेरने[1] के समय जीर्ण रोग के कारण मर गया।

यद्यपि ऊदाजीराम ने धूर्तता ही से प्रसिद्धि पाई थी, पर वह साहस तथा दान के लिये भी प्रसिद्ध था और मनुष्यों को आराम देने में उसने कभी कमी नहीं की। इसी से वह दक्षिण के सरदारों का मुखिया था। वृद्धावस्था के कारण निर्बल होने पर भी उसमें काम-वासना बनी हुई थी। उसकी एक स्त्री राय बाघिन नाम की थी जो उसके बाद ज़मींदारी का काम ठीक तौर पर करती थी। उसके मनुष्य कार्य-दक्ष थे, इससे उसकी मृत्यु पर सेनाध्यक्ष[2] ने उचित समय के बीत जाने पर (क्योंकि उसके मनुष्यों से किसी प्रकार का मत-भेद न था) उसके पुत्र जगजीवन के छोटे होने पर भी तीन हज़ारी, २००० सवार के मन्सब के लिए चुन कर

१ इस घेरे का पूरा वर्णन बादशाह नामा के छठे वर्ष के वृत्तांत में 'दौलताबाद विजय' शीर्षक से दिया हुआ है। यह घेरा सन् १६३२ ई० में हुआ था। (इलि डाउ, जि० ७, पृ० ३८-४२)

२. यहाँ महाबत खाँ खानखानाँ बादशाही सेनापति से तात्पर्य है।

कृष्णा जी राम नाम रखा। वह जब बड़ा हुआ, तब फारसी के गद्य, पद्य और पत्र-लेखन में प्रवीणता प्राप्त की। दक्षिण की आश छोड़ कर उसने उत्तरी भारत के सरदारों का रहन-सहन रखा और प्रतिष्ठा के साथ माहोर[1] की जागीर से अपना जीवन व्यतीत किया। इसके अनंतर जो कोई क्रम से उसका स्थानापन्न होता, वही अपने को कृष्णा जी राम के नाम से प्रसिद्ध करता था। एक आश्चर्य यह है कि ये सभी निस्संतान रहे। दत्तक ही लेने से काम चलता रहता था। जगजीवन भी दत्तक ही में गिना जाता है। उसके बाद वेंकटराव था, पर उसका वह मन्सब, ऐश्वर्य आदि न था। वह देशमुखी से अपना काम चलाता था। इसके अनंतर उसके दो दत्तक पुत्र माधवराव और शंकरराव ने छोटा मन्सब पाकर सरकार माहोर और वासम के महाल्ला का आपस में बाँट लिया। धीरे धीरे उनके वृद्ध होने पर देशमुखी का कार्य भी छिन गया। यदि किसी मकान में उनका प्रतिनिधि अधिकृत रहता तो वह इनके लौटने पर उन्हें ही न रखता था। इसी समय पहला (पुत्र माधवराव) मन्सब और जागीर छिन जाने पर मर गया। दूसरा उस समय पना वासम' पर अधिकारी था और कर उगाहता था।

[1] माहोर वर्तमान हैदराबाद राज्य की उत्तरी सीमा पर पेन गंगा के दाहिने तट पर बसा है। मेहकर इसी नदी के बाएँ तट पर बरार में ६ मील पश्चिम की ओर है। इन दोनों के बीच में वाशिम नगर है जिस नाम की बस्ती मेहकर से ठीक १८ मील पूर्व है।

७. राव कर्ण भुरटिया

यह राव सूर का पुत्र था[१]। पिता की मृत्यु पर शाहजहाँ के चौथे वर्ष में इसने दो हज़ारी, १००० सवार का मन्सब, राव की पदवी और जागीर में बीकानेर पाया। ५वें वर्ष के आरम्भ मे देश से आकर दरबार में हाजिर हुआ और वजीर खाँ के साथ दौलताबाद दुर्ग के विजय करने पर नियुक्त हुआ। जब आज्ञानुसार खाँ रास्ते से लौट आया, तब यह भी चला आया। फिर दक्षिण में नियुक्ति होने पर दौलताबाद लेने में अच्छा प्रयत्न किया और दुर्ग परेंदः लेने में भी अच्छा कार्य किया[२]। महाबत खाँ की मृत्यु पर खानेदौराँ बुरहानपुर का सूबेदार नियुक्त हुआ। ८वें वर्ष (जब बादशाह दक्षिण गए और सैयद खाँजहाँ बारहः बीजापुर पर चढ़ाई करने के लिये नियत हुआ, तब) यह पूर्वोक्त

---

१. राव सूरसिंह जी के तीन पुत्र थे—कर्णसिंह, शत्रुसाल और अर्जुनसिंह।

२ सन् १६३१ ई० अर्थात् स० १६८८ की कार्तिक व० १३ को यह राजगद्दी पर बैठे थे। उस समय इनकी अवस्था पचीस वर्ष की थी।

खाँ के साथवालों में नियुक्त हुआ[1]। २२वें वर्ष [2]सआदतखाँ के स्थान पर यह दौलताबाद का दुर्गाध्यक्ष हुआ और पाँच सौ सवार बढ़ने पर इसका दो हज़ारी, २००० सवार का मन्सब[3] हो गया। २३ वें वर्ष पाँच सदी बढ़ने से इसका मन्सब ढाई हज़ारी, २००० सवार का हो गया। २६वें वर्ष इसका मन्सब बढ़कर तीन हज़ारी, २००० सवार का हुआ। इसके अनंतर (जब दौलताबाद सुलतान औरंगज़ेब बहादुर को मिल गया, तब) पाँच सदी, ४०० सवार (दौलताबाद की दुर्गाध्यक्षता के साथ) इसके मन्सब से कम

छठे वर्ष में (सन् १६३३ ई०) महाबत खाँ के सेनापतित्व में दौलताबाद दुर्ग विजय हुआ था। इसके दूसरे वर्ष शाहज़ादा शुजाअ महाबत खाँ आदि ने परेंदा दुर्ग घेरा पर उसे न ले सके।

२ नवें वर्ष के आरम्भ में शाहजहाँ दक्षिण आया। साहू भोंसले का उपद्रव दमन करने के लिये तीन सेनाएँ भेजी गईं पर बीजापुर के आदिलशाह के निज़ामशाहियों के सहायता करने का समाचार पाकर शाहजहाँ ने दस सहस्र सेना लेकर खानेज़हाँ की अधीनता में सहायतार्थ भेजी। (बादशाह नामा इलि० डा० जि० ७ पृ० ५५ ११) खानेज़हाँ ने उदगीर, धेरासूर, नासिक तथा त्र्यंबक ले लिया तथा रणदूल्ह खाँ पर विजय प्राप्त की। इसके अनंतर ये लौट पड़े और पटना में आकर ठहरे। इन सब में राव छत्रसाल भी बराबर साथ थे।

३ बाद के चार वर्षों का वृत्तांत नहीं दिया गया है। इस बीच शायद यह अपने राज्य में रहे जिससे बादशाही दफ्तर तथा फारसी तवारीखों से इस पद के बदलने का इस समय का हाल नहीं मिला। ये अपने देश में आकर दंगल के साथ भारी लुटेरों तथा कोलियों से पूरा दिन युद्ध करके अपना दमन करने में लगे थे। सन् १६४८ ई० में २२वाँ वर्ष आरम्भ होता है।

हो गया। औरंगाबाद सूबे के अंतर्गत सरकार जवार (जिसके उत्तर मे बगलाना, दक्षिण में कोंकण, पश्चिम मे कोंकण के मौजे और पूर्व में नासिक है और इसी में जेवल बदर भी है। यहाँ का भूम्याधिकारी श्रीपति विद्रोही हो रहा था, इसलिए इसका) का लेना निश्चित हो चुका था। इस कारण पूर्वोक्त शाहजादे की सम्मति पर इनका पहिला मन्सब बहाल रखा जाकर और सरकार जवार का वेतन, जिसकी तहसील ५० लाख दाम थी, मन्सब की बढ़ती मे नियत हुआ। शाहजादे की नियुक्ति पर यह उस प्रांत मे गया। जब यह जवार की सीमा पर पहुँचा, तब पूर्वोक्त ज़मींदार सामना न कर सकने पर सेवा में आया और धन भेंट मे देकर उस महाल की तहसील उगाहना अपने ज़िम्मे ले लिया और अपने पुत्र को जमानत मे साथ कर दिया। इसके अनंतर यह वहाँ से लौट कर शाहज़ादे के पास आया।

जब शाहजहाँ की बीमारी में दाराशिकोह का पूरा अधिकार हो गया था, तब सरदार लोग (जो बीजापुर के विजयार्थ सुलतान औरंगज़ेब के साथ नियुक्त थे) उसके आज्ञानुसार दरबार को चल दिए। यह भी शाहज़ादे से बिना छुट्टी लिए दक्षिण से देश

---

१. यह राज्य अभी तक वर्तमान है, जो बम्बई प्रांत के थाना की पोलिटिकल एजेंसी के अंतर्गत है। वर्तमान काल में इसका घेरा ५३४ वर्ग मील है। इस का राजा कोली जाति का है और यह राज्य छ सौ वर्ष प्राचीन कहा जाता है। शिवा जी ने इस राज्य पर अधिकार कर लिया था, पर उसी वंश के राजा को करद बना कर छोड़ दिया था।

चला गया[1]। इस कारण आलमगीर के राज्य के तीसरे वर्ष में अमीर खाँ सवाफी बीकानेर की सीमा पर नियुक्त हुआ। इसके सीमा पर पहुँचने पर यह क्षमा-प्रार्थी होकर पूर्वोक्त खाँ के साथ दरबार गया और अनूपसिंह तथा पद्मसिंह नामक पुत्रों के साथ बादशाह के यहाँ हाजिर हुआ। तीन हजारी, २००० सवार के मन्सब सहित यह पहिले की तरह दक्षिण में नियुक्त हुआ। नवें वर्ष दिलेरखाँ दाऊदजई के साथ चाँदा के जमींदार को दंड देने जाकर कुछ अपराध करने से स्वयं दंडित हुआ[2]। इसकी जाति की सरदारी और देश का राज्य इसके पुत्र अनूपसिंह को मिला

---

१ शाहजहाँ के चारों पुत्रों में राज्य के लिये जो युद्ध हुआ था उसमें इन्होंने योग नहीं दिया था।

२ यह सन् १६६० ई० की घटना है। बीकानेर की तवारीख में इस अपराध का यह कारण दिया है कि इन्होंने स्पष्टतः औरंगजेब के इस प्रस्ताव का विरोध किया कि सब राजे मुसलमान हो जावें। उसने इन्हें मरवा डालने के लिये दिल्ली बुलवाया तथा उसके पुत्र केसरीसिंह के साथ रहते थे, जिसने युद्ध में औरंगजेब की प्राण-रक्षा की थी न मालूम आदि वृत्तान्त विशेष विश्वास योग्य नहीं ज्ञात होते। जो हो यह राज्यच्युत होकर दूसरे वर्ष मर गए। भारत के प्रा० राजवंश भा० ३ पृ० ३४ में वि० सं० १७२६ श्रावण सु० ४ को इनकी मृत्यु लिखी है। वियकुआ नामक फारसी इतिहास पृ० ११८ में लिखा है कि इनके पुत्र अनूपसिंह ने बीकानेर राज्य को पिता की जीवितावस्था ही में अपने नाम कराना चाहा था किंतु इनका ... देखकर यह अपने पद से स्वाधीन हो गए। दिलेर खाँ शिकार के बहाने इन्हें कैद कराना चाहता था पर मानसिंह शाह की सहायता से यह बच गए। (सरकार कृत शिवाजी पृ० १८१ २)

और उसे ढाई हज़ारी, २००० सवार का मन्सब दिया गया। यह जागीर की आय बन्द हो जाने से बुरे हाल में औरंगाबाद में आ बैठा जहाँ सन् १०७७ हि० में इसकी मृत्यु हो गई। औरंगाबाद नगर के घेरे के बाहर उत्तर और पश्चिम की ओर एक पुरा इसके नाम पर बसा हुआ है। इसके चार पुत्र थे—अनूपसिंह, पद्मसिंह, केसरसिंह[1] और मोहनसिंह। अंतिम तीन निस्संतान मर गए।

कहते हैं कि मोहनसिंह पर सुलतान मुहम्मद मुअज्जम कृपा रखते थे जिससे वह बादशाही नौकरों के द्वेष का पात्र हो गया था। शाहज़ादा के मीर तुज़क मुहम्मद शाह ने (जिसका हिरन भागकर मोहनसिंह के घेरे में चला गया था) दरबार में उससे तकाजा करके झगड़ा किया और एक दूसरे पर शस्त्र चलाने लगे[2]। दूसरे आदमियों ने इकट्ठे होकर मोहनसिंह को घायल किया। पद्मसिंह यद्यपि भाई से मित्रता नहीं रखता था, पर यह घटना सुनकर ठीक समय पर उसने पहुँच कर मुहम्मद शाह का अंत कर दिया और मोहनसिंह को पालकी में डालकर उसके

---

१. दूसरी प्रति में केशवसिंह लिखा है, पर बीकानेर के इतिहासों में केसरीसिंह नाम दिया है। इसके अन्य चार पुत्र थे जिनके नाम देवीसिंह, मदनसिंह, अजयसिंह और अमरसिंह दिए हुए हैं।

२ भारत के प्रा० रा०, भा० २, पृ० ३२४ में लिखा है कि मोहनसिंह के हिरन को कोतवाल ने पकड़ लिया था जिससे दोनों ने दरबार में झगड़ कर अपने अपने प्राण गँवाए थे। पद्मसिंह ने भाई का पक्ष लेकर कोतवाल को मारा था। यह स्वयं दक्षिण के एक युद्ध में जादोराय से लड़कर सन् १७३६ में मारे गए।

घर ले चला, पर रास्ते ही से उसका काम तमाम हो गया। अनूप-
सिंह आरंभ ही से दक्षिण में नियुक्त होकर बहादुर खाँ कोका के
युद्ध में अब्दुलकरीम मियाना के साथ बाईं ओर था। १८ वें वर्ष
पूर्वोक्त खाँ के कहने पर उसे राजा की पदवी मिल गई। १९ वें
वर्ष (जब दिलेर खाँ दाऊदजई के सेनापतित्व में दक्खिनियों से
युद्ध की तैयारी हुई, तब) यह चंदावल में था। २१ वें वर्ष में
इसको, वह औरंगाबाद की अध्यक्षता पर छोड़ गया था। उसी
वर्ष शिवाजी भोंसला ने इस नगर के चारों ओर गड़बड़ मचा
रखी थी। अनूपसिंह साथ की सेना सहित बाहर निकलकर
पास ही ठहरे। उसी समय खानेजहाँ बहादुर (जो उस समय
दक्षिण का सूबेदार था) मौके पर पहुँच गया और विद्रोही
भाग गए। ३० वें वर्ष नसरताबाद सक्कर का दुर्गाध्यक्ष और
३२ वें वर्ष राव दलपत बुन्देला के स्थान पर गढ़ अदोनी का
अध्यक्ष नियत हुआ। ३५ वें वर्ष यह उस पद से हटाया गया।
४१ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हुई[1]। इसके अनंतर इसके राज्य
की सरदारी इसके पुत्र सरूपसिंह को (जिसका हजारी, ५००
सवार मन्सब था) मिली। जुल्फिकार खाँ बहादुर के साथ काम

---

१ सन् १७५५ वि॰ में इनकी मृत्यु हुई। सन् १७४५ में इन्होंने अनूपगढ़ बनवाया था। इनके पिता के दासी-पुत्र बनमालीदास ने अपना बीकानेर बादशाह को भेंट देकर उसे अपने लिये प्राप्त कर लिया था और उस पर अधिकार करने के लिये बादशाही सेना के साथ आए थे, पर इन्होंने धोखे से उसे मरवा डाला। इनके चार पुत्र स्वरूपसिंह सुजानसिंह रूपसिंह और अभयसिंह थे।

करता रहा। उसके अनंतर उसका पुत्र आनन्दसिंह[1] और पौत्र जोरावरसिंह राजा हुए। लिखने के समय जोरावरसिंह का धर्म पुत्र गजसिंह, जो उसी वंश का था, उस पद पर था।

---

१. यह राज्य पाने के दो वर्ष के भीतर ही मर गए, तब इनके छोटे भाई सुजानसिंह गद्दी पर बैठे। इन्होंने ३५ वर्ष राज्य कर सं० १७९२ में परलोक का मार्ग पकड़ा। इन्हीं सुजानसिंह के बड़े पुत्र जोरावरसिंह ने इसके बाद ११ वर्ष राज्य किया। ये निस्संतान मरे थे, इससे अनूपसिंह के पुत्र आनन्दसिंह के द्वितीय पुत्र गजसिंह को सं० १८०२ में बीकानेर की गद्दी मिली।

८—राणा कर्ण[1]

यह मेवाड़ के राजा राणा साँगा के पुत्र, उदयसिंह के प्रपौत्र, राणा प्रताप उपनाम कीका के पौत्र और राणा अमर के पुत्र थे। यह देश अजमेर प्रांत की चित्तौड़ सरकार के अन्तर्गत है। इसमें दस सहस्र गाँव हैं। यह चालीस कोस लम्बा और ३१ कोस चौड़ा है। इसमें तीन भारी दुर्ग हैं—राजधानी चित्तौड़, कुम्भलमेर और मांडल। यहाँ के सरदार को पहिले रावल कहते थे, फिर कुछ दिनों के अनन्तर वे राणा कहलाने लगे। इनकी जाति गुहिलोत है। ये सिसोद ग्राम के रहनेवाले थे, इससे सिसोदिए कहलाए। ये लोग अपने को न्यायी नौशेरवाँ के वंश का बतलाते हैं। इनके पूर्वज संसार के हेर-फेर से बरारों में चले गए और नरनाल की अध्यक्षता पाई, पर जब शत्रु ने वहाँ भी अधिकार कर लिया, तब

---

१ इस छोटे से निबंध में भारतवर्ष के एक अत्यन्त प्राचीन तथा प्रतिष्ठित राजवंश की आठ पीढ़ियों का वृत्तांत आ गया है जिसमें प्रातः स्मरणीय राणा साँगा, राणा प्रतापसिंह तथा राणा राजसिंह के परिचय भी आ गए हैं। इनमें एक-एक के वंश-वर्णन के लिये एक एक ग्रन्थ चाहिए। छोटी छोटी टिप्पणियाँ देकर इस निबन्ध को उनके इतिहास से पाठकों को पूर्णतया परिचित कराना असंभव समझ कर विस्तार नहीं किया गया है। इस निबन्ध को उनके इतिहास का एक छोटा उपचार मात्र समझना चाहिए।

महाराणा अमर-सिह, राजा भीम और राणा कर्ण
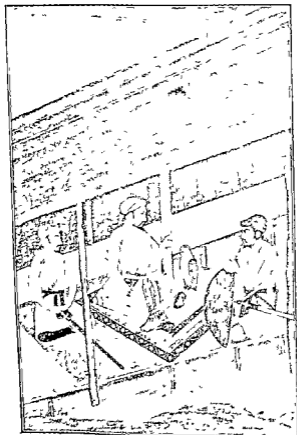
बाप्पा नामक एक छोटे लड़के को उसकी माता उस स्थान से लेकर मेवाड़ पहुँची और भील राजा मंडलीक की शरण ली। जब वह युवा हुआ, तब तीर चलाने में नाम पैदा किया और राजा का विश्वासी हो गया। राजा की मृत्यु पर उसकी गद्दी पर बैठा। राणा साँगा उसी का वंशधर है, जो सन् ९३३ हि० (सन् १५२७ ई०) में दूसरे राजाओं के साथ एक लाख सवार एकत्र करके बाबर से युद्ध कर पराजित हुआ था। सन् ९३६ हि० (सन् १५३० ई०) मे उसकी मृत्यु हुई और राणा उदयसिंह गद्दी पर बैठे।

१२ वें वर्ष में अकबर सुलतान मुहम्मद मिरजा के पुत्रों को दंड देने के लिये (जिन्होने मालवा में विद्रोह मचा रखा था) उधर चला, पर जब धौलपुर पहुँचने पर यह ज्ञात हुआ कि मालवा के विद्रोही अब शांत हो गए हैं, तब बादशाह ने कहा कि हिन्दुस्थान के बहुत से राजे सेवा में आए, पर राणा अभी तक नहीं आया, इसलिये अब उस पर चढ़ाई कर निपट लेना चाहिए। राणा उदयसिंह के पुत्र शक्तिसिंह पर (जो बादशाह की सेवा मे आ चुका था) कृपाएँ करके कहा कि तुम से इस युद्ध मे अच्छा कार्य होना चाहिए। यद्यपि उसने प्रकट मे मान लिया था, पर सशंकित होकर वह भाग गया। उसके भागने से राणा का दमन करना निश्चित हो गया। पहिले दुर्ग सीवी, सूपर और कोठगाँव में थाने बैठाए गए और दुर्ग माडल और रामपुर विजय किया गया। बादशाही सेना उदयपुर के आसपास की भूमि पर

अधिकृत हुए और बहुत दिन के घेरे पर दुर्ग चित्तौड़ विजय हुआ। राणा पहाड़ियों में जा छिपा और कुछ दिनों के अनंतर वहीं राणा उदयसिंह की मृत्यु हो गई। राणा प्रताप उसके स्थान (गद्दी) पर बैठा। अबुलफज़ल अकबरनामे में लिखता है कि जब १८ वें वर्ष (सं० १६३० वि०) में कुँअर मानसिंह डूँगरपुर के राजा का दमन करके उदयपुर के पास पहुँचा, तब राणा ने स्वागत करके बादशाही खिलअत प्रतिष्ठा के साथ लिया और कुँअर से तपाक के साथ मिलकर सेवा में न आने के बारे में उज्र किया। उसी वर्ष राणा ने अपने बड़े पुत्र अमर को राजा भगवंतदास के साथ (जो ईडर से आते हुए उधर आ पहुँचा था) किया और बहुत चापलूसी करके कहा कि मैं भी बातों के क्षमा होने पर आऊँगा। राजा टोडरमल से (जो गुजरात से आता था) भी मिल कर बहुत नम्रता प्रकट की। दरबार में पहुँचने पर अमर सेवकों में नियत हुआ। २१ वें वर्ष कुँअर मानसिंह राणा प्रताप को दंड देने पर नियुक्त होकर मांडलगढ़ पहुँचा। सेना एकत्र करने पर वह गोगूँदा गया। शत्रुओं का सामना होने पर घोर युद्ध हुआ और राणा की सेना परास्त होकर भाग गई। उसी वर्ष बादशाह ने वहाँ स्वयं पहुँचकर राणा के पहाड़ियों में भागने पर उसका पीछा करने के लिये सेना नियत की। ४१ वें वर्ष राणा की मृत्यु हुई और अमरसिंह गद्दी पर बैठा। जहाँगीर के बादशाह होने पर सुलतान पर्वेज दूसरे सरदारों के साथ इन पर चढ़ाई करने के लिये नियत हुआ जिसमें

वह अपने बड़े पुत्र कर्ण के साथ सेवा में आवे। उस समय (कि खुसरो का विद्रोह मच रहा था) छोटे पुत्र बाघ को शाहज़ादे के साथ कर दिया। इसके अनंतर अब्दुल्ला खाँ फीरोज़ जंग और दूसरी बार महाबत खाँ इन्हें दमन करने पर नियत हुए, पर कुछ न कर सके। यहाँ तक कि नवें वर्ष सुलतान खुर्रम औरों के साथ इस कार्य पर नियुक्त हुआ। शाहज़ादे ने पहुँच कर इनके थाने उठा कर और बादशाही थाने बैठा कर ऐसी कड़ाई की कि निरुपाय होकर नम्रता के साथ उन्होंने आकर शाहज़ादे से भेंट की और अपने बड़े पुत्र कर्ण को शाहज़ादे के साथ भेज दिया। कुँअर कर्ण ने बादशाह से भेंट करने पर ख़िलअत और जड़ाऊ तलवार पाई। उसका डर मिटाने के लिये प्रति दिन रंगारंग की हर प्रकार की कृपाएँ होती रहीं। १० वें वर्ष में उसे पाँच हज़ारी, ५००० सवार का मन्सब मिला और देश जाने की छुट्टी भी मिल गई। कुँअर कर्ण के पुत्र जगतसिंह ने दरबार में आकर ख़िलअत पहिना और फिर हरदास झाला के साथ देश लौट गया। ११ वें वर्ष कुँअर कर्ण फिर दरबार में आया और पुनः अपने राज्य पर नियुक्त हुआ।

जब सुलतान खुर्रम दक्षिण की चढ़ाई पर नियत हुआ, तब राणा अमरसिंह और कुँअर कर्ण ने बादशाहज़ादे से भेंट कर अपने पौत्र को डेढ़ हज़ार सवारों के सहित साथ कर दिया। १३ वें वर्ष (सं० १६७४ वि०, सन् १६१८ ई०) में जब जहाँगीर गुजरात से आगरे की ओर जाते समय राणा के राज्य के पास

पहुँचा, तब कुँभर कर्ण ने उससे भेंट की। १४ वें वर्ष राणा अमर सिंह की मृत्यु हो गई। जहाँगीर ने कुँभर कर्ण को राणा की पदवी, खिलअत, घोड़ा और हाथी भेजा। १८ वें वर्ष राणा कर्ण का पुत्र जगतसिंह दरबार में आया और इसके अनंतर उसने अपने राज्य को लौट जाने की छुट्टी पाई। उस समय (कि जब शाह जहाँ पिता की मृत्यु पर जुनेर से आगरे जाते समय इसके राज्य के पास पहुँचा) राणा कर्ण ने भेंट करके कृपायें पाईं और उस राज्य पर बहाल रहा। शाहजहाँ के प्रथम वर्ष सन् १०३८ हि० (सं० १६८४ वि०) में राणा कर्ण की मृत्यु हुई। उसके पुत्र जगतसिंह को राणा की पदवी, पाँच-हजारी, ५००० सवार का मन्सब और उसी का राज्य (जो उसके पूर्वजों का था) जागीर में मिला। खानेजहाँ लोदी की चढ़ाई में (जब बादशाह दक्षिण की ओर चले) राणा जगतसिंह के चाचा अर्जुन की अधीनता में पाँच सौ सवार साथ थे। कभी कभी उसके उत्तराधिकारी राजकुमार भी जाते थे। निश्चित हुआ था कि उसके पाँच सौ सवार किसी विश्वासपात्र की अधीनता में बराबर दक्षिण में रहा करें। दरबार से रत्न, खिलअत, हाथी और घोड़े उसे मिला करते थे। २६ वें वर्ष में मृत्यु हुई और राजकुमार को राणा राजसिंह की पदवी, पाँच-हजारी, ५००० सवार का मन्सब और जागीर में उन्हीं का राज्य मिला।

राणा जगतसिंह के जीवन में बादशाह को समाचार मिला (कि उसने चित्तौड़ दुर्ग की मरम्मत करना आरंभ किया है,

यद्यपि पहले यह निश्चित हो चुका था कि पूर्वोक्त दुर्ग की कुछ भी मरम्मत नहीं की जायगी) तब इसका पता लगाने को एक मनुष्य नियत किया गया। उससे पता लगने पर कि सात फाटकों मे से, जो नष्ट हो गए थे, दो एक को दृढ़ कराया है, २८ वें वर्ष में सादुल्ला खाँ पूर्वोक्त दुर्ग को ढहाने और उसके अधीनस्थ भूमि पर अधिकार करने के लिये नियत हुआ और कुछ परगनों में बादशाही थाने बैठ गए। राणा राजसिंह ने सुलतान दारा शिकोह से भेंट कर प्रार्थना की। अपने टीकाई राजकुमार को भेजने और चित्तौड़ दुर्ग मे जो कुछ मरम्मत हुई थी, उसे गिरा देने की बादशाही आज्ञा मान कर प्रार्थना की कि मेरा राज्य बादशाही सेना से खाली करा दिया जाय। तब सादुल्ला खाँ दुर्ग चित्तौड छोड़ कर लौट गया। राणा ने अपने बड़े पुत्र को, जो छ वर्ष का था, विश्वासपात्रों के साथ भेंट सहित दरबार (जो उस समय अजमेर में था) में भेजा। बादशाह ने सेवा में आने पर खिलअत, रत्न, हाथी और घोड़ा दिया और ज्ञात होने पर (कि राणा ने अभी उसका नाम नहीं रखा है) सुभागसिंह[1] नाम रखा। विदा करते समय कहला दिया कि अपने पुत्र को पाँच सौ सवारों के साथ दक्षिण भेजे।

जब औरंगजेब बादशाह हुआ, तब राणा खिलअत पाकर सम्मानित हुआ। २२ वें वर्ष (जब बादशाह अजमेर में थे)

---

१ दूसरी प्रति में सुहागसिंह है।

राणा राजसिंह ने अपने पुत्र कुमार जयसिंह को कुशल प्रश्न के लिये भेजा। कुछ दिनों के अनंतर खिलअत, जड़ाऊ सिरपेंच, घोड़ा और हाथी पाकर उस देश जाने की छुट्टी मिली। उसी वर्ष जब बादशाह का जजिया लेने का विचार हुआ, तब राजपूतों ने बुरा मान कर और शंका से विद्रोह किया। २३ वें वर्ष राणा का दमन करने के लिये बादशाह अजमेर से उदयपुर चले। जब राणा उदयपुर को खाली करके भाग गए, तब हुसेन अली खाँ[1] उनका पीछा करने के लिये नियत हुआ। इसके अनंतर मुहम्मद आजम शाह और सुलतान बेदार बख्त नियत किए गए। इसके अनंतर (कि राणा के राज्य पर विजयी सेना का अधिकार हो गया था) वह अपने राज्य से निकल कर इधर उधर मारे फिरते थे। २४ वें वर्ष शाहजादे से प्रार्थना करके राणा ने मांडल और बिदनौर परगने जजिया के बदले बादशाह को दे दिए। प्रार्थना मान ली जाने पर राजसमुद्र तालाब पर शाहजादे से भेंट की और राणा की पदवी और पाँच-हजारी, ५००० सवार का मन्सब बहाल रहा। उसी वर्ष इनकी मृत्यु हुई। बादशाह ने शोक का खिलअत राणा जयसिंह को भेजा था।

---

१ ठीक नाम हसन अली खाँ था।

१–किशुनसिंह राठौर[१]

यह प्रसिद्ध राजा सूरजसिंह राठौर का सगा भाई और शाहजहाँ की माता का सौतेला भाई था। इस संबध के कारण जहाँगीर के समय अच्छे पद पर नियुक्त था और अपने बड़े भाई से (जो साम्राज्य का स्तंभ और सेना तथा वैभव से युक्त था) शत्रुता तथा द्वेष रखता था। दैवयोग से गोविंददास भाटी ने (जो राजा सूरजसिंह का प्रधान मंत्री तथा उसका राज्य-स्तंभ था) राजा के भतीजे गोपालदास को किसी झगड़े मे मार डाला। राजा उसे बहुत चाहता था, अत उससे (गोविन्ददास से) खून का बदला लेना अस्वीकृत कर दिया। किशुनसिंह इस बात से क्रुद्ध होकर इससे भतीजे का बदला लेने के लिए घात मे लगे और वे शीघ्र ही अवसर भी पा गए। जहाँगीर के राज्य के १०वें वर्ष सन् १०२४ हि० में (जब बादशाही सेना अजमेर में

---

१ मारवाड़ नरेश उदयसिंह मोटा राजा के पुत्र थे, जिनकी पुत्री भानुमती का विवाह सलीम से हुआ था। इसी राजकन्या का पुत्र खुर्रम अर्थात् शाहजहाँ था जिस संबंध से यह जहाँगीर का साला और शाहजहाँ का मामा लगता था।

टिकी हुई थी) उस दिन[1] (जिस दिन जहाँगीर मकर[2] के तालाब पर सैर के लिये ठहरे हुए थे) किशनसिंह सवेरा होने के पहले ही उसे मार डालने की इच्छा से उस बाग में (जिसमें राजा सूरजसिंह ठहरे हुए थे) पहुँचा और अपने कुछ सैनिकों को, जो साहसी और अनुभवी थे, पैदल गोविंददास के घर भेजा। उन्होंने कुछ मनुष्यों को (जो रक्षार्थ घर के चारों ओर थे) तलवार से मारा। इस मार पीट में गोविंददास[3] जाग कर घर के एक ओर से निःशंक निकल आए। किशनसिंह के मनुष्यों ने (जो उसी का पता लगाने में व्यस्त थे) उसे देखते ही मार डाला। किशनसिंह (जिसे अभी यह समाचार नहीं मिला था) भी क्रोध तथा घबराहट में पैदल ही उस घर में चला आया। मनुष्यों के बहुत मना करने पर भी नहीं माना। उसी समय राजा सूरजसिंह भी जाग कर तलवार हाथ में ले घर से निकले और अपने मनुष्यों को दमन करने के लिये कहा। उस गड़बड़ी

---

१ इस घटना की तिथि सं. १६७२ वि. की जेठ व. ८ या ९ बतलाई जाती है।

२ मकर न होकर इसे पुष्कर होना चाहिए। प्रतिलिपि कर्ताओं के प्रमाद से यह मकर हो गया है।

३ यह गोविंददास भाटी बहुत योग्य मंत्री, बुद्धिमान् तथा राज्य का शुभचिंतक था। इसने राज्य का प्रबंध विशेष रूप से सुधारा था। मुं. देवीप्रसाद जी ने इसकी एक छोटी जीवनी भी प्रकाशित कराई है।

में किशुनसिंह कुछ साथियों सहित मारा गया[१] और बचे हुए लोग द्वार तक पहुँच जाने पर बाहर निकल गए। राजा के सैनिकों ने पीछा किया और बादशाही झरोखे के सामने युद्ध हुआ। आबदार तलवार जिसके सिर पर बैठती, कमर तक उतर जाती, और हिंदुस्तानी फौलाद के खड्ग जिसकी कमर पर पड़ते, साफ दो टुकड़े कर देते। दोनों पक्षों के अड़सठ राजपूत उस घोर युद्ध में मारे गए। कहते हैं कि उसी दिन से सिरोही की तलवार पर विश्वास हुआ और दूसरों को भी उसकी इच्छा हुई। जहाँगीर ने इस घटना के बाद उसके पुत्रों[२] को मन्सब देकर किशुनगढ़ को उनके लिये बहाल रखा।

---

१ यह भाग निकला था, पर पिता की आज्ञा से महाराज कुमार गजसिंह ने पीछा कर इसे मार डाला था।

२ इसके चार पुत्रों का नाम सहसमल्ल, जगमल्ल, भारमल्ल और हरिसिंह था जिनमें प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ क्रमश: किशनगढ़ की गद्दी पर बैठे, पर तीनों की बिना उत्तराधिकारी छोड़े मृत्यु हो जाने पर हरिसिंह के पुत्र रूपसिंह गद्दी पर बैठे थे।

१०—वीरतसिंह

यह मिरजा राजा जयसिंह के द्वितीय पुत्र थे। (जब विद्रोही मेवातियों ने कामा पहाड़ी और कोह मजाहिद में, जो आगरा और दिल्ली के बीच में हैं, भाग के कटक होकर आसपास के रहनेवालों को लूट मार से कष्ट पहुँचाया, परगने उजाड़ हो गए और जागीरदारों को इससे हानि पहुँची तब) शाहजहाँ के राज्य के २१वें वर्ष (सन् १६४९-५० ई०) के अंत में कीरतसिंह को आठ सदी,८०० सवारों का मन्सब और पूर्वोक्त महाल जागीर में मिला और मिरजा राजा को आज्ञा हुई कि उन दमनीय विद्रोहियों का जड़ से नष्ट कर डालने में कोई प्रयत्न न उठा रखें तथा अपने मनुष्यों को लाकर वहाँ बसावें। राजा अपने देश को जाकर चार हजार सवार तथा छ हजार बंदूकची या धनुर्धारी लेकर उस महाल में पहुँचे और जंगल काटना आरम्भ किया। बहुत से विद्रोही मारे गए, (लुटेरा का) वह झुंड नष्टप्राय हो गया और बहुत से पशु हाथ आए। बचे हुए भी तितर बितर हो गए। राजा के मन्सब के हजार सवार दो अस्प सेह अस्प किए गए और परगना हाल कल्याण (जिसकी तहसील अस्सी लाख दाम थी) वेतन के रूप में दिया गया। कीरतसिंह के मन्सब में भी वृद्धि हुई और मेवात की फौजदारी मिली।

(बुद्धिमान मिरजा राजा के संबंध से उसकी भी बुद्धि तीव्र थी और अच्छी शिक्षा प्राप्त होने से बुद्धि रूपी बाग में उसकी योग्यता का वृत्त बहुत बढ़ा है) थोड़े ही समय में अपनी दूरदर्शिता तथा कार्यदक्षता का बादशाह को विश्वास करा दिया। २८वें वर्ष (जब बादशाही सेना अजमेर में पहुँची तब) उसका मन्सब एक हजारी, ९०० सवार का करके दिल्ली की अध्यक्षता सौंप कर विदा किया। (जब ३०वें वर्ष के अंत में सरकार सहारनपुर के अंतर्गत परगना मुजफ्फराबाद के पास फैजाबाद अर्थात् मुखलिसपुर की इमारतें, जो जून नदी के किनारे पर उत्तरी पहाड़ के नीचे थीं—जो सिरमौर पहाड़ के पास है—तैयार होने पर आई और उसे देखने के लिये—जो दिल्ली से सैंतालीस कोस पर है—बादशाह ने विचार किया तब) कीरतसिंह दिल्ली के रक्षार्थ बाहर नियुक्त किए गए। (जब इनके पिता सुलेमान शिकोह का साथ छोड़ कर औरंगजेब से मिलने चले, तब) कीरतसिंह (जो दारा शिकोह के युद्ध के अनन्तर देश चले गए थे) पिता से मिल कर साथ दरबार गए और झंडा पाकर सम्मानित हुए। यह मेवात के विद्रोहियों का दमन करने के लिये नियुक्त हुए और कुछ दिन दिल्ली के पास फौजदार रहे। फिर पिता के साथ शिवाजी की चढ़ाई पर गए जहाँ अच्छा प्रबंध किया और तीन हजार सैनिकों के साथ दुर्ग पुरंदर के सामने मोरचा बाँधा था।

(जब शिवाजी ने अधीनता स्वीकृत कर ली और उस जाति के सरदारों को बादशाही कृपा प्राप्त हुई तब) कीरतसिंह

का मन्सब ढाई हजारी, २००० सवार का हो गया। इसके अनंतर (जब मिरजा राजा बीजापुर प्रांत की चढ़ाई पर चले और मध्य की सेना का प्रबंध कीरतसिंह को सौंपा तब) ये उन युद्धों में बीजापुर की सेना से बड़ी वीरता से लड़े। (जब मिरजा राजा की बुरहानपुर में मृत्यु[1] हो गई तब) बादशाह ने इनका मन्सब बढ़ा कर तीन हजारी, २५०० सवार का कर दिया और डंका भी देकर इन पर विश्वास बढ़ाया। फिर दक्षिण में सहायता के लिये भेजे जाने पर वहाँ बहुत दिन रहे। १६वें वर्ष सन् १०८४ हि०[2] में इनकी मृत्यु हुई।

---

१ टाड कृत राजस्थान भाग १, पृ० १२० में लिखा है कि मिरजा राजा जयसिंह के अत्यधिक बढ़ते हुए प्रताप से डरकर औरंगजेब ने इन्हीं कीरतसिंह को बड़े पुत्र रामसिंह के बदले में आमेर का राज्य देने का लोभ देकर उन्हें मार डालने के लिये उत्साहित किया। इन्होंने सन् १६६७ ई० में अफ़ीम में विष मिलाकर पिता को दे दिया और स्वयं पुरस्कार पाने के लिये बादशाह के पास गए। परन्तु रामसिंह गद्दी पर बैठ चुके थे, इससे इन्हें केवल मन्सब बढ़ाकर पुरस्कृत किया गया था।

२ सन् १६७३ ई०।

११–राजा किशन (कृष्ण) सिंह भदोरिया

आगरे से तीन कोस पर एक स्थान भदावर है जहाँ के रहनेवाले इस पदवी से प्रसिद्ध हैं। यह जाति वीर और साहसी होती है। यह पहिले स्वतन्त्र[1] थी। अकबर ने इनके सरदार को हाथी के पैरों के नीचे डलवा दिया, तब ये शासन में आए और नौकरी कर ली। पूर्वोक्त बादशाह के समय भदोरियों का सरदार हजारी मन्सबदार था। जहाँगीर के समय राजा विक्रमाजीत के साथ (जो स्वयं अब्दुल्लाखाँ के साथ राणा पर चढ़ाई करने गए थे और फिर दक्षिण पर नियत हुए थे) रहा। ११ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हो जाने पर इसका पुत्र भोज दक्षिण से आकर बादशाही नौकर हो गया। शाहजहाँ के समय में राजा कृष्णसिंह वहाँ का सरदार था। यह पहिले वर्ष महाबतखाँ के साथ जुझारसिंह की चढ़ाई पर और तीसरे वर्ष शायस्ताखाँ के साथ निजामुल्मुल्क दक्खिनी के राज्य पर चढ़ाई में (जिसने खानेजहाँ लोदी को शरण दी थी) नियत हुआ था। छठे वर्ष दौलताबाद दुर्ग के

---

१ तारीखे-शेरशाही में लिखा है कि शेर शाह इस स्थान में अपनी सेना की एक टुकड़ी बराबर रखता था। मख़जने अफ़गानी में लिखा है कि बहलोल लोदी (सन् १४५१ ई० से सन् १४८९ ई० तक) के समय में भदावर का राजा स्वतन्त्र था।

गरे और विजय में अपनी वीरता दिखलाई। १वें वर्ष खानदौरां के साथ साहू भोंसला का दमन करने गया। १०वें वर्ष १०५२ हि० (सन् १६४३ ई०) में इसकी मृत्यु हो गई। एक दासीपुत्र के सिवा दूसरा कोई पुत्र नहीं था, इससे उसके चाचा के पौत्र बदनसिंह[1] को खिलअत के साथ एक हजारी, १००० सवार का मन्सब और राजा की पदवी दी। २१वें वर्ष में यह एक दिन दरबार में गया था। एक मस्त हाथी इसकी ओर दौड़ा और उसने एक आदमी को दोनों दाँतों के नीचे दबा लिया। राजा ने आगरा में आकर उस हाथी पर बरछा चलाया और उसे छोड़ देने के कारण उसे कुछ चोट नहीं आई। वह मनुष्य भी दो दाँतों के बीच आ जाने से सुरक्षित रहा। राजा को खिलअत दिया गया और दाई लाख रुपया भेंट का (जिस राज्य मिलते समय इसने देना स्वीकार किया था) क्षमा कर दिया गया। २२वें वर्ष में इसका मन्सब पाँच-सदी बढ़ाकर मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ कंधार पर भेजा। २५वें वर्ष में फिर उसी शाहजादे के साथ और २६वें वर्ष में मुहम्मद दाराशिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर गया। २७वें वर्ष में यही से परलोक चला गया। उसके पुत्र महासिंह को हजारी ६० सवार का मन्सब, राजा की पदवी और घोड़ा मिला। २८वें वर्ष में यह काबुल गया। ३१वें वर्ष में इसका मन्सब हजारी,

1 इन्हीं बदनसिंह ने बटेश्वर ग्राम में बटेश्वरनाथ का मंदिर स० १७ १ वि० में निर्माण कराया था। उसी समय से इस ग्राम की अधिक उन्नति हुई और अनेक महल तथा मंदिर आदि बनते गए।

१००० सवार का हो गया। इसके अनन्तर (जब औरंगजेब विजयी हुआ और दाराशिकोह परास्त हुआ तब) यह पहिले ही वर्ष में आलमगीर की सेवा में पहुँच कर शुभकरण बुंदेले के साथ चपत बुँदेले पर भेजा गया। १०वें वर्ष (सन् १६६७ ई०) में कामिलखाँ के साथ यूसुफ़ज़ाई अफ़गानों को दंड देने में वीरता दिखलाई। इसके उपलक्ष में ५०० सवार दो अस्पः सेह अस्पः कर दिए गए। २६वें वर्ष में यह मर गया। इसका पुत्र उदयसिंह[1] (जो पहिले ही से बादशाही सेवा में था और मिरज़ा राजा जयसिंह के साथ दक्षिण में नियत था) २४वें वर्ष में चित्तौड़ का दुर्गाध्यक्ष नियुक्त हुआ था। अपने पिता की मृत्यु पर यह राजा हुआ।

१. यद्यपि इस ग्रन्थ में मुहम्मद शाह तक के इतिहास का समावेश है, पर इस वंश का वृत्तांत सन् १६६१ ई० हो तक का दिया है, जब उदय-सिंह गद्दी पर बैठा था। इसके अनन्तर के तीन राजाओं का उल्लेख और मिलता है। उदयसिंह के बाद कल्याणसिंह हुए जिन्होंने बाह बसाया था। यहाँ इन्होंने एक महल और बाग भी बनवाया था। सन् १७२७ ई० में गोपालसिंह ने बुरहानुलमुल्क के साथ शाहाबाद कन्नौज के पास छाछदी के दुर्गाध्यक्ष हिंदूसिंह चंदेला पर चढ़ाई की और उसे धोखा देकर दुर्ग से बाहर निकाल कर उस पर अधिकार कर लिया था। इस कपटाचरण का उसे शीघ्र ही फल मिल गया और उसकी मृत्यु हो गई। (इलि० डा० जि० ८, पृ० ४६) इसके बाद अमृतसिंह राजा हुए थे जिनपर सन् १७३३ ई० में मराठों ने चढ़ाई की थी। इनका ऐश्वर्य इतना बढ़ गया था कि इन्होंने मराठों का सामना करने के लिये सात सहस्र सवार, बीस सहस्र पैदल तथा ४५ हाथी इकट्ठे किए थे। अंत में कर देकर इन्होंने अपना पीछा छुड़ाया था।

१२—राजा गजसिंह

यह राजा सूरजसिंह राठौर के पुत्र थे। जहाँगीर के राज्य के दसवें वर्ष में यह पिता के साथ बादशाही सेवा में आए और उसकी मृत्यु पर १४वें वर्ष में तीन हजारी, २००० सवार का मन्सब और राजा की पदवी पाई[1]। बराबर उन्नति होने से ऊँचे पद तक पहुँच गए। १८वें वर्ष में (जब जहाँगीर और शाहजहाँ में युद्ध की तैयारी हुई और सुलतान पर्वेज महाबत खाँ आदि के साथ दक्षिण पर नियुक्त हुआ तब) यह भी शाहजादे के साथ नियुक्त हुए। जहाँगीर के राज्य-काल का अंतिम भाग दक्षिण में व्यतीत कर खानेजहाँ लोदी के साथ (जिसने नर्मदा पार करके मालवा प्रांत के कुछ महालों पर अधिकार कर लिया था) उस प्रांत में पहुँचे[2]। जब शाहजहाँ का प्रताप

---

१. इनका जन्म कार्तिक शुक्ल ८ सं० १६५२ वि० को हुआ। चौबीस वर्ष की अवस्था में सं० १६७६ कुँआर सु० ६ को गद्दी पर बैठे थे।

२. जहाँगीर के राज्य के अंतिम वर्ष सन् १६२७ ई० में खानजहाँ लोदी ने निज़ामुलमुल्क से घूस लेकर बालाघाट प्रांत उसे सौंप दिया था और सेना सहित मालवा आकर उस प्रांत के कुछ भाग पर अधिकार कर बुरहानपुर लौट गया था।

मढ़ा[1], तब ये खानेजहाँ से अलग होकर स्वदेश लौट गए। बादशाह से पद की प्राप्ति की इच्छा से जुलूस के पहिले वर्ष राजधानी आगरे में यह सेवा मे पहुँचे। इनके पिता बादशाह के मामा[2] होते थे, इससे कृपा करके इन्हे अच्छा खिलअत, फूल कटार. सहित जड़ाऊ जमधर, जड़ाऊ तलवार, पाँच हजारी ५००० सवार के मन्सब की निश्चिति[3] (जो जहाँगीर के समय से थी), झडा, डका, सोने की जीन सहित बादशाही घुड़साल का एक घोडा और एक बादशाही हाथी प्रदान किया। तीसरे वर्ष शाहजहाँ ने खानेजहाँ लोदी का दमन करने (जिसने विद्रोह करके भाग कर अपने को निजामुल्मुल्क बहरी[4] के पास पहुँचाया था और उसे अपना रक्षक माना था) और उसी दोष में निजामुल्मुल्क को दड देकर उसके राज्य को अधिकृत करने का विचार किया और राजधानी से दक्षिण को चला। तीन सेनाएँ

---

१ जब भाई-भतीजों को मार कर शाहजहाँ गद्दी पर बैठा अर्थात् बादशाह हुआ।

२ शूरसिंह अर्थात् सूरजसिंह की बहिन मानमती का पुत्र खुर्रम ही शाहजहाँ के नाम से गद्दी पर बैठा था, इससे गजसिंह उसके ममेरे भाई हुए।

३ जहाँगीर ने यह मन्सब राजा गजसिंह को सन् १६२३ ई० में देकर पर्वेज के साथ खुर्रम (शाहजहाँ) को दबाने के लिये भेजा था।

४ बहरी का अर्थ मिस्टर बेवरिज ने 'चिड़ियों का अहेरी' किया है, पर यहाँ 'समुद्री' से तात्पर्य है, क्योंकि इसके राज्य में कई बदर थे तथा समुद्री व्यापार होता था।

तीन बड़े सरदारों के सेनापतित्व में नियत हुई जिनमें एक पूर्वोक्त राजा को अध्यक्षता में दक्षिण के सूबेदार खानज़माँ के साथ विदा हुई कि जाकर निज़ामुल्मुल्क के राज्य को घोड़ों के सुम से ध्वस्त करे। अन्य दोनों सेनाएँ आदिलशाह को दंड देने में कुछ कसर न रखें। इसके अनन्तर ४ थे वर्ष में यमीनुद्दौला जब आदिलखाँ को दबाने के लिये नियत हुआ, तब यह हरावल में नियुक्त हुए। वहाँ से लौटने पर अपने देश गए और छठे वर्ष दरबार पहुँचे[1]। दूसरी बार सोने की ज़ीन सहित घोड़ा और अच्छे खिलअत के साथ १०वें वर्ष गृह जाने की छुट्टी मिली। ११वें वर्ष (सन् १६३७ ई०) में अपने पुत्र जसवंतसिंह के साथ देश से आकर भेंट की। इसी वर्ष के अंत में २ मुहर्रम सन् १०४८ हि० को संसार देखनेवाले नेत्रों को जीवन के बगीचे के दृश्यों की ओर से बन्द कर लिया[2]। संपत्, उच्च पद और सेना की अधिकता से वे दूसरे राजाओं से अधिक प्रतिष्ठित थे। राठौर जाति की चाल दूसरे राजपूतों से भिन्न है। (अर्थात् जो पुत्र[3] उस माता से होता है, जिस पर पति का अधिक प्रेम होता है, वही पिता का उत्तराधिकारी होता है, चाहे

---

१ सन् १६३२ ई० में बादशाह पंजाब गए। वहीं इन्होंने अपने बड़े पुत्र अमरसिंह को बादशाह के सामने पेश कर नागौर का परगना दिलवाया था।

२ आगरे ही में सं० १६९५ की ज्येष्ठ शुक्ल ३ को इनका स्वर्गवास हुआ जहाँ यमुनाजी के किनारे इनकी छतरी बनी हुई है।

३ इनके तीन पुत्र अमरसिंह, जसवंतसिंह और अचलदास थे।

वह दूसरों से छोटा भी हो।) आरम्भ में राठौर वंशीय सरदार राव कहलाते थे। इसके अनंतर (जब उदयसिंह ने अकबर की सेवा में राजा की पदवी पाई तब) निश्चित हुआ कि इस जाति के दूसरे सरदार को राव की पदवी दी जाय। (तब से ऐसा होने लगा कि) उदयसिंह की मृत्यु पर सूरजसिंह, जो दूसरे भाइयों से छोटे थे, राजा की पदवी से सम्मानित हुए थे। इसलिये बादशाह ने जसवन्तसिंह को उनके पिता के इच्छानुकूल खिलअत, जड़ाऊ जमधर, चार हजारी, ४००० सवार का मन्सब और राजा की पदवी दी और डंका, निशान, सुनहली जीन का घोड़ा और अपना एक हाथी उपहार दिया। जसवन्तसिंह के बड़े भाई अमरसिंह को (जो आज्ञानुसार शाहजादा सुलतान शुजाअ के साथ काबुल गया था) एक हजार सवार बढ़ाकर तीन हजार सवार का मन्सब और राव की पदवी दी। दोनों का वृत्तांत अलग अलग दिया गया है[१]।

---

१. इन दोनों की जीवनियाँ शीर्षक ४ और २५ में दी गई हैं।

१३—राजा गोपालसिंह गौड़

इसके पूर्वज इलाहाबाद प्रान्त के अम्परखो[1] के राजा थे और ओड़छा-नरेशों की सेवा में रहते थे। इसके दादा बिहारसिंह ने औरंगजेब के समय विद्रोह मचाया था, इसलिये मालवा प्रांत के अधिकारी मुख्तारखाँ ने (जो मुहम्मद आज़म शाह की ओर से वहाँ नियुक्त था) इसका सिर काटकर भेज दिया। इसके अनन्तर इसके पिता भगवंतसिंह भी, जो बिहारसिंह के पुत्र थे, मुख्तारखाँ के साथ युद्ध में काम आए। इसके वारिसों ने अपना स्थान छोड़ दिया। इसी के पुत्र गोपालसिंह थे। यह (जब निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह उत्तरी भारत से लौट कर मुबारिज़ खाँ के साथ युद्ध[2] करने जा रहे थे, तब) उन्हीं के साथ दक्षिण गया और युद्ध के दिन बड़ी वीरता दिखलाई। विजय के अनंतर योग्य मनसब और नागोर पाई तथा बीदर प्रांत के

---

१ इस स्थान का ठीक पता नहीं चलता।

२ सन् १७२२ ई॰ में निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह दूसरी बार वज़ीर नियत हुए थे, पर दरबार के षड्यंत्र से ऊबकर दक्षिण लौट गए। वहाँ मुबारिज़ खाँ को परास्त कर अपनी सूबेदारी पर अधिकार किया था।

दुर्ग कंधार[1] का (जो दूर पर था और अपनी दृढता के लिये प्रसिद्ध था और शाहजहाँ के समय खानदौराँ ने जिसे विजय किया था।) अध्यक्ष बनाया गया। उस समय से लिखने के समय तक यह दुर्ग उसी के वंश के अधिकार मे रहा। सन् ११६२ हि०, १७४९ ई० में यह मर गया।

इसकी मृत्यु पर, यद्यपि सब से बड़ा पुत्र दलपतसिंह इसके जीवन-काल ही मे मर गया था, अन्य पुत्रों के (जिनमे कुँअर विष्णुसिंह सबसे बड़ा था) रहते हुए भी इसके इच्छानुसार दुर्ग की अध्यक्षता और पैतृक जागीर पर द्वितीय पुत्र अजयचद नियुक्त हुआ। तीसरा पुत्र नृपतिसिंह (दोनों सहोदर भाई थे) भी उसमें साथी था। पहले ने अपने पिता की पदवी पाने से प्रसिद्ध होकर अच्छी उन्नति की। युद्ध[2] में (जो रघुनाथराव से गोदावरी के किनारे हुआ था) यह निज़ामुद्दौला आसफजाह के सेनाध्यक्ष के साथ था। दृढ़ता से डटे रहने के कारण यह

---

[1] कंधार—निज़ाम राज्य के अतर्गत गोदावरी की सहायक नदी मानदा के तट पर बसा है। यहाँ एक दुर्ग भी है। यह इस समय इस राज्य के बीदर विभाग के अतर्गत न होकर नानदेर विभाग में है।

[2] हैदराबाद के नवाब निज़ाम अली ने पानीपत के तृतीय युद्ध के अनतर मराठों को निर्बल देख कर सन् १७६३ ई० में पूना पर चढ़ाई कर उसे लूट लिया, और जब लूट सहित लौटते हुए गोदावरी के किनारे पहुँचे, तब रघुनाथ राव ने उस पर धावा किया। कुछ सेना पार उतर चुकी थी और जो बची हुई थी, उसका अधिकाश मराठों ने नष्ट कर दिया था। इसके बाद दोनों पक्षों में सधि हो गई।

मारा गया। इसके बड़े पुत्र को पैतृक दुर्ग की अध्यक्षता मिली। इस ग्रंथ के लिखते समय इसकी पदवी राजा गोपालसिंह हिंदूपत महेंद्र थी। दूसरे दो पुत्र राजा तेजसिंह और राजा पद्मसिंह ने मन्सब और जागीर पाई तथा हैदराबाद प्रांत के अंतर्गत दुर्ग कौलास[1] के अध्यक्ष नियुक्त हुए। दूसरे ने धीरे धीरे अच्छा मन्सब और महाराज की पदवी प्राप्त की। कुछ दिन बीदर[2] का शासक रहा जिसके बाद बीदर प्रांत के नानदेर[3] का हाकिम और बरार प्रांत के माहोर[4] दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। दो तीन वर्ष बाद यह मर गया। इसके पुत्र कुँवर दुर्जनसिंह और शामसिंह को योग्य मन्सब जागीर और पैतृक तास्लुका मिला तथा ये सेवा में रहा करते थे।

---

१ कौलास—यह अभी राज्य के इंदूर वर्तमान इंदौर तथा बीदर विभागों की सीमा पर बीदर नगर के ठीक उत्तर दस मील पर है। यहाँ भी एक दुर्ग है।

२ बीर या भीर गोदावरी की सहायक नदी सिंदफना की सहायक [illegible] नदी पर है। यह निज़ाम राज्य में अहमदनगर से ठीक पूर्व लगभग पैंसठ मील पर है।

३ नानदेर—निज़ाम राज्य के नानदेर विभाग का प्रधान नगर गोदावरी के तट पर बसा है।

४ माहोर—यह दुर्ग पैनगंगा के दाएँ तट पर सिरपुर तांदोर विभाग में बरार की सीमा पर बना है। ७८° पू० १९ ५०' उ० अक्षांश पर स्थित है।

१४—राय गोरधन सूरजधज[1]

यह गंगा जी के तटस्थ खारो[2] का रहनेवाला था। कहते हैं कि आरंभ में कचहरी के द्वार पर बैठ कर नक़ल उतारा करता था और तीन चार पैसे प्रति दिन कमा लेता था। इसका इच्छा एक पीतल की दावात लेने की हुई थी, पर वह नहीं ले सका। कंपिला बटाली के रहनेवाले हरकरन के साथ नौकरी के लिये ख्वाजः अबुलहसन तुरबती[3] के पास गया, जो उस समय दीवान था।

---

१ गौरधन शब्द गोवर्धन का और सूरजधज सूर्य्यध्वज का अपभ्रंश है। सूर्य्यध्वज कायस्थों की एक उपजाति विशेष है। कायस्थों की बारह शाखाओं में से यह भी एक है।

२ खारो नाम शुद्ध नहीं है, खेरा होना चाहिए। एटा ज़िले में तीन खेरा हैं। नुह खेरा और खेरा कुंडलपुर पास पास तहसील जलेसर में हैं तथा अतरौंली खेरा एटा तहसील में है। इन तीनों में से किस से तात्पर्य है, यह स्पष्ट नहीं हो सका। कंपिला फ़र्रुखाबाद जिले की कायमगंज तहसील में है और यह एक प्राचीन स्थान है जो राजा द्रुपद की राजधानी कही जाती है।

३ ख्वाजा अबुलहसन तुर्बती रुकुस्सल्तनत अकबर के समय दक्षिण का दीवान हुआ। जहाँगीर ने इसे दक्षिण से बुला लिया और कई पदों पर रहने के अनन्तर सन् १६१३ ई० में यह मीर बख़्शी बनाया गया। एतमादुद्दौला की मृत्यु पर ख्वाजा पाँचहजारी पाँच हजार सवार का

उसने देख कर कहा कि हरकरन हिसाब रख सकता है, पर थोर माल्म होता है और गोरधन मूर्ख है। पहिले का तीस रुपया और दूसरे का पचीस रुपया महीना कर दिया। जब एतमादुद्दौला दीवान हुए, तब गोरधन को पचास रुपए महीने पर अपने नौकरों का बख्शी बना दिया। इसके अनन्तर राय की पदवी मिली और दीवान एतमादुद्दौला के यहाँ से बादशाही नौकरी में आ गया। प्रतिदिन विश्वास बढ़ने लगा और धीरे धीरे यह कुल भारत साम्राज्य के कार्य्यों का केंद्र हो गया। यहाँ तक कि एक समय खानखानाँ सिपहसालार[1] इसके घर पर आकर इसका प्रार्थी हुआ था।

मन्सबदार और मुल्क दीवान नियत हुआ। यह सन् १६२४ ई० में मालुवा का सूबेदार हुआ। महाबत खाँ के विद्रोह के समय नूरजहाँ की सेना के साथ इस पर आक्रमण करने के समय नदी पार करने में डूब चुका था पर बच गया। शाहजहाँ के समय इसे छ हजारी ६ हजार सवार का मंसब मिला। सन् १६२६ ई० में यह खानेजहाँ लोदी के पीछे भेजा गया और जब शाहजहाँ बुरहानपुर पहुँचा तब इन्हें नज़ीरी खाँ की सहायता को ऊपर भेजा। पर रास्ते में विजय का समाचार सुन कर लौट आया और पश्चात्ताप में भरा था कि पहाड़ी नदी के पास आने से इसके रूप का सर्वनाश हो गया। सन् १६३२ ई० में काश्मीर का सूबेदार बनाया गया पर अस्सी वर्ष की अवस्था में मर गया। (मआसिरु भा० १ पृ० ७१०)

१ अब्दुर्रहीम खानखानाँ की जीवनी में इसी ग्रन्थकार ने लिखा है कि खानखानाँ मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम राय गोवर्धन के घर पर गए थे जब वह एतमादुद्दौला का दीवान था। (मआसिरु भाग १ पृ० १६२)

गुजरात की यात्रा में (जब जहाँगीर समुद्र देखने के लिये चला तब) एक रात्रि गैरधन दरबार से घर आ रहा था कि एतमादुद्दौला के बख्शी शरीफुल्मुल्क के बहकाने से एक मनुष्य ने इसके हाथ पर तलवार मारी, पर कुछ ज्यादा घाव नहीं लगा। उस दिन से इसकी प्रतिष्ठा बढ़ती गई। यद्यपि एतमादुद्दौला की स्त्री असमत बेगम इससे बुरा मानती थी, पर उसने इसकी उन्नति में रुकावट नहीं डाली। एतमादुद्दौला की मृत्यु पर यह नूरजहाँ बेगम की सरकार का प्रबन्ध-कर्ता नियत हुआ। महाबत खाँ के विद्रोह में (जो इस वंश का शत्रु था) यह स्वार्थ के विचार से उससे मिल गया। महाबत खाँ ने अपना कुल कार्य्य इसी को सौंप दिया। गैरधन ने अकृतज्ञता और कृतघ्नता से अपने स्वामियों की बुराई की इच्छा कर उनके कोषों और गड़े हुए धनों का भेद बतला दिया और संसार के सामने अपने को बुरा बनाया। जब यह विद्रोह शांत हुआ, तब आसफ़ खाँ ने इसे कैद में डाल दिया जहाँ कुछ दिन बाद मर गया। इसकी स्त्री इसके साथ सती हो गई और इसे संतान थी ही नहीं। अपने स्थान खारो को पक्के घेरे, बड़े महलों, सड़कों और बाजारों आदि से नगर बना कर उसका गैरधन नगर नाम रखा था। पुराने मकानों को नए सिरे से पक्का बनवा कर उनके स्वामियों को दे दिया और उनका कर कारीगर प्रजा के लिये छोड़ दिया। हर प्रकार के कारीगरों को बसाया। गायों, भैंसों, घोड़ियों, ऊँटनियों, बकरियों और भेड़ियों की शालाएँ गंगा के किनारे अपने स्थान के पास

विलायत (फारस आदि स्थान) को खास की बनवाई। दूध, दही और घी बहुत होता था। लाहौर के रास्ते पर सराय और बड़ा तालाब बनवाया था। मथुरा में, जो गोवर्धनपुर के सामने गंगा के इस पार है, एक बड़ा मंदिर बनवाया और उज्जैन में भी एक तालाब तथा मंदिर बनवाया था। अमात् प्रसिद्धि की खोज में इसने कुछ अच्छा काम किया और कुछ अच्छे नियम निकाले जिससे इस प्राचीन सराय (संसार) में उसका नाम बना रहे। परन्तु उसके मनहूसपन और कृपणता के कारण उसके अनन्तर उसका माल आसफजाह की सरकार में छिन गया। तालाब का पानी सूख गया और सरायें खँडहर हो गईं। उसका स्थान ख़ानें सैयद शुजाअत ख़ाँ बारः को जागीर में मिला। इसके ऐश्वर्य और वस्तुओं में कुछ भी न बच रहा।

(अबे शेर का भावार्थ)

न शराब का न शराबखाने ही का पता रह गया।

---

१ जहाँगीर ने अपने राज्य के १२ वें वर्ष (सन् १६१७ ई०) में गुजरात की यात्रा की थी और खंभात की खाड़ी में समुद्र की सैर भी की थी। (इलि० डा० भा० ६, पृ० ३५२)

१५—चूड़ामन जाट

जाट[1] स्वभावत. विद्रोह करनेवाले, कठोर-हृदय तथा लूट मार करने में दत्तचित्त रहते है। यद्यपि वे पन्ना[2] मे कृषि करने के बहाने रहते है तथा उन्होंने बस्तियाँ और गढ़ियाँ बनवा ली हैं, पर वे बराबर आगरे से दिल्ली प्रात की सीमा तक लूट-मार करते रहते थे। दो बार बादशाही फौजदारों ने इन डाकुओ के हाथ

१ कर्नल टाड आदि इन्हें राजपूतों के ३६ वशों के अन्तर्गत मानते हैं। राजपूतों और जाटों में कहीं कहीं विवाह सम्बन्ध भी होता है, पर कुछ स्थानों के जाटों में विधवा-विवाह तथा सगाई की प्रथा भी प्रचलित है। यदुवशी होने से जदु या जादव शब्द से जाट की व्युत्पत्ति हुई है।

२ इस ग्रन्थ तथा मआसिरे-आलमगीरी की प्रतियों में पत्ता या पटना पाठ मिलता है, पर इस नाम का कोई स्थान इन लोगों के पुराने वासस्थान के आस पास नहीं मिलता। मआसिरे-आलमगीरी के अनुवादक लेफ्टिनेन्ट पर्किन्स ने इसे 'तबिया' रूप दे दिया है और मआसिरुल् उमरा के अँग्रेज़ी अनुवादक मिस्टर बेवरिज 'पत्ता' पाठ रखते हुए भी पट्टी अर्थात् पाठ ग्राम होना बतलाते हैं। यह उसी प्रकार की पढ़ने की अशुद्धि है, जिस प्रकार बघेला नरेश राजा रामचन्द्र के राज्य का नाम अग्रेज़ अनुवादक ने पत्ता पढ़ा है जो वास्तव में भट्ट या भीठा है। बुंदेलखंड के आस पास पहाड़ी स्थानों को या जहाँ बड़े बड़े टूहे हों, भीठा कहते हैं। बघेलखंड पहाड़ी देश है और फारसी तवारीखों में भट्ट नाम से ही उसका उल्लेख मिलता है। यहाँ भी उसी शब्द का प्रयोग हुआ है। ऐसे स्थानों में खेती के बहाने बसकर ये जाट दस्युओं का काम करते थे।

में पड़ कर अपने प्राण खाए। शाहजहाँ के समय मथुरा, महावन और कामों पहाड़ी[1] का फौजदार मुर्शिद कुली खाँ[2] तुर्कमान उसी जाति की एक दृढ़ बस्ती पर आक्रमण करते समय गोली लगने से मर गया। कई बार बादशाही सेना द्वारा व डाकू दमन किए गए तथा उन्होंने प्राण और प्रतिष्ठा भी खोई, पर पुनः कुछ दिन के अनन्तर उनमें से एक ने विद्रोही होकर राजमार्गों पर लूट-मार आरम्भ कर दी और उस जाति की सरदारी की प्रसिद्धि प्राप्त की। आलमगीर के समय गोकला[3] जाट ने लूट-मार से चारों ओर अपनी धाक जमा ली थी और सैदाबाद कस्बे को (जो मथुरा के पास है) लूटकर जला दिया। वहाँ के प्रसिद्ध फौजदार अब्दुलनबी खाँ[4] ने मौजा सोरा[5] पर (जो

---

१ पाठ 'कामाँ पहाड़ी' है पर शुद्ध नाम कामवन है जो कामाँ के नाम से प्रख्यात है।

२. शाहजहाँ के राज्य के ११वें वर्ष (सन् १११० ई.) की यह घटना है। यह युद्ध संभवतः के अन्तर्गत जलवाह में हुआ था। (बादशाहनामा भाग २ पृ ० और खफ़ी खाँ भाग १ पृ ५५५) सन् ११४० में राजा जयसिंह भी इनका दमन करने को नियत हुए थे।

३ गोकला जाट पर भी एक हो मध्य देने की पुरानी प्रथा से इस नाम को एक अनुवादक ने गोकला बना दिया है।

४ सं. १७२५ वि. में मथुरा के फौजदार अब्दुलनबी इनके गाँवों को दबा देने गया। इनका सरदार मारा गया पर वह भी गोली लगने से मर गया। यह धर्मी पुरुष थे और इन्होंने मथुरा में एक बड़ी मसजिद बनवाई थी। (मआसिर-आलमगीरी हि. अनु. भाग १ पृष्ठ १४)

५. मआसिर-आलमगीरी में हसनै, होरा या सहरा पाठ मिलता है पर यह वास्तव में महावन परगने का सहोरा स्थान है।

उन अत्याचारियों का स्थान था) १२वें वर्ष में चढ़ाई कर बहुतों को मार डाला। युद्ध में गोली खाकर वह भी मारा गया। औरंगज़ेब ने राजधानी से हसन अली ख़ाँ[1] बहादुर को मथुरा का फ़ौजदार नियत कर बड़ी सेना और तोपखाने के साथ भेजा। उसने प्रयत्न और परिश्रम करके उस विद्रोही को उसके 'सगों' के साथ पकड़ कर दरबार भेज दिया। वे दोनों बादशाही कोप से टुकड़े टुकड़े कर डाले गए। उसके पुत्र और पुत्री[2] जवाहिर ख़ाँ नाज़िर को पालन के लिये सौंपे गए। पुत्री का विवाह शाह क़ुली चेला से हुआ जो अच्छे मसब पर था, और पुत्र फाज़िल नाम का हाफ़िज़ हुआ जिसकी स्मरण शक्ति औरंगज़ेब के विचार में सबसे अधिक विश्वास योग्य थी।

जब बादशाही सेना दक्षिण के दुर्गों को विजय करने की इच्छा से उस प्रान्त में पहुँची, तब अफसरों के आलस्य से (जो आराम रूपी कालर में सिर को तथा निःशंकता के दामन में पैरों को लपेटे थे) इस जाति को अवसर मिल गया और उन्होंने

---

[1] अब्दुन्नबी के मारे जाने पर पहिले सफशिकन ख़ाँ मथुरा का फ़ौजदार हुआ था, पर दूसरे वर्ष जाटों के फिर सिर उठाने पर हसन अली ख़ाँ उन पर भेजे गए। (मआ०, आल० हि० अनु०, भाग २, पृष्ट १६)

[2] फ़ारसी लिपि में दुख़्तरान और दुख़्तरे-ऑं एक सा लिखा जायगा। पहिले का अर्थ पुत्रियाँ और दूसरे का उसकी पुत्री है। यहाँ दूसरा ही पाठ लेना चाहिए, क्योंकि इसके आगे एक ही लड़की का हाल दिया गया है।

अधीनता छोड़ कर विद्रोह कर दिया। राजा राम[1] ने अपनी सरदारी में बहुत से परगनों पर अत्याचार कर आमिलों तथा यात्रियों को लूट लिया। क़ैद होने तथा अप्रतिष्ठित किए जाने से अच्छे लोगों का मान-भंग हुआ। वीरों का मान मिट्टी में मिल गया तथा सूबेदारों को उस विद्रोही के आगे नाक रगड़नी पड़ी। निरुपाय होकर शाहज़ादा बेदारबख्त और खानेजहाँ बहादुर ज़फ़र-जंग दक्षिण से इस कार्य पर नियुक्त हुए और इसमें बहुत प्रयत्न तथा व्यय किया। ३२ वें वर्ष के १५ रमज़ान को वह दुष्प्रकृति बंदूक की गोली से मारा गया और वह प्रांत उसकी लूट मार से साफ़ हो गया। उसका सिर दरबार में भेजा गया। इसके अनंतर ३३वें वर्ष में २६ जमादिउल्‌अव्वल सन् ११०० हि०[2] को शाहज़ादा बेदारबख्त

---

१ मअमूलुल् अख़बार में लिखा है कि मौज़ा सिनसिन के मज्जा जाट ने औरंगज़ेब के दक्षिण जाने पर अधिक उत्पात मचाया था जिस पर बेदारबख्त और ख़ानेजहाँ दक्षिण से भेजे गए थे। सं० १७४५ वि० के युद्ध में मज्जा का तीसरा पुत्र राजाराम गोली लगने से मारा गया और इसके वंशजों का सिनसिन पर अधिकार हो गया। मज्जा के तीन पुत्र थे—चूड़ामणि, अतनसिंह और राजाराम। (इति० जाट० लि० म० पृ० ११) मआसिरुल्उमरा और सियर मुताख़रीन कृत दि बेटर मुताख़रीन में इस जाट सरदार का नाम राजाराम लिखा गया है, पर दूसरी पुस्तक में यह भी उल्लिखित है कि राजाराम के बाद मज्जा का नाम सुना जाता है जो सिनसिन में रहता था। सूदन कृत सुजान-चरित्र में अतनसिंह के पिता का नाम मावसिंह दिया है जिसका अपभ्रंश रूप मज्जा हो सकता है। सुजान-चरित्र से अतनसिंह के एक भाई का नाम रूपसिंह भी ज्ञात होता है।

२. २६ फरवरी सन् १६८९ ई०। (मआ० आलम० पृ० ३१४)

की अध्यक्षता में सिनसिनी[1] दुर्ग (जो उस डाकू का वासस्थान था) काफिरों से (जो उस साहसी के सहायक थे) ले लिया गया। पर वे नष्ट नहीं किए जा सके और न पूर्णतया उनका दमन ही किया गया। बादशाह के पास इनकी लूट-मार का समाचार बराबर पहुँचता रहा[2]। ३९ वें वर्ष में बादशाह के सबसे बड़े पुत्र बहादुर शाह उन्हें दमन करने के लिए नियुक्त हुए[3]। इसके उपरांत चूड़ामन ने फिर से लूट-मार आरंभ की।

जब शाह आलम और मुहम्मद आज़म शाह युद्ध के लिये वहाँ पहुँचे, तब चूड़ामन डाकुओं को एकत्र कर पराजित पक्ष को लूटने की इच्छा से दोनों सेनाओं के पास ठहर गया। (ज्यों ही एक ओर की पराजय होती ज्ञात हुई त्योंही) ये लूटना आरंभ कर सैनिकों का सामान उठा ले गए और क्षण भर में इतना कोष, रत्न आदि लूटा जितना इनके पूर्वजों ने अपने जीवन भर में न एकत्र किया होगा[4]। इसी गड़बड़ में (जब शाह आलम

---

१ डीग और कुम्हेर के बीच का एक ग्राम। ख़फ़ी ख़ाँ, भा० २, पृ० ३९४ में इसका नाम 'सानसी' लिखा है।

२ सन् १६९१ ई० में आग़र ख़ाँ काबुल से दरबार आ रहा था कि जाटों ने इसे आगरे के पास लूट लिया। यह लड़ने गया तो मारा गया। (इलि० डाउ०, भा० ७, पृ० ५३२)

३. सन् १७०५ और सन् १७०७ ई० में क्रमशः मुख़्तार ख़ाँ और रज़ा बहादुर ने भी सिनसिन पर चढ़ाई की थी, पर विफल रहे।

४. ख़फ़ी ख़ाँ, भा० २, पृ० ७७६ और इलि० डाउ०, भाग ८, पृ० ३६०।

दक्षिण से लौट कर गुरु का दमन करने के लिये अजमेर पहुँचे और) बादशाही सेना इन्हीं के निवासस्थान के पास तैनात ठहरी, तब चूड़ामन अपने सामान आदि की रक्षा के विचार से बादशाह के सामने गया और विद्रोह के चिह्न को मुख से धो डाला। यह मुहम्मद अमीन खाँ चीन बहादुर के साथ नियुक्त हुए (जो आगे सिक्खों पर चढ़ाई करने को भेजा गया था)। इसके बाद उम्दतुल्मुल्क खानखानाँ (जिन्होंने गुरु को दुर्गम पहाड़ियों के बीच बर्फीकोह[1] के पास लोहगढ़ में घेर रखा था) के साथ बहुत परिश्रम किया। दूसरा बादशाह[2] होने पर तथा उनके सशंकित होने पर ये अपने स्थान को लौट गए और अपनी पुरानी चाल पर चल कर विद्रोह तथा लूट-मार की मात्रा बहुत बढ़ा दी। लूट-मार से राजधानी तक में अशांति फैल गई थी।

फर्रुखसियर के समय राजाधिराज जयसिंह सवाई ने इन पर ससैन्य चढ़ाई की और कुतुबुल्मुल्क के मामा सैयद खानेजहाँ अच्छी सेना के साथ बादशाह की ओर से सहायतार्थ भेजे गए। यह विद्रोही थून दुर्ग में जा बैठा। एक वर्ष के घेरे तथा कई घोर युद्धों के अनंतर जब वह तंग आ गया, तब कुतुबुल्मुल्क से क्षमा-

---

१ खफ़ी ख़ाँ भा० २, पृ० ६६६ में लिखा है—"गुरु पहाड़ी में भाग कर लोहगढ़ में जा रहे जो बरफ़ी राजा का था। मुन्तखबुत्तवारीख लिखता है कि यह सिरमौर के राजा का एक नाम था। बरफ़ी का तात्पर्य बर्फ़ीला है।

२ बहादुरशाह के बाद जहाँदार शाह बादशाह हुए थे।

प्रार्थी हुआ और मसब बढ़ाने की प्रार्थना तथा कर देने के लिये प्रतिज्ञा की। बादशाह की इच्छा न रहने पर और राजा जयसिंह के विरोध करने पर भी हठ करके कुतुबुल्मुल्क ने उसे बुलाया और अपने पास स्थान दिया। निरुपाय होकर बादशाह ने उसे नौकरी में लेने की आज्ञा दे दी[1]। पर फिर द्वितीय बार दरबार में नहीं आने पाया। सैयद अब्दुल्ला ख़ाँ की कृपा से उसे अच्छा मन्सब मिला तथा एक डाकू के पद से सरदारी की उच्च पदवी प्राप्त हुई। वे भी बारहा के सैयदों से मित्रता दृढ़ कर उनके पक्के पक्षपातियों में से हो गए। उस समय (जब अमीरुल्उमरा बादशाह को साथ लेकर दक्षिण चले और कुतुबुल्मुल्क राजधानी गए) ये अमीरुल्उमरा के साथ नियुक्त थे। उस वीर सरदार के मरे जाने पर यह कुछ दिन बादशाही सेना के साथ कपटपूर्वक रहे और इनकी इच्छा थी कि बारूद-घर में आग लगा दें या तोपखाने के बैलों को हाँक ले चलें, पर मीरे-आतिश के सुप्रबंध और सतर्कता से कुछ न कर सके। जब कुतुबुल्मुल्क युद्धार्थ पास पहुँचे, तब ये कुछ ऊँट और तीन हाथी बादशाही कैंप से लेकर उसके पास पहुँचे। युद्ध के दिन बादशाही सामान पर कड़े धावे किए और नदी का तट इन्हीं की सेना के अधिकार में था, इसलिये शत्रु या मित्र किसी को तृषा मिटाने नहीं देते थे। जो पानी के पास जाता था, मारा जाता था। मनुष्यों के एक समूह

---

१ इलि० डा०, जि० ७, पृ० ५२१--२ और ५३३ तथा जि० ८, पृ० ३६०--१। मुंतखिबुल्लुबाब भा० २, पृ० ७७६।

को (जो यमुना के किनारे बालू के एक ढूहे पर एकत्र हुए थे) पूरी तरह लूट लिया, यहाँ तक कि सदर का दफ्तर भी नष्ट हो गया। इनकी उद्दंडता यहाँ तक बढ़ी कि स्वयं बादशाह को इन पर दो तीन तीर चलाने पड़े और मुख्य बंदूकचियों को इन पर गोली चलानी पड़ी। जब पराजय के चिह्न प्रकट हुए, तब पहाड़ से दिल्ली के मार्ग पर घूम घूम कर पराजितों के भागने का रास्ता बंद कर दिया और जो हाथ में आया उसके बचे बचाए सामान को लूट लिया[1]। जब इनकी मृत्यु हो गई[2] तब इनके पुत्र मुहकमसिंह आदि दृढ़ दुर्गों में बैठ कर युद्ध करने को तैयार हुए और अत्याचार तथा लूट की अग्नि से सूखा तथा तर सबको जलाने लगे। आगरे के नाज़िम सआदत खाँ बुरहानुल्मुल्क ने बड़ी वीरता से इन्हें दमन करने में साहस दिखलाया तथा प्रयत्न किया;–पर

---

१ खाफी खाँ के मुन्तखिबुल्लुबाब भा० २ पृ० ९१४–१५ से यह उद्धृत किया गया है। इलि० डाउ० भा० ७, पृ० ५११–१५।

२. इलि० डाउ० जि० ८ पृ० ३६१ में मआसिरुल् उमरा के अनुवाद में लिखा है— पराजय निश्चित समझ कर दुर्ग की बारूद पर मैं आग लगा कर जल मरा। इम्पीरियल गजेटियर में लिखा है कि सन् १७२१ ई० में यह हीरे की कनी खाकर मर गया। दोनों ही तरह पर स्पष्ट है कि इसने आत्महत्या कर ली थी। इस इतिहास से यह मालूम होता है कि चूड़ामणि की मृत्यु के अनन्तर सवाई जयसिंह ने जाटों पर चढ़ाई की थी और बदनसिंह शत्रुओं से मिल गए थे पर मआसिरुल् उमरा से यह ज्ञात होता है कि इस चढ़ाई के पहले बदनसिंह के मिल जाने पर पराजय निश्चित समझ कर चूड़ामणि ने आत्महत्या की थी।

उसकी तलवार न उन्हें काट सकी और न उसके बाहुबल से वह विद्रोह का काँटा उखड़ सका।

बादशाह ने राजाधिराज को अमीरों और तोपों के साथ इन पर भेजा। राजा ने पहले जंगल कटवा डाला और मुगल तथा अफगान सैनिकों की सहायता से दो तीन गढ़ियों को विजय किया। दो महीने के भीतर ही (जिसमें दोनों पक्षों ने बहुत-से युद्धों तथा रात्रि के आक्रमणों में प्रयत्न कर प्रसिद्धि पाई थी) दुर्गवालों को तंग कर डाला। इसी बीच उनके एक चचेरे भाई बदनसिंह[1] घरेलू झगड़े के कारण अलग होकर राजा के पास पहुँचे और दुर्ग लेने का रास्ता बतला दिया। इस पर उनके होश उड़ गए और अपने ही बारूद-घर को आग लगा कर उड़ा दिया[2]। दुर्ग पर अधिकार हो गया। पर कोषों का (जो संसार-प्रसिद्ध थे) चिह्न तक न मिला। जब राजा की प्रार्थना[3] से वहाँ की ज़मींदारी पर बदनसिंह नियुक्त हुए, तब मुहकम-सिंह भी खानदौराँ के भाई मुजफ्फर खाँ को बीच में डाल कर

---

१ यह भज्जा का पुत्र और चूड़ामणि का भाई था तथा चूड़ामणि के पुत्र मुहकमसिंह का चाचा लगता था।

२ यह घटना चूड़ामणि पर ही घटी होगी। केवल लिखने में कुछ क्रमभंग सा हो गया मालूम होता है।

३ सवाई जयसिंह की बदनसिंह पर की यह कृपा सूदन द्वारा यों कही गई है—ज्यों जैसाहि नरेस करत कृपा तुव देस पै। (सु० च०, पृ० ४०, सो० १५) यह सब वृत्तांत खफ़ीखाँ से लिया गया है। (इलि० डाउ०, भा० ७, पृ० ५-२१-२२)

दरबार आए और बहुत प्रयत्न किया, पर कुछ काम न हुआ। उस समय से शीघ्र उसका स्थान प्रसिद्ध हुआ और वह कभी अधीनता न छोड़ कर बराबर सेवा करता रहा। सन् ११५० हि० (स० १७९४-५) में (जब आसफ़शाह बहादुर दरबार से बाजीराव का दमन करने के लिये भेजे गए थे तब) इस (बदनसिंह) ने अपने एक आपसवाले को सेना सहित साथ भेजा था। भूपाल-मालवा युद्ध में इसके मनुष्यों ने अच्छी वीरता दिखलाई थी। यद्यपि मन्सब तथा बादशाही नौकरी के विचार से लूट-मार की अपनी प्राचीन प्रथा को इन लोगों ने छोड़ दिया था, पर इनका अधिकार राजधानी के पाँच कोस इधर से लेकर आगरा प्रांत के चतुर्दिश पर ज़मींदारी या जागीर के रूप में था। जब उन स्थानों को जागीरदारों को देते थे, तब निडर होकर यात्रियों से मनमाना राहदारी कर लेते थे। कोई फ़रियाद न करता था। हे ईश्वर! ये सूबेदार इस कुप्रथा का दोष अपने पर नहीं लेना पसंद करते थे। तब न जाने हिंदुस्तान के साम्राज्य के कार्यों का किस प्रकार प्रबंध होता था!

मुहम्मद शाह के राज्य के अंत में जब बदनसिंह की मृत्यु हो गई[1] तब उनके पुत्र सूरजमल ने अपने पूर्वजों के आश्रय

---

[1] बदनसिंह की आँखें बेकार हो गई थीं, इसलिए इन्होंने सन् १७४५ के लगभग राज्य का सब कार्य अपने सुयोग्य पुत्र सुजानसिंह उपनाम सूरजमल को सौंप दिया था। सन् १७५६ ई० तक यह एकांत में अपना जीवन सुख से व्यतीत करते रहे, जब इनकी मृत्यु हुई। (इंपि० गै० जि० ८ पृ० १६१)

को त्याग कर अपने आत्मबल पर ही पूर्ण विश्वास किया और डाकूपन से पास के महालो पर अधिकार करने का साहस कर शाही तथा जागीरी महालों पर अधिकार कर लिया। दिल्ली से भदावर तक और कछवाहों के अधि त महालों से गंगा नदी तक (जिसकी दूसरी ओर रुहेलों का अधिकार था) किसी को नहीं छोड़ा[1]। बहुधा दोआब के परगनों और सन् ११७४ हि० में (स० १८१८ वि०) आगरा दुर्ग पर भी अधिकार कर लिया था[2]। (जब शाहआलम बिहार और इलाहाबाद प्रांत के पास ठहरे हुए थे तब) सीमा के महालो के कारण नजीब खाँ[3] पर कुपित होकर सूरजमल ने उस पर ससैन्य चढ़ाई की। दिल्ली के पास युद्ध हुआ। यद्यपि नजीब खाँ के पास सेना कम थी, पर उन्हीं (सूरजमल) के अहकार तथा आत्माभिमान ने उनका काम समाप्त कर उन्हें मृत्यु-शय्या पर सुलाया। उसका विवरण

१ इन युद्धों का विस्तृत वर्णन इनके दरबारी कवि सूदन ने 'सुजान चरित' में किया है।

२ वज़ीर सफदर जंग से मित्रता रखने के कारण उसके साथ अहमदखाँ बंगश पर दो बार चढ़ाई की थी। इसी में आगरा प्रांत, मेवात तथा दिल्ली प्रांत तक का कुछ भाग मिला था। सन् १७६० ई० में आगरा दुर्ग पर भी इन्होंने अधिकार कर लिया था।

३ पानीपत के तीसरे युद्ध के बाद नजीबुद्दौला रुहेला ने दिल्ली साम्राज्य की बागडोर सँभाली थी। इसी से बिगड़ कर इन्होंने सन् १७६४ ई० में दिल्ली पर चढ़ाई की थी। (मजमउल् अखबार, इलि०, जि० ८, पृ० ३६३)

होकर इनका अंत कर दिया। उनकी एक संतान छोटे राज्य पर अधिकृत है[१]।

१ मआसिरुलूउमरा ग्रंथ सन् १७५५--६० ई० के बीच लिखा गया था। यह निबंध ग्रंथकर्ता के पुत्र अब्दुलहई खाँ ने लिखा है जिन्हों ने इस संपादन कार्य को सन् १७६८ ई० में आरंभ कर सन् १७८० ई० में समाप्त किया था। उस समय रणजीतसिंह राजा थे जो सन् १८०५ ई० में मरे। यही प्रथम राजा थे जिन्होंने पहले पहल अंग्रेज़ों से संधि की थी। इसी के समय होलकर का साथ देने के कारण अँग्रेज़ों ने भरतपुर घेरा, पर उसे नहीं ले सके। इसके अनंतर इन्होंने अँग्रेज़ों से संधि कर ली।

१६—राजा चंद्रसेन

यह मरहट्ठों में से था और इसका जादून भाग था। इसका पिता धना जी जादून[1] राम्भा जी भोंसला के विश्वासी सरदारों में से था। यह सर्वदा बड़ी सेना के साथ प्रांतों में दूर दूर तक लूट मचाता फिरता था, इस कारण उसका नाम राजा साहू भोंसला

---

१ महाराज शिवा जी के मातामह जादव जी जादव सन् १६२६ ई० में मुर्तजा निजाम शाह की आज्ञा से मारा गया था जिसके साथ उसका पुत्र अचलोजी भी मारा गया। अचलोजी के पुत्र संता जी जादव शिवाजी के बड़े भाई सम्भाजी के मित्र थे और उन्हीं के साथ कनकगिरि के युद्ध में मारे गए। संताजी के पुत्र शम्भूसिंह थे जिनके पुत्र धनाजी जादव हुए। यह धनाजी के प्रसिद्ध सेनानी प्रतापराव गूजर के सहकारी थे। सन् १६८९ ई० में चालीस सहस्र सेना के साथ यह पट्टन में नियुक्त हुए और मुगल सेना को वहाँ परास्त किया। पर मुगलों के रायगढ़ ले लेने पर ये राजाराम के साथ सिंहगढ़ से जिंजी दुर्ग में चले गए। इसके बाद मराठी सेना के प्रधान सेनापति संता जी घोरपड़े से मनोमालिन्य हो गया था और यहाँ तक बढ़ा कि अन्त में इन्होंने संता जी के पड़ाव पर चढ़ाई कर दी। युद्ध में मराठी सेना ने इन्हीं का साथ दिया जिससे संता जी भागे और मारे गए। संता जी तथा धनाजी दोनों ही उस समय मराठी सेना के प्रधान सरदार थे। इसके अनंतर धना जी प्रधान सेनापति हुए। इन्होंने सन् १६९९ ई० में पंढरपुर के पास एक मुगल सेना को परास्त किया और दो अन्य मराठी सेनाओं ने भी कई विजय प्राप्त की। इसके अनन्तर सन् १७

के जीवन-वृत्तांत में आया है। इसके अनंतर भी राजा चंद्रसेन ने उस जाति में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की, पर किसी कारण से असंतुष्ट[1] होकर मुहम्मद फर्रुखसियर के समय में निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह (जो पहले पहल दक्षिण का सूबेदार हुआ था) के कहने पर बादशाही सेवा में चला आया और सात हज़ारी मन्सब सहित बीदर प्रांत के भालकी आदि महाल उसे जागीर में मिले।

ई० में जुल्फिकार ख़ाँ से यह परास्त भी हुए थे, पर मराठों का अधिकार बढ़ता गया। सन् १७०८ ई० में लोदी ख़ाँ को परास्त कर पूना तक अधिकार कर लिया। साहू के लौटने पर इन्होंने उसका साथ दिया और प्रधान सेनापति नियुक्त हुए। सन १७१० ई० में इनकी मृत्यु हो गई। बाला जी विश्वनाथ भट्ट इन्हीं के सहकारी थे जो आगे चल कर प्रथम पेशवा हुए थे। इन पर धना जी का बहुत विश्वास था जिससे इनके पुत्र चंद्रसेन इनसे वैमनस्य रखते थे।

१. पिता की मृत्यु पर चंद्रसेन प्रधान सेनापति नियुक्त हुए, पर यह भीतर से ताराबाई ही के पक्षपाती थे। साहू जी ने बाला जी विश्वनाथ को इन पर दृष्टि रखने के लिये इनका सहकारी बना दिया जिससे वह वैमनस्य बढ़ गया। एक हरिण की बात लेकर दोनों में लड़ाई हो गई और बाला जी भाग कर साहू की शरण में चले गए। चंद्रसेन इससे क्रुद्ध होकर विद्रोही हो गए और परास्त होकर ताराबाई के पास चले गए। सन् १७१२ ई० में ताराबाई तथा उसके पुत्र शिवा जी को कारारुद्ध कर जब इनकी सपत्नी राजसबाई कोल्हापुर में प्रधान हो गई, तब चन्द्रसेन इस भय से कि कहीं वह मुझे पकड़ कर साहू के पास न भेज दे, निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह के यहाँ चला आया। (पारस० किन० मराठों का इतिहास, भाग २, पृ० १४५-६)

और जुझारसिंह की सेवा को थी[1] इसलिये पूर्वोक्त राजा के पहुँचने पर विद्रोह का विचार छोड़ कर सेवा में चला आया। उसके बाद दाराशिकोह की शरण में आकर बादशाह को बदगो करने योग्य हुआ। सन् १०६८ हि० में औरंगजेब के दक्षिण से हिंदुस्तान आने और महाराज जसवंतसिंह के साथ युद्ध होने के अनंतर शुभकरण बुँदेला के साथ आलमगीर की सेवा में आकर इसने अच्छा मन्सब पाया और उस समय (जब बादशाह मुलतान से शुजाअ के युद्ध के लिये लौट रहे थे तब) लाहौर के सूबेदार खलीलुल्ला के साथ नियत हुआ। स्वभाव ही से झगड़ालू होने के कारण वहाँ से भाग कर स्वदेश चला आया और लूट मार करने लगा[2]। (इस कारण कि बादशाह के आगे भारी काम—जैसे शुजाअ से युद्ध, महाराज को दंड देना और दाराशिकोह की लड़ाई उपस्थित थे) इस बात से वे अनजान बन गए और अजमेर से शुभकरण बुँदेला को दूसरे राजों के साथ उसे

१. ये लोग एक ही वंश के थे। प्रतापरुद्र के एक पुत्र मधुकर साह के वंश में ओड़छेवाले तथा दूसरे पुत्र उदयाजीत के वंश में चंपतराय तथा पन्ना का राजवंश हुआ। पहाड़सिंह जुझारसिंह के छोटे भाई थे, इसलिये इनको राज्य मिलने पर बुँदेलों में कुछ शांति स्थापित हो गई। (का० ना० प्र० पत्रिका, नया संदर्भ, भा० ३, पृ० ४२-४४)

२. सन् १६५१ ई० में यह दारा के साथ कंधार गए थे और इनकी वीरता से प्रसन्न होकर दारा कोंच परगना तीन लाख खिराज पर इन्हें देना चाहता था, पर पहाड़सिंह के षड्यंत्र से वह न मिल सका। इस पर क्रुद्ध होकर चंपतराय स्वदेश लौट गए।

१८—राजा छबीलेराम नागर

नागर ब्राह्मणों की एक जाति विशेष है, जो मुख्यतः गुजरात में बसती है। इसका भाई दयाराम था और ये दोनों सुलतान अजीमुश्शान की सरकार में तहसील के अफसर थे। कुछ दिनों बाद दयाराम मर गया और छबीलेराम कड़ा जहानाबाद का फ़ौजदार हुआ। जब मुहम्मद फर्रुखसियर राज्य लेने और अपने चाचा जहाँदार शाह से युद्ध करने की इच्छा से पटने से चला, तब यह पहले जहाँदार शाह के पुत्र इज्जुद्दीन के साथ हुआ, पर फिर अपने पास से कई लाख रुपया इकट्ठा कर और अच्छी सेना के साथ मुहम्मद फर्रुखसियर के पास पहुँचा[1] और युद्ध के दिन कोकलताश खाँ के सामने सज कर खूब लड़ा। विजय होने पर इसका मन्सब बढ़ कर पाँच-हजारी हो गया और राजा की पदवी तथा खालसा की दीवानी मिली। यह कार्य (जो वजीरी से नीचे है) कुतुबुल्मुल्क वजीर की सम्मति से नहीं हुआ था, इससे बादशाह और वजीर के बीच कहा-सुनी हुई और बात बहुत बढ़ गई। अंत में इसे राजधानी की सूबेदारी मिली और फिर यह

१. इलि. डा. भाग ७, पृ. ४३८ ।

२. तारीख इरादत खाँ, इलि. डा. जि. ७ पृ. ५११ ।

इलाहाबाद का सूबेदार नियुक्त होकर वहाँ गया। (जब कुछ कुचक्रियों ने सुलतान मुहम्मद अकबर के पुत्र निकोसियर को आगरे बुला कर गद्दी पर बैठाया था तब) रफीउद्दर्जात् के राज्य के आरंभ में सुनाई पड़ा कि यह उसका साथ देना चाहता था[1]। परन्तु अपने ही अधीनस्थ प्रांत के जमींदार से लड़ाई होने के कारण यह वहाँ पहुँच नहीं सका। निकोसियर के पकड़े जाने पर हुसेन अली खाँ ने उसे दंड देना निश्चित किया, परन्तु रवाना होने के पहले ही मुहम्मद शाह के राज्य के प्रथम वर्ष में सन् ११३१ हि० (सन् १७१९ ई०) में वह मर गया[2]। इसके अनन्तर उसके भतीजे गिरधर ने, जो दया बहादुर[3] (यह छबीलेराम का मीर शमशेर कहलाता था) का पुत्र था, सेना एकत्र की और दुर्ग इलाहाबाद के बुर्ज आदि को दृढ़ कर लिया। यद्यपि उस पर हैदर कुली खाँ के अधीन सेना भेजी गई, परन्तु राजा रतनचन्द के बीच में पड़ने से उसे पाँच-हज़ारी ५००० सवार का मन्सब, राजा गिरधर बहादुर की पदवी और अवध की सूबेदारी मिली।

---

१ अधिराज सवाई जयसिंह के साथ यह निकोसियर की सहायता को जाना चाहता था, पर नहीं जा सका।

२ निकोसियर को सहायता करने का इसका विचार सुन कर इस पर चढ़ाई होने को थी, पर सेना रवाना होने के पहिले ही वह मर गया। (इलि० डा०, भा० ७, पृ० ४८६.)

३ ठीक नाम दयाराम है, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है।

११—कुँअर जगतसिंह

यह राजा मानसिंह कछवाहा के सब से बड़े पुत्र थे। अकबर के समय सेनापतित्व में यह प्रसिद्ध थे और इन्होंने अच्छे कार्य किए थे। ४२वें वर्ष सन् (१५९७ ई०) मिरजा जाफर आसफ खाँ (जो मऊ और पठान[1] के राजा वासू का दमन करने पर नियुक्त था और सरदारों की अनबन से काम नहीं हो रहा था) की सहायता के लिये नियुक्त हुए और उस कार्य को समाप्त किया। ४४ वें वर्ष सन् १००८ हि० में जब दक्षिण जाते समय बादशाही सेना मालवा की ओर चली और शाहज़ादा सलीम राणा अमरसिंह का दमन करने के लिये विदा हुए, तब राजा मानसिंह (जो बंगाल के प्रबंध से निश्चिन्त होकर दरबार में आए थे) शाहज़ादे के साथ नियत हुए और उस बड़े प्रांत की अध्यक्षता पिता के सहकारत्व में जगतसिंह[2] को मिली। आगरे में यात्रा का सामान ठीक कर रहे थे कि ठीक यौवनारंभ में इनकी मृत्यु

---

१ पंजाब के उत्तर-पूर्व नूरपूर के अंतर्गत है।

२ इनका विवाह बूँदी के राव भोज की कन्या से हुआ था। इसी की पुत्री से सलीम का विवाह होना निश्चित हुआ था, पर उसके नाना राजा भोज ने अनुमति नहीं दी। सन् १६०८ ई० में राव भोज को आत्म-हत्या करने से मृत्यु होने पर उसके दूसरे वर्ष विवाह हुआ।

हो गई जिससे कछवाहों को अत्यन्त शोक हुआ। अकबर ने कृपा कर उनके अल्पवयस्क पुत्र महासिंह को उनका स्थानापन्न करके बंगाल भेजा जिससे आशा रूपी आग दूर हो गया। इस प्रांत के कुछ विद्रोहियों तथा कुछ अफगानों ने (जो पहुँच कर सेवा भी करते थे) इसकी अल्पावस्था के कारण इसे कुछ न समझ कर विद्रोह कर दिया। महासिंह ने अयोग्यता से इसका प्रबन्ध सहज समझकर युद्ध आरम्भ कर दिया। ४५ वें वर्ष में भद्रक ग्राम में युद्ध हुआ जिसमें बादशाही सेना परास्त हुई तथा शत्रु ने कुछ स्थानों पर अधिकार कर लिया[1]। राजा मानसिंह शाहजादे से अलग होकर फुर्ती से बंगाल चले और उस पराजय का बदला लेने का बहुत प्रयत्न किया[2]। महासिंह ने भी यौवनारंभ में पिता के समान शराब अधिक पीने का दुर्गुण ग्रहण किया और उसी कलुष पानी पर अपना मधुर प्राण निछावर किया।

---

१ वर्तमान और उड़ीसा वालों की अधीनता में अफगानों ने विद्रोह आरम्भ किया था। महासिंह और राजा मानसिंह के पुत्र प्रतापसिंह की अध्यक्षता में बादशाही सेना परास्त हुई। बंगाल के अधिकांश पर अफगानों ने अधिकार कर लिया।

२. मानसिंह ने शेरपुर के युद्ध में अफगानों को पूर्णतया परास्त कर फिर से दक्षिणी बंगाल तथा उड़ीसा पर अधिकार कर लिया।

२०–राजा जगतसिंह

यह राजा बासू का पुत्र था। जब इसका बड़ा भाई सूरजमल पिता की मृत्यु के अनन्तर जहाँगीर की कृपा से अपने पैतृक देश का स्वामी हुआ, तब यह (भाई से मित्रता नहीं होने से) छोटे मन्सब के साथ बंगाल में नियत हुआ। १२वें वर्ष में जब सूरजमल ने विद्रोह किया, तब बादशाह ने इसे जल्दी बंगाल से बुलाकर एक हजारी, ५०० सवार का मन्सब, राजा की पदवी, बीस सहस्र रुपया, जड़ाऊ खंजर, घोड़ा और हाथी दिया और उसे राजा विक्रमाजीत सुन्दरदास (जो सूरजमल का दमन करने पर नियत था) के पास भेजा[२]। उस बादशाह के राज्य के अन्त में तीन हजारी २००० सवार के मन्सब तक पहुँचा था। शाहजहाँ के पहिले वर्ष में यही मन्सब बहाल रहा। ७वें वर्ष (जब बादशाह पंजाब की ओर गए थे) यह सेवा में पहुँचा। ८वें वर्ष बादशाही सेना के काश्मीर से लौटने पर बगश (नीचे) की थानेदारी और खग जाति के विद्रोहियों (जो उस प्रांत में रहते थे) का दमन करने पर नियत हुआ। १०वें वर्ष में उस पद से हटाया जाकर

१ सन् १६१३ ई० में इसकी मृत्यु हुई थी।

२ ७८ शीर्षक में सुंदरदास की जीवनी में विशेष हाल देखिए।

काबुल प्रान्त के सहायक सरदारों में नियत हुआ। जलाल तारीकी[1] के पुत्र करीमदाद को कैद करने में इसने अच्छा कार्य्य किया। ३९वें वर्ष में (जब अली मर्दां खाँ ने दुर्ग कंधार शाही नौकरों को सौंप दिया था और आज्ञानुसार सईद खाँ काबुल प्रान्त के सहायकों के साथ क़िज़िलबाश सेना को, जो पास आ पहुँची थी, परास्त करने गया था तब) यह भी सेना के हरावल में थे। दुर्ग कंधार पहुँचने पर इन्हें जमींदावर दुर्ग विजय करने भेजा गया। इन्होंने बड़े प्रयत्न और परिश्रम से दुर्गाध्यक्ष को विजय कर घेरा जमा लिया। इस पर अधिकार कर दुर्ग बुस्त के घेरे में बड़ी वीरता दिखलाई। १२वें वर्ष (जब लाहौर में बादशाह थे तब) यह दरबार में आए। इस खिलअत और मोती की माला मिली और उसी वर्ष यह आगरा का फ़ौजदार नियत हुआ। जब १४वें वर्ष में इसने कांगड़ा पर्वत की तराई की फ़ौजदारी अपने पुत्र राजरूप के लिये और उस पर्वत के राजाओं की भेंट उगाहने के पद के लिये जो लगभग चार लाख रुपये की तहसील थी, प्रयत्न किया तब वह मान ली गई और इन्हें खिलअत और चाँदी के साज का घोड़ा देकर उस पद पर नियत कर दिया। विद्रोह के कुछ चिह्न प्रकट होने पर यह उस पद से हटाया जाकर

---

१ पीर रौशनिया का पुत्र था जिसने मुसलमानी धर्म के विरुद्ध अपना मत चलाया था। तारीकी के माने अँधेरा है। इसी पर नाम इसलिए दिया गया है कि वह कुछ का कुछ समझाकर बहकानेवाला था। यह अकबर के ४२ वें वर्ष में मारा गया था। (इलि डा०, जि ६ पृ ११)

दरबार में बुलाया गया। उस पर यहाँ से (जब आने में देर हुई) तीन सेनाएँ खानेजहाँ बारह:, सईद खाँ ज़फ़र जंग और एसालत खाँ के अधीन भेजी गईं और पीछे से सुल्तान मुरादबख़्श को अलग सेना सहित दुर्ग मऊ, नूरगढ़ और तारागढ़ (ये जगतसिंह के अधीनस्थ दुर्ग थे और उस समय उनके लिये पहिले ही से बहुत प्रयत्न हुआ था[1]) विजय करने के लिये नियुक्त किया। जगतसिंह ने इन दुर्गों की रक्षा के लिये बादशाही सेनाओं से यथाशक्ति युद्ध किया।

जब मऊ और नूरपुर बादशाही मनुष्यों के अधिकार में चला गया और तारागढ़[2] भी हाथ से जाने लगा, तब निरुपाय होकर खानजहाँ को मध्यस्थ कर शाहज़ादे के पास आया। बादशाह के इसके दोष क्षमा करने और इसके यह मान लेने के अनन्तर कि तारागढ़ और मऊ के दुर्ग गिरा दिए जायँगे, इसने दरबार में आकर अधीनता स्वीकृत की। बादशाह ने इनके दोषों का विचार न करके पहिले का मन्सब रहने दिया। उसी वर्ष शाहज़ादा दाराशिकोह के साथ कंधार गया और उसी के पास दुर्ग क़िलात का अध्यक्ष नियत हुआ। १७वें वर्ष सईद खाँ ज़फ़र जंग उस प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ। उससे और राजा से मित्रता नहीं थी। इसलिये १८वें वर्ष में खिलअत और तलवार

१. राजा बासू का वृत्तांत ११ वें शीर्षक में देखिए।

२ ये सब स्थान पंजाब के उत्तर-पूर्व और हिमालय की तराई के पास हैं।

जिसका साज सोने का था और जिस पर मीना किया हुआ था और चाँदी के साज सहित घोड़ा देकर अमीरुल्-उमरा[1] की सहायता के लिये बदख्शाँ विजय करने भेजा। उसने काम के अनुसार, मन्सब के नियमानुकूल सेना एकत्र की और उसके योग्य निश्चित धन राज्य से पाकर लंबी यात्रा कर बदख्शाँ पहुँचा। जब इसकी आज्ञा मिलने पर खोस्त के मनुष्य भेंट करने आए, तब उनकी सम्मति से दुर्ग को, जो सराब और अन्दराब नदियों के बीच में है, दृढ़ कर तीन बार उजबेगों और अलमानों को (जिन्हें बल्ख के शासनकर्ता नज़र मुहम्मद खाँ ने भेजा था) युद्ध में परास्त कर भगा दिया। उस दुर्ग को दृढ़ थाना बना कर पेशावर लौट आया। १९वें वर्ष में सन् १०५५ हि० (सन् १६४५ ई०) में वहीं मर गया। शाहजहाँ ने उसके पुत्र रामरूप को (इसका वृत्तान्त अलग दिया हुआ है[2]) सांत्वना दी थी।

---

१ सन् १०५४ हि० में शाहजहाँ ने अमीरुल्उमरा अलीमर्दां खाँ को शाहजादा मुरादबख्श के साथ बदख्शाँ पर भेजा था।

२ ११ वीं पृ० देखिए।

२१—जगन्नाथ

यह राजा भारामल के पुत्र थे, जिनका वृत्तांत अलग दिया जाता है। राजा ने इनको अपने दो भतीजों[१] के साथ मिरज़ा शरफ़ुद्दीन हुसेन (जिसने अजमेर की अध्यक्षता के समय राजा पर रुपया बाक़ी निकाला था) के पास बंधक रख छोड़ा था। इसके अनंतर (जब राजा अकबर का बहुत कार्य कर उसका कृपापात्र हुआ तब) बादशाह के कहने पर जगन्नाथ को मिरज़ा से छुट्टी मिली। तब शाही कृपा से कभी बादशाह के साथ और कभी अपने भतीजे कुँअर मानसिंह के साथ नियुक्त होकर अच्छा कार्य करता रहा। २१वें वर्ष में (जब मेवाड़-नरेश राणा प्रताप ने बादशाही सेना का सामना कर कई सरदारों को हरा दिया तब) इन्होंने दृढ़ता से डट कर वीरता दिखलाई और जयमल के पुत्र रामदास को (जो शत्रुओं के नामी सरदारों में से था) युद्ध में मारा। २३वें वर्ष में यह पंजाब प्रांत में जागीर पाकर वहाँ गया। २५ वें वर्ष में जब मिरज़ा हकीम के काबुल से पंजाब आ पहुँचने का समाचार ज्ञात हुआ और बादशाह का वहाँ जाना निश्चित हुआ, तब कुछ सेना आगे भेजी गई जिसमें यह भी नियुक्त हुए।

---

१ आसकरण के पुत्र राजसिंह और जगमल के पुत्र खंगार इसके भ्रातृपुत्र थे।

२९वें वर्ष में राणा का दमन देने के लिये (जो विद्रोही हो गया था) भारी सेना के साथ नियत होकर उसका कोप लूट लिया। इसके बाद मिरजा यूसुफ खाँ के साथ काश्मीर भेजा गया वहाँ का काम पूरा होने पर बादशाह के पास लौट आया। ३४वें वर्ष शाहजादा सुलतान मुराद के साथ नियुक्त होकर काबुल गया। ३६वें वर्ष (जब शाहजादा मुराद मालवा का सूबेदार हुआ तब) यह भी शाहजादे के साथ नियत हुआ और उन्हीं के साथ वहाँ से दक्षिण गया। ४३वें वर्ष शाहजादे से छुट्टी लेकर अपनी जागीर पर आया और वहाँ से दरबार गया। बिना आज्ञा लिए यह लौट आया था, इससे कुछ दिन दरबार में न आ सका था। (जब बादशाह दक्षिण से लौट कर रणथंभौर दुर्ग के पास उतरे हुए थे तब) यह आज्ञानुसार बुरहानपुर से वहाँ पहुँचा। पूर्वोक्त दुर्ग उसी के अधीन था इससे एक दिन (जब बादशाह सैर को गए तब) इसने सबकों की चाल पर भेंट निछावर आदि की रस्म पूरी की। फिर दक्षिण में नियत हुआ।

जहाँगीर के पहले वर्ष में शाहजादा सुलतान पर्वेज के साथ राणा पर चढ़ाई करनेवाली सेना में नियत हुआ। खुसरो के विद्रोह के कारण जब शाहजादा राणा के पुत्र बाघ को साथ लेकर आगरे गया, तब इन्हें कुछ सेना के साथ वहीं छोड़ गया[१]। उसी वर्ष बलपति बीकानेरी को (जो मागौर में युद्ध कर रहा था)

१ तुज़ुके जहाँगीरी पृ० ३१।

दमन करने पर नियत हुआ। ४थे वर्ष पाँच हज़ारी ३००० सवार का मन्सब पाया। उसका पुत्र रामचन्द्र दो हज़ारी १५०० सवार का मंसब पाकर दक्षिण में नियुक्त हुआ। उसकी[१] संतानों में एक मनरूप सिंह था जिसने शाहजहाँ का विद्रोह में साथ दिया था। उसको शाहजहाँ के बादशाह होने पर तीन हज़ारी २००० सवार का मन्सब, झंडा, चाँदी के साज़ सहित घोड़ा, हाथी और पचीस हज़ार रुपया सिंधी मिला। तीसरे वर्ष यह राजा गजसिंह के साथ निज़ामुलमुल्क के राज्य पर अधिकार करने को नियत हुआ। उसी वर्ष[२] इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्र गोपालसिंह को योग्य मन्सब मिला।

---

१ रामचन्द्र की। आईने अक्बरी, ब्लौकमैन, भा० १, पृ० ३८८।
२ सन् १६३० ई०।

२२—जगमल

यह राजा भारमल के छोटे भाई थे। जब राजा ने अधीनता स्वीकार कर ली, तब इसके सभी संबंधी साम्राज्य के अनेक पदों पर नियुक्त हुए। यह भी बादशाही कृपा से ८वें वर्ष (सं० १६१९ वि०, सन् १५६२ ई०) में मेरठ दुर्ग के अध्यक्ष हुए। १८वें वर्ष (जब अकबर ने गुजरात पर चढ़ाई की तब) ये बड़े कैंप के रक्षक नियुक्त हुए और इनका मन्सब एक हजारी हो गया। इनके पुत्र खंगार को (जो अपने ताऊ राजा भारमल के साथ आगरे में रहता था) इब्राहीम हुसेन मिरज़ा के विद्रोह के समय राजा ने सेना सहित दिल्ली भेजा था। १८वें वर्ष में गुजरात से बादशाही सेना के लौटने के पहले छुट्टी पाकर पाटन के पास शाही कैंप में पहुँचा। २१वें वर्ष (सं० १६३३ वि०, सन् १५७६ ई०) में कुँअर मानसिंह के साथ राणा प्रतापसिंह को दंड देने पर नियत हुए। फिर बंगाल प्रांत में नियुक्त होकर शाहबाज़ खाँ के साथ काम करते रहे। उस घटना[1] में (जब पूर्वोक्त खाँ

१ शाहबाज़ खाँ ने दूसरी बार भाटी पर चढ़ाई कर वहाँ के राजा [illegible] को परास्त कर उसका राज्य लूटा और कर भी वसूल किया, पर उसे पूर्णतया दमन नहीं कर सका। वहाँ से लौटते समय मार्ग में कुछ [illegible] मिले, जिन्हें पहिले इस [illegible] ने अपना आदमी समझा था। इस प्रकार

भाटी से विफल होकर लौट आया और टाँडा का रास्ता लिया तब) उन्होंने कुछ मनुष्यों के साथ जो लूट से लौट कर आ गए थे, विद्रोहियों का सामना किया जिसमें उनमें से नौरोज बेग काकशाल मारा गया और दूसरे लोग भाग गए' ।

शत्रु के अचानक आ जाने पर भी ये दृढ़ता से लड़े और उनके सरदार नौरोज़ बेग को मारा, जिससे और शत्रु भाग गए। यह घटना ३०वें वर्ष सन् १५८५ ई० की है।

१ तबक़ाते अकबरी के अनुसार सन् १००१ हि० (सन् १५९३ ई०) में दो हज़ारी मसबदारों की सूची से उसका जीवित रहना मालूम होता है, पर कुछ प्रतियों से न रहना भी ज्ञात होता है।

२३—मिरज़ा राजा जयसिंह कछवाहा

यह राजा महासिंह के पुत्र[1] थे। जब पिता की मृत्यु हुई, तब जहाँगीर के आज्ञानुसार दरबार पहुँचकर वह १२ वें वर्ष (सं० १६७१ वि०, सन् १६१७ ई०) में बारह वर्ष की अवस्था में एक हजारी ५०० सवार का मन्सब और एक हाथी पाकर सम्मानित हुए[2]। इसके अनन्तर सुलतान पर्वेज के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर नियत हुए और कई बार बढ़ने से अच्छे मन्सब पर पहुँच गए।

---

१ यह कुल राजस्थान का इतिहास (जिल्द भा २ पृ ११ १) में लिखा है कि महासिंह की मृत्यु पर जहाँगीर की राठौड़ रानी जोधाबाई के प्रस्ताव पर आमेर का राज्य राजा मानसिंह के भाई जगतसिंह के पौत्र जयसिंह को मिला था। मआसिरुल्उमरा में महासिंह राजा मानसिंह के सब से बड़े पुत्र कुमार जगतसिंह के लड़के लिखे गए हैं (जिल्द ३)। मानसिंह की मृत्यु पर आमेर के राजा होने का स्वत्व इन्हीं का था पर जहाँगीर ने भावसिंह पर विशेष कृपा रखने के कारण गद्दी उसे ही दे दी थी (तुजुके-जहाँगीरी पृ १३०)। इस प्रकार जयसिंह राजा मानसिंह के प्रपौत्र हुए।

२ राजा मानसिंह की मृत्यु जहाँगीर के नवें वर्ष सन् १६१४ ई० में हुई थी (ब्लोकमैन आईन पृ ३४१) और सन् १६१७ ई० में जयसिंह राजा हुआ। इन्हीं तीन वर्षों के बीच भावसिंह की मृत्यु हो गई होगी। निबन्ध ५ में महासिंह का वृत्तांत दिया है।

जयपुर-नरेश महाराज जयसिंह

जहाँगीर की मृत्यु पर (जब दक्षिण का अध्यक्ष खानेजहाँ लोदी विद्रोह कर मालवा गया) यह (जो निरुपाय होकर साथ थे) शाहजहाँ की सेना के पहुँचने का समाचार सुनने पर अजमेर से अलग होकर स्वदेश चले गए[1]। वहाँ से शाहजहाँ के जुलूस के प्रथम वर्ष (सं० १६८४ वि०, सन् १६२८ ई०) में दरबार में पहुँचे और ५०० सवार बढ़ा कर उनका मन्सब चार हज़ारी ३००० सवार का हो गया तथा झंडा और डंका भी मिल गया। उसी वर्ष क़ासिम खाँ किजवीनी के साथ महाबन (जो सरकार आगरा का एक परगना है) के विद्रोहियों को दमन करने के लिये नियुक्त होकर उपयुक्त दंड दे लौट आए। (जब उसी साल बलख के हाकिम नज़र मुहम्मद खाँ ने विद्रोह कर काबुल प्रांत में पहुँच नगर को घेर लिया और महाबत खाँ खानखानाँ उसे दंड देने के लिये नियुक्त हुआ तब) ये भी पूर्वोक्त खाँ के साथ नियत हुए। दूसरे वर्ष ख्वाजा अबुलहसन तुर्बती के साथ यह खानेजहाँ लोदी का पीछा करने पर नियत हुए[2]। ३रे वर्ष बादशाह ने

१ देखिए बादशाहनामा भा० १, पृ० २७२। खानेजहाँ लोदी दक्षिण का सूबेदार था और वह वहाँ के सब सरदारों को एकत्र कर, जिनमें यह भी थे, मालवे आया और उसी के कुछ भाग पर उसने अधिकार कर लिया। जब शाहजहाँ गद्दी पर बैठा, तब यह बुर्हानपुर लौट गया और गजसिंह, जयसिंह आदि राजपूत राजे जो इसके साथ थे, अपने अपने देश चले गए।

२ सन् १६२६ ई० में यह दक्षिण भेजे गए और वहाँ से खानेजहाँ लोदी की चढ़ाई पर भेजे गए। (बादशाहनामा भा० १, पृ० ३१६-१८)

शायस्ता खाँ के साथ खानेजहाँ लोदी को दक्खिन और निजा-
मुल्मुल्क के राज्य पर अधिकार करने को एक हजार सवार बढ़ा-
कर चार हजारी ४००० सवार के मन्सब सहित नियुक्त किया।
सैयद खानजहाँ बारह बीमारी के कारण दरबार में ही रहते थे,
इससे आजम खाँ की सेना की हरावली इन्हीं को मिली और
भाबुरो के युद्ध तथा पेठा चार कस्बा परेंदा[1] के धावों में इन्होंने
अच्छा प्रयत्न किया। ४ थे वर्ष यमीनुद्दौला के साथ (जो आदिल
शाह के राज्य पर अधिकार करने को भेजा गया था) नियुक्त
होकर सेना की बाईं ओर रहे। इसी के साथ यह दरबार भी
आए और इन्होंने स्वदेश जाने की छुट्टी पाई। ६ठे वर्ष दरबार
पहुँचकर हस्तियुद्ध के दिन (जब एक हाथी औरंगजेब पर दौड़ा
था) राजा ने उस पर घोड़ा दौड़ाया और दाहिनी ओर से बरछा
मारा। उसी वर्ष के अंत में सुलतान शुजाअ के साथ दक्षिण
की चढ़ाई पर गए। ७वें वर्ष खानेजमाँ के साथ कर[2] और
परेंदा दुर्ग के पास-थानों का सामान के लिये नियुक्त हुए। उसी
दुर्ग के घेरे में और लौटते समय सामान लाने में (क्योंकि शत्रु
से बराबर लड़ाई होती रहती थी) राजा ने साहस न छोड़ा और

---

१ बादशाहनामा पृ० १४९-८ में लिखा है कि जिस प्रकार प्रथम
[illegible] ने सात पहाड़ मूरा और दुर्ग के बाहरी कस्बे पर चढ़ाई और [illegible]
पार कर अधिकार कर लिया था। आजम खाँ ने पहुँच कर दुर्ग घेरा पर
न ले सकने पर लौट गए।

२ यह [illegible] बीर दुर्ग है।

अपनी मर्यादा पर रहकर अच्छी सेवा की। ८ वें वर्ष बालाघाट की सूबेदारी (जो दौलताबाद और अहमदनगर आदि सरकारों में विभक्त है) खानेज़माँ को मिली तो ये भी उनके साथ नियुक्त किए गए। इसी वर्ष एक हजारी मन्सब बढ़ने से इनका मन्सब पाँच हज़ारी ४००० सवार का हो गया। इसके अनन्तर ये दरबार आए। ९ वें वर्ष खानेदौरों के साथ साहू भोंसला को दंड देने पर नियत हुए[१]। १० वें वर्ष यह दरबार आए। दक्षिण में इन्होंने अच्छा काम किया था, इसलिए बादशाह ने प्रसन्न होकर अच्छा खिलअत देकर अपने देश आमेर जाने की छुट्टी दी कि वहाँ कुछ दिन आराम करें। ११ वें वर्ष (सन् १६३७ ई०) में दरबार आकर सुलतान शुजाअ के साथ (अली मर्दा खाँ के कंधार दुर्ग बादशाही नोकरों को सौंप देने पर शाह सफी काबुल से लौट गया था, वहाँ) नियुक्त हुए। १२ वें वर्ष आज्ञानुसार दरबार आने पर मोती की माला, बादशाही हलके का हाथी और मिरज़ा राजा की पदवी पाकर सम्मानित हुए। १३ वें वर्ष देश पर फिर नियुक्त हुए। १४ वें वर्ष दरबार आने पर सुलतान मुराद बख्श के साथ काबुल प्रांत में नियत हुए। १५ वें वर्ष सईद खाँ के साथ मऊ दुर्ग विजय करने (जो राजा बासू के पुत्र राजा जगतसिंह—जो विद्रोही हो गया था—के अधिकार में था)

१. तीन सेनाएँ खानेदौराँ, खानेजमाँ और शायस्ता खाँ के अधीन निजामुलमुल्क के राज्य पर भेजी गई थीं, जहाँ का प्रबन्ध विशेषत: शाह जी भोंसले के हाथ में था।

गए। उस दुर्ग के पास पहुँचने पर (जब घेरे का प्रबंध हो गया और धावा करने की आज्ञा दे दी गई तब) राजा औरों के पहले दुर्ग में पहुँच गए। इसके उपलक्ष में इनका मन्सब पाँच हजारी ४००० सवार दो हजार सवार दो अस्प सेह अस्प हो गया और उस दुर्ग की अध्यक्षता इन्हीं को मिला। इसके अनंतर (जब राजा जगतसिंह क्षमा कर दिए गए तब) पूर्वोक्त राजा दरबार चले आए और उसी वर्ष अच्छी खिलअत, फूल कटार सहित जड़ाऊ जमधर, सोने के साज सहित खास तबेले का घोड़ा और बादशाही हलके का हाथी पाकर यह शाहजादा दारा शिकोह के साथ कंधार पर नियत हुए। १६वें वर्ष दरबार आकर डेरा चले गए। १७वें वर्ष अजमेर में निज के पाँच सहस्र सवार दिखला कर फिर डेरा जाने की आज्ञा होने से प्रसन्न हुए। १८वें वर्ष (सन् १६४४ ई०) में (जब दक्षिण की सूबेदारी खानेदौराँ को मिली थी पर वे कुछ परामर्श करने के लिये दरबार बुला लिए गए थे तब) एकाएक राजा को आज्ञा मिली कि डेरा से दक्षिण जाकर खानेदौराँ के पहुँचने तक उस प्रांत की रक्षा करें।

जब खानेदौराँ बिदा होकर लाहौर पहुँचने पर मर गए तब राजा के नाम स्थायी सूबेदारी का खिलअत भेजा गया। २०वें वर्ष आज्ञानुसार दक्षिण से लौटकर दरबार आए। इसके उपरांत वहाँ से शाहजादा औरंगजेब के साथ बलख की चढ़ाई[1] पर

[1] शाहजादा मुराद इस कार्य पर पहिले ही से नियुक्त थे पर वह इन्होंने वहाँ के जलवायु से घबरा कर लौटने की बिना लिए लौट आए तब औरंगजेब भेजे

गए। जब यह प्रांत आज्ञानुसार नजरमुहम्मद खाँ को सौंपा गया, तब लौटते समय बाईं ओर की सेना का सेनापतित्व राजा को मिला। २२वें वर्ष इनके मन्सब में एक हजार सवार दो-अस्प. से-अस्प और बढ़ाकर अर्थात् पाँच हजारी ५००० सवार तीन सहस्र सवार दो अस्प. से अस्प का मन्सब कर शाहजादा औरंगजेब के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियुक्त किया और दाहिनी ओर की अध्यक्षता इन्हें मिली। जब कंधार की विजय का कुछ उपाय न हो सका और शाहजादा को बुला लिया गया, तब ये भी २३वें वर्ष दरबार पहुँचे[१]। उसी वर्ष के अंत मे देश जाने की छुट्टी पाकर कामाँ पहाड़ी के विद्रोहियों को (जो आगरा और दिल्ली के बीच में है) दंड देने पर नियत हुए[२]। जब समाचार मिला (कि

स्थान पर सन् १६४६ ई० में भेजे गए। यह चढ़ाई आरम्भ ही से दुरूह थी और अंत में इन्हें सब विजित प्रांत आदि छोड़कर लौटना पड़ा। इस लौटने में भी लगभग ५००० मनुष्य और इतने ही पशु मरे। लौटते समय सेना का दाहिना भाग अमीरुलउमरा अली मर्दां खाँ को और बायाँ जयसिंह को सौंपा गया था, क्योंकि रास्ते भर पहाड़ी जातियों से लड़ते भिड़ते और सामान की रक्षा करते बीता था। एक बार इन्हें एक पहाड़ पर तीन दिन वर्फ के तूफान में व्यतीत करने पड़े थे। (इलि० डाउ० भा० ७, पृ० ७७-८३.)

१. कंधार पर जब ईरानियों ने अधिकार कर लिया, तब शाहजहाँ ने दो बार औरंगजेब के और एक बार दारा शिकोह के अधीन सेनाएँ भेजी थीं, पर तीनों ही बार विफल रहा।

२. जाटों ने इन प्रांतों में बराबर लूट-मार मचा रखी थी और उन्हीं का दमन करने को यह नियत हुए थे।

राजा वहाँ पहुँचने पर लगभग चार हजार सवार और ५ हजार पैदल बंदूकची और धनुधारी एकत्र कर पूर्वोक्त महाल पर चढ़ गए और जंगल काट कर बहुत से लुटेरों का कटवा कर उनके बहुत से पशुओं को छीन लिया) तब इनके मनसब के एक सहस्र सवार दो अस्पः, से अस्प और भी बढ़ा कर इनका मन्सब पाँच हजारी ५००० सवार चार सहस्र सवार दो अस्प से अस्प कर दिया तथा परगना कल्यान (जिसकी तहसील सत्तर लाख दाम थी) इस तरक्की के वेतन में मिला। २५वें वर्ष आज्ञानुसार दरबार आने पर शाहजादा औरंगजेब के साथ कंधार की चढ़ाई में हरावल की अध्यक्षता पर नियुक्त हुए। ये अच्छा खिलअत, खास तबल के मान के साथ का घोड़ा चार खास हलके का हाथी पाकर सम्मानित हुए।

जब कंधार की विजय रह गई तब २६वें वर्ष (सं० १७०९ वि० सन् १६५२ ई० जब शाहजहाँ काबुल में थे तब) सभा में पहुँच कर सुलतान सुलेमान शिकोह के साथ (जो काबुल का सूबेदार हो गया था) नियुक्त हुए। फिर ये बादशाहजादा दारा शिकोह के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियुक्त हुए (पर जब उसकी विजय का कोई उपाय न हो सका तब) दरबार में आकर २७ वें वर्ष घर जाने की छुट्टी पाकर विदा हुए। २८वें वर्ष जुमलतुल्मुल्क सादुल्ला खाँ के साथ चित्तौड़ सुलतान गए[1]। ३१ वें वर्ष (जब सुलतान शुजाअ के मार्ग में जाने का

1 [illegible] की संधि में यह शर्त हुई थी कि चित्तौड़ की मरम्मत

समाचार आया, जिसने शाहजहाँ की माँदगी का वृत्तांत सुनकर बादशाही महालों पर भी अधिकार कर लिया था तब) ये सुलेमान शिकोह के अभिभावक बनाए जाकर तथा एक हजारी १००० सवार दो अस्प से अस्प का मन्सब बढ़ाकर भारी सेना के साथ सुलतान शुजाअ का सामना करने को भेजे गए। उसके पराजय पर बादशाहजादा दारा शिकोह की गुप्त प्रार्थना पर उनका मन्सब बढ़कर सात हजारी ७००० सवार पाँच हजार सवार दो अस्प से अस्प का हो गया और बादशाहजादा के आज्ञानुसार दरबार को रवाना हुए। उसी समय (जब औरंगजेब की सेना दक्षिण से चल कर महाराज जसवन्तसिंह और दारा शिकोह को परास्त करती हुई आगरा पहुँची और वहाँ से दिल्ली की ओर अग्रसर हुई तब) ये भी स्वार्थवश सुलेमान शिकोह का साथ छोड़ कर बादशाही सेवा में पहुँचे और एक करोड़ दाम का परगना पुरस्कार में पाया। औरंगजेब के राज्य के पहले वर्ष में सेना सहित खलीलुल्लाखाँ की सहायता को (जो दारा शिकोह का पीछा कर रहा था) नियुक्त हुए।

जब दाराशिकोह ने मुलतान का रास्ता लिया, तब ये आज्ञानुसार लाहौर में ठहर कर बादशाह से मिले। वहाँ से (इस कारण कि बहुत दिनों से देश नहीं गए थे और बराबर

कमी न की जाय। पर जब राणा जगतसिंह जी ने कुछ दीवार बनवाई, तब उसी को खुदवाने के लिये साहुल्ला खाँ के साथ यह भेजे गए थे। (शाहजहाँ नामा इलि० डा० भा० ७, पृ० १०३)

चढ़ाइयों पर रहे थे) पुनः आने की आज्ञा पाकर शुजाअ के युद्ध के अनंतर लौटे। दारा शिकोह के युद्ध में (जो अजमेर के पास हुआ था) बहुत प्रयत्न करने तथा उसके परास्त होने पर उसका पीछा करने पर ससैन्य नियत हुए। ४ थे वर्ष में पहले पुरस्कार के अतिरिक्त एक करोड़ दाम जमा का परगना पाकर सम्मानित हुए। ७वें वर्ष शिवाजी भोंसला को दंड देने के लिये (जो पुरंधर, गढ़ आदि औरंगाबाद प्रांत के दृढ़ दुर्गों के भरोसे पर, जो निज़ामशाही सुलतानों के समय से उनके अधिकार में थे, विद्रोह करके लूट-मार करते थे और समुद्र के यात्रियों को हानि पहुँचाते थे) नियुक्त हुए। वहाँ पहुँचने पर दुर्ग पुरंधर को घेर लिया और शिवाजी के राज्य पर चढ़ाइयाँ कर उन्हें ऐसा तंग किया कि निरुपाय होकर उन्हें राजा के पास आना पड़ा तथा तेईस दुर्ग बादशाह को देने पड़े[1]। जब यह समाचार बादशाह को मिला, तब दो सहस्र सवार दो-अस्प से-अस्प बढ़ा कर उनका मन्सब सात हजारी ७ ०० सवार दो-अस्प से-अस्प के ऊँचे दरजे तक पहुँचा दिया। ८ वें वर्ष आदिलखाँ के राज्य पर चढ़ाई करने की (जिसने भेंट भेजने में ढिलाई की थी) आज्ञा हुई। आज्ञा पाते ही यह सेना सहित बीजापुर के पास पहुँचे और रास्ते में लूट-मार में कुछ उठा न रखकर आदिल खाँ के बहुत से दुर्गों पर अधिकार कर लिया। जब उधर दान-

---

१ महाराज शिवाजी ने २३ दुर्ग देकर दरबार जाने तथा सेना सहित बीजापुर की चढ़ाई में सहायता देने का वचन दिया था।

घास की कमी हुई, तब दूरदर्शिता से यह विचार कर (कि हलके होकर दक्षिणियों को दंड दें) वहाँ से लौट बादशाही राज्य में चले आए। जाने आने में दक्षिणी सेना से बराबर (जो डाकुओं के समान युद्ध करती थी) लड़ाई होती रही। राजा ने स्वयं वीरतापूर्वक प्रयत्न और सेनापति के योग्य दूरदर्शिता तथा सतर्कता दिखलाई थी। इसके अनंतर (वर्षा ऋतु पास थी) इस आशय का बादशाही आज्ञा-पत्र (कि औरंगाबाद नगर में छावनी करें) मिलने पर ये उस नगर को पहुँचे और फिर आज्ञा आने पर दरबार जाने की इच्छा की। १०वें वर्ष सन् १०७७ हि० (सं० १७२३ वि० सन् १६६७ ई०) में बुरहानपुर पहुँच कर मर गए[1]। उपायों तथा गंभीर विचारों के लिये यह प्रसिद्ध थे। सैनिक तथा सेनापति दोनों के गुण इनमें थे। संसार की प्रगति पहचानने और सामयिक विचारों को जाननेवाले थे जिससे राज्य-प्राप्ति के आरंभ से मृत्यु पर्यन्त प्रतिष्ठा से बिता दिया तथा बराबर उन्नति करते गए। इनके पुत्र राजा रामसिंह और राजा कीरतसिंह थे। दोनों के वृत्तांत अलग दिए गए हैं[2]। औरंगाबाद के बाहर पश्चिम की ओर एक पुरा इनके नाम पर बसा है।

---

१ औरंगज़ेब की कूट नीति में फँस कर इन्हीं के पुत्र कीरतसिंह ने इनको अफ़ीम में विष मिला कर पितृ-हत्या की थी। देखिए इसी ग्रन्थ में कीरतसिंह की जीवनी।

२ निबंध ६७ और १० देखिए।

२९—धिराज राजा जयसिंह सवाई

यह विष्णुसिंह के पुत्र और मिरज़ा राजा जयसिंह के प्रपौत्र थे। जयसिंह नाम था। पिता की मृत्यु पर औरंगज़ेब के ४४ वें वर्ष (सं० १७५७ वि०, सन् १७०० ई०) में इन्हें डेढ़ हज़ारी १००० सवार का मन्सब तथा राजा जयसिंह की पदवी और इनके भाई को विजयसिंह की पदवी मिली। ४५ वें वर्ष में असद खाँ के साथ दुर्ग खलना अर्थात् खेलना पर अधिकार करने के लिये नियत हुए। उस दुर्ग के लेने में प्रति दिन के धावों में इनसे अच्छा कार्य होता रहा। इसके पुरस्कार में इनका मन्सब दो हज़ारी २००० सवार का हो गया। बादशाह की मृत्यु पर मुहम्मद आज़म शाह के साथ दक्षिण से हिन्दुस्तान गए और बहादुर शाह के साथ युद्ध होते समय सेना के बाएँ भाग में थे। कहते हैं कि उसी दिन बहादुर शाह की सभा में आ मिले, इससे इनका विश्वास कम हो गया। इनके भाई विजयसिंह को (जो बहादुर शाह की ओर नियत थे) तीन हज़ारी १००० सवार का मन्सब देकर आमेर की सरदारी के लिये उनके साथ झगड़ा खड़ा कर दिया। बादशाह ने (जो सभी का मन रखना चाहते थे और किसी को कुछ नहीं

---

१ सन् १६९९ ई० में यह गद्दी पर बैठे और दूसरे वर्ष इन्हें पदवी मिली।

पहुँचाना चाहते थे) आमेर को सरकार में मिलाकर सैयद हसन खाँ बारह को वहाँ का फौजदार नियत किया[1]। जब बादशाह कामबख्श से युद्ध करने दक्षिण चले, तब यह रास्ते से अहेर के बहाने आवश्यक वस्तुएँ साथ लेकर और खेमा आदि छोड़ कर राजा अजीतसिंह के साथ देश चले गए और सैयद हसन खाँ बारह से झगड़ा करके युद्ध किया जिसमें खाँ मारा गया[2]। जब बादशाह दक्षिण से लौटे, तब खानखानाँ को मध्यस्थ बनाकर रास्ते में भेंट की और इस प्रतिज्ञा पर कि दो महीने में वे स्वयं राजधानी पहुँचेंगे, इन्हें देश जाने की छुट्टी मिल गई[3]। फर्रुखसियर के समय में धिराज की पदवी पाकर पाँचवें वर्ष चूड़ामणि जाट (जिसने द्वितीय बार विद्रोह मचाया था) का दमन करने पर

---

१ औरंगजेब की मृत्यु पर मुअज्जम, आजम और कामबख्श में युद्ध हुआ। इन्होंने आजम का पक्ष लिया था, इसलिये जब मुअज्जम बहादुर शाह की पदवी से बादशाह हुआ, तब इनका राज्य छीन लेने के विचार से इनपर हसन खाँ बारह को फौजदार बना कर भेज दिया।

२ मारवाड़-नरेश अजीतसिंह से मिलकर इन्होंने अपना राज्य मुसलमान सैनिकों से साफ़ कर दिया। (टाड, भा० २, पृ० १२०८.)

३ असद खाँ खानखानाँ का पुत्र जुल्फ़िक़ार खाँ खानेजमाँ ही उस समय दिल्ली साम्राज्य का इर्त्ताकर्त्ता हो रहा था, इस कारण इन्होंने उसी की सहायता ली थी। खफ़ी खाँ कहता है कि जब सन् १७०८ ई० में बहादुर शाह आगरे से राजपूतों को दंड देने निकले, तब इन लोगों ने इन पिता पुत्र को मध्यस्थ बनाकर संधि की। (इलि० डा०, जि० ७, पृ० ४०४-५)

नियत हुए। इसके अनन्तर कुतुबुल्मुल्क और हुसन अली खाँ के मामा सैयद खानजहाँ बारह दूसरी सेना के साथ इस कार्य पर नियुक्त हुए। चूड़ामणि का कार्य खानजहाँ द्वारा निपटने पर वह बादशाह की सभा में चले आए। इसमें राजा का कुछ भी हाथ नहीं था। यद्यपि राजा चुप रहे, पर हृदय में वैमनस्य रख कर बादशाह से सैयदों की बुराई करने लगे। सैयदों से इनकी मित्रता नहीं थी, इसलिये इनके प्रकट होने पर उन लोगों में वैमनस्य बढ़ा। पूर्वोक्त बादशाह के राज्य के अंत में (यह उस समय दरबार ही में थे) सैयदों ने इन्हें कष्ट पहुँचाना चाहा, पर इन्होंने अवसर पाकर आज्ञानुसार आमेर का रास्ता लिया[1]। निकोसियर की लड़ाई में उसका पक्ष लेकर भी अंत में सैयदों से सफाई हो गई[2]। इसके अनंतर

---

१ इन्होंने तथा अन्य मुगल, तूरानी आदि सरदारों ने फर्रुखसियर का ही पक्ष लिया था, पर उसमें साहस की कुछ भी मात्रा न देखकर अंत में वह अपने राज्य की ओर गए, क्योंकि औरों की तरह उस समय सैयदों से यह मित्रता नहीं चाहते थे (खफी खाँ भा० २ पृ० ७४-५)। कैद होने पर भी फर्रुखसियर भागकर इन्हीं की शरण में आने का विचार कर रहा था, पर अब्दुल्ला खाँ अफग़ान ने जो इनका नौकर था यह बात सैयदों से कह दी जिससे वह मार डाला गया।

२ सन् १७१९ ई० में कुतुबुल्मुल्क अब्दुल्ला ने जयसिंह पर चढ़ाई की और उनके भाई हुसेन अली खाँ ने आगरा घेरा, जिसमें निकोसियर बादशाह बन बैठा था। जयसिंह ने इसका पक्ष लिया था पर अजितसिंह आदि अन्य सरदारों के जिन्होंने साथ देने की प्रतिज्ञा की थी, न आने पर अधीनता स्वीकार कर ली।

(जब सैयदों को वैमनस्य रूपी रूकावट बीच मे नहीं रह गई (तब) मुहम्मद शाह के राज्यारम्भ मे दरबार जाकर कृपापात्र हुए। फिर चूड़ामणि की चढ़ाई पर नियुक्त हो कर उसे उसके स्थान से निकाल कर थून पर अधिकार कर लिया[1]। सन् ११४५ हि० (सन् १७३२ ई०) मे मुहम्मद खाँ बंगश के स्थान पर मालवा के सूबेदार हुए[2]। सन् ११४८ हि० (सन् १७९२ वि०, सन् १७३५ ई०) मे वहाँ की सूबेदारी इन की प्रार्थना पर खानेदौराँ की मध्यस्थता से बाजीराव मरहठा को दे दी गई। बहुत दिनो तक जीवित रह कर इनकी मृत्यु हुई[3]।

कहते हैं कि यह बड़े कौशली थे। ज्योतिष के प्रेमी थे। आमेर के पास नया नगर बसाकर विजयनगर नाम रखा। दूकानो की सजावट और रास्तो की चौड़ाई के लिये वह बाजार प्रसिद्ध है। इस नगर के बाहर और दिल्ली दोनो स्थानों मे बहुत रुपया व्यय करके जतर-मतर तैयार कराए थे। ज्योतिष में तारों के पूरे हिसाब के लिये तीस वर्ष (जो शनि के पूरे चक्र का समय है) चाहिए और इसके पहिले ही इनकी मृत्यु हो गई, इससे यह कार्य अपूर्ण

१ सन् १७२३ ई० में यह राजा अजीतसिंह पर अन्य सरदारों के साथ भेजे गए थे और इसी वर्ष इन्होंने जयपुर शहर को नींव डाली थी।

२ तारीखे हिन्दी में लिखा है कि इसी वर्ष इन्हीं के इशारे से मराठों ने इस पर अधिकार कर लिया था।

३ मआसिर जावेद लिखता है कि इन्होंने अपने जीवन में तीस करोड़ रुपए दान दिए। (इलि० डा०, भा० ८, पृ० ३४३) ४४ वर्ष राज्य करने पर सन् १७४३ ई० में इनकी मृत्यु हुई।

रह गया। इनकी मृत्यु पर इनका पुत्र ईश्वरसिंह गद्दी पर बैठा। उसके अनन्तर इनके पुत्र पृथ्वीसिंह[1] के समय मराठों ने इनके राज्य के कई महालों पर अधिकार कर लिया। कुछ आसपास स्थान भी इन लोगों के हाथ में हो गया। लिखते समय पृथ्वीसिंह के भाइ प्रतापसिंह राज्य पर अधिकृत थे।

— —

१ ईश्वरसिंह के अनन्तर उनके छोटे भाई माधोसिंह ने कुछ वर्ष राज्य किया था, जिनके अनन्तर पृथ्वीसिंह द्वितीय गद्दी पर बैठे। वह बाल्यावस्था में इनकी विमाता तथा प्रतापसिंह की माता अभिभावक रहीं और उसकी मृत्यु पर उसने पुत्र को ही गद्दी पर बैठाया था।

जोधपुर-नरेश महाराज जसवंतसिंह

२५—महाराज जसवंतसिंह राठौर[१]

यह राजा गजसिंह के पुत्र थे। शाहजहाँ के राज्य के ११वें वर्ष में पिता के साथ दरबार आकर बादशाह के कृपापात्र हुए। जब इनके पिता की मृत्यु हो गई (उसी समय राजपूतों की इस प्रथा के विपरीत कि बड़ा पुत्र ही युवराज होता है, इनकी माता पर अधिक प्रेम होने के कारण बड़े पुत्र को अपनी सतानों मे से निकाल दिया था) तब बादशाह ने इन्हीं को (यद्यपि अमरसिंह इनसे अवस्था मे बडे थे) पिता का स्थानापन्न बनाकर खिलअत, जड़ाऊ जमधर, चार हजारी ४००० सवार का मन्सब, पैतृक रूप में राजा की पदवी, झडा, डका, सुनहले साज का घोड़ा और खास हलके का हाथी देकर कृपा दिखाई। १५वें वर्ष (सन् १६४१ ई०) में बादशाहजादा दारा शिकोह के साथ अच्छा खिलअत, फूलकटार सहित जड़ाऊ जमधर, खास तवेले का सोने के साज सहित घोड़ा और खास हलके का हाथी प्रदान कर इन्हें कधार प्रात में नियुक्त किया। १८ वें वर्ष में (जब बादशाही सेना

१ इनके पिता गज सिंह की जीवनी १२ वें तथा भाई अमरसिंह की ४ थे शीर्षक में अलग दी गई है। इनका जन्म माघ व० ४ स० १६८३ वि० को बुरहानपुर में हुआ था। यह १३ वर्ष की अवस्था में स० १६९५ में गद्दी पर बैठे।

आगरे से लाहौर आए थे) इन्हें आज्ञा मिली कि सुजाउद्दीन खाँ अफ़ग़ान के पुत्र शाह फ़रीद (जो आगरा प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ था) के पहुँचने तक वहाँ के अध्यक्ष रहें और फिर दरबार चले आवें। २१ वें वर्ष (सन् १६४७ ई०) मन्सब बढ़कर पाँच हजारी ५००० सवार दो हजार सवार दोअस्पः सेह अस्पः का हो गया और उसी वर्ष के अंत में बचे हुए सवार भी दो अस्पः सेह अस्पः हो गए। २२ वें वर्ष में यह बादशाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ कंधार के सहायतार्थ (जिसे कज़िलबाशों ने घेर लिया था) भेजे गए पर बादशाही आज्ञा से काबुल में ठहर गए। (जब उस वर्ष के अंत में बादशाह स्वयं काबुल आए तब) इन्होंने अपनी घुड़सवार सेना (जो दो सहस्र थी) दिखलाई[1]। २६ वें वर्ष इनका मन्सब बढ़कर छ: हजारी ५००० सवार दोअस्पः सेह अस्पः का हो गया। २९ वें वर्ष (सन् १६५५ ई०) में मन्सब बढ़कर छ: हजारी ६००० सवार पाँच हजार सवार दोअस्पः सेह अस्पः का हो गया और महाराजा की पदवी मिली। ३१ वें वर्ष (इस कारण कि इनका विवाह सबलसिंह सिसोदिया की पुत्री से निश्चित हुआ था) इन्हें आज्ञा मिली कि मथुरा जाकर इन रस्मों को निपटा कर सवेरा जोधपुर आवें। ३२ वें वर्ष के आरम्भ में (जब मुरादबख्श के अयोग्य कार्यों

---

१ २१ वें वर्ष शाहजहाँ की आज्ञा से जसवंतसिंह ने जैसलमेर के असल अधिकारी सबलसिंह की सहायता कर उन्हें उनकी पैतृक गद्दी पर बैठाया।

तथा शाहजहाँ को देखने के लिये बादशाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर के दक्षिण से आने का समाचार आने पर) दाराशिकोह ने अपने कार्य मे विघ्न पड़ते देखकर दो विश्वासपात्र सेनापतियों के अधीन दो सेनाओं को दोनों शाहज़ादों का रास्ता रोकने के लिये भेजने का विचार किया। इसलिये महाराज का मन्सब सात हज़ारी।७००० सवार पाँच हज़ार सवार दो अस्प सेह अस्प. करके तथा खानजहाँ बहादुर शायस्ता खाँ के स्थान पर मालवा की सूबेदारी, सौ घोड़े, जिनमें से एक का साज़ सोने का था, चाँदी के साज़ सहित हाथी, हथिनी और एक लाख रुपया देकर विदा किया। ये साथियों सहित उज्जैन पहुँचे, और औरंगज़ेब की सेना के पहुँचने पर यद्यपि बादशाह-ज़ादा ने बहुत नम्रता दिखलाई, पर इन्होंने सिवा युद्ध करने के कुछ नहीं माना। अंत में युद्ध होने पर राजपूतों के मारे जाने और दूसरों के भागने पर इन्होंने साहस छोड़ कर भागना ही उचित समझा[१]। औरंगज़ेब के राज्यारंभ के प्रथम वर्ष में (जब बादशाही सेना सतलज नदी के किनारे तक पीछा करती पहुँच गई थी तब) क्षमा प्राप्त होने पर (जो बादशाही सरदारों की प्रार्थना पर हुई थी) इन्हें बादशाह से भेंट करने का अवसर मिला। बादशाह ने समय के

---

१ सन् १६५८ ई० में प्रसिद्ध धर्मत युद्ध हुआ जिसमें मुसलमान सरदारों के औरंगज़ेब से मिलकर भाग जाने से भी तोड़ लड़ने पर भी जसवंतसिंह को युद्ध से विमुख होना पड़ा था। इस विजय से औरंगज़ेब की धाक जम गई और वह दारा शिकोह के समकक्ष समझा जाने लगा था।

अनुसार इनकी नियुक्ति की कि परीक्षा करने का कार्य समाप्त होने तक ये दिल्ली में रहें[1]। सुजाअ के युद्ध में ये सेना के दाहिने भाग में थे।

शाहजहाँ के प्रेमपात्र होने के कारण जब इनके साथ वैसा प्रकार का बर्ताव नहीं रहा, तब इनके चित्त में अप्रसन्नता काँटे की तरह खटकने लगा। यहाँ तक कि अबूलखैरिता तथा दुसरे हस से शत्रु से बात चीत कर काम से हट गए और रात्रि में अपना स्थान खाली छोड़ कर अपनी सेना सहित डेरा को चल दिए। इस गड़बड़ में बादशाह-जादा मुहम्मद सुलतान तथा बादशाही सरकार, सरदारों तथा सैनिकों के कुछ सामान भी नष्ट हुए और मनुष्यों में बड़ी घबराहट हुई[2]। सुजाअ के युद्ध से निपट कर बादशाह अजमेर चले। उस समय (बादशाह की ओर से कोई आशा न रहने पर) गुजरात की ओर से दारा शिकोह के आने का समाचार सुनकर अपने डेरा से भारी सेना एकत्र कर उससे बात चीत की। इसी समय मिरजा राजा

---

१. उस समय दारा पंजाब होता हुआ सिंध की ओर जा रहा था। इसलिए इस डर से कि यह कहीं उससे मिल न जायँ जैसा कि इन्होंने पीछे से किया भी था दिल्ली में रोक रखे गए।

२. खजवा युद्ध में इन्होंने सुजाअ से मिलकर औरंगजेब को परास्त करने का विचार किया था, पर समय पर सुजाअ के न पहुँचने से ये निकल गए और अंत में केवल मुहम्मद सुलतान के तथा इनके रास्ते में पड़ते हुए सरदारों के डेरे आदि लूट कर दिल्ली को चल दिए।

जयसिंह (जो उपाय सोचने मे संसार-प्रसिद्ध थे) की मध्य-स्थता में क्षमाप्रार्थी होकर उसकी मित्रता से हाथ उठाया। वहीं से (कि बराबर दोष करने के कारण सामने आने का साहस नहीं रखते थे इससे) पुराना मन्सब, महाराजा की पदवी और अहमदाबाद को सूबेदारी एकाएक पाकर विश्वास-पात्र हुए[१] । ४थे वर्ष (सन् १६६१ ई०) में बादशाह की आज्ञा से अपनी कुल सेना सहित अमीरुलउमरा शायस्ता खाँ के सहायतार्थ दक्षिण को चले। ५वें वर्ष गुजरात की सूबेदारी से अलग होकर दो तीन वर्ष दक्षिण मे (कुछ दिन शायस्ता खाँ के साथ और बहुत दिनों तक बादशाह-जादा मुहम्मद मुअज्ज़म के साथ, जो पूर्वोक्त खाँ के हटाए जाने पर उस प्रांत के प्रबंध के लिये नियत हुआ था) व्यतीत किए और यथाशक्ति शिवाजी के दमन में प्रयत्न किया। ७वें वर्ष के अंत में बुलाए जाने पर दरबार आए[२] । ९वें वर्ष जब बादशाह और ईरान के सुलतान शाह अब्बास द्वितीय के बीच की मैत्री शत्रुता मे बदल गई, तब बादशाहज़ादा मुहम्मद मुअज्ज़म (जो युद्धार्थ बादशाही सेना के चलने के पहले बहुत सी

१. औरंगजेब ने समग्र युद्ध के इनके कृत्य से क्रुद्ध होकर इन्हें दंड देना चाहा था, पर जब इन्होंने दारा शिकोह को उभाड़ा, तब उसने जयसिंह के द्वारा इन्हें गुजरात की सूबेदारी देकर फिर अपनी ओर मिला लिया।

२. पूने में शायस्ता खाँ की दुर्दशा होने पर तथा इनके शिवा जी का कुछ पक्षपात करने का समाचार सुनकर औरंगजेब ने इन्हें बुला लिया था।

सेना के साथ काबुल में नियुक्त हुआ था) के साथ ये भी नियत किए गए। ईरान के सुलतान की मृत्यु का समाचार पहुँचने पर (बादशाह-ज़ादा आज्ञानुसार लाहौर से लौट आए तथा) ये भी साथ ही लौट आए। १०वें वर्ष यह बादशाह-ज़ादा मुहम्मद मुअज्जम के साथ दक्षिण को गए। १४वें वर्ष काबुल के पास जमरूद की थानेदारी मिलने पर वहाँ गए। २२वें वर्ष सन् १०८९ हि० में इनकी मृत्यु हुई[1]। वैभव तथा सेना की संख्या की अधिकता से ये भारत के अच्छे राजाओं में गिने जाते थे। पर (सुख तथा प्रेम से पालन होने के कारण जीवन का एक ही ओर का दृश्य देखा था, इससे) दुनियादारी का ढंग नहीं था[2]। औरंगाबाद की सीमा के बाहर एक अच्छा पुरा और तालाब इनके नाम पर प्रसिद्ध है और पत्थर के मकानों के (जो तालाब पर बने हैं) चिह्न बचे हुए हैं। बड़े पुत्र पृथ्वीसिंह इनको जीवितावस्था में ही मर गए[3]। इनकी मृत्यु पर दो

१ पौष व० १ सं० १७१५ वि० को ५२ वर्ष की अवस्था में जमरूद ही में इनकी मृत्यु हुई।

२. वास्तव में इनके स्वभाव में औद्धत्य की मात्रा अधिक थी और स्वार्थ के अनुसार समय देखकर राजनीति के धुरंधर आलमगीर की तरह नहीं चलते थे। इसी से औरंगजेब इनसे सदा द्वेष मानता रहा।

३ राजकुमार पृथ्वीसिंह इनके एक मात्र होनहार पुत्र थे और ये बाहर जाते समय राज्य का प्रबंध इन्हें सौंप जाते थे। औरंगजेब ने इन्हें सन् १६६० ई० में जब ये केवल १४ वर्ष के थे अपने पास बुलाकर इनके दोनों हाथ पकड़ लिए और पूछा कि अब तुम क्या कर सकते हो?

पुत्र हुए जिनमें एक जल्द पिता के पास चला गया और दूसरा मुहम्मदी राज था जो मुसलमान बनाया जाकर बादशाही महल में पाला गया[१]। एक अन्य पुत्र (कहते हैं कि इनके जातिवालों ने बहुत प्रयत्न के साथ देश में लाकर पाला था) अजीतसिंह थे जिनका वृत्तांत इस ग्रंथ में अलग दिया गया है।

राजकुमार ने उत्तर दिया कि एक हाथ पकड़ने से जब शरणागत के सब मनोरथ सिद्ध होते हैं, तब दोनों हाथ पकड़ने पर क्या नहीं हो सकता। टाड लिखते हैं कि बादशाह ने ईर्ष्या से कहा कि यह दूसरा खुत्तन है। औरंगजेब जसवंतसिंह को खुत्तन के नाम से याद किया करता था। इसके अनंतर पृथ्वीसिंह को विषाक्त खिलअत दिया गया, जिससे बीमार होने पर कुछ ही समय बाद इनकी मृत्यु हो गई।

१ जसवंतसिंह की मृत्यु के तीन मास बीतने पर दो पुत्र दो रानियों से अमरूद ही में उत्पन्न हुए थे, जिनका नाम अजीतसिंह और दलथमन रखा गया था। इनके सरदार इन दोनों को लेकर दिल्ली आए। बादशाह ने इनके डेरों पर पहरा कर दोनों कुमारों को अपनी रक्षा में लेना चाहा। सरदारों इनकी कुटिल नीति समझ कर दोनों कुमारों को गुप्त रूप से मारवाड़ की ओर भेज दिया। मार्ग में दलथंमन जी की मृत्यु हो गई और अजीतसिंह सकुशल मारवाड़ पहुँच गए। दिल्ली का कोतवाल फौलाद खाँ एक लड़के को पकड़ कर अजीतसिंह के नाम से औरंगजेब के सामने ले गया जिसने उसे मुसलमान बना कर उसका मुहम्मदी बख्श नामकरण किया था। कुछ दिनों के बाद उसकी मृत्यु हो गई। अजीतसिंह का वृत्तांत अलग ग्रंथ के आरंभ में प्रथम शीर्षक में दिया गया है।

२६—जादोराव कानसटिया

यह अपने को यदुवंशी कहता था जिस वंश में प्रसिद्ध कृष्ण जी हुए हैं। यह निज़ामशाही राज्य का एक सरदार था। जहाँगीर के १६ वें वर्ष में जब शाहजहाँ ने दूसरी बार दक्षिण के विद्रोहियों को (जिन्होंने बलवा कर बादशाही राज्य में लूट मार करना आरंभ कर दिया था) दमन करने जाकर अपनी तीव्र बुद्धि तथा तलवार के बल से उस काम को पूर्ण किया, तब जादोराव (जो दक्षिणी सेना का हरावल था) सौभाग्य से शाहज़ादे की सेवा में आकर पाँच हज़ारी ५००० सवार का मन्सब पाकर सम्मानित हुआ। पुत्र, पौत्र और सम्बन्धियों के मन्सबों को मिला कर कुल मन्सब चौबीस हज़ारी, १५००० सवार तक पहुँच गया था। दक्षिण में जागीर पाकर उस प्रांत के सूबेदारों की अच्छी सहायता करता रहा और बराबर बादशाही सेवा में रहा।

शाहजहाँ के जलूस के ३रे वर्ष (सन् १६२९ ई०) में जब बुर्हानपुर में शांति स्थापित हो गई थी, तब जादोराव सेवा छोड़ कर पुत्रादि सहित निज़ामशाही राज्य में चला गया। उसने यह जानकर (कि यह स्वामिद्रोही है) यह विचार किया कि इस दाम में लाकर क़ैद करे और इसलिये उसे अपने यहाँ बुलाया। जब

लोगों का दुर्भाग्य था कि वे निःशंक होकर चल पड़े। एकाएक घात में लगी हुई सेना उनपर टूट पड़ी और उन्हें बाँधने लगी। इन लोगों ने बँध जाना ठीक न समझ तलवारें खींचा और दोनों ओरवाले भिड़ गए। जादोराव अपने दो पुत्र अचल और राघो तथा युवराज पौत्र यशवतराव के साथ मारा गया[1]। बचे हुए मनुष्य[2] उसकी स्त्री करजाई (जो उस हानि उठाए हुए झुंड के कार्यों को देखती थी) के साथ दौलताबाद से अपने देश सिंधखेड़ (जो परगना जालनापुर[3] के पास बरार की सीमा पर है और जहाँ जादोराव ने दुर्ग बना लिया था) पहुँचकर दुर्ग में जा बैठे। निज़ाम शाह ने उन्हें मिलाने का बहुत प्रयत्न किया, पर उन्हें न समझा सका और वे बड़ी लज्जा के साथ बादशाह के यहाँ प्रार्थी हुए। वहाँ (कि क्षमा करना बड़े बादशाहों का स्वभाव है) उन लोगों का भारी दोष क्षमा हो गया और वे फिर से नौकरी में ले लिए गए। दक्षिण के अध्यक्ष आज़म खाँ को (जो बालाघाट में खानेजहाँ लोदी का दमन करने में व्यस्त था) फर्मान भेजा गया। पूर्वोक्त खाँ ने दत्त जी के द्वारा (जो जादो-राव के सब कार्यों की देख भाल करता था) उन लोगों को सम्मान सहित बुलाकर प्रत्येक के लिये अच्छा मन्सब नियत किया।

१ बादशाहनामा भा० १, पृ० ३०८ से यह वृत्त लिया गया है। फारसी अक्षरों के कारण अचल को उजला और यशवत को बसवत पढ़ा गया है। (इलि० डा०, जि० ७, पृ० १०–११)

२. इसमें इसका भाई जगदेव और पुत्र बहादुर जी भी थे।

३. औरंगाबाद के पूर्व केवल जालना नाम से प्रसिद्ध है।

बादशाह के दरबार से इन मन्सबों पर नियुक्ति तथा व्यय के लिये एक लाख तीस हज़ार रुपया पुरस्कार, दक्षिण, बरार और खानदेश प्रांतों में जागीर और जादोराव को पहले के महाल को बहाली दी गई। ४ थे वर्ष जादोराव के पुत्र बहादुर के दरबार आने पर पाँच हजारी ५००० सवार का मन्सब झंडा और डंका मिला। जादोराव के भाई जगदेवराव को चार हजारी ४०० ० सवार का मन्सब, झंडा और डंका मिला। पतंगराव को तीन हजारी १५०० सवार का मन्सब (जो पहले उसके मारे गए भाई जसवंत राव को मिला था) और जादोराव को पदवी[1] (जो उसके दादा का नाम था) मिली। बेल्लूजी[2] को दो हजारी १००० सवार का मन्सब (जो उसके मृत पिता अचल को प्राप्त था) मिला। ५ वें वर्ष जगदेव राव मर गया और जब ८ वें वर्ष बहादुर जी की भी मृत्यु हो गई, तब उसके पुत्र दत्ताजी को तीन हजारी १००० सवार का मन्सब मिला। आलमगीर के समय यह दिलेर खाँ के साथ मराठों के युद्ध में मारा गया। उसके पुत्र को जगदेव राव की पदवी और अच्छा मन्सब मिला। इसके अनन्तर उसके पुत्रों में से एक मानसिंह मन्सूर खाँ की सूबेदारी के समय थोड़ी सेना के साथ औरंगाबाद की रक्षा तथा अध्यक्षता पर नियुक्त हुआ। इसने तालाब पर एक नया गृह बनवाया। इसका दूसरा

१ जब अमीरुल् उमरा शायस्ता खाँ ने शिवा जी पर चढ़ाई की तब यह भी साथ था और पूना विजय होने पर यह उस स्थान का थानेदार बनाया गया।

२ पाठा० बिट्ठो जी।

भाई रघू जगदेवराय के साथ वहाँ पहुँचा। जिस समय प्रसिद्ध शिवाजी के पिता शाहजी निजाम-शाही जादोराय का दामाद हुआ, उस समय इस गोत्रवाले मध्यस्थ थे। वर्तमान राजा साहू की बहिन का विवाह जगदेवराय से निश्चित हुआ। मुहम्मद शाही राज्य के छठे वर्ष में (११३६ हि०, सन् १७२३ ई०) उस युद्ध में (जो निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह और हैदराबाद के नाज़िम मुबारिज़ खाँ के बीच उसकी जागीर के पास शकरखेरा में हुआ था) इस पक्ष को छोड़कर मुबारिज़ खाँ की ओर चला गया और युद्ध में मारा गया[1]। उस दिन से उनमें से किसी को दूसरा मन्सब या जागीर नहीं दी गई। उसका पुत्र मानसिंह (जो राजा साहू का भाजा था) अपने चचेरे भाइयों के साथ सिंधखेड़ में सरकार दौलताबाद की जमींदारी से (जो पहले से इनके पूर्वजों को प्राप्त थी) दिन व्यतीत करता था और देश-प्रेम के कारण कहीं नहीं जाता था। अंत मे आय की कमी से लाचार होकर चला गया। यह सिंधखेड़ परगना औरंगाबाद से तीस कोस पर बरार प्रांत को मेहकर सरकार के पास है जो जादोराव का प्राचीन स्थान था। इससे छ सात कोस पर देवलगाँव[2] राजा नामक परगना है जहाँ जादोराव ने दृढ़ दुर्ग बनवाने और उसे बसाने का साहस किया। उस समय बस्ती अच्छी थी, क्योंकि उसके उत्तर में प्राय ही उजाड़ बस्तियाँ हैं।

---

१ खफी खाँ भा० २, पृ० ६४९–६४।

२. बुरहानपुर से लगभग तीस कोस दक्षिण।

२७--महाराव जानोजी जसवंत निंबालकर[1]

ये राव रंभा के पुत्र थे जो औरंगज़ेब के समय अच्छे मन्सब सहित दक्षिण में नियुक्त था। (जब साहू भोंसला से दो बार युद्ध हो चुका तब) इन्होंने संधि होने पर हुसेन अली खाँ से उसकी शिकायत की। उसने इनके कहने पर उसे (राव रंभा को) कैद कर लिया। (जिस समय निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह बहादुर मालवा से दक्षिण को रवाना होकर नर्मदा पार उतरे, उस समय) मुहम्मद अनवर खाँ की प्रार्थना पर छुट्टी पाकर सहायता के लिये बुरहानपुर में नियत हुए। इसने (कि इसमें खोट थी) मुहम्मद गियास खाँ बहादुर को मध्यस्थ कर पूर्वोक्त सरदार से भेंट की। आलम अलीखाँ[2] और मुबारिज़ खाँ इमादुलमुल्क[3] के युद्ध में अच्छा प्रयत्न किया जिससे साथ

---

१ शुद्ध नाम निंबालकर है।

२. अमीरुल्उमरा हुसेन अली खाँ सैयद तथा उसके बड़े भाई का दिल्ली में फर्रुखसियर के समय से प्रभुत्व बहुत बढ़ गया था और इन दोनों से दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह तथा अन्य सरदार खिन्न हुए थे। निज़ामुलमुल्क भी इन्हीं में से एक था और अवसर देख कर इसने मालवा जाने के बहाने दक्षिण का रास्ता लिया। दक्षिण की सूबेदारी पर हुसेन अली खाँ का भतीजा आलम अली खाँ नियत था जिसे परास्त कर सन् १७२ ई० में आसफजाह ने वहाँ अपना अधिकार कर लिया।

३ मुबारिज़ खाँ निज़ामुलमुल्क की सहायता से ऊँचे मन्सब को

हजारी ७००० सवार का मन्सब मिला। उसकी मृत्यु पर जानोजी को योग्य मन्सब तथा पिता के महाल जागीर में मिले। जागीरदारी की योग्यता अच्छी थी। अच्छी वस्ती बसा कर और शिक्षित सेना एकत्र कर युद्धों में अच्छा साहस दिखलाया। स्वभाव ही से यह बहुत नीति-कुशल था, इससे दक्षिण के मरहठे सरदारों को बातचीत में बराबर मध्यस्थ रहता था। नासिरजंग[1] शहीद के समय इसे जसवंत की पदवी मिली। फुलभरी के युद्ध में पूर्वोक्त सरदार के साथ अच्छा कार्य किया। यद्यपि रस्मालों को भाषा में उसका मारा जाना लिखा था, पर वह सन् ११७६ हि०[2] में मर गया। बड़ा पुत्र आनंदराव जयवंत (कि उसमें यौवन का चिह्न प्रगट हो रहा था) उसी के सामने मर गया। अब उसके दूसरे पुत्र महाराव और जयवंत के पुत्र रावरभा पैतृक जागीर पाकर सेवा करते रहे।

पहुँचा था और हैदराबाद का अध्यक्ष था। निजामुलमुल्क प्रधान मंत्री होकर दिल्ली गया था, पर सन् १७२४ ई० में वहाँ से लौट आया। बादशाह के इशारे से मुबारिज खाँ उसी से लड़ गया और मारा गया।

१ जब नवाब आसफजाह की सन् १६४८ ई० में मृत्यु हुई, तब नासिर जंग निज़ामुद्दौला गद्दी पर बैठे। मुजफ्फर जंग से युद्ध होने के बाद यह पाँडिचेरी (फूलभरी) होता हुआ अर्काट गया जहाँ पठानों के फरासीसियों से मिल जाने के कारण उनके षड्यंत्र का शिकार हुआ। (मैलेसन कृत हिस्टरी 'आव द फ्रेंच इन इंडिया' पृ० २४२–२४८)

२ सं० १८१६ वि० (सन् १७६२ ई०)।

२८—जुगराज उपनाम विक्रमाजीत

यह राजा जुझारसिंह बुँदेला का पुत्र[१] था। शाहजहाँ के प्रथम वर्ष में इसे हजारी १००० सवार का मन्सब मिला। जिस वर्ष खानेजहाँ लोदी आगरे से भाग कर बुँदेलों के राज्य में पहुँचा और वहाँ से वेगगढ़ होता हुआ निजामुल्मुल्क के राज्य की सीमा में चला गया, पर बादशाही सेना (जो पीछा कर रही थी) उस तक नहीं पहुँच सकी, उस वर्ष यह बादशाह का कोपभाजन हुए क्योंकि उसका बिना किसी रुकावट के निकल जाना तथा शाही सेना का न पहुँचना इन्हीं के मार्ग-प्रदर्शन का दोष था[२]। ४थे वर्ष (जब खानेजहाँ लोदी दरिया खाँ रुहेला के साथ दक्षिण से मालवा पहुँच कर कालपी जाने के विचार से फुर्ती के साथ बुँदेलों के राज्य में पहुँचा तब) इसने अपने पिता की बदनामी और लज्जा मिटाने के लिये झट उसका पीछा किया। चौरागढ़ तक (जिसका सरदार दरिया खाँ था) पहुँचकर लड़ने लगा

१ इसका जन्म सं १६६६ वि में हुआ था। बा० प पत्रिका सं १६०० पृ १११।

२ इसरे वर्ष (१६२६ ई में खानेजहाँ दक्षिण गया था। बादशाहनामा भा १ पृ २ ४-५ में स्पष्ट ही यह दोषारोपण विक्रमाजीत पर किया गया है।

जिसमें दरिया खाँ गोली खाकर मर गया। बँदेलों ने खाने जहाँ समझ कर उसे घेर लिया और विक्रमाजीत ने उसका सिर काट कर बादशाह के पास भेज दिया। इस प्रयत्न का पुरस्कार भी जल्दी मिला। मन्सब बढ़कर दो हज़ारी २००० सवार का हो गया और जुगराज की पदवी, ख़िलअत, जड़ाऊ तलवार, डंका और निशान पाया। फिर पिता के बदले दक्षिण जाकर ख़ानख़ानाँ और ख़ानेज़माँ के साथ अच्छा कार्य कर कभी मध्य और कभी चदावल मे नियत होता था। दौलताबाद और परेंदा के दुर्गों के घेरे में मोर्चों की रक्षा और शत्रुओं के धावों में बहुत वीरता दिखलाई। ८वें वर्ष पिता के लिखने पर (जिस पर चौरागढ़ के राजा भीमनारायण को मारने के कारण शंका की गई थी) देश लौट गया। बुरहानपुर के सूबेदार ख़ानेदौराँ ने इसके भागने का समाचार सुनकर पीछा किया। कुछ आदमी मारे गए और कुछ घायल हुए, पर यह पिता से जा मिला। बादशाही सेना के वहाँ पहुँचने पर पिता के साथ यह भागता फिरा (इसका विवरण[१] जुझारसिंह के वृत्तांत में लिखा गया है)। सन् १०४४ हि० (सन् १६३४ ई०) में यह मारा गया। इसका पुत्र दुर्जन साल बादशाही सेना द्वारा पकड़ा गया।

---

१. विस्तृत वर्णन के लिए बादशाहनामा भाग २, पृ० ९४-१०२ देखिए।

'

२१—राजा जुझारसिंह बुँदेला

ये राजा वीरसिंह देव के पुत्र थे। पिता की मृत्यु पर राजा की पदवी सहित योग्य मन्सब तक उन्नति करते हुए जहाँगीर के राजत्व के अंतिम काल में चार हजारी ४००० सवार का मन्सब प्राप्त कर लिया था। शाहजहाँ के राजत्व के प्रथम वर्ष (सन् १६८४ वि०, सन् १६२७ ई०) सेवा में आकर खिलअत, जड़ाऊ कटार सहित सजाऊ अस्प, डंका और झंडा पाने से सम्मानित हुआ। जब शाहजहाँ के समय में राज-कार्यों की अधिक जाँच होने लगी तब यह (जिसने अपने पिता का संचित बहुत सा धन बिना परिश्रम के पाया था) शंका[1] के कारण अपने दृढ़ दुर्गों और जंगलों (कि उसके राज्य में थे) का विश्वास करके कुछ दिनों के अनंतर अर्द्ध रात्रि को आगरे से भाग कर ओड़छा चला

---

१ [illegible] लिखते हैं कि आगरे आने पर उसे पता लगा कि [illegible] खज़ाने के रजिस्टर में बढ़ कर जो उसके पूर्वज तैमूरी वंश को देते आए थे, बढ़ाया गया है। उसे घटाने के लिए प्रार्थना-पत्र देने के बदले बिना बादशाह की आज्ञा के दो भाग गए। ([illegible] १ पृ० १ [illegible])। [illegible] मिलता है कि जुझार यह जानकर कि शाहजहाँ जहाँगीर के अंतिम वर्षों में उसके पिता का [illegible] गृह-भार के लिये जाँच करना चाहता था डर गया और भाग गया ([illegible] १ पृ० ४१)।

गया और वहाँ दुर्गों को दृढ़ करने तथा सेना एकत्र करने में लगा। जब बादशाह को यह समाचार मिला तब महाबत खाँ खानखानाँ और दूसरे सरदारों को उस पर नियुक्त किया तथा मालवा के सूबेदार खानेजहाँ लोदी को आज्ञा भेजी कि उस प्रांत की सेना के साथ चँदेरी के रास्ते से (जो ओड़छा के उत्तर ओर है) उस राज्य मे जाय। अब्दुल्ला खाँ बहादुर को आज्ञा भेजी गई कि अपनी जागीर कन्नौज से बहादुर खाँ रुहेला आदि सरदारों के साथ ओड़छा की ओर पश्चिम से जाय। जब तीनों सेनाएँ पूर्वोक्त दुर्ग के पास पहुँच कर युद्ध करने लगीं और अब्दुल्ला खाँ, बहादुर खाँ और पहाड़सिंह बुँदेला के प्रयत्न से दुर्ग एरिज[1] टूटा, तब जुझार सिंह ने निरुपाय होकर महाबत खाँ की शरण आकर क्षमा के लिये प्रार्थना की। बादशाह ने इसे मान लिया। वह दूसरे वर्ष पूर्वोक्त खाँ के साथ दरबार में आया। खाँ उसके गले में दुपट्टा डालकर और उसके दोनों सिरों को पकड़ कर सेवा में लाया। एक हजार अशर्फी भेंट और पंद्रह लाख रुपया और चालीस हाथी (जो दंड के रूप मे निश्चित हो चुके थे) सामने लाने पर लिए गए।

जब शाहजहाँ ३रे वर्ष खानेजहाँ लोदी को दंड देने और निजामुलमुल्क के राज्य को नष्ट करने (जिसने खानेजहाँ को शरण दी थी) के लिये दक्षिण गया और तीन सेनाएँ उस प्रांत

---

१. एरिच या ऐरछ बेतवा नदी के तट पर झाँसी से २० कोस पूर्व और उत्तर में है।

पर अधिकार करने के लिए नियत थी, तब यह दक्षिण के सूबेदार आज़म ख़ाँ के साथ नियुक्त हुआ और इस राजा की पदवी प्राप्त हुई। इसके अनंतर (जब दक्षिण की सेना का सेनाध्यक्ष यमीनुद्दौला हुआ था) यह दूसरे मन्सबदारों के साथ धारूर में नियुक्त हुआ। जब दक्षिण के सूबे महाबत ख़ाँ के अधीन हुए, तब कुछ दिन ख़ाँ के साथ रहकर छुट्टी लेकर देश गया और अपने पुत्र विक्रमाजीत को सेना सहित वहीं छोड़ गया। देश पहुँचने पर ८ वें वर्ष उपद्रवी स्वभाव के कारण चौरागढ़ (कि गढ़ा प्रांत की राजधानी है) के भूस्वामी भीमनारायण[1] पर चढ़ाई की और प्रतिज्ञा करके उसको बाहर निकाल कर उसके साथवालों के सहित मरवा डाला। दुर्ग पर धन और सामान सहित अधिकार कर लिया। जब यह समाचार बादशाह को मिला तब आज्ञापत्र गया कि उस प्रांत को बादशाह के लिये छोड़ दे या अपने राज्य से उतनी ही भूमि बदले में छोड़ दे और उसके धन में से दस लाख रुपया भेज दे। उसने वकील के लिखने से यह जानकर अपने पुत्र को (जो दक्षिण में था) लिखा कि भागकर चले आओ। तब तीन सेनाएँ सैयद ख़ानेजहाँ बारहः, फ़ीरोज़ जंग बहादुर और ख़ानेदौराँ की अधीनता में उसे

---

१ मआसिरुल्उमरा में भी गौड़ राजा का यही नाम लिखा है। (बादशाहनामा भाग १ पृ ६५)। इम्पीरियल गज़े० जि० १८. पृ० १८० में भेमनारायण नाम लिखा है। चौरागढ़ मध्य प्रदेश के नृसिंहपुर ज़िले में गाडरवारा स्टेशन से पाँच कोस दक्षिण और पूर्व है।

दंड देने के लिये नियत हुई। इन लोगों के सहायतार्थ सुलतान औरंगजेब बहादुर भी शायस्ता खाँ आदि के साथ भेजे गए। जब बादशाही सेनाएँ पास पहुँचीं तब पहिले ओड़छा से धामुनी[१] (जो उसके पिता का बनवाया हुआ था) और फिर वहाँ से चौरागढ़ गया। जब कहीं नहीं ठहर सका तब निरुपाय होकर सब सामान लिए हुए देवगढ़ गया। बादशाही सेनाएँ[२] भी पीछा करती हुई पहुँचीं और फिर लड़ाई हुई। बहुत से सिक्के और जड़ाऊ सामान मुसलमानों के हाथ आया। वह स्वयं अपने बड़े पुत्र विक्रमाजीत के साथ जंगल में छिपा था। गोंड़ों ने (जो वहाँ बसे थे) इन दोनों को सन् १०४४ ई० में मार डाला। खानेदौराँ यह समाचार सुनकर दोनों के सिर काटकर फीरोज जंग के पास लाया। पूर्वोक्त खाँ ने बादशाह के पास भेजा और उसके कोष से जो एक करोड़ रुपया प्राप्त हुआ था, बादशाह के कोष में भेजा गया[३]।

---

१. धसान नदी के पास सागर नाम से १२ कोस उत्तर है।

२. बादशाही सेना में देवीसिंह बुँदेला, सिसोदिया, राठौड़, कछवाहा और हाड़ा जाति की राजपूत सेनाएँ भी सम्मिलित थीं।

३ जुझारसिंह तथा ओड़छा के अन्य राजाओं का विस्तृत वर्णन जानने के लिये नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भा० १, अंक ४ देखिए।

३०—राजा जैराम बड़गूजर

राजा अनूपसिंह प्रसिद्ध नाम अनीराय सिंहदलन[1] का यह पुत्र था। पिता के सामने योग्य मन्सब सहित काम पर नियत था। उसकी मृत्यु के अनन्तर शाहजहाँ के ११ वें वर्ष (सन् १६३७ ई०) में खिलअत, राजा की पदवी और मन्सब बढ़कर हजारी ८०० सवार का मन्सब मिला। १२वें वर्ष २०० सवार मन्सब में बढ़ाए गए। १३वें वर्ष शाहजादा मुरादबख्श के साथ (जो भीरा में ठहरने गया था और वहाँ से आज्ञानुसार काबुल गया) बिदा हुआ। १४ वें वर्ष में फिर उसी शाहजादे के साथ काबुल गया। १९ वें वर्ष में उसका मन्सब बढ़कर डेढ़ हजारी १५०० सवार का हो गया और यह शाहजादा मुरादबख्श के साथ बलख बदख्शाँ की चढ़ाई पर गया। बलख विजय होने पर यह बहादुर खाँ और असालत खाँ के साथ वहाँ के राजा नजर मुहम्मद खाँ का पीछा करने पर नियत हुआ। २० वें वर्ष में यह मन्सब के दो-हजारी १५०० सवार तक बढ़ने पर सम्मानित हुआ। बलख के आसपास उजबेगों का दमन करने और अलअमानों का नाश करने में अच्छा कार्य्य किया। २१ वें वर्ष १०५७

---

१ इसका वृत्तांत अलग १२ शीर्षक पर दिया गया है।

हि० (सन् १६४७ ई०) में वहीं उसकी मृत्यु हो गई। बादशाह ने यह समाचार सुनकर उसके पुत्र अमरसिंह को राजा की पदवी और मन्सब में उन्नति करके आपसवालों में परिगणित किया।

३१—राजा टोडरमल

यह लाहौरी[1] खत्री थे। यह समझदार लेखक और वीर सम्मतिदाता थे। अकबर की कृपा[2] से बड़ी उन्नति करके चार हजारी मन्सब और अमीरी और सवारी की पदवी तक पहुँच

---

१ राजा टोडरमल जाति के खत्री थे और इनका असल स्थान था। इनका जन्मस्थान अवध प्रांत के सीतापुर ज़िले के अंतर्गत लहरपुर नामक ग्राम है और यद्यपि कुछ इतिहासज्ञ लाहौर के पास चूनिया गाँव को इनका जन्मस्थान बतलाते हैं पर वहाँ के मज़ारफ़ोरेन ऐस पैरवाने का पता देते हैं कि इनके माता पिता के पास नहीं था। इनके पिता इन्हें बचपन ही में छोड़कर स्वर्ग सिधार थे और इनकी विधवा माता ने किसी प्रकार इनका पालन पोषण किया था। कुछ बड़े होने पर माता की आज्ञा से यह दिल्ली गए और सौभाग्य से वहाँ नौकरी लग गई।

२ अकबर की सेवा में आने के पहिले यह शेर शाह की नौकरी कर चुके थे। तारीख़े-खानेजहाँ लोदी में लिखा है कि शेर शाह ने इन्हें रुहतास बनवाने पर नियुक्त किया था, पर गक्खर जाति एका करके किसी के भी काम करने में बाधा डालती रही। टोडरमल ने जब यह वृत्तांत शेर शाह से कहा तब उसने उत्तर दिया कि धन के लोभी बादशाहों की आज्ञा नहीं कर सकते। इस पर इन्होंने एक एक पत्थर ढोने की एक एक अशर्फ़ी मज़दूरी लगा दी जिस पर इतनी भीड़ हुई कि चार से चार मजदूरी करने चार पर आ लगी। जब दुर्ग तैयार हो गया तब शेर शाह ने इनकी प्रशंसा की थी।

गए। अठारहवे वर्ष मे[1] (कि गुजरात प्रांत बादशाह के आने से विद्रोहियो के उपद्रव से साफ हो गया था) राजा को कोष विभाग को जाँच करने के लिये छोड़ गये कि न्यायपरता के साथ जो कुछ निश्चित करें, उसी प्रकार की वेतन-सूची काम में लाई जाय। १९वें वर्ष (स० १६३१ वि० सन् १५७४ ई०) मे यह पटना विजय के अनतर झंडा और डका मिलने से सम्मानित होकर मुनइम खाँ खानखानाँ की सहायता के लिये बंगाल में नियुक्त हुए। यद्यपि सेनापतित्व और आज्ञा खानखानाँ के हाथ मे थी, पर सैन्य-सचालन, सैनिकों को उत्साह दिलाने, साहसपूर्वक धावे

---

१. अकबर के राज्य के ६वें वर्ष सन् १५६४ ई० में इन्होंने मुजफ्फर खाँ की अधीनता में कार्य आरभ किया था तथा इसके दूसरे वर्ष अली-कुली खाँ खानेजमाँ के विद्रोह करने पर यह मीर मुईजुलमुल्क के सहायतार्थ लश्कर खाँ मीरबख्श के साथ सेना लेकर गए थे। युद्ध मे बादशाही सेना परास्त हुई और खानेजमाँ का भाई बहादुर खाँ विजयी हुआ। (बदायूनी भा० २, पृ० ८०—८१ और तबकाते-अकबरी, इलि० डा०, भा० ५, पृ० ३०३—४)। १७वे वर्ष सन् १५७२ ई० में गुजरात की चढ़ाई पर यह अकबर के साथ गए थे और बादशाह ने इन्हें सूरत दुर्ग देख कर यह निश्चय करने भेजा था कि वह दुर्ग टूट सकता है या अभेद्य है। बदायूनी भा० २, पृ० १४४ में लिखता है कि इनकी राय में वह अजेय नहीं था और उसके जीतने के लिये बादशाह के वहाँ जाने की भी विशेष आवश्यकता नहीं थी। अठारहवे वर्ष के आरंभ में यह पजाब भेजे गए कि वहाँ के प्रबध में अपने अनुभव से सूबेदार हुसेन कुली खाँ खानेजहाँ को सहायता पहुँचावे। इसके बाद से मआसिरुल्उमरा में टोडरमल का जीवनवृत्त आरभ होता है।

करने और विद्रोहियों तथा शत्रुओं को दंड देने में राजा ने बड़ी वीरता दिखलाई। खानज़माँ की फ़िरंगी के युद्ध में (जब खाने आज़म इरावल में मारा गया और ख़ानख़ानाँ कई घाव खाकर भाग गया तब भी) राजा दृढ़ता से डटा रहा और बहुत प्रयत्न करके ऐसे पराजय को विजय में परिणत कर दिया। ठीक युद्ध में (कि शत्रु विजय होने के मर्मज्ञ में थे) खाने आज़म और ख़ानख़ानाँ के बुरे समाचार लाए गए, जिस पर राजा ने बिगड़ कर कहा कि 'यदि खाने आज़म मर गया तो क्या शोक, और ख़ानख़ानाँ मर गया तो क्या डर ? बादशाह का इकबाल तो हमारे साथ है।' इसके अनन्तर वहाँ का प्रबंध ठीक होने पर बादशाह के पास पहुँच कर पहिले की तरह माली और देश के कार्यों में लग गया[1]।

जब खानेजहाँ ने बंगाल की सूबेदारी पाई तब राजा भी उसके साथ नियुक्त हुए। इस बार इनके सौभाग्य से वह प्रांत हाथ से जाकर फिर अधिकार में चला आया और इन्होंने दाऊद ख़ाँ को पकड़ कर मार डाला। २१वें वर्ष में उस प्रांत की लूट को (जिनमें तीन चार सौ भारी हाथी थे) बादशाह के सामने लाए[2]। गुजरात प्रांत का प्रबंध ठीक नहीं था और वज़ीर ख़ाँ

१ तबकाते अकबरी (इलि डाउ भा ५, पृ १०१-१६) में विस्तृत विवरण दिया हुआ है।

२. तबकात में लिखा है कि २१वें वर्ष के अंत में ५ हाथी लेकर दरबार आए थे। इलि डा भा ५, पृ ४०२।

की ढिलाई से वहाँ गड़बड़ी और अशांति मची थी, इसलिये राजा उस प्रांत का प्रबंध करने के लिये नियत किया गया। यह बुद्धि-मानी, कार्य्यदक्षता, वीरता और साहस के साथ सुल्तानपुर और नजरबार से बड़ौदा और चपानेर तक का प्रबंध ठीक करके अहमदाबाद आए और वजीर खाँ के साथ न्याय करने में तत्पर हुए। एकाएक मेहर अली के बहकाने से मिर्ज़ा मुजफ्फर हुसेन का बलवा मच गया। वजीर खाँ ने चाहा कि दुर्ग मे जा बैठे; पर राजा टोडरमल ने साहस करके उसे युद्ध करने पर उत्साहित किया और २२वें वर्ष में ध्वादर[1] के पास युद्ध की तैयारी की। वजीर खाँ ने सैनिकों के भागने से लड़ मरना चाहा और पास ही था कि वह काम आ जाता, पर राजा (कि बाएँ भाग का सरदार था) अपने विपक्षी को भगा कर सहायता को पहुँचा और एक बार ही घमंडियों के युद्ध का ताना बाना टूट गया। मिर्ज़ा जूनागढ़ की ओर भागा। उसी वर्ष भाग्यवान राजा दरबार में पहुँच कर अपने मंत्रित्व के काम में लग गया।

जब इसी वर्ष बादशाह का अजमेर से पंजाब जाना हुआ, तब चलाचली में एक दिन राजा की मूर्तियाँ (कि जब तक उनकी पूजा एक मुख्य चाल पर नहीं कर लेता था, दूसरा काम नहीं करता था) खो गईं। उसने सोना और खान-पान छोड़ दिया। बादशाह ने बहुत कुछ समझा कर इससे अपनी मित्रता

---

१. अहमदाबाद से बारह कोस पर धोलका स्थान में युद्ध हुआ था।

प्रदर्शित की[1]। यहाँ से (कि मन्त्रिसभा का कार्य करता था) इस बड़े कार्य के उत्तरदायित्व और कपटी युक्तयोगों के बल का विचार करके, इसको उसने स्वीकार नहीं किया। २७वें वर्ष के आरंभ (सन् ९९० हि०) में यह प्रधान अमात्य नियत हुआ जो अर्थ में वकील-कुल के समान है और कुल कार्य उसी की सम्मति से होने लगा। राजा ने आय और राज्य के कार्यों का नए ढंग से चलाया और कुछ नए नियम भी बनाए जो बादशाही आज्ञा से काम में लाए जाने लगे। इनका विवरण अकबरनामे में दिया है[2]। २९वें वर्ष में उसका गृह बादशाह के जाने से प्रकाशित हुआ जिसकी प्रतिष्ठा के लिये राजा ने महफिल सजाई थी। ३२वें वर्ष (सं० १६४४ वि०, सन १५८७ ई०) में किसी कपटी 'खत्री बच्चे'

---

१. २१वें वर्ष में जब मुजफ्फर खाँ की कड़ाई से बहुत से काकशाली सरदार भी विद्रोहियों से मिल गए तथा उसकी मृत्यु पर बिहार तथा बंगाल के बहुत भाग पर अधिकार भी कर लिया तब राजा टोडरमल वहाँ शांति स्थापित करने के लिये भेजे गए। मासूम काबुली काकशाल सरदारों तथा मिर्जा शरफुद्दीन हुसेन ने ३ सेना के साथ इन्हें मुंगेर में घेर लिया। हुमायूँ फर्मोली और तर्खान दीवान बखाइयों से मिल गए। सामान की भी कमी थी पर सब कष्ट सहन करते हुए तथा अनेक बार शाही सरदारों को जो विद्रोही हो गए थे शांत कर मिलाते हुए इन्होंने अंत में वहाँ शांति स्थापित की। (ब्लॉकमैन आईन अकबरी पृ ३५१ १ इलि डा भाग ५ पृ ४१७-४२१)

२. यह अंश अकबरनामे से लिया गया है। (अकबरनामा इलि डा भा ६ पृ ६१-६५)

ने, जा इससे जलता था, रात्रि के समय सवारी मे तलवार फेकी। साथवालो ने उसे वहीं मार डाला। जब राजा बीरबर पार्वत्य प्रदेश स्वाट में मारे गए, तब यह (राजा) कुँअर मानसिंह के साथ यूसुफ़जई जाति को दण्ड देने पर नियुक्त हुए। जब ३४वें वर्ष में बादशाह हरे भरे काश्मीर को चले, तब यह मुहम्मद क़ुली ख़ाँ बर्लास और राजा भगवंतदास कछवाहा के साथ लाहौर के रक्षक नियुक्त हुए। इसी वर्ष (जब बादशाह काश्मीर से काबुल चले तब) इन्होंने प्रार्थनापत्र लिखा कि वृद्धावस्था और रोगो ने हमे दबा लिया है और मृत्यु का समय पास आ गया है, इसलिये यदि छुट्टी पाऊँ तो सबसे हाथ उठा लूँ और गंगाजी के तट पर जाकर प्राण त्यागने के लिये परमेश्वर को याद करूँ। प्रार्थना के अनुसार छुट्टी मिल गई और लाहौर से हरिद्वार को चल दिए। साथ ही दूसरा आज्ञापत्र पहुँचा कि ईश्वर के पूजन से निर्बलो की सेवा नहीं हो सकती, इससे अच्छा है कि मनुष्यों का काम सँभालो। निरुपाय होने से लौट कर ३४वें वर्ष सन् ९९८ हि० के आरंभ के ग्यारहवें दिन मर गए।

अल्लामी फ़हामी अबुलफ़ज़ल इनके बारे मे लिखते हैं—"यह सचाई, सत्यता, कार्य्यदक्षता, कार्य्यों मे निर्लोभिता, वीरता, कादरो का उत्साह दिलाने, कार्य्य-कुशलता, काम लेने और हिन्दुस्थान के सरदारों में अद्वितीय था। पर द्वेषी और बदला लेने-वाला था। इसके हृदय के खेत में थोड़ी कठोरता उत्पन्न हो गई थी। दूरदर्शी बुद्धिमान ऐसे स्वभाव को बुरे स्वभावों में गिनते

हैं, मुख्यतः राजकीय कार्यों में जहाँ संसारी लोगों का काम उसे सौंपा गया हो। सम्राट् के वकील नियत हुए थे। यदि उसकी बुद्धिमानी के मुख पर धार्मिक कट्टरपन का रंग न होता तो ऐसा अयोग्य स्वभाव न रखता। सच यह है कि यदि धार्मिक कट्टरपन, हठ और द्वेष न रखता और अपनी बातों का पक्ष न लेता तो महात्माओं में से होता। तब भी संसार के और लोगों को देखते हुए यह संतोष, निर्लोभिता (कि उसका व्यापार लोभ से मिला हुआ है) परिश्रम करने, काम करने और अनुभव में अनुपम तथा अद्वितीय था। (उसकी मृत्यु से) निःस्वार्थ कार्य्य-संपादन को हानि पहुँची। चारों ओर से कामों के आ जाने पर भी वह नहीं घबराता था। ठीक है कि ऐसा सच्चा पुरुष (कि अनन्य के समान था) हाथ से निकल गया। वह विश्वास (कि संसार में कम दिखलाई देता है) किस जादू से मिलता है और किस विश्वास से प्राप्त हो सकता है।'

आलमगीर बादशाह कहते थे कि शाहजहाँ के मुख से सुना है कि एक दिन अकबर बादशाह उससे कहते थे कि टोडरमल कोष और राज्य के कामों में तीव्र-बुद्धि था और अधिक जानकारी रखता था, पर उसका हठ और अपनी बातों पर अड़ना अच्छा नहीं लगता था। अबुलफज़्ल भी उससे बुरा मानता था। जब एक बार उसने शिकायत की तब अकबर ने कहा कि कृपापात्र को नहीं छुड़ा सकता। राजा टोडरमल के बनाए हुए नियम नगरों और सेना के प्रबन्ध में सर्वदा काम में लाए जाते हैं और बहुधा बादशाही दफ़्तर

उन्हीं पर स्थित हैं। हिन्दुस्थान मे सुलतानो और प्राचीन राजाओं के समय से छठा भाग कर लिया जाता था। राजा टोडरमल ने भूमि के कई विभाग पहाड़ी, पड़वी, ऊसर और बंजर आदि किए। उपजाऊ और अन-उपजाऊ खेतो की नाप करके (जिसे रक़ब' कहते हैं) तथा उसकी नाप बीघा, बिस्वा और लाठा से लेकर हर प्रकार के अन्न पर प्रति बीघा नगद और कुछ पर अन्न का, जिसे बँटाई कहते हैं, लगाया। पहिले सैनिकों के वेतन पैसों में दिए जाते थे, इससे टोडरमल ने रुपए को (कि उस समय चालीस पैसे को चलता था) चालीस दाम का निश्चित कर प्रत्येक स्थान की आय का हिसाब लगाकर मनुष्यों में वेतन के बदले में बाँट दिया, जिसे जागीर कहते हैं। महाल को (जिस का कर राजकोष में आता है, खालसा नाम देकर) जिसकी आय एक करोड़ दाम थी, (जो बारह महीने के ठीके पर दिया जाता था। एक लाख दाम का ढ़ाई हज़ार रुपया होता था। फसलों की उपज पर भी बहुत कुछ ध्यान रखा जाता था।) एक योग्य मनुष्य के प्रबन्ध में देकर उसका करोड़ी नाम रखा। उगाहने के लिये एक सौ पाँच रुपया ठीक किया। पहिले पैसे के सिवाय और कोई सिक्का नहीं था और सरदारो, राजदूतों और कवियों को पुरस्कार देने के लिये पैसे भर चाँदी में ताँबा मिला कर सिक्का बनाते थे और चाँदी का तनका नाम देकर काम में लाते थे। राजा ने बेमिलावट के ग्यारह माशे सोने की अशर्फी और साढ़े ग्यारह माशे चाँदी का रुपया ढलवाया। इस नई बात का पता

इसी से अधिक लगता है कि उस पर लक्ष्य दिया है। वस्तुतः अकबर बादशाह का स्वभाव (कि राज्य और संसार-पालन के अङ्ग है) हर एक काम की इच्छा रखता था। और गुणों तथा कारीगरियों को ठीक करता था। उसके सुप्रकाशित समय में (कि सातों देशों के बुद्धिमान् और विद्वान एकत्र थे) हर एक बुद्धिमान् सरदार अपनी बुद्धि और विद्या की पहुँच से अपने अधीनस्थ कार्यों में किसी नई बात और लाभकारी का अन्वेषण करता था तो वह बादशाही कृपा का पात्र होता था। यहाँ तक कि कारीगर और विद्वान् लोग अपने अपने कार्य्यों में उन्नति कर के पुरस्कार पाते थे[1]।

जब बादशाह स्वयं बुद्धिमान् होता है, तब और विद्वानों को भी वैसा ही बना लेता है।

राजा के कई लड़के[2] थे और सब से बड़े का नाम धारू

---

१ पहिले तहसील के कागज़-पत्र हिंदी में रहते थे और हिन्दू दफ्तर-गण ही लिखते पढ़ते थे पर इन्हीं टोडरमल के प्रस्ताव पर सब काम फ़ारसी में होने लगा और तब हिन्दुओं ने भी फ़ारसी भाषा का अभ्यास किया। कुछ ही दिनों में ऐसी योग्यता प्राप्त कर ली कि वे मुसलमानों के फ़ारसी भाषा के उस्ताद बन बैठे थे।

२. इसके एक दूसरे लड़के का नाम गोवर्धन था जिसे बादशाह ने भरत बहादुर का पीछा करने भेजा था जो बंगाल से पराजित होकर जौनपुर चला गया था। जब इसने उसे लड़ाई में हरा दिया तब वह पहाड़ों में भाग गया। (मआसिरुल् उमरा अंग्रेजी पृ २१०)

था। अकबर के समय मे सात सौ सवार का मन्सब मिला था। ठट्ठा के युद्ध में ख़ानख़ानाँ के साथ बड़ी वीरता दिखला कर मारा गया। कहते हैं कि घोड़ों की नाल सोने और चाँदी की बँधवाता था।

३२—राजा टोडरमल (शाहजहाँनी)

आरम्भ में यह अफ़ज़ल खाँ का मित्र था। उसकी मृत्यु पर १३वें वर्ष (सन् १६३९ ई०) में राय की पदवी पाकर सरकार सरहिंद की दीवानी, अमीनी और फौजदारी के काम पर नियुक्त हुआ। १४ वें वर्ष में इस पद के साथ ही लखी जंगल की फौजदारी भी मिल गई। जब बादशाह ने उसकी योग्यता समझ ली तब १५वें वर्ष में खिलअत, घोड़ा और हाथी पुरस्कार में दिया। १६वें वर्ष अच्छे कार्य के पुरस्कार में इसका मन्सब बढ़ कर हजारी १००० सवार दो और तीन घोड़ेवाला हो गया। १९वें वर्ष पाँचसदी २०० सवार और बढ़ाकर सरहिंद पर नियुक्त किया। २०वें वर्ष ५०० सवार दो तीन घोड़ेवाले उसके मन्सब में और बढ़ाये गये। धीरे धीरे उसका तअल्लुका सरकार दिपालपुर, परगना जालंधर और सुलतानपुर के मिलने से बढ़ गया जिसकी तहसील प्रति वर्ष पचास लाख रुपया हो गई और वह उसी के समय में बराबर वसूल आती थी। इसलिये २१वें वर्ष में इसका मन्सब दो हजारी २००० सवार तक बढ़ाया गया और राजा की पदवी दी गई। २५वें वर्ष में इसे डंका मिला। सामूगढ़ के युद्ध[1] के अनन्तर जब दारा शिकोह भाग कर सरहिंद गया

---

१ यह सन् १६५८ ई० की घटना है।

और वहाँ से अपने रक्षार्थ लखी जंगल से जा रहा था, तब चौंस लाख रुपए उसकी जमा से (जो कई सोतों में गड़े हुए थे) दारा शिकोह के हाथ लगे। औरंगजेब के समय कुछ दिन इटावा का फौजदार रहा और नव वर्ष सन् १०७६ हि० (सन् १६६६ ई०) में उसकी मृत्यु हुई।

३३—राव दलपत बुंदेला

राजा बीरसिंह देव के पौत्र और भगवान राय[1] के पुत्र राव शुभकरण का यह पुत्र था। कहा जाता है कि इनका डेरा काशी[2] था और इनका एक पूर्वज वहाँ से आकर गैरागढ़ कटक में बस गया जिससे खैरवाड़[3] कहलाया। बहुत दिन हुए काशीराज नामक एक राजा (राव दलपत का २४वाँ पूर्वज) उस प्रांत में (जिसे अब बुंदेलखंड कहते हैं) बस कर विन्ध्यवासिनी[4]

---

१ बीरसिंह देव का तीसरा पुत्र था।

२ काशी अर्थात् बनारस में गहरवार क्षत्रियों का राज्य था जो सूर्यवंशी थे। बुंदेलखंड में चंदेल वंश का अधिकार था जिसका अंतिम राजा भोजवर्मन था। इसी के समय काशी से वीरभद्र ने आकर बुंदेलखंड में अपना अधिकार जमाया था।

३ गैरागढ़ कटक मध्य प्रदेश में है (इंपि० गजे० १५, १०) और खैरवार गहरवार का ही रूप है, क्योंकि फारसी लिपि में दोनों एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं।

४ मूल में बिंधवासी सा लिखा है जो शुद्ध रूप नहीं जानने के कारण हुआ है। मिस्टर बेवरिज ने अनुवाद में विंध्येश्वरी लिखा है और नोट में लिखते हैं कि जर्नल एशियाटिक सोसाइटी पृ० १, ४ में विंध्यवासनी या दुर्गा नाम का उल्लेख है। विन्ध्यवासिनी भी दुर्गा जी का एक नाम है।

की पूजा करता था जिस कारण वह बुँदेला[1] कहलाया। शाहजहाँ के समय जब इस जाति की सरदारी राजा पहाड़सिंह को मिली, तब औरंगजेब ने, जो शाहजादा था (और दक्षिण का सूबेदार था) शुभकरण को आज्ञापत्र और धन भेज कर बुलाया और उसे एक हजारी मन्सब दिया। सैयद अब्दुल वहाब जूनागढ़ी (कि कुछ दिन से बुरहानपुर में ही रहने लगा था) के साथ[2] बगलाना विजय करने पर नियत हुआ। और वह प्रांत बादशाही अधिकार में चला आया। ३२वें वर्ष में जब औरंगजेब पिता की बीमारी देखने को आगरे की ओर चला

---

१. वीरभद्र की दो रानियाँ थीं जिनमें से प्रथम के चार पुत्र—राजसिंह, हंसराज, मोहनसिंह और मानसिंह—थे और दूसरी रानी से एक पुत्र जगदास था जो वीरभद्र का पंचम पुत्र होने के कारण पंचम कहलाता था। वीरभद्र अपने राज्य का अर्द्धांश प्रिय पुत्र पंचम को और आधे में अन्य चार पुत्रों को भाग देकर स्वर्गलोक सिधारे जिसके अनंतर उन चार भाइयों ने पंचम को परास्त कर उसका राज्य भी आपस में बाँट लिया। पंचम विंध्याचल पर जाकर देवी का पूजन और तपस्या करने लगा। अंत में देवी को सिर चढ़ाने के लिए तलवार निकाली जिसकी चोट से रक्त की बूँदें पृथ्वी पर गिरीं और तब से यह वंश बुँदेला कहलाने लगा। देवी ने प्रगट होकर तलवार छीन ली और वरदान दिया। गोरेलाल कृत छत्रप्रकाश, प्रथम अध्याय।

२. मूल में इस शब्द के लिये कुछ नहीं दिया है जिस कारण अब्दुल वहाब का जिक्र असंगत मालूम होने लगता, इसलिये 'के साथ' बढ़ा दिया गया है।

और उज्जैन के पास पहुँच कर उसने महाराज जसवंतसिंह के साथ युद्ध किया, तब इसने बड़ी वीरता दिखलाई और घायल हुआ। दारा शिकोह के युद्ध में भी उसने ऐसी ही वीरता दिखलाई। शुजाअ के युद्ध के बाद चंपतराय बुंदेला का दमन करने पर नियत हुआ। इसके अनन्तर दक्षिण में नियुक्त होने पर बीजापुर की चढ़ाई में यह मिरज़ा राजा के बाएँ भाग में था। १० वें वर्ष यह मिरज़ा राजा से खफा होकर लौट गया। इसके बाद काबुल के नाज़िम मुहम्मद अमीन खाँ के साथ नियुक्त हुआ। पर जब खाँ और उसका साथ ठीक नहीं बैठा, तब १२ वें वर्ष में यह दरबार बुला लिया गया तथा दक्षिण में नियुक्त किया गया जहाँ युद्धों में उसने अच्छा कार्य दिखलाया। १९ वें वर्ष (जब दिलेर खाँ की अध्यक्षता में दक्खिनियों से युद्ध हो रहा था) यह अपने पुत्र दलपत के साथ चंदावल में था। २० वें वर्ष माँदा होकर दिलेर खाँ का साथ छोड़ बहादुरगढ़ (जहाँ उसका स्थान था) गया और २१ वें वर्ष वहीं मर गया।

राव दलपत को ११ वें वर्ष में ढाई सदी, ८० सवार का मन्सब मिला था जो कुछ दिन बाद तीन सदी, १०० सवार का हो गया। पिता की मृत्यु पर उसका मन्सब पाँच सदी ५०० सवार का हो गया और इसने पिता के नौकरों को उत्साह के साथ रखा। २२ वें वर्ष किसी कारण दक्षिण के सूबेदार खानेजहाँ बहादुर से बिगड़ कर दरबार चला गया; पर आज़म शाह के साथ फिर दक्षिण लौट आया। हसन अली खाँ आलमगीर शाही के साथ मोहरा

में जाकर बहुत वीरता दिखलाई। २३ वे वर्ष में मन्सब बढ़कर छः सदी ६०० सवार दो घोड़ेवाले, २४ वें वर्ष सात सदी ७०० सवार तथा २७ वें वर्ष में (जब गाजी उद्दीन खाँ के साथ मुहम्मद आज़म शाह की, जो बीजापुर घेरे हुए था, सेना के लिये घास लाने और शत्रु को रोकने में बहुत प्रयत्न किया तब) डेढ़ हज़ारी १५०० सवार का हो गया तथा राव की पदवी पाई। ३० वें वर्ष जब इमतियाज़गढ़ अर्थात् अदोनी बादशाही अधिकार में आया, तब इसका मन्सब ढाई हज़ारी १५०० सवार का हो गया और डंका और अदोनी की दुर्गाध्यक्षता मिली। ३३ वे वर्ष दुर्ग की अध्यक्षता छोड़कर दरबार आया और औरंगाबाद से खजाना लाने तथा वहाँ तक क़ाफ़ला पहुँचाने पर नियुक्त हुआ, जिसमें बहुधा शत्रु से लड़ना पड़ता था। ३४ वें वर्ष शाहज़ादा कामबख़्श के साथ नियुक्त हुआ और जब शाहज़ादे ने वाकिन्करा पर चढ़ाई की, तब इसने चन्दावल का अच्छा प्रबन्ध किया और शाहज़ादे के साथ जिंजी की ओर (कि जुल्फ़िक़ार खाँ उसमें था और अन्न की कमी थी) आज्ञानुसार अन्नादि के साथ गया। जुल्फ़िक़ार खाँ ने उसे दाहिनी ओर रखा। ४४ वें वर्ष मे मन्सब ढाई हज़ारी २५०० सवार का हो गया। ४७ वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़कर तीन हज़ारी २७०० सवार का और ४९ वें वर्ष मे तीन हज़ारी ३००० सवार का हो गया। औरंगज़ेब की मृत्यु पर मुहम्मद आज़म शाह के साथ उत्तरी भारत आया और पाँच हज़ारी मन्सब तक पहुँचा। युद्ध में (जो

मुस्ताम अजीमुश्शान के साथ हुआ था) इरावती में मारा गया[1] ।

इसकी मृत्यु पर इसके पुत्रों—बिहारीचन्द और पृथ्वीसिंह—में राज्य के लिये झगड़ा होने लगा । इसी समय सब से बड़ा पुत्र रामचन्द्र (जो सिवारागढ़ में था) भी आ पहुँचा । जब बिहारी चन्द की सेना बाहर निकली, तब यह दरबार लौट गया और (इस कारण कि बहादुर शाही सेना अजमेर के पास थी) वहाँ पहुँचा । जब वहाँ किसी ने कुछ न सुना तब स्वदेश आकर भाइयों को परास्त किया और फिर लाहौर में बहादुर शाह के दरबार म गया । मुहम्मद शाह के समय शाही सेना सहित जहानाबाद के राजा भगवंतसिंह[2] पर भेजा गया जहाँ युद्ध में काम आया । इसके नौकर बादशाही सेवा में चले आए, पर इसके राज्य क अधिकांश भाग पर मराठों का अधिकार हो गया ।

---

१ सन् १७१२ ई० में बहादुर शाह की मृत्यु पर उसके चारों पुत्रों के बीच लाहौर के पास यह युद्ध हुआ था ।

२. कोड़ा जहानाबाद का राजा भगवतसिंह खीची सन् १७३५ ई० में नवाब बुर्हानुल्मुल्क सआदत खाँ के साथ युद्ध कर मारा गया था । इसके पहिले इलाहाबाद के फौजदार जानिसार खाँ को भगवंतसिंह ने मार डाला था जिसपर वज़ीर कमरुद्दीन खाँ ससैन्य चढ़ आए थे, पर अंत में कुछ सरदारों को इस कार्य पर छोड़ कर लौट गए । भगवंतसिंह ने वज़ीर के चले जाने पर इन सरदारों को मार कर भगा दिया था । इन्हीं में यह बिहारीचंद भी हो सकता है । (ना प्र पत्रिका भा ५, सं १)

लिखते समय[1] टोपीवाले फिरंगियों की सेना (जो बंगाल से सूरत जा रही थी) इसकी सीमा के भीतर कुछ दिन ठहरी और बहुत हानि की।

जब कि टोपीवाले फिरंगियों का नाम आ गया, तब इस जाति का कुछ हाल[2] लिखना आवश्यक हो गया। यह झुंड पहले यहाँ के राजाओं की आज्ञा से समुद्र तट पर स्थान बनाकर प्रजा की तरह रहते थे। कोह (गोआ) बन्दर में इनका अध्यक्ष रहता था। सुलतान बहादुर गुजराती के समय बहाने से आज्ञा प्राप्त कर दमन और बसी (बसीन) नामक दो दृढ़ दुर्ग बना लिए और बस्ती बसा ली। यद्यपि लबाई ४५ कोस थी, पर चौड़ाई कहीं कोस डेढ़ कोस से अधिक नहीं थी। पहाड़ों की तराई में खेती करते और अच्छी चीजें जैसे ईख, अनन्नास, चावल आदि बोते थे। नारियल और सुपारी के वृक्षों से बहुत धन पैदा

---

१ यह जीवनचरित्र अब्दुल हई की लिखा हुआ है। यह सेना कर्नल गोडर्डाई की अध्यक्षता में, जो छ हज़ार से अधिक थी, बंगाल से सूरत भेजी गई थी, क्योंकि वहाँ अँग्रेज़ी सेना मराठों से परास्त हो चुकी थी। वारेन हेस्टिंग्ज़ ने बंबई सरकार के सहायतार्थ यह सेना भेजी थी।

२ ख़फ़ी ख़ाँ भा० २, पृ० ४०० और भा० १, पृ० ४६८ (इलि० डाट और डाउ० भाग ७, पृ० ३४४) से यह वर्णन संक्षिप्त करके लिया गया हुआ मालूम होता है।

करते थे। इनका सिक्का[1] अशरफ़ (जो चाँदी का नौ आने के बराबर होता था) फ़िरंगी नाम पर ढला था और ताँबे के टुकड़े थे जिन्हें बुजुर्ग कहते थे। एक पैसा चार बुजुर्ग का होता था। प्रजा को कष्ट नहीं देते थे। मुसल्मानों के लिये अलग बस्ती रखी थी। पर यदि कोई उनमें मर जाता तो उसकी संतान को अपना धर्म सिखाते थे[2]।

जब औरंगजेब को यह बात मालूम हुई, तब गुलशनाबाद[3] के फौजदार मोतबिर ख़ाँ ने (जो मुल्ला अहमद नायत का दामाद था) शाही आज्ञानुसार इन पर चढ़ाई कर कुछ स्त्री पुरुषों को क़ैद कर लिया। इस पर गोआ[4] के कप्तान ने बड़ी

---

१ इन सिक्कों के लिए इसके का 'याइस आव पोर्चुगीज़ पावर' देखिए। बुजुर्ग सिक्के के बहुत कम दाम होने से स्यात् बँगला का 'बुड़क' शब्द निकला ज्ञात होता है। फ़ारसी में 'बुजुर्ग' का अर्थ बड़ा है।

२. ख़फ़ी ख़ाँ २ ४६६।

३ जुन्नेर के पास नासिक में है (इलियट जि० ७ पृ० ३३०)। ख़फ़ी ख़ाँ २ ४ २।

४ मि० बैवरिज लिखते हैं— गोआ जुन्नेर से बहुत दक्षिण है। दमन के पुर्तगीज़ों ने प्रार्थनापत्र भेजा होगा जिस पर मोतबिर ने चढ़ाई की होगी। पुर्तगीज़ों की मुख्य कोठी गोआ थी इसलिये ख़ाँ के कप्तान का हो प्रार्थनापत्र होना अधिक ठीक जँचता है। साथ ही दमन के पुर्तगीज़ परास्त हो चुके थे और उन्होंने भारत की मुख्य कोठी को यह वृत्तांत भेजा होगा। ख़फ़ी ख़ाँ भाग २, पृ० ४ ३ देखिए। यह चढ़ाई सन् ११ ३ हि० स० १७४८-९ में हुई थी।

नम्रता से बादशाह और उनके सरदारों को प्रार्थना-पत्र भेजा तथा उसमें लिखा कि हम लोग आप के अवैतनिक नौकर हैं जो समुद्र के डाकुओं का दमन करते रहते हैं, और यदि आप की इच्छा न हो तो हम स्थल छोड़कर जल ही में जा रहें। इस पर उनके दोषों को क्षमा करके फिरंगी कैदियों को छोड़ने की आज्ञा मोतबिर ख़ाँ के पास भेज दी गई। इसके बाद गज सवाई[1] नामक जहाज़ को (जो सूरत के बन्दर में सब से बड़ा जहाज़ था) रोक कर और समुद्र में लूट मचाकर फिरंगियों ने बादशाह को फिर क्रुद्ध किया जिस पर उसने उन्हें दंड देने की फिर आज्ञा दी, परन्तु अफ़सरों के षड्यंत्र से कुछ नहीं हुआ। इन सब ने (अँग्रेज़ों ने) बहुत प्रयत्न करके फरासीस जाति को (जिसने नासिर जंग के मारे जाने पर अपना एक सरदार मुज़फ्फरजंग के साथ किया था और आसफुद्दौला अमीरुलमुमालिक के समय तक दक्षिण में रहे) नाश करने पर कमर बाँधी। हैदराबाद के कर्णाटक पर अधिकृत हो गए और फिर बंगाल से बादशाही राज्य उठाकर बिहार तक अधिकार कर लिया। इसी बीच धीरे धीरे इलाहाबाद और अवध पर भी इनका ज़ोर बढ़ गया। बंगाल से

---

१. ख़फ़ी ख़ाँ भाग २, पृ० ४२१ में इस घटना का वर्णन है जहाँ इसका नाम गज सवाई दिया है। यह पोत सूरत से जब आठ नौ दिन के रास्ते पर था, तभी एक अंग्रेज़ जहाज ने इसे स० १७५० वि० में लूटा था। (इलि० भा० ७, पृ० ३६०)

मकाट और सलकोंकण[1] तक बन्दर बना लिए और सूरत भी छीन लिया। हैदराबाद के सिकाकोल आदि परगनों पर अधिकार कर लिया। इस समय रघुनाथ राव के बहकाने पर मराठे स शत्रुता कर गुजरात में गड़बड़ मचाए हुए हैं। ए खुदा! मुहम्मदियों की सहायता कर। उसके और उसके परिवार को शांति दे।

१ शायद यहाँ लिखा गया है कि कोंकण के इस भाग को तलकोंकण कहते हैं जो बीजापुर के राज्य में है।

३४—राव दुर्गा सिसोदिया

यह चन्द्रावत[१] था। इसका जन्मस्थान चित्तौड के पास का रामपुर[२] परगना है। राव दुर्गा[३] अकबरी राज्य के २६वें वर्ष

१. चंद्रावत सीसोदियों की एक शाखा है। इस शाखा के प्रादुर्भाव के विषय में इंदौर गज़ेटिअर ने दो मत दिए हैं। एक यह कि मेवाड के राणा राहप के द्वितीय पुत्र चद्र से निकलने के कारण यह चद्रावत कहलाई। दूसरे यह कि अलाउद्दीन खिलजी के समसामयिक राणा लक्ष्मणसिंह के पूर्वज जयसिंह के पुत्र चंद्रसिंह से यह शाखा निकली है। मुता नैणसी लिखता है कि राणा भुवनसिंह के पुत्र चंद्रसिंह के वशज चंद्रावत कहलाए। इसके बाद ही उसी ख्यात में चद्रसिंह के पिता का नाम भीमसिंह लिखा है। रामपुर की ख्यात में लिखा है कि भुचड रावल के पुत्र चाँदा जी, उनके पुत्र वीर मामा जी, उनके आसपूरण जी और उनके चद्रा जी हुए, जिनके वशज चद्रावत कहलाए। स्यात् ये भुचड ही भीमसिंह हों या यह नाम और कुछ परिवर्तित हो गया हो। भुवनसिंह का भी बिगड़ कर भुचड हो सकता है।

२ इंदौर राज्य में नीमच के प्राय चालीस मील पूर्व २४°२८' उ० ७५°७०' पू० अक्षांश पर यह स्थान है। कहते हैं कि चद्रावत शिवा ने रामा नामक भील को मार कर इस प्रदेश पर अधिकार किया तथा उसी के नाम पर रामपुरा बसाया था। मुता नैणसी की ख्यात में लिखा है कि 'अचला का बेटा दुर्गा बड़ा दातार और जुझार हुआ। उसने रामपुर का क़स्बा श्रीरामचद्र जी के नाम पर बसाया जो बड़ा गाँव है और भूमि वहाँ की दुफसली है।' इन्हीं राव दुर्गा का पूरा नाम दुर्गभाण था।

३. राव शिवसिंह या शिवा ने इंदौर के अतर्गत रामपुरा भानुपुरा

(स० १६३८ वि०, सन् १५८१ ई०) में सुलतान मुराद के साथ मिर्ज़ा हकीम का दमन करने पर नियुक्त हुआ। २८वें वर्ष में (जब मिर्ज़ा खाँ गुजरात के विद्रोहियों का दमन करने पर नियुक्त हुआ तब) यह भी उनके साथ नियुक्त हुआ और अच्छा कार्य्य दिखलाया। ३०वें वर्ष में खाने आज़म कोका के साथ दक्षिण के कार्य्य पर नियत हुआ। ३६वें वर्ष में (जब सुलतान मुराद मालवा का अध्यक्ष नियत हुआ तब) यह भी शाहज़ादे के साथ अच्छे पद पर नियुक्त हुआ और इसके अनन्तर शाहज़ादे के साथ ही दक्षिण जाकर अच्छी सेवा की। ४५वें वर्ष में अकबर ने इसे मुज़फ्फर हुसेन मिर्ज़ा की खोज में भेजा। मिर्ज़ा का ख्वाजा वैसी क़ैद कर सुलतानपुर लाया था जहाँ पहुँचकर राव दुर्गा

के एक छोटे से गाँव चाँतरी पर अधिकार कर लिया। इसके भरी में दूसरी एक शाहज़ादी को बचाया था। जिसका सारंगपुर हैदराबाद मौरी से विवाह हुआ था। उसके कहने से शाह ने रामपुर परगना इसे जागीर में दे दिया और राव की पदवी तथा बहुत सा धन पुरस्कार में मिला। राव शिवा राव रायमल तथा राव अचला तक चाँतरी ही राजधानी रही, पर अचला के पौत्र राव दुर्गा ने रामपुर बसा कर इसे राजधानी बनाया। मालवा के सुलतान को पराजित करने पर महाराणा कुम्भा का रामपुर पर भी अधिकार हो गया, इसलिये रायमल तथा अचला उन्हीं के अधीन रहे। जब सन् १५६० ई० में आसफ़खाँ ने रामपुरा पर चढ़ाई की तब राव दुर्गा महाराणा का साथ छोड़ कर अकबर के अधीन हो गया। राव चन्द्रभान के सं० १६६१ वि० के एक लेख में अचल के पुत्र प्रताप उसके दुर्गाभान और उसके चंद्रभान का उल्लेख है जिसमें राव दुर्गा के दोनों पुत्रों की प्रशंसा है। (नागरी प्र० पत्रिका भा० ७ पृ० २११—१२)

उसे बादशाह के पास लाया। उसी वर्ष अबुलफ़ज़ल के साथ यह नासिक भेजा गया। इसी समय अपने यहाँ विद्रोह सुनकर यह छुट्टी लेकर देश गया और ४६वें वर्ष लौट कर आया। डेढ़ महीने के अनन्तर बिना छुट्टी लिए देश चला गया। ४०वें वर्ष मे यह डेढ हजारी मन्सब प्राप्त कर चुका था। जहाँगीर के राज्य के दूसरे वर्ष में सन् १०१६ हि० (सन् १६०८ ई०) मे इसकी मृत्यु हुई।

जहाँगीरनामा मे (जिसे बादशाह ने स्वयं लिखा था) लिखा है कि वह राणा प्रताप के विश्वासपात्र सेवकों मे था। अकबर की चालीस वर्ष नौकरी करके चार हज़ारी मन्सब प्राप्त कर लिया था[1]। ८२ वर्ष की अवस्था तक पहुँचा था। उसका पुत्र चाँदा जहाँगीर के राज्यारम्भ मे सात सौ का मन्सब रखता था और उसने धीरे धीरे अच्छा मन्सब तथा राव की पदवी प्राप्त की। इसका पौत्र राव दूदा[2] शाहजहाँ के समय ३रे वर्ष में

---

१ तुज़ुके जहाँगीरी (पृ० ६३) में तथा प्राइस कृत जहाँगीर पृ० ५६ में इनका उल्लेख हुआ है। तबकाते अकबरी में लिखा है कि सन् १००१ हि० में यह दो हज़ारी मसबदार थे। ब्लौकमैन कृत आईन अकबरी पृ० ४१७—८ में इनकी जीवनी दी हुई है।

२ मुता नैणसी लिखता है कि दुर्गा का पुत्र रावचदा था। इसका टीकायत पुत्र नगजी पिता के सामने ही मर गया, इससे उसका पुत्र दूदा राव हुआ। यह दौलताबाद की लड़ाई में काम आया। इसके बाद हठीसिंह (हस्तीसिंह) राव हुआ, जो यौवनावस्था ही में निस्सतान मर गया। इसके अनतर रुक्मागद का पुत्र और चन्द्रसिंह का पौत्र रूपसिंह गद्दी पर बैठा।

-आज़म ख़ाँ के साथ ख़ानेजहाँ लोदी पर नियुक्त हुआ तथा (बादशाह ने) इसी वर्ष पाँच सदी ५०० सवार का मन्सब बढ़ाकर इसे दो हजारी १५०० सवार का मन्सब और झंडा देकर सम्मानित किया। परन्तु जब युद्ध चन्दावल पर आ पड़ा तब यह भागा। इसके अनन्तर यमीनुद्दौला के साथ आदिल ख़ाँ को दंड देने गया। फिर दक्षिण के सूबेदार महाबत ख़ाँ ख़ानख़ानाँ के अधीन नियत हुआ। छठे वर्ष दौलताबाद के घेरे के समय (जब मुरारी बीजापुरी के दुर्गवालों के सहायतार्थ पहुँचने पर चारों ओर युद्ध होने लगा तब) इसके कुछ आपसवाले मारे गए थे। यहाँ इसने सेनापति के मना करने पर भी उनके शवों को उठा लाने का प्रयत्न किया। शत्रु ने अवसर पाकर इन्हें घेर लिया और निकलने का रास्ता न रहने के कारण यह पैदल हो कुछ साथियों के साथ मारा गया। बादशाह ने इसके कार्यों के विचार से इसके पुत्र हस्तीसिंह[1] को (जो डेरा पर था) एक ख़िलअत डेढ़ हज़ारी १०० सवार का मन्सब और राव की पदवी दी। कुछ वर्ष तक ख़ानेज़माँ बहादुर के साथ इसने दक्षिण में काम किया। जब यह रोग से मर गया, तब इसके निस्सन्तान होने के कारण इसके चचेरे भाई रूपसिंह[2] को, जो रूपमुकुन्द का पुत्र और राव चाँदा

१ बादशाहनामा में माधोसिंह हाथीसिंह या केवल हाथी नाम मिलता है। इस ग्रंथ के मूल में हस्तीसिंह दिया है और अंग्रेजी अनुवाद में मि० बेवरिज ने नाम ही नहीं दिया है। मूल बैयाजी ने हठीसिंह (हस्तीसिंह) लिखा है।

२ इस ग्रंथ के लेखक ने रूपसिंह को चाँदा का पौत्र अनुमानतः था

का पौत्र था (जो १७वें वर्ष में बादशाह के यहाँ कृपा की आशा से आया था) वह स्थान, नौ सदी ९०० सवार का मन्सब और राव की पदवी के साथ मिला। रामपुर का परगना जो इस्लामपुर के नाम से सरकार चित्तौड़ और सूबा अजमेर मे है (जो वश परपरा से इसका देश था) इसे जागीर में मिला। १९वें वर्ष में यह सुलतान मुराद के साथ बलख गया। (२०वें वर्ष मे बलख के सुलतान नजर मुहम्मद खाँ के साथ बहादुर खाँ रुहेला और एसालत खाँ की अधीनता मे जो युद्ध हुआ था उसमें) यह हरावल में था और जब बहुत प्रयत्न पर नजर मुहम्मद खाँ परास्त होकर भागा, तब इसका मन्सब बढ़ाकर हजारी १००० सवार का कर दिया गया।

पुत्र तथा हस्तीसिंह का चचेरा भाई लिखा है। इसके पहिले यही दूदा को चाँदा का पौत्र तथा हस्तीसिंह को दूदा का पुत्र लिख आए हैं जिसमे हस्तीसिंह चाँदा का प्रपौत्र हुआ। मूता नैणसी में राव दूदा तथा हटीसिंह का कोई सबध नहीं मिलता। पर रूपसिंह चाँदा को पोत्र तथा रुक्मागद का पुत्र बतलाता है। आगे चलकर मआसिरुल्उमरा में लिखा है कि रूपसिंह की मृत्यु पर चाँदा के पौत्र अमरसिंह गद्दी पर बैठे थे। इन सब विचारों से यही निष्कर्ष निकलता है कि राव दूदा जो नगजी का पुत्र था तथा जो अपने पिता के यौवराज्य समय में ही काल-कवलित हो जाने से गद्दी पर बैठा था, चाँदा जी का पौत्र था। चाँदा सन् १६०८ ई० में गद्दी पर बैठा था। सन् १६३० ई० में दूदा यौवनारभ में गद्दी पर बैठा और तीन वर्ष बाद ही मारा गया। इसका पुत्र उस समय अल्पवयस्क था और शीघ्र ही मर गया। तब रूपसिंह, जो वास्तव में चाँदा का पौत्र और हस्तीसिंह का चाचा था, गद्दी पर बैठा।

शाहज़ादा उस प्रान्त की ठंडी हवा, फूट के मुख रजपूतों और लड़ाकू मुसलमानों से (जो युद्ध में भाग आये थे, पर फिर लौटकर लड़ने को तैयार हो जाते थे) घबरा गया था; इसलिये इसने अपने पिता से अपने को बुला लेने और किसी दूसरे को उस कार्य पर नियुक्त करने के लिये प्रार्थना की। कुछ राजपूत सरदार और बख्शियों से बिना आज्ञा के लौटकर पेशावर आ पहुँचे थे। इन्हीं में राव रूपसिंह भी था। जब यह समाचार बादशाह को मिला, तब अटक के अध्यक्षों को आज्ञा भेजी गई कि उन्हें नदी पार न उतरने दें। इसके अनन्तर (जब सुलतान औरंगज़ेब बहादुर इस कार्य पर नियत हुए तब) यह भी शाहज़ादे के साथ वहीं लौट गया और वहाँ पहुँच कर नियमानुसार हरावल में नियुक्त होकर इसने बड़ी वीरता दिखलाई। इन्हीं शाहज़ादे के साथ (जिन्हें लौटने की आज्ञा मिल चुकी थी) यह दरबार पहुँचा। २२ वें वर्ष शाहज़ादे के साथ कंधार की ओर गया और पहिले की चाल पर हरावल में नियत हुआ। युद्ध में (जो रुस्तम खाँ और कुलीज खाँ की अधीनता में कज़िलबाशों के साथ हुआ था) अच्छा कार्य्य करने से मन्सब बढ़ाए जाने पर दो हज़ारी १२० सवार का मन्सब पाकर यह सम्मानित हुआ। २४वें वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। इसके कोई पुत्र न होने के कारण राव चाँदा के पौत्र गय अमरसिंह[1] आदि राव रूपसिंह के मनुष्यों के साथ बाद

१ शिलालेखों से भी राव चाँदा के समय के हैं ज्ञात होता है कि अमरसिंह चाँदा के पौत्र थे। मालवा के चौहान रठौड़ बाँदोजी की पुत्री

शाह के पास गए। अमरसिंह को (जो उत्तराधिकारी होने के योग्य था) बादशाह ने एक हजारी १००० सवार का मन्सब, राव की पदवी और चाँदी की जीन सहित घोडा और उसके भाई को योग्य मन्सब देकर उनका देश रामपुरा दोनों भाइयों को जागीर मे दिया। २५वें वर्ष में इनका मन्सब एक सदी बढ़ा कर औरंगजेब बहादुर के साथ (जो दूसरी बार कंधार पर नियुक्त हुआ था) बिदा किया। २६वें वर्ष मे सुल्तान दारा शिकोह के साथ उसी कार्य्य पर नियुक्त होने से यह वहाँ गया। २७वें वर्ष मे शाहजादे के लिखने से इनका मन्सब बढ़ाकर डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया। २८वें वर्ष मे यह दक्षिण गया। ३१वें वर्ष में आज्ञानुसार दरबार पहुँच कर महाराज जसवंतसिंह के साथ मालवा गया, जो दक्षिणी सेना के रास्ते में रुकावट डालने को नियुक्त था। औरंगजेब के पहुँचने और सामना होने पर यह महाराज के हरावल में था। युद्ध से भाग कर स्वदेश चला गया।

इसके अनंतर औरंगजेब की सेवा मे आकर शाहजादा मुहम्मद सुल्तान के साथ शुजाअ का पीछा करने भेजा गया। मूर्खता से दृढ़ता न रख और दरबार के विभिन्न समाचारों को

प्रभावतीबाई का राव चाँदा से विवाह हुआ था, जिससे इनके पुत्र हरिसिंह हुए। इनका विवाह जोधपुर के राठौड़ राव यशवंत की पुत्री यमुनाबाई से हुआ था जिससे अमरसिंह पुत्र हुए। इनके मुदकमसिंह, मुकुंदसिंह, रामसिंह, वैरिशाल तथा अभयसिंह पाँच पुत्र थे।

सुनकर शाहजादे से बिना आज्ञा लिए रास्ते से लौट गया। वहाँ से दक्षिण में नियुक्त होकर मिर्जा राजा जयसिंह के साथ अच्छी सेवा की। ११वें वर्ष साल्हेर दुर्ग के नीचे (जब शत्रु ने बादशाही सेना पर धावा किया) यह मारा गया और इसका पुत्र मुहकमसिंह पकड़ा गया[1]। कुछ दिन बाद धन देकर छुट्टी पाई और बहादुर खाँ कोका (जो उसी वर्ष दक्षिण का सूबेदार हुआ था) के पास पहुँचा, तब मन्सब बढ़ा और राव की पदवी पाई। बहुत समय तक सेवा की। ४४वें वर्ष में मुहकमसिंह का पुत्र गोपालसिंह अपने देश रामपुरा से दरबार आया और पैतृक नौकरी पर काम करने लगा। इसने अपने पुत्र रत्नसिंह को देश का प्रबंध ठीक रखने के लिये वहाँ भेजा था; पर वह विद्रोह कर पिता के लिये व्यय को कुछ धन नहीं भेजता था। गोपालसिंह ने बादशाह

---

१ सन् १६६५ ई. में राजपूतों की अधीनता में महाराजा जयसिंह ने द. सहस्र की एक हजार सेना तैयार की जो मराठा राज्य में धावे किया करती थी। राव अमरसिंह ने भी इस सेना में रह कर बहुत कार्य किया था। सन् १६७२ ई. में इखलास खाँ मियाना के अधीन एक मुगल सेना सल्हेर दुर्ग को घेरने के लिये छोड़ कर दिलेरखाँ तथा बहादुर खाँ अहमदनगर की ओर चले गए। इधर शिवाजी ने सेना सहित पहुँच कर इस सेना को घेर लिया और घोर युद्ध के अनन्तर मुगल सेना परास्त हुई जिसमें राव अमरसिंह कई सरदारों तथा कई सहस्र सैनिकों के साथ मारे गए। इखलास खाँ राव अमरसिंह के पुत्र मुहकमसिंह तथा तीस अन्य सरदार कैद हुए। (भो सरकार कृत शिवाजी पृ २१७ पारसनीस लिखित मराठों का इतिहास भा १, पृ २१५)

३५—राजा देवीसिंह

यह राजा भारथ का पुत्र है। पिता की मृत्यु पर शाहजहाँ के ७वें वर्ष में इसे दो हजारी २००० सवार का मन्सब और राजा की पदवी मिली। ८वें वर्ष में खानदौराँ के साथ जुझारसिंह को दंड देने पर नियुक्त होकर डंका मिलने से सम्मानित हुआ। ओड़छा विजय पर (जो पहिले इसी के पूर्वजों के हाथ में था, पर जहाँगीर बादशाह ने वीरसिंह देव के कहने से इनसे लेकर उसे सौंप दिया था) यह राज्य राजा देवीसिंह के नाम हो गया था, इसलिये यह वहीं रह गए और बुंदेला जाति की सरदारी इसे मिली[1]। इसके अनंतर (जब बादशाह ने ओड़छा आकर एकाएक दक्षिण जाने का विचार किया तब) यह ९वें वर्ष ओड़छा

---

१ मधुकर शाह के प्रथम पुत्र रामशाह या रामचंद सन् १५९२ ई० में गद्दी पर बैठे और सन् १६ ५ ई० तक इन्होंने राज्य किया। अकबर की मृत्यु पर जहाँगीर की वीरसिंह देव पर विशेष कृपा देखकर इन्होंने विद्रोह किया। अंत में परास्त होकर यह सन् १६ ० ई० में दिल्ली गए और ओड़छा का राज्य वीरसिंहदेव को दे दिया गया। इन्हीं रामशाह ने चँदेरी राज्य स्थापित किया था। इनके पुत्र संग्रामशाह पिता के सामने ही मर गए, जिनके पुत्र भारत शाह थे। सन् १६२० ई० में वीरसिंह

प्रांत का प्रबंध ठीक करके बादशाह के दरबार में पहुँचा[1] और वहाँ से सैयद खानेजहाँ बारह. (जो बीजापुर पर अधिकार करने के लिये भेजा गया था) के यहाँ भेजा गया। वहाँ इसने अच्छा काम दिखलाया । १०वें वर्ष में खानेदौराँ की प्रार्थना पर इन्हें झंडा और डंका दोनों मिल गया । १९वें वर्ष शाहजादा मुरादबख्श के साथ बलख और बदख्शाँ विजय करने पर नियुक्त हुआ । इस यात्रा में भी द्वितीय बार अच्छा कार्य किया और अलअमानों से कई बार अच्छी लड़ाइयाँ हुईं । २२वें वर्ष (जब दुर्ग कंधार कजिलबाशों के अधिकार में चला गया था तब) यह भी दूसरी बार सुल्तान औरंगजेब बहादुर के साथ उस दुर्ग की चढ़ाई पर गए और कजिलबाशों के साथ युद्ध में दृढ़ता से डटकर अच्छी वीरता दिखलाई। तीसरी बार सुल्तान दारा-

---

की मृत्यु होने पर जुझारसिंह ओड़छा के राजा हुए। सन् १६३५ ई० में बादशाही सेना ने ओड़छा विजय कर उस पर राजा देवीसिंह को अधिकार दिला दिया था । (देखिए जुझारसिंह शीर्षक निबंध)

१. ख़फ़ीख़ाँ जि० १, पृ० ४५४ पर लिखता है कि राजा देवीसिंह के ओड़छा का प्रबंध ठीक न कर सकने पर वह प्रांत ख़ालसा कर इसलामाबाद नाम से बाक़ी ख़ाँ क़िलमाक़ को सौंपा गया था। छ वर्ष के निरंतर प्रयत्न पर जब वहाँ शांति स्थापित न हो सकी, तब सन् १६४१ ई० में जुझारसिंह के भाई पहाड़सिंह को वह राज्य दे दिया गया । (ना० प्र० पत्रिका, भा० ३, अंक ३)

३५—राजा देवीसिंह

यह राजा भारथ का पुत्र था। पिता की मृत्यु पर शाहजहाँ के ५वें वर्ष में इसे दो हजारी २००० सवार का मन्सब और राजा की पदवी मिली। ८वें वर्ष में खानेदौराँ के साथ जुझारसिंह को दंड देने पर नियुक्त होकर डंका मिलने से सम्मानित हुआ। ओड़छा विजय पर (जो पहिले इसी के पूर्वजों के हाथ में था, पर जहाँगीर बादशाह ने बीरसिंह देव के कहने से इनसे लेकर उसे सौंप दिया था) यह राज्य राजा देवीसिंह के नाम हो गया था, इसलिये यह वहीं रह गए और बुंदेला जाति की सरदारी इसे मिली[1]। इसके अनन्तर (जब बादशाह ने ओड़छा आकर एका-एक दक्षिण जाने का विचार किया तब) यह ९वें वर्ष ओड़छा

---

१ मधुकर शाह के प्रथम पुत्र रामशाह या रामचन्द्र सन् १५९१ ई० में गद्दी पर बैठे और सन् १६०५ ई० तक इन्होंने राज्य किया। अकबर की मृत्यु पर जहाँगीर की बीरसिंह देव पर विशेष कृपा देखकर इन्होंने विद्रोह किया। अंत में परास्त होकर यह सन् १६०७ ई० में दिल्ली गए और ओड़छा का राज्य बीरसिंहदेव को दे दिया गया। इन्हीं रामशाह ने चँदेरी राज्य स्थापित किया था। इनके पुत्र संग्रामशाह पिता के सामने ही मर गए, जिनके पुत्र भारत शाह थे। सन् १६२७ ई० में बीरसिंहदेव

वृत्तांत अप्राप्य है[१] । औरंगाबाद के बाहर पश्चिम और उत्तर की ओर एक पुरा इसके नाम पर बसा है ।

---

१. पहिले राजा शुभकरण बुँदेला चंपतिराय का दमन करने के लिये भेजा गया था । पर जब उसके प्रयत्न निष्फल हुए, तब राजा देवीसिंह भी उसके सहायतार्थ भेजे गए थे ।

२. सन् १६६३ ई० में देवीसिंह की मृत्यु हो गई थी जिनके अनंतर दुर्गासिंह गद्दी पर बैठे ।

२६—राजा पहाड़सिंह[1] बुंदेला

यह राजा वीरसिंह देव के पुत्र थे। शाहजहाँ के बादशाह होने के अनंतर इनका दो हजारी, १२०० सवार का मंसब बहाल रहा और फिर यह हजारी ८०० सवार बढ़ कर तीन हजारी २००० सवार का हो गया। उसी वर्ष जब जुझारसिंह बुंदेला (जो राजधानी से भाग गया था) को दंड देने के लिये सेना नियुक्त हुई, तब यह भी अब्दुल्ला खाँ बहादुर के साथ नियत हुए[2]। वहाँ से (कि दुर्ग ऐरिछ के विजय करने में अच्छा प्रयत्न किया था) पूर्वोक्त खाँ की प्रार्थना पर इन्हें डंका प्रदान हुआ। जब जुझारसिंह नम्रता से क्षमा प्राप्त करके दरबार पहुँचा, तब

---

१ इलियट डाउसन कृत हिस्टरी ऑव इंडिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स में फारसी लिपि के नुक्तों के हेर फेर करने के कारण पहाड़सिंह बिहारसिंह हो गए हैं। यह टिप्पणी इसलिये दे दी गई है कि कोई पाठक यदि उस ग्रंथ को देखें तो निम्नलिखित टिप्पणियों में जहाँ उस ग्रंथ का उल्लेख है, वहाँ दूसरा नाम पाकर भ्रम में न पड़ें।

२ पहाड़सिंह तथा इनकी रानी हीरा देवी दोनों जुझारसिंह से अंत तक शत्रुता रखते रहे और जब कभी बादशाही सेनाएँ उन पर भेजी गईं, तब बराबर उनमें भाग लेते रहे। इसी भ्रातृद्रोह के पुरस्कार में अंत में इन्हें ओड़छा राज्य प्राप्त हुआ।

उसके अधिकृत महालों में से, जो उसके वेतन से अधिक थी, कुछ इन राजा को जागीर में दिया गया। ३रे वर्ष के आरंभ में (जब बादशाह ने खानदेश प्रांत मे पहुँच कर तीन सेनाएँ तीन सरदारों की अधीनता में निज़ामुल्मुल्क के राज्य पर अधिकार करने के लिये नियुक्त कीं तब) यह शायस्ता खाँ के साथ नियत हुए। उसी वर्ष राजा की पदवी पाकर सम्मानित हुआ। जब दक्षिण के सूबेदार आज़म खाँ ने बीर[1] के पास खानेजहाँ लोदी पर धावा किया और घोर युद्ध हुआ, तब उसमें इन्होंने अच्छी वीरता दिखलाई। इसके एक साथी ने लड़ाई मे खानेजहाँ के भतीजे के पास पहुँचकर उसका सिर उतार लिया और लाकर इसे दिया जिसे यह आज़म खाँ के पास ले गया[2]। इसके अनंतर बहुत दिन तक दक्षिण मे नियत रहा।

दौलताबाद दुर्ग के घेरने और अधिकार करने में अपनी जातीय वीरता और बुद्धिमानी से युद्धो मे शत्रुओं को मारने और नाश करने में कमी न करके अच्छा कार्य दिखलाया। इसी

---

१ ग्वालियर से ६५ मील दक्षिण-पूर्व है।

२. बीर से छ कोस हट कर पीपलनेर में यह युद्ध हुआ था। खानेजहाँ लोदी के भतीजे बहादुर ने घोर युद्ध कर चाचा को उस समय निकल जाने का अवसर दिया। बहादुर गोली लगने से भाग न सका और अंत में पहाड़सिंह के एक सैनिक परशुराम के हाथ मारा गया। पहाड़सिंह ने उसका सिर आज़म खाँ के पास भेज दिया। (बादशाहनामा, भाग १, पृ० ३१६-२२, इलि डा० भा० ७, पृ० १४)

प्रकार परेंदा[1] के घेरे में भी अच्छी सेवा की। महाबत खाँ खानखानाँ की मृत्यु पर यह खानदौराँ (जो बुर्हानपुर का सूबेदार नियत हुआ था) के अधीन नियुक्त हुआ। ९वें वर्ष जब बादशाह ने दक्षिण आकर साहू भोसला को दंड देने के लिए सेनाएँ भेजीं, तब यह खानेज़माँ के साथ नियुक्त किया गया। १५वें वर्ष सुल्तान औरंगज़ेब बहादुर के साथ दक्षिण से दरबार आया। उसी वर्ष इसके मंसब में १००० सवार की और तीन घोड़ा बढ़ा कर इसे चंपत बुंदेला (जो वीरसिंह देव और जुझारसिंह के सेवकों[2] में से था और उस समय उस प्रांत में विद्रोह मचाए हुए था) का दमन करने के लिए भेजा। वहाँ इसके पहुँचने पर बखेड़ा मचानेवाले चंपत ने विद्रोह की शक्ति अपने में न देख कर इससे आकर भेंट की। १८वें वर्ष अलीमर्दां खाँ अमीरुल्

---

१. ७वें वर्ष में पहिले दौलताबाद दुर्ग पर अधिकार किया गया और उसके अनन्तर परेंदा दुर्ग घेरा गया था। यह दुर्ग भाकर से ६ मील दक्षिण-पश्चिम सीना नदी के किनारे अहमदनगर से शोलापुर जाने के मार्ग पर है। इसी वर्ष १४ जमादिउल्‌अव्वल को महाबत खाँ की मृत्यु हो गई।

२. चंपतिराय पहाड़सिंह के भतीजे लगते थे। मधुकर शाह ओरछाधीश राजा प्रतापरुद्र के पुत्र थे। पहाड़सिंह मधुकर शाह के पौत्र और चंपतराय उदयाजीत के प्रपौत्र थे। एक प्रकार से चंपतिराय ही के पूर्वजों के कारण ओड़छा में रुका गया हुआ ओड़छा राज्य पहाड़सिंह को मिला था। पर इसने अपने भतीजे को मारने का कई बार प्रयत्न किया। चंपतिराय इनके राजा होते ही इनसे बिगड़ने लगे थे।

उमरा के साथ बदख्शाँ की चढ़ाई को गया। जब उस वर्ष चढ़ाई का उपाय न हो सका, तब १९वें वर्ष उसके मन्सब के एक सहस्र सवार दो और तीन घोड़ेवाले करके उसे सुल्तान मुराद बख्श के साथ बलख और बदख्शाँ की चढ़ाई पर नियुक्त किया। उजबेगों और अलअमानों के युद्ध में उन पर धावा करने में कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा और पूर्वोक्त सुलतान के लौट जाने पर शाहजादा औरंगजेब बहादुर के पहुँचने तक वहीं ठहरा रहा। २१वें वर्ष शाहजादा के साथ लौट कर दरबार आया। २२वें वर्ष सुल्तान औरंगजेब के साथ दुर्ग कंधार (जिसे कज़िलबाश घेरे हुए थे) को विजय करने के लिये नियुक्त हुआ। वहाँ से लौटने पर देश भेजा गया। २४वें वर्ष एक हजारी १००० सवार दो और तीन घोड़ेवाले का मन्सब बढ़ा कर सरदार ख़ाँ के स्थान पर चौरागढ़ का जागीरदार नियत हुआ।

जब वहाँ पहुँचा तब वहाँ के भूम्याधिकारी हृदयराम ने (जिसके पिता भीम नारायण को जुझारसिंह ने प्रतिज्ञा करके बुला कर मार डाला था) बाधव के (इस दुर्ग के खंडहर हो जाने के कारण रीवाँ नामक स्थान में, जो इस दुर्ग से चालीस कोस पर है, दिन व्यतीत करता था) जमींदार अनूपसिंह[1] की शरण ली। राजा पहाड़सिंह चढ़ाई कर पचीस कोस

[1] यह अमरसिंह बघेला के पुत्र थे। सन् १६५६ ई० में प्रयाग के फौजदार सलाबत खाँ की मध्यस्थता से इन्हें फिर राज्य मिल गया। (राजा रामचंद बघेला शीर्षक ६४ वाँ निबंध देखिये)

पर पहुँचा। अनूपसिंह अपने में शक्ति न देख कर अपने बाल-बच्चों और हृदयराम के साथ जहाँगीर के पार्वत्य प्रदेश में भाग गया। राजा ने रीवाँ पहुँच कर उसे नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इसी समय उसके नाम आज्ञापत्र आया। तब २५वें वर्ष दरबार गया और एक हाथी और तीन हथिनियाँ (जो बांधव के मूल्याधिकारी की लूट में प्राप्त हुई थीं) भेंट दीं। दूसरी बार सुल्तान औरंगजेब के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियत हुआ। २६वें वर्ष तीसरी बार उसी चढ़ाई पर सुल्तान दारा शिकोह के साथ नियत हुआ और उस दुर्ग के घेरे में एक मोर्चे का अधिनायक था। जब शाहजादा विफलता के साथ लौटा, तब इसने भी दरबार पहुँच कर देश जाने की छुट्टी पाई। २८वें वर्ष सन् १०६४ हि० (सन् १६५४ ई०) में इसकी मृत्यु हुई। बादशाह ने इसके बड़े पुत्र सुजानसिंह को (जिसका वृत्तांत अलग[1] दिया गया है) उत्तराधिकारी बनाया और दूसरे पुत्र इंद्रमणि को पाँच सदी, ४०० सवार का मन्सब दिया। औरंगाबाद के घेरे के बाहर पूर्व और उत्तर की ओर एक पुरा इसके नाम पर बसा है।

---

१ ८१ वाँ निबंध देखिए।

३७—पृथ्वीराज राठौर

यह शाहजहाँ का एक सरदार था। विद्रोह के समय साथ देने से यह विश्वासपात्र हुआ। शाहजहाँ के बादशाह होने पर इसे पहले वर्ष डेढ़ हजारी ६०० सवार का मन्सब मिला। दूसरे वर्ष ख्वाजा अबुलहसन तुर्बती के साथ खानेजहाँ लोदी का पीछा करने को (जो आगरे से भाग गया था) नियत हुआ। दूसरों का आसरा न देख कर कुछ सरदारों के साथ (जो फुर्ती से आगे बढ़ आए थे) धौलपुर के पास उस पर पहुँच गया और युद्ध में राजपूतों की चाल पर पैदल होकर स्वयं खानेजहाँ से (जो सवार था) भिड़ गया। उसे बरछे से घायल किया और स्वयं भी घायल हुआ। बादशाह ने उसको बुलाकर उसका मन्सब दो हजारी ८०० सवार का कर दिया और घोड़ा तथा हाथी दिया। तीसरे वर्ष २०० सवार और बढ़ाकर उसको ख्वाजा अबुलहसन के साथ नासिक दुर्ग विजय करने को भेजा। जब महाबत खाँ दक्षिण का सूबेदार हुआ, तब इसने भी उसी प्रान्त में नियुक्त होकर दो हजारी १५०० सवार का मन्सब पाया। दौलताबाद के घेरे में अच्छी वीरता दिखलाई। एक दिन दक्षिण की सेना (जो विद्रोही हो गई थी) के एक सवार ने इसे द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारा। सुनते ही यह सेना से निकल कर सामने हुआ और तलवार से उसे

मार डाला। ७वें वर्ष १०० सवार और बढ़ाए गए। ९वें वर्ष जब बादशाह दक्षिण आए तब बालाघाट के सूबेदार खानेजमाँ के साथ दौलताबाद के पास यह बादशाह से मिला और खाँ के साथ साहू भोंसला का दमन करने और आदिलशाही राज्य पर अधिकार करने को भेजा गया। इस चढ़ाई में अच्छा काम करने पर १०वें वर्ष में १०० सवार मन्सब में बढ़ाए गए। ११वें वर्ष जब औरंगजेब के वकीलों के वदले दक्षिण का प्रबन्ध खानेदौराँ को मिला, तब यह दौलताबाद का दुर्गाध्यक्ष हुआ। १८वें वर्ष मन्सब बढ़कर दो हजारी २००० सवार का हो गया। १९वें वर्ष आज्ञानुसार आगरे आकर यह बाकी खाँ के साथ वहाँ का अध्यक्ष हुआ। २०वें वर्ष (जब बादशाह लाहौर में थे) यह आज्ञा मिलने पर आगरे के कोष से एक करोड़ रुपया लेकर वहाँ गया। उसी समय शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर बलख और बदख्शाँ की ओर रवाना हुए थे। इन्हें खिलअत और चाँदी के साज सहित घोड़ा दिया और पचास लाख रुपए की रक्षा (जो शाहजादे को देना निश्चित हुआ था) पर नियुक्त कर वहाँ भेजा। २१वें वर्ष राजा विट्ठलदास के साथ यह अलीमर्दा खाँ की सहायता को काबुल गए। २२वें वर्ष शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ कंधार गए और वहाँ से रुस्तम खाँ के साथ कजिलबाशी सेना से युद्ध करने गए। २५वें वर्ष पूर्वोक्त शाहजादे के साथ उसी चढ़ाई पर गए। २६वें वर्ष शाहजादा दारा शिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर नियत हुए। वहाँ से यह

३८–मिरज़ा राजा बहादुरसिंह[1]

यह राजा मानसिंह का पुत्र था। अकबर के समय में प्राय एक हजारी मन्सब जहाँगीर के जुलूस के १ले वर्ष (स० १६६२ वि०, सन् १६०५ ई०) में डेढ़ हजारी हो गया। ३रे वर्ष में दो हजारी २००० सवार का मन्सब पाकर यह सम्मानित हुआ। जब राजा मानसिंह की मृत्यु का समाचार मिला, तब यद्यपि राजपूत प्रथा के अनुसार जगतसिंह (जो पूर्वोक्त राजा का सब से बड़ा पुत्र था) के पुत्र महासिंह को उत्तराधिकार पहुँचता था, पर बादशाह ने अनुग्रह से (जो बहादुरसिंह पर था) इसको दरबार में बुलाकर मिरज़ा राजा की पदवी और मन्सब बढ़ाकर चार हजारी ३ ०० सवार का देकर उस जाति की सरदारी सौंपी। यह १०वें वर्ष फिर घटा गया। ११वें वर्ष में इसे तुर्ग मिला। १२वें वर्ष में एक हजारी मन्सब बढ़ाकर इसको दक्षिण के कार्यों पर नियुक्त किया। १६वें वर्ष सन् १०३० हि० (स०

१ वीर कुछ राजस्थान में इसी ग्रन्थ में महासिंह और जयसिंह की जीवनी में तथा अन्य इतिहासों में इसका नाम मार्कसिंह दिया है। इसकी मृत्यु सन् १६१२ ई० में हुई थी। निबन्ध १२ और ४ देखिए। स्यात् इसका वास्तविक नाम माधवसिंह या मानसिंह था और बादशाह की ओर से इसे बहादुरसिंह की उपाधि मिली थी।

१६७७ वि०, सन् १६२० ई०) मे इसकी मृत्यु हुई। यद्यपि इसके बड़े भाई जगतसिंह और भतीजा महासिंह दोनों मदिरा पान से मर चुके थे, पर उनसे कुछ उपदेश न लेकर इसने भी मीठे प्राण को कडुए पानी के बदले बेच डाला। गम्भीर, योग्य और शील-वान युवक था।

३१–राजा बासू

यह मऊ और पठान[१] (पठानकोट) का जमींदार था, जो स्थान पंजाब प्रांत के बारी दोआब में उत्तरी पहाड़ों के पास है। (जिस समय हुमायूँ की मृत्यु से संसार में गड़बड़ी मच गई थी और चारों ओर खोए हुए बलवे जाग पड़े थे) उस समय सुल्तान सिकंदर सूर ने (जो पंजाब की पहाड़ी घाटियों से निकल कर अपना अवसर देख रहा था) विद्रोह आरम्भ कर दिया। बख्तमल ने (जो उस समय उस प्रांत का मुखिया था और विद्रोह और गड़बड़ मचाने में प्रसिद्ध था) सुल्तान सिकंदर का साथ देकर युद्ध की तैयारी की। इसके अनन्तर (जब २२ वर्ष अकबर ने सिकंदर को मानकोट में घेर लिया और दुर्गवालों को प्रति दिन अधिक कष्ट मालूम होने लगे तब) वहाँ से, कि हिन्दुस्तान के बहुत से जमींदारों में यह चाल है (कि एक पक्ष की ओर न रह कर सब ओर ध्यान रखते हैं और जिस पक्ष को विजयी और बढ़ता देखते हैं, उसी का साथ देते हैं) यह भी दरबार पहुँच कर जमींदारी बुद्धि से बादशाही सेना में मिल गया। दुर्ग मानकोट लिए जाने और सुल्तान सिकंदर के हट जाने के अनन्तर

---

[१] पठानकोट गुरदासपुर जिले में रावी नदी के पास है।

(जब लाहौर में विजयी सेना ठहरी हुई थी) यद्यपि स्वयं आने-वालों को, जो निरुपाय होकर आए थे, दंड देना ठीक नहीं समझा जाता था, पर बैराम खाँ ने उसके विद्रोह और गड़बड़ी मचाने ही का विचार करके उसे प्राण-दंड देना उचित समझ कर उसे मरवा डाला और उसके भाई तख्तमल को उसका स्थानापन्न किया। जब उस प्रांत का अध्यक्ष राजा बासू हुआ, तब उसने बराबर राजभक्ति और आज्ञा पालन कर अच्छी सेवा की। (जब अकबर ने मिरजा मुहम्मद हकीम की मृत्यु और जाबुलिस्तान अर्थात् अफगानिस्तान पर अधिकार हो जाने के अनंतर पंजाब प्रांत को शांत करना पहिला कार्य समझ कर वहाँ कुछ दिन रहना ठीक किया तब) राजा बासू ने अदूरदर्शिता और मूर्खता से विद्रोह करना विचारा। इसलिये ३१वें वर्ष में हसनबेग शेख उमरी उस पर नियुक्त हुआ कि यदि वह समझाने से न माने तो उसे दंड दे। जब शाही सेना पठान पहुँची तब राजा बासू राजा टोडरमल के पत्र से मूर्खता की नींद से जागा और हसनबेग के साथ दरबार आया। इसके अनंतर ४१वें वर्ष में बहुत से विद्रो-हियों को अपनी ओर मिला कर फिर से बादशाही आज्ञा नहीं मानने लगा। अकबर ने पठान और उसके आसपास को भूमि मिरजा रुस्तम कंधारी को जागीर में दे दी और उक्त विद्रोही को दंड देने पर नियुक्त किया। उसकी सहायता के लिये आसफखाँ भी साथ गया था, परंतु जब इन दोनों सरदारों के अनैक्य से काम नहीं हो सका, तब मिरजा रुस्तम बुला लिया गया।

और राजा मानसिंह के पुत्र जगतसिंह इस कार्य पर नियत हुए। बादशाही सेवकगण एकत्र कर के साहस के साथ काम में लग गए और मऊ दुर्ग को (जो दृढ़ता और दुर्गमता के लिये प्रसिद्ध और उस विद्रोही का वासस्थान था) घेर लिया। दो महीने तक युद्ध होता रहा और अंत में दुर्ग दे देना पड़ा। ४४वें वर्ष में जब उसके विद्रोह का समाचार पहुँचा, तब फिर एक सेना उसको दंड देने के लिये भेजी गई। शाह खाँ का पुत्र अमीनबेग[1] इसके आदमियों के हाथ मारा गया। इसके अनंतर राजा शाहजादा सुल्तान सलीम की शरण में गया जिससे शाहजादे की प्रार्थना से उसके दोष क्षमा हो जायँ। फिर विद्रोही हो ४८वें वर्ष में (जब शाहजादा दूसरी बार अपने पिता की सेवा में पहुँचा तब) यह भी क्षमा की आशा से उनके साथ आया, पर डर के कारण नदी के उसी पार ठहरा रहा। इसके पहिले (कि शाहजादा क्षमाप्रार्थी हो) अकबर ने माधोसिंह कछवाहा[2] को उसे पकड़ने को भेजा जिसका समाचार पाकर वह भाग गया।

---

१ शाह बेग ख़ाँ मुग़ल, जिसे खानदौराँ की उपाधि मिली थी, पंजाब के बख्शी ख़्वाजा सुलेमान के साथ राजा बासू पर भेजा गया था। उसका पुत्र अमीन बेग जिस समय लड़ाई करा रहा था उसी समय राजा बासू ने धावा कर दिया जिसमें यह अपने पिता के पचास सैनिकों के साथ मारा गया। (ब्लौकमैन कृत आईने-अकबरी भा० १ पृ० ४५७)

२. अकबरनामा भा० ३ पृ० ८११ से मालूम होता है कि यह राजा मानसिंह के भतीजे थे, पर वास्तव में यह उनके भाई थे जैसा आईने-अकबरी (ब्लौकमैन) तथा तुज़ुके जहाँगीरी से भी ज्ञात होता है।

जब जहाँगीर बादशाह हुआ तब यह साढ़े तीन हजारी मन्सब पाकर सम्मानित हुआ। छठवें वर्ष में यह दक्षिण भेजा गया और ८वें वर्ष सन् १०२२ हि० (सन् १६१२ ई०) में मर गया। इसके दो पुत्र राजा सूरजमल[1] और राजा जगतसिंह थे जिन दोनों का वृत्तांत अलग दिया गया है।

यह बड़े बलवान पुरुष थे और इनकी शक्ति के विषय में कई दंतकथाएँ प्रचलित हैं।

१. इलि० डाउ०, भा० ६, पृ० ४२१—२५। सूरजमल के वृत्तान्त के लिये ८६वाँ तथा राजा जगतसिंह के वृत्तान्त के लिए २०वाँ निबंध देखिए।

८०—राजा विट्ठलदास गौड़

कहते हैं कि (राठौरों और सिसौदियों के अधिकार में आने के) पहिले मारवाड़ और मेवाड़ इसी जाति के अधिकार में थे। उन जातियों के अधिकृत होने पर भी बहुत से परगनों पर इनकी जमींदारी रह गई थी। पूर्वोक्त (विट्ठलदास) राजा गोपालदास गौर[1] का द्वितीय पुत्र था, जो सुलतान खुर्रम के बंगाल से लौटने और बुरहानपुर आने के समय आसीर का दुर्गाध्यक्ष था। इसके अनंतर शाहजादे ने उसको अपने पास बुला कर उसके स्थान पर सरदार खाँ को नियुक्त किया। इसने अपने पुत्र और उत्तराधिकारी बलराम के साथ ठट्ठा के घेरे में वीरगति प्राप्त की। यह (विट्ठलदास) अपने देश से आकर जुनेर में सेवा में पहुँचा। शाहजहाँ के बादशाह होने पर तीन हजारी १५०० सवार का मन्सब, राजा की पदवी, झंडा, चाँदी की काठी सहित घोड़ा, हाथी और तीस सहस्र रुपया सिक्का पाकर सम्मानित हुआ। खानेजहाँ लोदी के साथ जुझारसिंह बुंदेला को दंड देने के लिये नियत हुआ। २रे वर्ष (सं० १६८५ वि०, सन् १६२८ ई०) ख्वाजा अबुलहसन तुरबती के साथ खानेजहाँ लोदी का पीछा करने पर नियुक्त हुआ। इसने काम करने की इच्छा से सेनापति की प्रतीक्षा न

१ सैयदों विषय देखिए।

करके हवा की तरह पीछा किया और धौलपुर के पास उसे पाकर उससे खूब युद्ध किया। राजपूतों की चाल पर पैदल होकर वीरता दिखलाई और घायल होकर प्रसिद्धि पाई। इसके पुरस्कार में ५०० सवार इसके मन्सब में बढ़े और इसने डंका पाया। ३रे वर्ष (जब बादशाह ने दक्षिण पहुँच कर तीन सेनाएँ तीन मनुष्यों की अधीनता में खानेजहाँ लोदी को दंड देने और निज़ामुलमुल्क के राज्य पर अधिकार करने के लिये नियत कीं तब) यह राजा गजसिंह के अधीन नियत हुए और खानेजहाँ लोदी के साथ के युद्धों में अच्छा कार्य कर दिखलाया।

यहाँ से (बादशाह ने इसकी और इसके पिता की राजभक्ति देखी थी और इसकी बड़ी इच्छा दुर्गाध्यक्ष होने की थी, क्योंकि उसके बिना राजत्व का पद विश्वसनीय नहीं समझा जाता था) ४थे वर्ष खान चेला के बदले में यह रतभँवर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। ६ठे वर्ष अजमेर की फौजदारी मिरज़ा मुज़फ्फर खाँ किर्मानी के बदले में इसे मिली। इसके अनंतर शाहज़ादा मुहम्मद शुजाअ के साथ दक्षिण प्रांत में नियुक्त होकर परेंदा[१] दुर्ग के घेरे में बहुत प्रयत्न करके अच्छी सेवा की। जब दुर्ग लेने का कोई उपाय न रहा और शाहज़ादा दरबार बुलाया गया, तब यह भी बादशाह के पास पहुँच कर ८वें वर्ष अजमेर प्रांत पर नियुक्त हुआ। ९वें वर्ष जब बादशाह ने दक्षिण जाकर तीन मनुष्यों की अधीनता में तीन सेनाएँ शाह जी भोंसला को दंड देने के लिये

१ चौरासीवाँ निबंध देखिए।

नियत की तब) यह खानदौराँ के साथवालों में था। इस पर अधिक कृपा होने के कारण पंदरा प्रांत इसके भतीजे शिवराम[1] को मिला था जिसने सेना सहित आकर इन्द्रमणि[2] धर्मांगार को वहाँ से निकाल दिया था। पर इसके अनंतर उसने सेना एकत्र कर के शिवराम से उस स्थान का अधिकार फिर छीन लिया था। इस पर १०वें वर्ष राजा सेना सहित (जिसका सेनापति माखसिर खाँ था) उस प्रांत को शांत करने के लिये नियुक्त हुआ। पहुँच कर इसने दुर्ग सहरा को घेर लिया। धर्मांगार ने तब हार पर मोतमिद खाँ से भेंट की। राजा के दरबार पहुँचने पर इसका मन्सब बढ़कर चार हजारी ३००० सवार का हो गया और परिंदा प्रांत उसे रहने के लिये मिल गया। ११वें वर्ष (जब बादशाह लाहौर आ रहे थे तब) इसे आगरे का दुर्गाध्यक्ष बना गए। १२वें वर्ष यह आज्ञानुसार आगरे से राजकोष लाहौर ले गया। १४वें वर्ष वजीर खाँ की मृत्यु पर यह आगरे का शासनकर्ता और दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। १६वें वर्ष बादशाह के आगरे आने पर इसका मन्सब पाँच हजारी ३००० सवार का हो गया। १९वें वर्ष यह पाँच हजारी ४००० सवार के मन्सब सहित बलख और बदख्शाँ की चढ़ाई में मुरादबख्श शाहजादा के हरावल में नियुक्त हुआ। बलख विजय के अनंतर जब शाहजादा घबरा कर दरबार

---

१ निजाम हैदराबाद के राज्य की पश्चिमी सीमा पर सीना नदी के किनारे पर बना हुआ एक दुर्ग है।

२ पाँचवाँ निबंध देखिए।

चला आया और वहाँ के प्रबंध के लिये सादुल्ला खाँ गया, तब यह आज्ञानुसार बलख के स्वामी नजर मुहम्मद खाँ के छूटे हुए मनुष्यों के साथ २०वें वर्ष दरबार चला आया। २१वें वर्ष (जब बादशाह शाहजहाँनाबाद के नए महलों मे गए तब) यह पाँच हजारी ५००० सवार हजार सवार दो और तीन घोड़ेवाले मन्सब के साथ काबुल मे नियुक्त हुआ। २२वें वर्ष दरबार आने पर एक हजार सवार दो और तीन घोडेवाले और बढ़ाए गए और शाहजादा औरंगजेब के साथ कजिलबाशों के युद्ध मे (जो कंधार दुर्ग घेरने आए हुए थे) इसने प्रसिद्धि पाई। जब दुर्ग-विजय का उपाय न हो सका तब २३वें वर्ष आज्ञा आने पर शाहजादे के साथ दरबार गया और वहाँ से अपने देश जाने की छुट्टी पाई। वहीं सन् १०६१ हि० (सन् १६५१ ई०) मे इसकी मृत्यु हुई।

यह अपने कार्यों और राजभक्ति के कारण कृपापात्र हो गया था, इससे बादशाह को बहुत शोक हुआ और इसके साथियों पर कृपाएँ कीं। इसका बडा पुत्र राजा अनिरुद्ध[१] है जिसका वृत्तात अलग दिया है। दूसरा पुत्र अर्जुन था जो पिता के सामने ही बादशाह शाहजहाँ का प्रियपात्र हो गया था। एक दिन (कि राव अमरसिंह राठौर ने मीर बख्शी सलाबत खाँ को बादशाही दरबार मे मार डाला था) इसने साहस करके पूर्वोक्त राव पर दो बार तलवार चलाई थी[२]। १९वें वर्ष शाहजादा मुरादबख्श के

---

१ दूसरा निबध देखिए।

२. चौथा निबध देखिए।

साथ वलख और मन्सराॅ की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ। २१वें वर्ष में इसका मन्सब हजारी ७०० सवार का था। २२वें वर्ष सौ सवार बढ़ाए गए और २५वें में पिता की मृत्यु के अनन्तर पाँच सदी ७०० सवार का मन्सब और बढ़ाया जाकर दो बार शाहज़ादों के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियत हुआ। ३२वें वर्ष महाराज जसवन्तसिंह के साथ दक्षिण से आनेवाली सेना के रास्ते में रुकावट डालने के लिये मालवा में नियुक्त हुआ। युद्ध में (जो महाराज और सुलतान मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के बीच उज्जैन के पास हुआ था) वीरता दिखलाकर मारा गया। तीसरा पुत्र भीम था जिसने पिता की मृत्यु पर योग्य मन्सब पाया था और सामूगढ़ के युद्ध में दारा शिकोह के साथ था। युद्ध में वीरता के साथ शाहज़ादा औरंगजेब के सेनाधीन तक पहुँच गया और मारा गया। चौथा पुत्र हरचंद्र (जो औरंगजेब के समय सेवा में था) था। राजा की मृत्यु पर दस लाख रुपए (जो उसने बचा रखे थे) में से छ' लाख रुपया सिक्का और उसका सामान राजा अनिरुद्ध को, तीन लाख रुपया अर्जुन को, साठ हजार भीम को और चालीस हजार हरजस को मिला था। पूर्वोक्त राजा का छोटा भाई गिरधरदास शाहजहाँ के ९वें वर्ष में जुझारसिंह बुँदेला के मारे जाने और झाँसी दुर्ग के विजय होने पर वहाँ का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। १०वें वर्ष में उसे हजारी ८०० सवार का मन्सब मिला जो बराबर बढ़ता हुआ २२वें वर्ष में १००० सवार तक बढ़ गया। पूर्वोक्त राजा की मृत्यु के अनंतर इसका मन्सब बढ़ कर

डेढ़ हजारी १२०० सवार का हो गया। यह कंधार की विजय पर नियुक्त हुआ और २९वें वर्ष में सआदत खाँ के स्थान पर आगरे का दुर्गाध्यक्ष नियुक्त होने पर इसका मन्सब दो हजारी १२०० सवार का हो गया। ३०वें वर्ष में दुर्ग की अध्यक्षता के साथ वहाँ का फौजदार भी नियुक्त हो गया। सामूगढ़ के युद्ध में सुलतान दारा शिकोह के हरावल में था। आलमगीर नामा से ज्ञात होता है कि यह औरंगजेब के समय भी राजकार्य से लगा हुआ था।

४१-राजा बीरबर[1]

ये महेशदास नामक भाटफरोश (प्रशंसा बेचनेवाले) ब्राह्मण थे जिसे हिन्दी में भाट कहते हैं। यह जाति धनाढ्यों की प्रशंसा करनेवाली थी। यद्यपि यह कम पूँजी के कारण बुरी अवस्था में दिन व्यतीत कर रहे थे, पर बुद्धि और समझ भरी हुई थी। अपनी बुद्धिमानी और समझदारी से अपने समय के बराबर लोगों में मान्य हो गए। जब सौभाग्य से अकबर बादशाह की सेवा में पहुँचे, तब अपनी वाक्‌चातुरी और हँसोड़पन से बादशाही मजलिस के मुसाहिबों और मुख्य लोगों के गोल में जा पहुँचे और धीरे धीरे उन सब लोगों से आगे बढ़ गए। बहुधा बादशाही पत्रों में इन्हें मुसाहिब-दानिशवर राजा बीरबर लिखा गया है। यह हिन्दी की अच्छी कविता करते थे, इससे पहले

---

१ राजा बीरबल का जन्म सं० १५८५ वि० में कानपुर जिले के अन्तर्गत त्रिविक्रमपुर अर्थात् तिकवाँपुर में हुआ था। मूलक कवि ने अपने जन्मस्थान त्रिविक्रमपुर में ही इनका जन्म होना लिखा है। प्रयाग के अशोक-स्तम्भ पर यह लेख है—सं० १६३२ शाके १४९३ मार्ग बदी ५ सोमवार गंगादास सुत महाराज बीरबल श्री तीरथराज की यात्रा सुफल लिखितं। बदायूनी ने इनके उपनाम ब्रह्म में दास मिला कर इनका नाम ब्रह्मदास लिखा है। (बदायूनी जो पृ० २१४) ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।

राजा बीरबर

कविराय (जो मलिकुश्शोअरा अर्थात् कवियों के राजा के प्रायः बराबर है) की पदवी मिली। १८वें वर्ष जब बादशाह ने नगरकोट के राजा जयचन्द पर क्रुद्ध होकर उसे कैद कर लिया, तब उसका पुत्र विधिचन्द्र (जो अल्पवयस्क था) अपने को उसका उत्तराधिकारी समझ कर विद्रोही हो गया। बादशाह ने वह प्रान्त कविराय को (जिसकी जागीर पास ही थी) दे दी और पंजाब के सूबेदार हुसेन कुली खाँ खानेजहाँ को आज्ञापत्र भेजा कि उस प्रान्त के सरदारों के साथ वहाँ जाकर नगरकोट विधिचन्द्र से छीनकर कविराय के अधिकार में दे दे। इन्हें राजा वीरबर (जिसका अर्थ बहादुर है) की पदवी देकर उस कार्य पर नियत किया।

जब राजा लाहौर पहुँचे तब हुसेन कुली खाँ ने जागीरदारों के साथ ससैन्य नगरकोट पहुँच कर उसे घेर लिया। जिस समय दुर्गवाले कठिनाई में पड़े हुए थे, दैवात् उसी समय इब्राहीम हुसेन मिरजा का बलवा आरम्भ हो गया, और इस कारण कि उस विद्रोह का शान्त करना उस समय का आवश्यक कार्य था, इससे दुर्ग विजय करना छोड़ देना पड़ा। अन्त में राजा की सम्मति से विधिचन्द्र से पाँच मन सोना और खुतबा पढ़वाने, बादशाही सिक्का ढालने तथा दुर्ग काँगड़ा के फाटक के पास मसजिद बनवाने का वचन लेकर घेरा उठा लिया गया। ३०वें वर्ष सन् ९९४ हि० (सन् १५८६ ई०) में जैन खाँ कोका यूसुफजई जाति को, जो स्वाद और बाजौर नामक पहाड़ी देश को रहनेवाली थी, दण्ड

वन के लिए नियुक्त हुआ था। उसने बाजौर पर चढ़ाई करके स्वाद (जो पेशावर के उत्तर और बाजौर के पश्चिम है, चालीस कोस लम्बा और पाँच से पन्द्रह कोस तक चौड़ा है और जिसमें चालीस सहस्र मनुष्य उस जाति के बसते थे) पहुँच कर उस जाति को दंड दिया।

घाटियाँ पार करते करते सेना थक गई थी, इसलिए जैन खाँ कोका ने बादशाह के पास नई सेना के लिये सहायतार्थ प्रार्थना की। शेख अबुल फज्ल ने उत्साह और स्वामिभक्ति से इस कार्य के लिये बादशाह से अपने को नियुक्त किए जाने की प्रार्थना की। बादशाह ने इनके और राजा बीरबर के नाम पर गोली डाली। दैवात् यह राजा के नाम की निकली। इनके नियुक्त होने के अनन्तर शंका के कारण हकीम अबुलफतह के अधीन एक सेना पीछे से और भेज दी। जब दोनों सरदार पहाड़ी देश में होकर कोका के पास पहुँचे तब यद्यपि कोकल्तासा तथा राजा के बीच पहिले ही से मनोमालिन्य था, तथापि कोका ने मजलिस करके नवागंतुकों को निमन्त्रित किया। राजा ने इस पर क्रोध प्रदर्शित किया। कोका धैर्य को काम में लाकर राजा के पास गया और जब राय होने लगी, तब राजा (जो हकीम से भी पहिले ही से मनोमालिन्य रखता था) से कड़ी कड़ी बातें हुईं और अन्त में गाली-गलौज तक हो गया।

फल यह हुआ कि किसी का हृदय स्वच्छ नहीं रहा और हर एक दूसरे की सम्मति को काटने लगा। यहाँ तक कि आपस

की फूट और झगड़े से बिना ठीक प्रबन्ध किए वे बलदरों को घाटा में घुसे। अफ़गानों ने हर ओर से तीर और पत्थर फेंकना आरम्भ किया और घबराहट से हाथी, घोड़े और मनुष्य एक में मिल गए। बहुत आदमी मारे गए और दूसरे दिन बिना क्रम ही के कूच करके अँधेरे मे घाटियों मे फँस कर बहुत से मारे गए। राजा बीरबर भी इसी में मारे गए[1]।

कहते हैं कि जब राजा कराकर पहुँचे थे, तब किसी ने उनसे कहा था कि आज की रात्रि में अफ़गान आक्रमण करेंगे, इससे तीन चार कोस जमीन (जो सामने है) पार कर ली जाय तो रात्रि-आक्रमण का खटका न रह जायगा। राजा ने जैन खाँ को बिना इसका पता दिए ही सध्या समय कूच कर दिया। उनके पीछे कुल सेना चल दी। जो होना था सो हो गया। बादशाही सेना का भारी पराजय हुआ और लगभग आठ सहस्र मनुष्य मारे गए जिनमें से कुछ ऐसे थे जिन्हें बादशाह पहचानते थे। राजा ने बहुत कुछ हाथ पैर मारा (कि बाहर निकल जायँ) पर मारा गया[2]।

जब कोई कृतघ्नता और अकृतज्ञता से धन्यवाद देने के बदले मे बुराई करने लगता है, तब यह कटकमय संसार उसे जल्दी उसके

---

१ अकबरनामा, इलि० डाउ०, जि० ५, पृ० ८०-८४ में विस्तृत विवरण दिया है।

२. मुन्दतुत्तवारीख़, इलि० डाउ०, जि० ५, पृ० १६१ में इसी प्रकार यह घटना लिखी गई है।

कामों का बदला दे देता है। कहते हैं कि जब राजा उस पार्वत्य प्रदेश में पहुँचा, तब उसका मुख और हृदय बिगड़ा हुआ था और अपने साथियों से कहता था कि 'हम लोगों का समय ही बिगड़ा हुआ है कि एक हकीम के साथ कोका की सहायता के लिये जंगल और पहाड़ नापना पड़ेगा। इसका फल न जाने क्या हो।' यह नहीं जानता था कि स्वामी के काम करने और उसकी आज्ञा मानने ही में धर्म और भलाई है। यह कारण कितना ही असंतोषजनक रहा हो, पर यह प्रकट है कि जैन खाँ भाय-भाई और ऊँचे मन्सब का होने से उच्चपदस्थ था। राजा केवल दो हजारी मन्सबदार था, पर उसने मुसाहिबी और मित्रता (जो बादशाह के साथ थी) के घमंड में ऐसा बर्ताव किया था।

कहते हैं कि अकबर ने उसकी मृत्यु-वार्ता सुन कर दो दिन तक खान-पान नहीं किया[1] और उस फरमान से (जो खानखानाँ मिरजा अब्दुर्रहीम को उसके शोक पर लिखा था और जो अबुल्फजल के ग्रंथ में दिया हुआ है) प्रकट होता है कि बादशाह के हृदय में उसने कितना स्थान प्राप्त कर लिया था और दोनों में कितना घना संबंध था। उसकी प्रशंसा और स्वामिभक्ति के शब्दों के आगे यह लिखा हुआ है कि "शोक! सहस्र शोक! कि इस शराबखाने की शराब में दुर्द मिला हुआ है। इस मीठे

१ राजा बीरबल की मृत्यु के अनंतर उनके जीवित रहने की कथा गप्पों का वर्णन बदायूनी ने विस्तार से किया है (देखिए मुंतखबुत्तवारीख जि० २ हिं० सं० पृ० १५७-५८)।

ससार की मिस्री हलाहल मिश्रित है। संसार मृग-तृष्णा के समान प्यासो से कपट करता है और पडाव गड्ढों और टीलों से भरा पड़ा है। इस मजलिस का भी सबेरा होना है और इस पागलपन का फल सिर की गर्मी है। कुछ रुकावटें न आ पड़तीं तो स्वयं जाकर अपनी आँखों से उसका शव देखता और उन कृपाओं और दयाओं (जो हमारी उस पर थीं) को प्रदर्शित करता।"

शैर का अर्थ

"हे हृदय, ऐसी घटना से मेरे कलेजे मे रक्त तक नहीं रह गया, और हे नेत्र, कलेजे का रंग भी अब लाल नहीं रह गया है।"

राजा बीरबर दान देने मे अपने समय में अद्वितीय थे और पुरस्कार देने में ससार-प्रसिद्ध थे। गान विद्या भी अच्छी जानते थे। उनके कवित्त और दोहे प्रसिद्ध हैं। उनके लतीफे और कहावतें सब में प्रचलित हैं। उनका उपनाम ब्रह्म[1] था। बड़े पुत्र[2]

---

[1] दरबारे अकबरी में (पृ० २६५) उपनाम बुर्हिया लिखा है। बदायूनी लो कृत अनु० पृ० १६४ मे ब्रह्मनदास लिखा है, पर मूल फारसी (जि० २, पृ० १६१) में ब्रह्मदास है। मआसिरुल्उमरा के सम्पादकों ने बरहन (नंगा) लिखा है। यह सब फारसी लिपि की माया मात्र है। वास्तव में ब्रह्म ही ठीक है। मिश्रबंधुविनोद (स० ७७, भाग १, पृ० २६६-८) में इनकी कविता का उद्धरण दिया हुआ है।

[2] दूसरे पुत्र का हरिहरराय नाम था जिसका अकबरनामा जि० ३, पृ० ८२० में इस प्रकार उल्लेख है कि वह दक्षिण से शाहजादा दानियाल का पत्र लाया था।

का नाम लाला था, जिसे योग्य मन्सब मिला था। यह कुस्वभाव और बुरी लत से व्यय अधिक करता था जिससे इसको ऋण बढ़ा, पर जब आय नहीं बढ़ी, तब इसके सिर पर स्वतन्त्रता से दिन व्यतीत करने की सनक चढ़ी। इसलिये इसको ४६वें वर्ष में बादशाही दरबार छोड़ने की आज्ञा मिल गई।

४२—राजा वीर बहादुर

यह भरोजी सरकर का पुत्र था। यह (अल्ल) धकर[१] जाति का एक भाग है। इनके पूर्वज अन्नागुंडी[२] के पास (जो तुगभद्रा नदी के किनारे पर स्थित है और पहले राजधानी थी) रहते थे। वहाँ से आकर बीजापुर के पास एक ग्राम मे रहने लगे। नीमा[३] राजा सिंधिया से संबंध रखने के कारण (जो अच्छे मन्सब और जागीर पर नियुक्त था) भरो जी को निज़ा-मुलमुल्क आसफजाह के समय योग्य मन्सब और बीदर प्रांत का पालम परगना जागीर में मिला। जब इसकी मृत्यु हुई, तब इसका बड़ा पुत्र अकाजो इसके स्थान पर नियत हुआ और धीरे धीरे सात हज़ारी मंसब, राजा वीर बहादुर की पदवी और अधिक जागीर पाकर सम्मानित हुआ। सन् ११९० हि० (सन् १७७६

---

१. अन्य प्रति में धनकर लिखा है।

२ अन्य प्रति में पाठांतर अन्ना गोविंद लिखा है। यह तुंगभद्रा नदी के उत्तरी किनारे पर धारवाड़ के ठीक पूर्व है। इसका शुद्ध नाम अना-गुंदी ही है।

३. शुद्ध शब्द नीमा है। नीमा जी सिंधिया राजाराम के समय खान-देश के प्रांताध्यक्ष थे। यह महाराज साहू के समय एक प्रसिद्ध सेनापति थे।

१०) में इसकी मृत्यु हुई। यह फारसी जानता था और कवित्त, दोहे (जो गंगा-यमुना के दोआब के रहनेवालों की कविता[1] है) बनाने में पटु था। इसके बाद इसके पुत्र सघम और भतीजों ने पैतृक जागीर बाँट कर नौकरी से हाथ हटा लिया।

[1] कवित्त से तात्पर्य है।

४३--राजा भगवंतदास[1]

ये राजा भारामल[2] कछवाहा के पुत्र थे। सन् ९८० हि० (सन् १५७२ ई०) में गुजरात पर अधिकार होने के अनंतर सरनाल युद्ध[3] में (जब अकबर ने सौ सवारों के साथ इब्राहीम हुसेन मिरज़ा पर चढ़ाई की थी) राजा ने वीरता और साहस दिखलाया था और डंका और झंडा मिलने से सम्मानित हुए थे। गुजरात पर नौ दिन के धावे में भी इन्होंने अच्छा काम किया

---

१. इनका दूसरा तथा प्रसिद्ध नाम राजा भगवानदास है। महाकवि भूषण ने एक कवित्त में राजा भगवंतदास ही नाम लिखा है, यथा—अकबर पायो भगवंत के तनय सों मान।

२. ४६ वाँ निबन्ध देखिए।

३. गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़र शाह के अकबर की शरण आने के अनंतर उसके कुछ सरदार ससैन्य सहायतार्थ सूरत से आ रहे थे। सरनाल ग्राम में बादशाह से इनकी मुठभेड़ हो गई। बादशाह के पास केवल डेढ़ सौ सैनिक थे और शत्रु लगभग एक सहस्र थे। दोनों के बीच में मही़ंदी नदी थी। मानसिंह हरावल में थे जिन्होंने नदी पार कर गुजरातियों पर धावा किया। नागफनी के झाड़ के कारण केवल तीन सवार बराबर जा सकते थे। बादशाह ने राजा भगवानदास तथा कुँवर मानसिंह को अपने दोनों ओर रख कर धावा किया और शत्रु को परास्त किया। (अबुतुराब कृत तारीखे गुजरात, पृ० ७५--७६)

था और ईडर के रास्ते से सेना सहित राणा के राज्य पर भेजे गए कि वहाँ के विद्रोहियों को शांत करें और जो न मानें उसे दंड दें। राजा कुलिजखाँ और ईडर के जमींदारों को राजभक्ति के रास्ते पर लाया और राणा कीका[1] से भेंट की। उसके पुत्र अमरसिंह[2] को अपने साथ बादशाह के दरबार में ले गया। २३वें वर्ष में (जब कछवाहा आदि की जागीर पंजाब में निश्चित हुई तब) राजा उस प्रांत का सूबेदार नियुक्त हुआ था। २९वें वर्ष में राजा की पुत्री का शाहजादा सलीम के साथ विवाह हुआ। एक मिसरे से, जिसका अर्थ है—'चन्द्र और जुहरा का मेल हुआ' विवाह की तारीख निकलती है। अकबर स्वयं राजा के गृह पर गया था। उसने भारी मजलिस की और विवाह का दहेज तथा भेंट दी, जो मिल कर एक भारी रकम हो गई।

कहते हैं कि बहुत से फ़ारसी, अरबी, तुर्की और कच्छी घोड़े, एक सौ हाथी, हब्शी, चरकिस्सी और हिन्दुस्थानी दास और दासियाँ दी थीं। दो करोड़ रुपया[3] मेहर बाँधा गया। बादशाह और शाहजादा दोनों ही पालकी में सवार होकर वहाँ गए। सारे

१. मेवाड़-नरेश महाराणा प्रतापसिंह ही का "राणा कीका" उप-नाम था जिससे उनकी प्रजा उन्हें याद करती थी। इनसे कुँवर मानसिंह से भेंट हुई थी।

२. ईडर के राणा के पुत्र अमरसिंह इनके साथ दरबार गए थे। (म्लोकमैन कृत आईन-अकबरी पृ० ३३३)

३. तबकात अकबरी और बदायूनी में इतना ही रकम लिखा है।

रास्ते में अच्छे कपड़े के पाँवड़े बिछे हुए थे। सन् ९९५ हि० में (४ अगस्त सन् १५८७ ई० को) इस राजकुमारी से सुलतान खुसरो पैदा हुआ। २०वें वर्ष में राजा को पाँच हज़ारी मन्सब मिला। इसी वर्ष (कि कुँअर मानसिंह यूसुफ़जई जाति के काम पर नियत हुए थे) राजा भगवतदास ज़ाबुलिस्तान के सूबेदार नियत हुए। इन्होंने कुछ अयोग्य इच्छाएँ प्रकट कीं जिस पर बादशाह ने इनको वहाँ भेजना स्थगित कर दिया जिससे दु:खी होकर बादशाह के यहाँ ये क्षमा-प्रार्थी हुए, तब इनका अपराध क्षमा किया गया। परन्तु जब सिंध नदी पार उतर कर ये खैराबाद में ठहरे थे, तभी एकाएक इनका उन्माद रोग उठा जिससे लौट कर ये अटक चले आए। एक हकीम नाड़ी देख रहा था कि उसका जमधर इन्होंने खींच कर अपने ही को मार लिया। शाही हकीमों ने इनकी दवा करने पर नियत होकर कुछ ही समय में इन्हें अच्छा कर दिया। ३२वें वर्ष में राजा को उनके स्व-जातियों सहित बिहार में जागीर मिली और कुँअर मानसिंह उसके प्रबंध को भेजे गए। सन् ९९८ हि० (सन् १५८९ ई०) के आरंभ में लाहौर में इनकी मृत्यु हो गई। कहते हैं कि जिस समय राजा टोडरमल चिता पर जल रहे थे, उस समय यह भी साथ थे, और जब घर आए तब कै-दस्त[1] हुआ और बोली बंद

१. मूल में इस्तफराग शब्द है जिसका अर्थ पेट का ख़ाली हो जाना है। अन्य इतिहासों में शूल से इनकी मृत्यु लिखी है।

हो गई। पाँच दिन के अनन्तर इनकी मृत्यु हो गई[1]। इनके अन्य कामों में लाहौर की जामा मसजिद[2] है जहाँ शुक्रवार को नमाज पढ़ने के लिये लोग एकत्र होते हैं[3]।

---

१ राजा टोडरमल और राजा भगवानदास एक ही वर्ष में मरे थे और बदायूनी ने एक मिसरे में दोनों की मृत्यु की तारीख इस प्रकार [illegible] प्रकट की है— 'शिगुफ्त टोडरो भगवान मुर्दंद।' अर्थात् कहा है कि टोडर और भगवान मुर्दे हुए। सन् ९९८ हि० के आरंभ में दोनों की मृत्यु का समाचार एक साथ ही अकबर को काबुल में मिला था।

२. लाहौर की जामा मसजिद सन् १६७४ ई० में औरंगजेब द्वारा बनवाई गई थी। राजा भगवानदास का मसजिद बनवाना ठीक नहीं जँचता। [illegible] पृ० ३ ४ में लिखा है कि इन्होंने मथुरा में हरिदेवजी का मंदिर बनवाया था।

३ इनके उत्तराधिकारी मानसिंह का वृत्तांत अलग दिया है तथा पुत्र माधोसिंह और प्रतापसिंह का भी उल्लेख इसी ग्रंथ में हुआ है। निबंध ३१ में राजा मानसिंह का वृत्तांत दिया है।

४४—राव भाऊसिंह हाड़ा

ये राव छत्रसाल[१] के पुत्र थे, जिन्हे सामूगढ़ के युद्ध में दारा शिकोह के हरावल में युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त हुई थी। पहले वर्ष भाऊसिंह देश से आकर[२] औरंगजेब के दरबार में गए और तीन हजारी २००० सवार का मन्सब, डंका, झंडा, राव को पदवी और बूँदी आदि महालों की जागीर पाकर सम्मानित हुए। शुजाअ के युद्ध में बादशाही तोपखाने पर (जो आगे था) नियुक्त थे। शुजाअ के भागने पर शाहजादा मुहम्मद सुलतान के साथ उसका पीछा करने पर नियत हुए। इसके अनंतर (जब शाहजादे की सेना बंगाल की ओर वीरभूमि के आगे बढ़ी तब)

---

१ मूल में शत्रुशाल का बिगड़ा हुआ रूप सतरसाल है, पर शुद्ध नाम छत्रसाल है।

२ [इनके पिता छत्रसाल ने दारा शिकोह का साथ दिया था, इसलिये औरंगजेब ने पुत्र पर क्रोध कर शिवपुर के राजा आत्माराम गौड को बूँदी पर भेजा। परंतु हाड़ाओं ने उसे परास्त कर शिवपुर जा घेरा। तब औरंगजेब ने हाड़ाओं की वीरता पर प्रसन्न होकर इन्हें बुलाने का फरमान भेजा और यह दरबार में हाजिर हुए। (टाड, राजस्थान, जि० २, पृ० १३४२)

यह शाहजादे से बिना छुट्टी लिए लौट आए[1] और दक्षिण में नियुक्त हुए। ३रे वर्ष अमीरुलउमरा शायस्ता खाँ के साथ इस्लामाबाद अर्थात् चाकन दुर्ग घेरा जिसे अहमदशाह बहमनी के पुत्र सुलतान अलाउद्दीन के सेनापति मलिकुत्तुज्जार ने (जो कोंकण प्रांत पर अधिकार करने के लिये नियुक्त हुआ था) बनवाया था। दुर्गवालों ने अंत में इसकी मध्यस्थता में दुर्ग सौंप दिया[2]। इसके बाद (जब शायस्ता खाँ दक्षिण से हटा दिया गया और उसके स्थान पर महाराज जसवंतसिंह शिवा जी को दमन करने के लिये नियुक्त हुए तब) भी यह उनके साथ रहे। राव भाऊसिंह की बहिन महाराज जसवंतसिंह को ब्याही थी, इसलिये महाराज ने इन्हें डेरा से बुला कर इनके द्वारा भाऊसिंह को मिलाना चाहा, पर यह स्वामिभक्त बने रहे और नहीं मिले। मिरज़ा राजा जयसिंह के दक्षिण पहुँचने पर यह उनके साथ चढ़ाइयों में रहे। ९वें वर्ष दिलेर खाँ के साथ इन्होंने चाँदा के राजा पर चढ़ाई की। दिलकुशा[3] नामक पुस्तक से मालूम होता

---

१ दाराशिकोह के साथ अजमेर में जो युद्ध हुआ था उसके बारे में झूठी गप्प सुनकर राजपूतों ने साथ छोड़ा था। (आलमगीरनामा, पृ १६८)

२ इलियट जि० ७ पृ २६२ में काफ़ी ख़ाँ से जो अवतरण दिया गया है उसमें इस घटना का विस्तृत वर्णन है। चाकण दुर्ग के विजय होने पर इसका इसलामाबाद नामकरण हुआ था।

३ मि० बेवरिज के सुझाव के अनुसार मैं ने नुसखा लिखा है। नुसखा का अर्थ हस्तलिखित पुस्तक भी है। यह पुस्तक भीमसेन कायस्थ की रचना है और इसमें औरंगज़ेब के समय की दक्षिण की घटनाओं का वर्णन है।

है कि यह बहुत दिन औरंगाबाद[१] में रहे। सुलतान मुहम्मद मुअज्जम से इनकी घनिष्ट मित्रता थी। २१वें वर्ष १०८८ हि० (सन् १६७७ ई०) में इनकी मृत्यु हुई।

इनको पुत्र न था, इसलिये इनके भाई भगवंतसिंह[२] के पौत्र और कृष्णसिंह[३] (जिसे सुलतान मुहम्मद अकबर ने, जब वह उज्जैन का सूबेदार था, बुलाया था और जो उद्धतता के कारण

जोनाथन स्कॉट ने इसका अंग्रेजी अनुवाद 'ए जनेल केप्ट बाई ए बुंदेला ऑफ़िसर' के नाम से प्रकाशित किया था। र्‍यू १ २७१ ए। इसी पुस्तक के पृ० ६६८ में सन् १६६७ ई० में इनका बीकानेर-नरेश राव कर्ण को दिलेर खाँ के षडयंत्र से बचा कर औरंगाबाद जाने का विवरण दिया है।

१ औरंगाबाद के फ़ौजदार नियत होकर यह वहाँ बहुत दिन रहे। वहाँ अनेक इमारतें बनवाईं और अपनी वीरता, दान और भक्ति के कारण बहुत प्रसिद्ध हुए। वहीं सं० १७३४ में इनकी मृत्यु हो गई। (टाड कृत राजस्थान, भाग २, पृ० १३४२)

२ टॉड ने भीमसिंह नाम लिखा है। मिस्टर बेवरिज लिखते हैं कि 'मआसिरे-आलमगीरी' अनिरुद्ध को भाऊसिंह का पौत्र लिखता है (मआ० उमरा, अंग्रे० अनु०, पृ० २२७)। परंतु टाड मआसिरुल उमरा का मत मानता है जिसको स्यात् बसने नक़ल की हो।' (म० उ०, पृ० ४०६)। जब भीमसिंह या भगवतसिंह और भाऊसिंह भाई भाई थे, तब एक का पौत्र दूसरे का भी पौत्र ही कहलावेगा। इस प्रकार तीनों का मत वास्तव में एक ही है।

३ मआसिरे-आलमगीरी लिखता है कि ख़िलअत पहनते समय कुछ झगड़ा हुआ था जिस पर कृष्णसिंह ने अपने को मार डाला। यह घटना सन् १०८८ हि०, सं० १७३४ ई० की है। टॉड लिखते हैं कि औरंगजेब ने इसे मरवा डाला था।

समधर से मारा गया था) के पुत्र अनिरुद्धसिंह[1] को राज्य मिला। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र बुधसिंह राजा होकर बहुत दिन बहादुर शाह के समय काबुल में नियुक्त रहा। जब औरंगजेब की मृत्यु पर बहादुर शाह और आजम शाह में युद्ध हुआ और पहला विजयी हुआ, तब इसे राव राजा[2] की पदवी, साढ़े तीन हजारी मन्सब और मोमीनाबाद तथा कोटा (जो माधोसिंह हाड़ा के पौत्र रामसिंह के अधिकार में था जो आजम शाह के साथ मारा गया था) की फर्मावारी मिली। इसके और रामसिंह के पुत्र भीमसिंह के बीच झगड़ा उठा था। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र उमेदसिंह राजा हुआ, पर उसने कुछ दिन बाद राज्य पुत्रों को दे दिया[3]। ग्रंथ-रचना के समय उसका पौत्र कृष्णसिंह[4] राजा था।

---

१ यह औरंगजेब के साथ दक्षिण के युद्धों में थे और एक बार इन्होंने शत्रु के हाथों से बेगमों को बचाया था। बीजापुर के घेरे में इन्होंने बड़ी वीरता दिखलाई। इन्होंने बूँदी के एक मुख्य सरदार दुर्जनसिंह को [illegible] कम दिए थे जिससे वह राजद्रोह से सेना का साथ छोड़ कर देश चला गया और उसने बूँदी पर अधिकार कर लिया तथा उसके भाई [illegible] को सौंप दे दिया। अनिरुद्धसिंह ने शाही सेना के साथ आकर उसे निकाल दिया और उसकी जागीर छीन ली। इसके अनन्तर जयपुर के राजा विष्णुसिंह के साथ उत्तरी भारत की शांति में लगा रहा। यहीं इसी कार्य में इसकी मृत्यु हुई।

२ राव राजा ठीक नहीं है। बुधसिंह को राव राजा की पदवी दी गई थी।

३ सन् ई० १७७० में इन्होंने राज्य त्याग दिया तब इनके पुत्र अजीतसिंह गद्दी पर बैठे।

४ ठीक नाम विष्णुसिंह लिखा है।

४५—राजा भारथ बुँदेला

यह राजा मधुकर के पुत्र रामचंद्र[१] का पौत्र था। जहाँगीर को वीरसिंह देव का विशेष ध्यान था, इससे उस बादशाह के गद्दी पर बैठने के वर्ष के अंत में अब्दुल्ला खाँ कालपी से (जहाँ उसकी जागीर थी) दसहरे के दिन फुर्ती से ओड़छा पर गया और रामचंद्र को (जो वहाँ विद्रोह मचाया करता था) पकड़ कर दूसरे वर्ष जकड़े हुए बादशाह के सामने लाया[२]। बादशाह ने उसकी बेड़ी खुलवा कर और खिलअत देकर राजा बासू को सौंपा कि जमानत लेकर छोड़ दे। उसी दिन से वीरसिंह देव का ओड़छा पर अधिकार हो गया। चौथे वर्ष उस (रामचद्र) की प्रार्थना पर उसकी पुत्री बादशाह के महल में ली गई[३]। जब वह मर गया, तब ७वें वर्ष उसका पौत्र भारथ योग्य मन्सब और

---

१. राजा रामचद्र का वृत्तांत अलग नहीं दिया गया है, पर कुछ हाल ४६वें निबंध में पिता की जीवनी के साथ दिया गया है। ३५वें निबंध में भारथ शाह के पुत्र की जीवनी में भी कुछ हाल दिया गया है। वीरसिंह देव इनके छोटे भाई थे। भारथ शाह के पिता का नाम संग्राम शाह था जो अपने पिता के सामने ही मर गया था।

२. बादशाहनामा, भा० १, पृ० ४८७-८८।

३. तुजुके-जहाँगीरी पृ० ७७।

राजा की पदवी पाकर प्रतिष्ठित हुआ[1]। उस विद्रोह के अनंतर (जो महाबत खाँ ने बहत—झेलम—के किनारे किया था और बाद में न ठहर सकने पर राणा के राज्य में भाग कर चला गया था) उन सरदारों के साथ (जिन्हें जहाँगीर ने उसका पीछा करने के लिये भेजा था और जो अजमेर पहुँच कर ठहरे हुए थे) यह भी था। उसी समय आकाश ने दूसरा रंग पकड़ा अर्थात् जहाँगीर बादशाह की मृत्यु हो गई और शाहजहाँ अजमेर में पहुँचे। यह भक्त सेवा में पहुँचा और इसका मन्सब पाँच सदी ५०० सवार बढ़ाया जाकर तीन हजारी २५०० सवार का हो गया और इसने झंडा और घोड़ा पाया[2]। पहिले वर्ष इटावा और उसके आस पास के प्रांत का (जो खालसा था) फौजदार हुआ और कुछ दिन के अनंतर डंका पाकर सम्मानित हुआ। दूसरे वर्ष ख्वाजा अबुलहसन के साथ नासेकहाँ लोगों का पीछा करने और तीसरे वर्ष राव रत्न हाड़ा के साथ तेलिंगाना विजय करने पर नियुक्त हुआ। पाँच सौ सवार उसके मन्सब में और बढ़ाए गए तथा नसीरी खाँ के साथ (दक्खिनी) कंधार दुर्ग लेने में बड़ी वीरता दिखलाई। जब दुर्गवाले संकट में पड़े हुए थे, तब इसी की सम्मति से उन लोगों ने दुर्ग सौंप दिया[3]। ४थे वर्ष सेवा में

१ बादशाहनामा भा १ पृ० ८२। सन् ११२१ ई० में यह गद्दी पर बैठा था।

२. बादशाहनामा भा १ पृ ११ ।

३ बादशाहनामा भा १ पृ १०४-०७ इलि० डा० भाग ७ पृ २४ २६। कंधार का दुर्गाध्यक्ष याकूत हब्शी का पुत्र सादिक था।

पहुँच[1] कर पाँच सौ का मन्सब बढ़ने पर साढ़े तीन हज़ारी ३००० सवार का मन्सब पाकर सम्मानित हुआ। इसके अनंतर जब तेलिंगाना की सीमा पर नियुक्त हुआ तब छठे वर्ष विकलूर को (जो दक्षिण के सुलतानों की ओर से सीदी मुफ्ताह के साथ उसका अध्यक्ष नियत था) बुला कर उसके परिवार के साथ अपने अधिकार में ले आया। जब यह समाचार शाहजहाँ को मिला तब इसका मन्सब बढ़ा कर चार हज़ारी ३५०० सवार का कर दिया। ७वें वर्ष मे (जब बादशाह लाहौर में थे) समाचार आया कि सन् १०४३ हि० (सन् १६३४ ई०) मे तेलिंगाने की सीमा पर इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्र राजा देवीसिंह का वृत्तांत अलग लिखा गया है।

---

१ बादशाहनामा भा० १, पृ० ५३४-५ पर विकलूर के स्थान पर दिकलूर है, जो दाल और वाव अक्षरों के समान रूप को होने से पाठ-भ्रम मात्र है।

४६—राजा भारामल[1]

ये पृथ्वीराज कछवाहा के पुत्र थे। इस जाति के दो विभाग हैं—राजावत और शेखावत। ये राजावत थे और आमेर की गद्दी पर विराजमान थे, जो अजमेर के पास मारवाड़ के पश्चिम में है। यद्यपि यह राज्य लंबाई और चौड़ाई में उसके बराबर नहीं है, तिस पर भी उपजाऊपन में उससे बढ़कर है। राजपूतों में ये प्रथम राजा थे जिन्होंने अकबर की अधीनता स्वीकृत की थी। हुमायूँ की मृत्यु पर (जब चारों ओर अशांति फैली हुई थी तब) शेर शाह के एक दास हाजी खाँ ने विद्रोह करके नारनौल को (जो मजनूँ खाँ काकशाल की जागीर में था) घेर लिया। राजा ने उस समय उसका (मजनूँ खाँ का) साथ दिया। सुविचार से मध्यस्थ बनकर शांति से दुर्ग पर अधिकार कर लिया और मजनूँ खाँ को प्रतिष्ठा के साथ बिदा किया। इसके अनंतर

---

[1] मूल प्रतियों में जिस प्रकार यह नाम लिखा जाता है उससे इसे बिहारी मल, भारामल, भारामल आदि कई प्रकार से पढ़ा जा सकता है। और अकबर ने भी हमारे अकबरी में भारमल तक लिखा जाता है। मुझे बिहारीमल नाम ही ठीक जान पड़ता है और टॉड साहब ने भी अपनी पुस्तक राजस्थान में यही लिखा है। पर राजस्थान के निवासी इतिहासज्ञ विद्वान मु० देवीप्रसाद तथा पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी के अनुसार भारामल ही व्यवहार ठीक है।

(जब हेमू मारा गया[१] और अकबर का प्रभुत्व सब ओर फैल गया) मजनूँ खाँ काकशाल ने राजा की सेवा का बादशाह से वर्णन कर उसको बुलाने के लिये आज्ञापत्र भेजवा दिया। राजा भारामल आज्ञा पाने पर (जुलूस के) पहले वर्ष के अंत में दरबार में आया। विदाई के दिन (राजा को उसके पुत्रों और सबधियों सहित अच्छे खिलअत पहना कर सामने लाए थे) बादशाह मस्त हाथी पर सवार थे जो मस्ती के मारे इधर उधर दौड़ता था, और जिस ओर वह जाता था, उधर के मनुष्य एक ओर हट जाते थे। एक बार राजपूतों की ओर दौड़ा, पर वे अपने स्थान पर खड़े रहे। बादशाह को उनका यह खड़ा रहना बहुत पसद आया और उन्होंने प्रसन्न होकर राजा से कहा कि हम तुम्हें भी प्रसन्न करेंगे।

छठे वर्ष सन् १५६२ ई० में (जब अकबर मुईनुद्दीन चिश्ती के रौजे के दर्शन को अजमेर जा रहा था) कलाली मौजे में चगत्ता खाँ ने बादशाह से कहा कि राजा भारामल (जो बुद्धि और वीरता में प्रसिद्ध है और दिल्ली में सेवा भी कर चुका है) शका के कारण पर्वतों में जा बैठा है, क्योंकि अजमेर के सूबेदार मिरजा शरफुद्दीन ने राजा के बडे भाई पूरणमल[२] के पुत्र सूजा

१ सन् १५५६ ई० में पानीपत के द्वितीय युद्ध में हेमू मारा गया था।

२ अकबरनामे में राजा भारामल के चार भाइयों का नाम दिया है—पूरणमल, रूपसी, आसकरन और जगमल। इनमें पूरणमल इनसे बड़े थे जिनका पुत्र सूजा स्वय राजगद्दी पर बैठना चाहता था।

के बहकाने से चढ़ाई करके कर निश्चित किया है और राजा के पुत्र जगन्नाथ[1], आसकरन के पुत्र राजसिंह और जगमल के पुत्र खंगार को, जो राजा के भतीजे हैं, क़ैद करके आमेर (जो राजा का परम्परागत स्थान है) पर अधिकार करना चाहता है। अकबर ने गुणग्राहकता से राजा को बुलाने के लिये आज्ञापत्र भेजा। देवसा[2] में उसका भाई रूपसी अपने पुत्र जयमल के साथ (जो उस प्रांत का मुखिया था) सेवा में आया। साँगानेर में राजा अपने बंधुओं के साथ बादशाह के पास पहुँचा और उसका अच्छा स्वागत किया गया। राजा ने बुद्धिमानी और दूरदर्शिता से चाहा कि अपने को ज़मींदारों के वर्ग से निकाल कर बादशाह के संबंधियों में परिगणित करे, इसलिये इच्छा प्रकट की कि उसकी पुत्री हरम में ली जाय। अकबर ने उसे स्वीकार कर लिया। राजा ने इस विवाह की तैयारी करने के लिये छुट्टी ली और लौटते समय साँभर में अपनी पुत्री को पूरी तैयारी के साथ महल में भेजा। स्वयं अपने पुत्र भगवंतदास और उसके पुत्र कुँअर मानसिंह के साथ रतन[3] में बादशाह से भेंट

---

1 जगन्नाथ तथा जयमल का अलग वृत्तान्त इस ग्रंथ में दिया है। (संख्या ९१ ९२ निबंध)

2 देवसा जयपुर से बीस कोस पूर्व है।

3 यह रणथम्भौर (रतभँवर) हो सकता है। मानसिंह भगवानदास के छोटे भाई जगतसिंह के पुत्र थे और इन्हें कोई पुत्र नहीं था, इससे इन्हें दत्तक लिया था। भारमल की पुत्री जहाँगीर की माता थी।

की। अकबर ने भारत के दूसरे राजों और रायों से इनकी प्रतिष्ठा बढ़ा कर इनके पुत्रों, पौत्रों और स्वजातियों को ऊँची पदवियाँ और विश्वसनीय कार्य सौंप कर हिन्दुस्थान के साम्राज्य का स्तम्भ बनाया। राजा पाँच हजारी मन्सब प्राप्त कर स्वदेश लौट गया[१] और राजा भगवानदास तथा कुँअर मानसिंह बहुत से स्वजातियों सहित आगरे साथ गए और धीरे धीरे ऊँचे पदों पर पहुँचे।

---

१. सन् १५६६ ई० के लगभग भारामल की मृत्यु हुई थी, क्योंकि दूसरे ही वर्ष इनकी विधवा रानी के स्मारक में, जो मथुरा में सती हुई थीं, समाधि बनी हुई है। ग्राउज कृत मथुरा, पृष्ठ १४८। हरिदेव जी का एक मंदिर राजा भगवन्तदास ने मथुरा में बनवाया है। उक्त ग्रंथ पृ० २०५। तबक़ाते अकबरी में आगरे में इनकी मृत्यु होना लिखा है।

के बहकाने से पहाड़ से तरफ कर निश्चित किया है और राजा के पुत्र जगन्नाथ[1], आसकरन के पुत्र राजसिंह और जगमल के पुत्र खंगार को, जो राजा के भतीजे हैं, क़ैद करके आमेर (जो राजा का परम्परागत स्थान है) पर अधिकार करना चाहता है। अकबर ने गुणग्राहकता से राजा को बुलाने के लिये आज्ञापत्र भेजा। देवसा[2] में उसका भाई रूपसी अपने पुत्र जयमल के साथ (जो उस प्रांत का मुखिया था) सेवा में आया। साँगानेर में राजा अपने बहुत से आपसवालों के साथ बादशाह के पास पहुँचा और उसका अच्छा स्वागत किया गया। राजा ने बुद्धिमानी और दूरदर्शिता से चाहा कि अपने को धर्मीदारों के वर्ग से निकाल कर बादशाह के सबंधियों में परिगणित करे, इसलिये इच्छा प्रकट की कि उसकी पुत्री हरम में ली जाय। अकबर ने उसे स्वीकार कर लिया। राजा ने इस विवाह की तैय्यारी करने के लिये छुट्टी ली और उचित समय साँभर में अपनी पुत्री को पूरी तैयारी के साथ महल में भेजा। स्वयं अपने पुत्र भगवंतदास और उसके पुत्र कुँअर मानसिंह के साथ रतन[3] में बादशाह से भेंट

---

१ जगन्नाथ तथा जगमल का वर्णन इसका इस ग्रंथ में दिया है। (देखिए ६१ १२ निबंध)

२ देवसा जयपुर से बीस कोस पूर्व है।

३ यह रणथम्भौर (रतभँवर) हो सकता है। मानसिंह भगवानदास के छोटे भाई जगतसिंह के पुत्र थे और इन्हें कोई पुत्र नहीं था। इससे इन्हें दत्तक लिया था। भारमल की पुत्री जहाँगीर की माता थी।

इसके अनंतर वहाँ के अध्यक्ष बराबर बादशाही भेंट देते और कार्य पड़ने पर आज्ञानुसार दक्षिण के सूबेदारों के यहाँ जाते थे।

इस प्रांत की सीमा एक ओर खानदेश तक थी और दूसरी ओर वह गुजरात तक पहुँची थी, तथा बादशाही राज्य के बीच में पड़ती थी, इसलिये जब औरंगजेब पहली बार दक्षिण का सूबेदार हुआ, तब पहले उसने महम्मद ताहिर को (जो वजीर खाँ के नाम से प्रसिद्ध था) मालोजी दक्खिनी, जाहिद खाँ कोका और सैयद अब्दुलवहाब खानदेशी के साथ बगलाना पर अधिकार करने भेजा। घेरने पर वीरों के बहुत प्रयत्न से मुल्हेर दुर्ग (जो वहाँ की राजधानी थी) पर अधिकार हो गया। भेर जी ने अपनी माता को प्रार्थना करने के लिये भेज कर संधि कर ली और १२वें वर्ष में दुर्ग का अधिकार दे कर शाहजादे की सेवा में पहुँचा। शाहजहाँ ने उसको तीन हजारी २५०० सवार का मन्सब तथा उसी के प्रार्थनानुसार सुलतानपुर का परगना (जो दक्षिण के प्रसिद्ध अकाल[१] के समय से उजाड़ पड़ा हुआ था) जागीर में दिया। बगलाना खानदेश प्रांत में मिला दिया गया। रामगिरि[२] (जो बगलाना के पास है) भेर जी के दामाद सोमदेव[३] से ले लिया गया, पर उसका व्यय आय से अधिक था, इससे वह भेर

१. सन् १६३०-३१ के अकाल का वृत्तान्त बादशाहनामा जि० १, पृष्ठ ३६२ में दिया है।

२. बादशाहनामा जि० २, पृष्ठ १०६ में रामनगर है।

३. बादशाहनामा जि० २, पृष्ठ १०६।

४७—भेर जी, बगलाना[1] के ज़मींदार

इस प्रांत पर इसके पूर्वज चौदह सौ वर्षों से अधिकृत थे। ये अपने को राजा जयचंद राठौर (जो कन्नौज का राजा था) के वंशज मानते हैं। जो इस प्रांत का अध्यक्ष होता है, उसी का नाम भेर जी होता है। ये स्वयं पहले सिक्का ढालते थे, पर जब से गुजरात और दक्षिण के बीच में पड़ गए, तब से (जिसको प्रबल देखते थे, उसी में से) किसी ओर की अधीनता में रहने लगे। बहुत समय तक गुजरात को भेंट देते रहे, पर पीछे से खानदेश के हाकिम के पड़ोस के कारण प्रबल हो गए। सन् ९८० हि० में (जब गुजरात पर अकबर का अधिकार हो गया और सूरत बंदर में बादशाही सेना की छावनी हो गई) भेर जी ने सेवा में पहुँच कर बादशाह के बहनोई मिरज़ा शरफ़ुद्दीन हुसेन को (जिसे बलवा करके दक्षिण जाने के विचार से उस सीमा पर पहुँचने से पकड़ कर सुरक्षित रखा गया था) भेंट दी और कृपापात्र हुआ[2]।

---

१ अकबरनामा भाग ३ पृष्ठ १५। [illegible]-विजय का उल्लेख और इस प्रान्त की सीमा आदि का वर्णन दिया है। इलि डाउ जि ५ पृष्ठ १५।

२ अकबरनामा जि ३ पृष्ठ २६। इलि डा जि ५, पृष्ठ ४० में देखिए।

थे—मुल्हेर[1] जिसका नाम औरंगगढ़ रखा गया और जिसकी वस्ती एक कोस में थी। औरंगाबाद के साठ कोस पश्चिम मूसन[2] नदी बहती है। साल्हेर सुल्तानगढ़ के नाम से सब से ऊँचा दुर्ग और शृंग है।

शेर का अर्थ

साल्हेर उच्च आकाश का पुत्र है। इससे वह पिता के समान ही ऊँचा है।

दूसरे दुर्गों के नाम हटगढ़,[3] जुल्हेर, बैसूल, नानिया और साल्हद हैं। इस प्रान्त में[4] तरी और नदियों की अधिकता से बहुतेरे पेड़, अच्छी खेती, आम की अच्छी फसल और अच्छा धान होता है, जो दक्षिण में सब से बढ़ कर है। पहले राजाओं के समय दस लाख रुपया आता था और साढ़े छः करोड़ दाम निश्चित तहसील थी। अकाल से उजाड़ होने पर और सेनाओं के कई बार धावा करने के कारण, जिस समय इस पर अधिकार हुआ था, उस समय इसकी चार लाख वार्षिक आय नियत की

---

१ चाँदौर और नन्दरबार के मध्य में है।

२ यह ताप्ती की सहायक नदी गिरना में गिरती है। इसे मूसा नदी भी कहते हैं।

३. बादशाहनामा जि० २, पृष्ठ १०६ में हाटगढ़, पेफल, बाड़न और साल्दा नाम दिये हैं।

४. ख़फ़ी ख़ाँ जि० १, पृष्ठ ५६१-२ में देखा हुआ वर्णन है।

जागीर में मिल गया और उस पर दस सहस्र वार्षिक कर लगा दिया गया। भैर जी की मृत्यु पर उसके पुत्र नेराम साह[1] को शाहजहाँ ने मुसलमान बना कर उसका नाम दौलतमंद खाँ रखा और डेढ़-हज़ारी मन्सब देकर सुलतानपुर के बदले में आनन्दपुर का परगना पुनः उसे जागीर में दिया। वह औरंगज़ेब के राजत्व काल में यहीं रहता था और उसने यहाँ अच्छे गृह आदि बनवाए थे, जिनके चिह्न अब तक वर्तमान हैं।

शेर का अर्थ

टूटी हुई दीवारों और फाटकों के खँडहर से पारस के बड़े बड़े आदमियों का चिह्न प्रकट होता है।

बगलाना प्रायः पार्वत्य प्रदेश है। इसकी लम्बाई सौ कोस और चौड़ाई तीस[2] कोस है। पूर्व में कालना (जालना) और नन्दुरबार, पश्चिम में सोरठ (सूरत), उत्तर में पिप्ली (राजपीपला) और विन्ध्याचल तथा दक्षिण में सह्याचल[3] है जिस पर नासिक आदि स्थान हैं। पहले इस प्रान्त में तीस हजार सवार और दस हजार पैदल रहते थे। इसमें अन्तापुर और चिन्तापुर नामक दो बड़े नगर थे। अब कुछ अधिक ग्राम भी नहीं हैं। सात प्रसिद्ध दुर्ग थे पर सब पहाड़ी थे। उनमें से दो विशेष विख्यात

---

१ मआ० उ० जि० १ पृ० ४१५।

२ अकबरनामा में चौड़ाई सत्तर कोस और लम्बाई सौ कोस लिखी है; पर अकबरनामा जि० ३ पृ० ३ में तीस ही कोस चौड़ाई लिखी है।

३ सह्याद्रि पर्वत, जो नासिक के पास है।

४८—राय[1] भोज

राय सुर्जन हाड़ा का यह छोटा पुत्र[2] था। जब इसके पिता ने अकबर की अधीनता स्वीकृत कर ली, तब यह अच्छी सेवा करके उसका कृपापात्र हो गया। २२वें वर्ष में बूँदी दुर्ग इसके भाई दूदा[3] से लेकर इसे दिया गया। इसके अनन्तर बहुत समय तक यह कुँवर मानसिंह के अधीन रहा और उड़ीसा में इसने अफगानों के युद्ध में वीरता दिखलाई। दक्षिण के युद्ध में शेख अबुलफज्ल के साथ नियुक्त होकर वहाँ पहुँचा और युद्धों में बराबर साहस

---

१. राय अशुद्ध है जो भाटों की पदवी है। बूँदी के राजे राव कहलाते हैं। राव सुर्जन को अकबर ने राव राजा की पदवी दी थी।

२ यह राव सुर्जन जी के प्रथम पुत्र थे और स० १६४२ वि० में गद्दी पर बैठे थे। गुजरात की चढ़ाई में यह भी अपने छोटे भाई दूदा सहित अकबर के साथ थे। सूरत के घेरे में अन्तिम धावे के समय शत्रु के सेनापति को इन्होंने द्वंद्व युद्ध में मारा था। अहमदनगर के घेरे में इन्होंने ऐसी वीरता दिखलाई थी कि अकबर ने दुर्ग में एक नया बुर्ज बनवा कर उसका नाम भोज बुर्ज रखा था और इन्हें अपना खास हाथी पुरस्कार में दिया था।

३. टॉड साहिब इसे छोटा भाई लिखते हैं और उन्होंने इस घटना का कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। दूदा के विद्रोह करने पर यह घटना घटी थी।

गई। इस समय इसमें से भी ग्यारह हजार रुपया वक्फ़ में कम कर वेतन कर दिया गया है। पहले कुल बत्तीस परगने थे। इस समय सत्ताइस हैं, जिनमें से तीन चार महाल ऐसे हैं जिन पर अधिकार नहीं हुआ था। उस प्रान्त के वे प्रान्त, जो जयपुर की ओर के पहाड़ों में हैं, भीलों के अधिकार में होने के कारण कम आमदनी वाले हैं।

४८–राय[1] भोज

राय सुर्जन हाड़ा का यह छोटा पुत्र[2] था। जब इसके पिता ने अकबर की अधीनता स्वीकृत कर ली, तब यह अच्छी सेवा करके उसका कृपापात्र हो गया। २२वें वर्ष में बूँदी दुर्ग इसके भाई दूदा[3] से लेकर इसे दिया गया। इसके अनन्तर बहुत समय तक यह कुँवर मानसिंह के अधीन रहा और उड़ोसा में इसने अफ़ग़ानों के युद्ध में वीरता दिखलाई। दक्षिण के युद्ध मे शेख़ अबुलफज़ल के साथ नियुक्त होकर वहाँ पहुँचा और युद्धों में बराबर साहस

---

१ राय अशुद्ध है जो भाटों की पदवी है। बूँदी के राजे राव कहलाते हैं। राव सुर्जन को अकबर ने राव राजा की पदवी दी थी।

२ यह राव सुर्जन जी के प्रथम पुत्र थे और स० १६४२ वि० में गद्दी पर बैठे थे। गुजरात की चढ़ाई में यह भी अपने छोटे भाई दूदा सहित अकबर के साथ थे। सूरत के घेरे में अन्तिम धावे के समय शत्रु के सेनापति को इन्होंने द्वंद्व युद्ध में मारा था। अहमदनगर के घेरे में इन्होंने ऐसी वीरता दिखलाई थी कि अकबर ने दुर्ग में एक नया बुर्ज बनवा कर उसका नाम भोज बुर्ज रखा था और इन्हें अपना खास हाथी पुरस्कार में दिया था।

३ टॉड साहिब इसे छोटा भाई लिखते हैं और उन्होंने इस घटना का कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। दूदा के विद्रोह करने पर यह घटना घटी थी।

का काम करता रहा। जहाँगीर के बादशाह होने पर जब चाहा (कि राजा मानसिंह के पुत्र जगतसिंह की पुत्री से विवाह[1] करे) तब उन्होंने नहीं माना (जो उस लड़की की माता के पिता थे); इस बात से बादशाह इससे बिगड़ गए और निश्चय किया कि काबुल से लौटने पर दंड देंगे। उसी वर्ष (कि जहाँगीर के राज्य का दूसरा वर्ष था) १०१६ हि० (सन् १६०८ ई०) में इसकी मृत्यु हो गई[2]। ४०वें वर्ष में एक हजारी मन्सब से सम्मानित हो चुका था। कहते हैं कि राठौर और कछवाहे राजा की पुत्रियाँ तैमूरी वंश के बादशाहों से ब्याही गईं, पर हाड़ा जाति ने ऐसा सम्बन्ध करना नहीं स्वीकृत किया।

---

१ सन् १६[illegible] ई० में यह विवाह हुआ था। (तुजुके-जहाँगीरी पृष्ठ १५६)

२ मआसिरुल्उमरा लिखता है— मदे तारीफ़ जिस्मी गुलेअम अर्थात् उसके यौवन का तमाशा-माशा हो गया। इससे आत्महत्या नहीं ज्ञापित होती। [illegible] भी लिखते हैं कि सं० १०१४ हि० में यह बूँदी के राजमहल में मरे। केवल ब्लोकमैन आइने अकबरी के पृष्ठ ४४८ में लिखा है कि इसने आत्महत्या की थी। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र राव रत्न गद्दी पर बैठा था।

४९—राजा मधुकर साह बुँदेला

यह गहरवार जाति का था। पहले इसके वंश में ऐश्वर्य्य और धन कुछ भी नहीं था और इसके पूर्वजगण लूटपाट कर किसी प्रकार जीवन व्यतीत करते थे। जब प्रताप[1] राजा हुआ (जिसने ओड़छा की नींव डाली थी) तब प्रभाव और ऐश्वर्य्य अर्जित कर दो बार शेर शाह और सलीम शाह[2] से युद्ध किया। इसके अनंतर इसका पुत्र राजा भारथचंद राजा हुआ। इसको सतति नहीं थी, इससे इसकी मृत्यु पर इसका छोटा भाई मधुकर साह राजा हुआ। यह अपने उपायों, नीति, साहस और वीरता से प्रसिद्धि प्राप्त कर सब पूर्वजों से आगे बढ़ गया। कुछ समय

---

१ बुँदेला वंश के अधिष्ठाता पचम की १२वीं पीढ़ी में हुआ। इसका पूरा नाम रुद्रप्रताप या प्रतापरुद्र था। इसने सं० १५८७ वि० की वैशाख कृ० १३ को ओड़छा नगर की नींव डाली और करार को छोड़ कर उसे राजधानी बनाया। इसके बारह पुत्र थे—प्रथम राजा भारतीचंद और दूसरे यही मधुकर साह हैं। तीसरे पुत्र उदयाजीत ने महोबे का राज्य स्थापित किया था, जिनके वंश में पन्ना राज्य के संस्थापक प्रसिद्ध वीर छत्रसाल हुए थे।

२ अशुद्ध है। यह घटना उनके पुत्र भारतीचंद के समय की है। वीरसिंह देव चरित पृष्ठ १६।

भीतन पर इसने आस पास की चारों ओर की बस्तियों[१] पर अधिकार कर लिया। एश्वर्य्य, सेना और राज्य के बढ़ने से इसका अहङ्कार भी बढ़ गया और इसने अकबर बादशाह के विरुद्ध विद्रोह किया। इस दंड देने के लिये अकबर ने दो बार सेनायें भेजीं। कभी यह अधीनता मान लेता था और कभी विद्रोह कर बैठता था। २२वें वर्ष में सादिक खाँ हर्वी राजा आसकरन और मोटा राजा के साथ इस दंड देने के लिये नियुक्त हुआ। सेनापति ने इसके प्रांत में पहुँचने के पहिले इसे मिलाना चाहा, पर यह न माना। निरुपाय हो जंगल काटने का प्रबंध किया। उस प्रांत में वृक्ष बहुत और घने थे, इसलिये सेना का जाना कठिन था। एक दिन जंगल काटने और वृक्ष गिराने में लग गया। दूसरे दिन यह सेना[२] नदी तक (जो चौस धारा के नाम से प्रसिद्ध है और भाण्डेर के उत्तर में है) पहुँचा। राजा मधुकर ने बड़ी सेना के साथ उसके तट पर युद्ध की तैयारी की। बड़ी लड़ाई के अनंतर उसका प्रसन्न पुत्र मर्दान हो गया और पास ही था कि बादशाही सेना पराजित हो जाय कि यह अपने पुत्र और उत्तराधिकारी राम साह के साथ साहस छोड़ कर भागा। इसका दूसरा

१ सं० १२१ वि० में तिराज और उरीछा के बाद के स्थानों पर अधिकार कर लिया जहाँ से बादशाही सेना ने तैमूर महमूद बादशाह की चपावत में कर दिया।

२ बरवर के पास ले गया था। उस बेतवा का एक उदाहरण नहीं है।

पुत्र होदल राय[1] गजनाल की चोट से मर गया। सादिक़ खाँ इस विजय के अनंतर वहीं ठहर गया। जब मधुकर साह को कष्ट पहुँचने लगा, तब निरुपाय हो इसने प्रार्थना कर[2] अपने भ्रातृपुत्र को दरबार भेजकर क्षमा माँगी। क्षमा का समाचार मिलने पर २३वें वर्ष (सं० १६३५ वि०, सन् १५७८ ई०) मे सादिक खाँ के साथ दरबार जाकर फिर कृपाओं से सम्मानित हुआ।

जब मालवा का सेनापति शहाबुद्दीन अहमद खाँ मिरजा अज़ीज़ कोका के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ, तब यह भी उस सेना में नियत हुआ। जब इसने कोका का साथ नहीं दिया, तब शहाबुद्दीन अहमद खाँ ने दूसरे जागीरदारों के साथ इसे दंड देने का विचार किया। जब ओड़छा चार कोस रह गया, तब वह अदूरदर्शी क्षमाप्रार्थी हो राजा आसकरन की मध्यस्थता में आज्ञा मानने के लिये तैयार हो गया। सजी हुई सेना को आकर देखने पर फिर विचार में पड़ कर जगल मे भाग गया। उसका सामान लुट गया। उसका पुत्र इन्द्रजीत खजोह दुर्ग मे ठहर कर युद्ध करने को तैयार हुआ, पर जब वह युद्ध का साहस नहीं कर सका तब भाग गया। ३६वें वर्ष सन् ९९९ हि० (सन् १५९१ ई०) में जब सुल्तान मुराद मालवा का सूबेदार हुआ, तब वहाँ के सब सरदार मिलने गए, पर राजा मधुकर

१. इम्पी० गजे०, जि० १६, पृ० २४२ में होरिल देव लिखा है।

२ अपने भतीजे रामचद्र को भेजकर क्षमा प्राप्त की थी।

साह बहाना करके नहीं गया इससे शाहजादे ने उस पर चढ़ाई की। राजा अलग हो गया। तब अकबर ने शाहजादे को वहाँ से बुला लिया, तब इसने सादिक खाँ के साथ आकर शाहजादे की सेवा की[1]। सन् १००० हि० (सन् १५९२ ई०) में इसकी मृत्यु हुई। इसका पुत्र राम साह सादिक खाँ के साथ काश्मीर के रास्ते में बादशाह से भेंट कर उसका कृपा-भाजन हुआ। इसका दूसरा पुत्र वीरसिंह देव बुंदेला है जिसका वृत्तांत अलग दिया हुआ है[2]।

---

१ ब्लॉकमैन आईने-अकबरी पृ० ३४२।

२ ७६ वाँ निबंध देखिए जिसमें राम साह का भी वृत्तांत आ गया है। राजा मधुकर साह साहसी पुरुष थे तथा राजनीति अच्छी तरह समझते थे। यह इन्हीं की राजनीति-कुशलता थी कि अकबर के समान ऐश्वर्यशाली शत्रु, सम्राट् और पड़ोसी के रहते भी इन्होंने लड़ भिड़कर अपने राज्य की श्रीवृद्धि की।

मधुकर साह की रानी का नाम गणेशदेवी था। इनके आठ कुमार थे जिनके नाम क्रम से राम साह या रामचन्द्र, होरिल राय, नरसिंहदेव, रत्नसेन, इंद्रजीतसिंह, रणदिराय, प्रतापराय और वीरसिंह देव थे।

द्वितीय पुत्र होरिलराय बड़े वीर थे। सन् १५७८ ई० में जब सादिक खाँ की चढ़ाई में इनके पिता घायल होकर युद्धस्थल से हट गए तब इन्होंने वीरता से लड़कर वीरगति प्राप्त की। फारसी इतिहासों में इनका नाम होरिलदेव भी लिखा मिलता है।

रत्नसेन के बारे में वीरसिंह चरित्र में लिखा है—'बादशाह अकबर ने अपने हाथ से इनके माथे पर पगड़ी बाँधी थी और इन्होंने गौड़ देश विजय करके अकबर को सौंपा था तथा वहीं युद्ध के बहाने स्वर्ग गए।' बंगाल में अफ़गानों का विद्रोह दमन करने के लिये सन् १५८२ ई० में मुनइम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ और राजा टोडरमल की अधीनता में सेना भेजी गई थी। यह घटना मधुकर साह के बादशाही सेना द्वारा प्रथम बार पराजित होने के चार वर्ष बाद पड़ती है। इसी चढ़ाई में रत्नसेन भी साथ गए होंगे। गौड-विजय के अनंतर वहाँ की दलदली हवा के कारण ज्वर का बड़ा वेग था जिससे बहुत सेना नष्ट हुई थी। इसी चढ़ाई में यह मारे गए या रोग से मरे होंगे। इनके पुत्र का नाम राव भूपाल था।

इंद्रजीतसिंह महाकवि केशवदास के आश्रयदाता होने के कारण अच्छी तरह प्रसिद्ध हैं। इनके वंशधर अभी तक कछौवा या कछोवा में रहते हैं। यह बड़े गुणग्राहक थे और कविता, गायन आदि के बड़े रसिक थे। इनके यहाँ अनेक प्रसिद्ध गायिकाएँ थीं जिनमें प्रवीणराय भी थी। इसकी प्रसिद्धि सुनकर अकबर ने इसे बुलाया था।

साहिराम के पुत्र उग्रसेन हुए जिन्होंने धंधेरों को परास्त किया था।

———

५०—राजा महासिंह

इनके पिता कुँअर मानसिंह कछवाहा के पुत्र राजा जगतसिंह थे। पिता की मृत्यु पर यह अपने दादा के उत्तराधिकारी होकर बंगाल के शासन पर नियत हुए। अकबर के राज्य के ४५वें वर्ष (जब बंगाल के अफगानों ने विद्रोह किया था तब) यह थोड़ी अवस्था के थे। राजा मानसिंह के भाई प्रतापसिंह ने (कि सब कार्य उसी के हाथ में था) इसे सहज काम समझ कर अवध में ढिलाई करते हुए भद्रक के पास युद्ध की तैयारी की। जब अफगान विजयी हुए और बहुत से राजपूत मारे गए तब महासिंह वहाँ नहीं ठहर सका। ४७वें वर्ष में (जलाल खोकरवाल और काजी मोमिन ने उसी सूबे के पास विद्रोह मचा रखा था) इसने उनका दमन करने में बड़ी वीरता दिखलाई। ५०वें वर्ष में दो हजारी २०० सवार का मन्सब पाया। जहाँगीर के दूसरे वर्ष ससैन्य बंगश की चढ़ाई पर नियत हुआ। जहाँगीर ने अपने जलूस के तीसरे वर्ष इसकी बहिन के लिए अस्सी सहस्र रुपए की बरी भेज कर उससे विवाह किया[1]। राजा मानसिंह ने दहेज में ६० हाथी दिए थे। ५वें वर्ष झंडा मिला। उसी वर्ष चांपा के जमींदार

१ यह मान की पौत्री तथा जगतसिंह की पुत्री थी।

विक्रमाजीत को (जो विद्रोही हो गया था) दंड देने पर नियुक्त हुआ। ७वें वर्ष इसका मन्सब पाँच सदी ५०० सवार से बढ़ा। मानसिंह की मृत्यु पर जब बादशाह ने भाऊसिंह[१] पर अधिक कृपा करके उसे उसकी जाति का मुखिया बनाया, तब उसके बदले मे इसका मन्सब पाँच सदी बढ़ाकर खिलअत और जड़ाऊ खंजर इसके लिए भेजा और बाधव प्रांत इसे पुरस्कार मे मिला। १०वें वर्ष में राजा की पदवी और डंका भी मिल गया[२]। ११वें वर्ष पाँच सदी ५०० सवार का मन्सब और बढ़ा। १२वें वर्ष सन् १०२६ हि० (सन् १६१७ ई०) में बरार प्रांत के बालापुर में इसकी मृत्यु हुई। इसके पुत्र मिरजा राजा जयसिंह हैं जिनका वृत्तांत अलग दिया गया है[३]।

---

१ जगतसिंह सबसे बड़े पुत्र थे और उनके पुत्र महासिंह को गद्दी मिलनी चाहिए थी, पर जहाँगीर ने भावसिंह पर विशेष कृपा रखने से ऐसा किया था।

२ मदिरापान से भावसिंह की शीघ्र मृत्यु होने पर महासिंह को गद्दी मिली, पर यह भी इसी व्यसन के कारण दो वर्ष बाद मर गए। भाऊसिंह का वृत्तांत ३८वें निबंध में दिया गया है जिसके शीर्षक पर बहादुरसिंह नाम है।

३. २३ वाँ निबंध देखिए।

४१—महेशदास राठौर

महाराज सूरजसिंह के भाई दलपत[1] का पुत्र था। इसने आरंभ में महाबतखाँ खानखानाँ की सेवा[2] में वीरता के लिए प्रसिद्धि प्राप्त की। खाँ की मृत्यु पर ८वें वर्ष में शाहजहाँ की सेवा में पहुँच कर पाँच सदी ४०० सवार का मन्सब पाया और शाहजादा औरंगजेब के साथ (जो जुझारसिंह बुंदेला का दमन करने के लिये नियुक्त सेना के सहायतार्थ नियत किया गया था) ९वें वर्ष में खानेदौराँ के साथ नान्देड़ की ओर भेजा गया। ११वें वर्ष में मन्सब बढ़कर एक हजारी ६०० सवार का हो गया[3] और १५वें वर्ष में ४०० सवार और बढ़ाकर तथा झंडा प्रदान कर

---

१ मोटा राजा उदयसिंह के पुत्र थे जिन्हें बादशाह ने अजमेर परगना जागीर में दिया था।

२ खानखानाँ के साथ दौलताबाद दुर्ग लेने में वीरता दिखलाई थी, जहाँ इनके दो भाई मारे गए थे। यह घटना सन् १६३३ ई० की है।

३ सन् १६३८ ई० में शाहजहाँ ने इन्हें कूँपावत राजसिंह की मृत्यु पर मारवाड़ का प्रधान नियुक्त किया था, क्योंकि महाराज जसवंतसिंह अल्पवयस्क थे और [illegible] शाहजहाँ उन्हें अपने साथ रखता था। इसी वर्ष (सन् १०४८ हि० के १ रबीउल्अव्वल को) इन्हें एक हाथी बादशाह ने उपहार में दिया। (बादशाहनामा)

शाहजादा दारा शिकोह के साथ कंधार भेजा गया। १६ वें वर्ष में इसका मन्सब दो हजारी १००० सवार का हो गया और परगना जालौर जागीर में मिला। १९वें वर्ष में पाँच सदी मन्सब की बढ़ती देकर शाहजादा मुरादबख्श के साथ बलख और बदख्शाँ की चढ़ाई पर नियुक्त किया। फिर इसका मन्सब बढ़ कर तीन हजारी, २००० सवार का हो गया और यह डंका पाकर सम्मानित हुआ[1]।

(शाहजादा के बलख पहुँचने और वहाँ के अध्यक्ष नजर मुहम्मद खाँ के भागने पर) जब बहादुरखाँ और असमत खाँ कुछ सेना के साथ पीछा करने पर नियुक्त हुए, तब यह बिना आज्ञा के काय की उत्कट इच्छा से साथ गया। २०वें वर्ष में बुलाए जाने पर यह दरबार आया। उसी वष सन् १०५६ हि० में इसकी मृत्यु हो गई[2]। अनुभवी और युद्ध-प्रिय सैनिक था। बादशाह इस पर बहुत विश्वास रखते थे। दरबार में यह बादशाह के बगल में रखी हुई संदली के पीछे (जो तलवार और तरकश रखने के लिये दो गज की दूरी पर रहती थी) खड़े रहते और सवारी के समय भी

१ सफर सन् १०५५ हि० (सन् १६४६ ई०) को यह लाहौर के किलेदार नियुक्त हुए थे। (बादशाहनामा)

२. सन् १६४६-७ ई०, स० १७०३-४ में इनकी मृत्यु हुई। भारत के प्राचीन राजवश में स० १७०१ में लाहौर में मृत्यु होना लिखा है। बीसवें वर्ष में शाहजहाँ लाहौर ही में थे और ये वहीं बुलाए गए थे, इसलिये लाहौर में ही मृत्यु होना ठीक है।

दो राज की दूरी पर बराबर रहते थे। बड़ा पुत्र रत्न[1] (जो जालौर में था और जिसका मन्सब चार सदी २०० सवार का था) का मन्सब बढ़ाकर डेढ़ हजारी १५०० सवार का करके कृपा दिखलाई और दारा से भाग पर बढ़ शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ बलख पर नियत हुआ। जब शाहजादा पूर्वोक्त प्रांत नजर मुहम्मद खाँ को सौंप कर लौटे, तब रास्ते में इन्होंने अलअमानों के साथ लड़ने में बहुत परिश्रम किया। २२वें वर्ष में पूर्वोक्त शाहजादा के साथ कंधार गया और कजिलबाशों के युद्ध में रुस्तम खाँ के साथ नियुक्त हुआ। २५वें वर्ष झंडा मिलने से सम्मानित किया जाकर उसी चढ़ाई पर पूर्वोक्त शाहजादे के साथ दूसरी बार और शाहजादा दारा शिकोह के साथ तीसरी बार नियुक्त हुए। २८वें वर्ष में अल्लामी सादुल्ला खाँ के साथ चित्तौड़ को नष्ट करने गए। ३१वें वर्ष औरंगजेब के पास दक्षिण गए और आदिलखानियों के युद्ध में अच्छा परिश्रम करने के उपलक्ष में इनका मन्सब बढ़ कर दो हजारी २०० सवार[2] का हो गया। इसके अनंतर महाराज जसवंतसिंह के

---

१ महेशदास के पाँच पुत्रों में ये सबसे बड़े थे। दिल्ली में एक बार दरबार जाते समय एक मस्त हाथी ने इनका रास्ता रोका जिस पर इन्होंने कटार से इन्होंने ऐसी चोट की कि वह भाग गया।

२ भारत के प्राचीन राजवंश में इन्हें तीन हजार सवारों का मन्सब देना लिखा है जिसके साथ में मिले हुए चँवर, मोरछल, सूरजमुखी आदि के

साथ युद्ध[1] में (जो उज्जैन में हुआ था) नियुक्त होकर औरंगजेब के सैनिकों से वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारे गए।

'

मिलने तथा अब तक उस राज्य में उनके सुरक्षित रखे रहने का भी उल्लेख है। (मा० ३, पृ० ३६१)

१. यह धर्मपुर (फतेहाबाद) युद्ध में जसवंतसिंह के साथ थे और वहीं युद्ध में मारे गए। इनके पुत्र रामसिंह गद्दी पर बैठे।

५२–माधोसिंह कछवाहा

यह राजा भगवानदास के पुत्र थे। १७वें वर्ष (जब अकबर मिरजा इब्राहीम को दंड देने के लिये धावा कर अहमदनगर प्रांत के पास सरनाल कस्बे में युद्ध के लिये उद्यत हुआ तब) यह भी साथ थे और अवसर पर पहुँच कर काम पर नियुक्त हुए। ३०वें वर्ष में (जब सेना मिरजा शाहरुख की अध्यक्षता में कश्मीर पर अधिकार करने भेजी गई और वहाँ के जमींदार याकूब से युद्ध हुआ तब) ये भी वीरता दिखला कर प्रशंसा के पात्र हुए। ३१वें वर्ष में (जब सैयद हामिद बुखारी पेशावर में मारा गया तब) ये बादशाही आज्ञानुसार पिता की सेना को साथ लेकर थाना लगर से (कि उन्हीं के अधीन था) मस्ती मसजिद (जहाँ कुँवर मानसिंह थे) पहुँचे[1]। ४०वें वर्ष में डेढ़ हजारी मन्सब तक पहुँच कर ४८वें वर्ष में तीन हजारी २०० सवार के मन्सब तक पहुँच गए[2]। इनके पुत्र शत्रुसाल जहाँगीर के राज्य के

१ अकबरनामा भा ३, पृ ४४५ पर लिखा है कि माधोसिंह, जो कोहिर में इब्राहीम बुखारी के साथ नियुक्त था, ठीक मौके पर अपने भाई के सहायतार्थ सेना सहित आ पहुँचा जिससे १ के ऊपर अफगान मारे गए और बाकी भाग गए।

२. ४५वें वर्ष में जहाँगीर ने इन्हें राणा का पीछा करने भेजा

अंत में डेढ़ हजारी १००० सवार के मन्सब तक पहुँचे और शाहजहाँ के राज्यारंभ में वही मन्सब बहाल रखा गया। इसके बाद यह मालवा के सूबेदार खानेजहाँ लोदी के साथ जुझारसिंह बुँदेला का दमन करने के लिये (जिसने विद्रोह किया था) भेजे गए। ३रे वर्ष (जब बादशाह दक्षिण में ठहरे हुए थे तब) यह राजा गजसिंह के साथ निजामुलमुल्क का राज्य विजय करने के लिये नियुक्त हुए। युद्ध के दिन (इनका स्थान चदावल में था और शत्रु ने एकाएक पीछे से धावा किया इससे) इन्होंने अपने दो पुत्रों भीमसिंह और आनंदसिंह के साथ वीरतापूर्वक युद्ध कर अपने प्राण निछावर कर दिए। दूसरा पुत्र उग्रसेन[1] योग्य मन्सब पाकर सम्मानित हुआ।

जिन्होंने बाजापुर आदि स्थान लूट लिए थे (अकबरनामा भा० ३, पृ० ८३१)। अकबर की मृत्यु पर जब राजा मानसिंह खुसरो को लेकर बंगाल जाने लगे, तब जहाँगीर ने इन्हीं माधोसिंह को भेजा था कि उन दोनों को समझा कर लिवा लावें। जहाँगीर से वचन लेकर ये इन लोगों को उसके पास लिवा गए। (इलि० डा०, भा० ६, पृ० १७२-३)

१ ब्लॉकमैन आईन-अकबरी, पृ० ४१८ में लिखा है कि इसे आठ सदी ४०० सवार का मन्सब मिल चुका था। (बादशाहनामा भा० १, पृ० २६४)

५३—माधोसिंह हाडा

यह राव रतनसिंह के द्वितीय पुत्र थे। शाहजहाँ के राज्यारंभ में इनका पहिले का मन्सब एक हजारी ६०० सवार का बहाल रहा। २रे वर्ष (सं० १६८५ वि०, सन् १६२९ ई०) में खानेजहाँ लोदी का पीछा करने पर, ३रे वर्ष बादशाह से भेंट करने के बाद दक्षिण की सेना में (जो शायस्ता खाँ के अधीन थी) नियत होने पर और इसके अनंतर सैयद मुजफ्फर खाँ के साथ खानेजहाँ लोदी को दंड देने पर (जो दक्षिण से निकलकर मालवा को आ रहा था) नियुक्त हुआ। जब ये लोग उस भगोड़े को ढूँढ़ते हुए उसके पास पहुँच गए, तब वह निरुपाय हो कर घोड़े से उतर पड़ा। युद्ध में माधोसिंह ने (जो सैयद मुजफ्फर खाँ का हरावल था) उसे बरछा मारा[1] जिसके उपलक्ष में इनका मन्सब बढ़कर दो हजारी १००० सवार का हो गया और डंका मिला। जब इसी वर्ष इनके पिता राव रतन की मृत्यु हो गई, तब बादशाह ने इनके मन्सब में पाँच सदी ५०० सवार बढ़ा कर परगना कोटा पैलाव

१. इन्होंने खानेजहाँ को ऐसा बरछा मारा था कि वह कमर से पार कर घुस गया। और लोगों ने पहुँच कर उसे तथा उसके पुत्र अजीज और ऐमाल को मार डाला। (बादशाहनामा भा० १ पृ० ३४८-९)

जागीर में दे दिया[1]। ६ठे वर्ष सुलतान शुजाअ के साथ दक्षिण गए और वहाँ के सूबेदार महाबत खाँ की मृत्यु पर बुरहानपुर के सूबेदार खानेदौराँ के अधीन नियुक्त हुए।

इसी समय (जब दौलताबाद के पास साहू भोंसला ने विद्रोह किया और खानेदौराँ दूसरों के साथ उसे दंड देने की इच्छा से चला तब) इन्हें बुरहानपुर नगर की रक्षा पर छोड़ गया। ७वें वर्ष पूर्वोक्त खाँ के साथ जुझारसिंह बुंदेला को दंड देने के लिये नियुक्त हो कर चाँदा प्रांत में पहुँचने पर एक दिन (जब बहादुर खाँ रुहेला का चाचा नेकनामी से युद्ध कर घायल हो मैदान में गिरा तब) साधोसिंह ने उसकी दाहिनी ओर से धावा कर बहुत से विद्रोहियों को मार डाला और बाकी को हरा दिया। इसके अनन्तर खानेदौराँ के बड़े पुत्र सैयद मुहम्मद के साथ उस विद्रोही झुंड पर (जो अपनी स्त्रियों और बाल-बच्चों को मार रहे थे) धावा कर बहुतों को मार डाला। दरबार पहुँचने पर मन्सब तीन हज़ारी १६०० सवार का हो गया। ९वें वर्ष (सन् १६३५ ई०) में (जब बादशाही सेना बुरहानपुर में पहुँची और साहू भोंसला का दमन करने तथा आदिलखानी राज्य पर अधिकार करने के लिये तीन

---

१ टॉड कृत राजस्थान भा० २, पृ० १३६७-८। शाहजहाँ ने राव रतन के दूसरे पुत्र माधोसिंह को, जिनका सं० १६२१ में जन्म हुआ था, बुरहानपुर के युद्ध में वीरता प्रदर्शित करने के पुरस्कार में कोटा का राज्य दिया था। इनके पाँच पुत्र थे जिनमें से प्रथम पुत्र मुकुन्दसिंह सं० १६८७ वि० में गद्दी पर बैठे।

सेनायें तीन मनुष्यों के आधान भेजी गईं तब) य खानदौरॉ बहादुर के साथ नियुक्त हुए[1] । वहाँ से लौटने पर १०वें वर्ष जब सेवा में पहुँचे तब इनका मन्सब तीन हजारी २००० सवार का हो गया। ११वें वर्ष सुलतान मुहम्मद शुजाअ के साथ काबुल गए। १२वें वर्ष सुलतान मुरादबख्श के साथ (जो काबुल की ओर नियुक्त हुआ था) गए और शाहजादे के लौटने पर १४वें वर्ष में (फिर कृपा होने से) मन्सब बढ़ कर तीन हजारी २५०० सवार का मिला। १६वें वर्ष ५०० सवार और बढ़े। १८वें वर्ष काबुल के सूबेदार अमीरुलउमरा के सहायतार्थ (जो बदख्शाँ विजय करने को नियुक्त हुआ था) भेजे गए। फिर सुलतान मुरादबख्श के साथ बलख गए और (जब पूर्वोक्त शाहजादे ने उस प्रांत को छोड़ दिया और उनके स्थान पर सुलतान मुहम्मद औरंगजेब नियत हुए तब) ये अपनी कार्य-दक्षता के कारण बलख दुर्ग की रक्षा पर नियुक्त किए गए। जब पूर्वोक्त शाहजादा पिता के आज्ञानुसार उस प्रांत को वहाँ के अध्यक्ष नजर मुहम्मद खाँ को लौटा कर चले गए तब (काबुल पहुँचने पर) माधोसिंह आज्ञानुसार शाहजादे से विदा होकर २१वें वर्ष दरबार पहुँचे और वहाँ जान की छुट्टी पाई। कुछ दिन बाद सन् १०५० हि० (सन् १६४० ई०) में सांसारिक रंगस्थल से आँखें बंद कर लीं। इनके पुत्र मुकुंद सिंह हाड़ा[2] का वृत्तांत अलग दिया गया है।

---

१ बादशाहनामा भाग २ पृ० ११४ ४० ।
२ ४०वाँ निबंध देखिए।

महाराज मानसिंह

५४–राजा मानसिंह

यह राजा भगवंतदास के पुत्र थे[१]। अपनी बुद्धिमानी, साहस, संबन्ध और उच्च वंश के कारण अकबर के राज्य के स्तम्भों और सरदारों के अग्रणी थे। इनके कार्यों और व्यवहार से इन्हें बादशाह कभी 'फ़र्ज़ंद' (पुत्र) और कभी मिरजा राजा के नाम से पुकारते थे[२]। सन् ९८४ हि० (सन् १५७६ ई०)

---

१. राजा भगवतदास के भाई जगतसिंह के पुत्र थे जिन्होंने स्वयं निस्संतान होने के कारण इन्हें दत्तक ले लिया था। मानसिंह पहले पहल स० १६१६ में अकबर के दरबार में गए थे।

२. यह सन् १५६२ ई० में बादशाह के साथ आगरे आए थे, सन् १५७२ ई० में यह बादशाह के साथ गुजरात की चढ़ाई पर गए। जब बादशाह पाटन से बीस कोस इधर सिरोही से आगे डीसा दुर्ग पहुँचे, तब समाचार मिला कि शेर ख़ाँ फौलादी सपरिवार तथा ससैन्य ईडर जा रहा है। कुँअर मानसिंह उस पर भेजे गए और इन्होंने उसे परास्त कर भगा दिया (इलि० डा३०, जि० ५, पृ० ३४२)। इसके अनन्तर सरनाल युद्ध में तथा गुजरात-विजय में योग दिया। इसके दो वर्ष अनंतर सन् १५७५ ई० में डूँगरपुर तथा आस पास के राजाओं का दमन करने के लिये भेजे गए जिनके अधीनता स्वीकार कर लेने पर ये उदयपुर के मार्ग से लौटे। यहाँ महाराणा प्रतापसिंह से इन्होंने अपने को अपमानित किया गया समझा था (अकबरनामा, इलि० डा८०, जि०१६, पृ० ५२)। इसी के अनंतर अकबर बादशाह ने महाराणा पर इसका बदला लेने के लिये चढ़ाई की थी।

के अंत में यह राणा कीका (महाराणा प्रतापसिंह) को दंड देने पर नियत हुए। सन् ९८५ हि० (सन् १५७७ ई०) के आरंभ में गुलकंद[1] के पास (जिसे चित्तौड़ के अनंतर बनवाया था) घोर युद्ध हुआ। इसमें राजा रामसाह ग्वालियरी पुत्रों के साथ मारा गया। उसी मार-काट में राणा और मानसिंह का सामना होने पर युद्ध हुआ और घायल होने पर राणा भाग गए। राजा मानसिंह ने उनके महलों में उतर कर हाथी रामसाह को (जो उसके प्रसिद्ध हाथियों में से था) दूसरी लूट के साथ दरबार भेजा। परंतु जब उसने उस प्रांत को लूटने की आज्ञा नहीं दी, तब बादशाह ने इन्हें राजधानी में बुलाकर दरबार आने की मनाही कर दी।

जब राजा भगवंतदास पंजाब के सूबेदार नियत हुए, तब सिंध के पार सीमांत प्रांत का शासन कुँअर मानसिंह को दिया गया। जब ३०वें वर्ष सन् ९९३ हि० में अकबर के सौतेले भाई मिरजा मुहम्मद हकीम की (जो काबुल का शासनकर्ता था) मृत्यु हो गई तब इन्होंने आज्ञानुसार फुर्ती से काबुल पहुँच कर वहाँ के निवासियों को शांति दी और उसके पुत्र मिरजा अफ्रासियाब और मिरजा कैकुबाद को उस राज्य के बुरे भले अन्य सरदारों के साथ

---

१ गोगूँदा नाम था। इस युद्ध का विस्तृत वर्णन बदायूनी ने अपने ग्रंथ मुंतखबुत्तवारीख में दिया है। यह स्वयं इस युद्ध में सम्मिलित था। (अल भा २ पृ १०-७)

लेकर वे दरबार आए। अकबर ने सिंध नदी तक ठहर कर कुअर मानसिंह को काबुल का शासनकर्ता नियत किया। इन्होंने बड़ी बहादुरी के साथ रूशानी जातिवालों को (जो लुटेरेपन और विद्रोह से खैबर के रास्ते को रोके हुए थे) पूरा दंड दिया। जब राजा बीरबर स्वाद प्रांत में यूसुफजई के युद्ध मे मारे गए और जैनखाँ कोका और हकीम अबुलफतह दरबार बुला लिए गए तब यह कार्य मानसिंह को सौंपा गया। जब जाबुलिस्तान के शासन पर भगवतदास नियुक्त हुए और सिंध पार होने पर पागल हो गए, तब उस पद पर कुँअर मानसिंह नियत हुए। ३२वें वर्ष में जब यह ज्ञात हुआ (कि कुँअर ठढे देश के कारण घबरा गया है और राजपूत जाति जाबुलिस्तान की प्रजा पर अत्याचार करती हैं, किंतु कुँअर दुःखितों का पक्ष नहीं लेता, तब) उसे वहाँ से बुला कर पूर्व की ओर उसके लिये जागीर नियुक्त की गई। स्वयं रूशा-नियों का दमन करना निश्चित किया। उसी वर्ष (जब बिहार प्रांत में कछवाहों की जागीर नियत हुई तब) कुँअर वहाँ का शासन-कर्त्ता नियत हुआ। ३४ वें वर्ष में इनके पिता की मृत्यु होने पर इन्हें राजा की पदवी और पाँच हजारी मन्सब मिला। जब यह बिहार गए तब पूर्णमल कंधोरिया पर (जो बड़ा घमंड करता था) चढ़ाई करके उसके बहुत से स्थानों पर अधिकार कर लिया। वह नयारस्त दुर्ग में जा बैठा और वहाँ से उसने संधि का प्रस्ताव किया। वहाँ से लौट कर इन्होंने राजा संग्राम पर चढ़ाई की जिसने संधि कर के हाथी और उस ओर की अन्य वस्तुएँ भेंट मे

दी। राजा पटन लौट आया और रणपति बरवा पर चढ़ाई कर वहाँ से बहुत छूट पाई।

जब उस प्रांत के पलवाइयों ने फिर सिर उठाया, तब ३५वें वर्ष में इन्होंने म्यारखंड के रास्ते से उड़ीसा पर चढ़ाई की। इस प्रांत के शासनकर्ता सर्वदा अलग शासन करते थे। इससे कुछ पहिले प्रतापदेव नामक राजा था जिसके पुत्र बीरसिंह देव ने अपने बुरे स्वभाव के कारण पिता का पद लेना चाहा और अवसर मिलने पर उसे विष दे दिया जिससे वह मर गया। तेलिंगाना से आकर मुकुंददेव नामक एक पुरुष इनके यहाँ नौकर हो चुका था। वह इस बुरे काम से घबरा कर पुत्र से बदला लेने की फिक्र में पड़ा। उसने यह प्रकट किया कि मेरी स्त्री तुम्हें देखने आती है। इस प्रकार बहाना कर शस्त्रों से भरी हुई डोलियाँ दुर्ग में जाने लगीं और बहुत सा युद्ध का सामान दो सौ अनुभवी मनुष्यों के साथ दुर्ग में पहुँच गया। वहाँ (कि पिता के कष्ट देनेवाला देर तक नहीं ठहरा) उसका काम जल्दी समाप्त हो गया और उसे सरदारी मिल गई। यह कोई अच्छी बात नहीं है कि पूर्वजों के संचित कोष पर राजा अधिकार कर ले, पर इसने कोष के सत्तर तालों को तोड़ कर जन्म का संचित धन ले लिया। यद्यपि इसने दान बहुत किया, पर आज्ञापालन के रास्ते से हट गया और स्वपूजन में लग गया। सुलेमान किर्रानी ने (जिसका बंगाल पर अधिकार हो गया था) अपने पुत्र बायजीद को म्यारखंड के रास्ते से इस प्रांत पर भेजा और इसप्रकार दर्याँ

उजबेग को (जो अकबर के यहाँ विद्रोह करके इसके पास चला आया था) साथ कर दिया। राजा ने अपने सुख के कारण दो सेनाएँ झपटराय और दुर्गा तेज के अधीन भेजीं। ये दोनो स्वामि-द्रोही शत्रु के सेनाध्यक्षों से मिल कर युद्ध से लौट आए। बड़ी अप्रतिष्ठा हुई। निरुपाय होकर राजा ने शरीर का त्यागना विचार कर बायजीद का सामना किया। उसकी अधीनता में घोर युद्ध हुआ जिसमें राजा और झपटराय मारे गए तथा दुर्गा तेज सरदार हुआ। सुलेमान ने उसको कपट से अपने पास बुलवा कर मरवा डाला और उस प्रांत पर अधिकार कर लिया[१]।

मुनइम खाँ खानखानाँ और खानेजहाँ तुर्कमान की सूबेदारी में उस प्रांत से बहुतेरे सरदार साम्राज्य में चले आए। बंगाल के सरदारों को गड़बड़ी में क़तलू खाँ लोहानी वहाँ प्रबल हो उठा। जब राजा उसी वर्ष उस प्रांत में गया[२] तब कतलू ने उन पर चढ़ाई की। जब बादशाही सेना परास्त हो गई, तब राजा दृढ़ नहीं रह सकते थे। पर क़तलू (जो बीमार था) एकाएक मर गया और उसके प्रधान ईसा ने उसके छोटे पुत्र नसीर खाँ को सरदार बनाकर राजा से संधि कर ली[३]। राजा जगन्नाथ जी का मंदिर उसकी

---

१. यह अंश अकबरनामे (जि० ३, पृ० ६४०) से लिया हुआ है। भिन्नता इतनी ही है कि प्रताप देव के स्थान पर प्रताप राव और वीरसिंह के बदले नरसिंह है। (इलि० डाउ०, जि० ६, पृ० ८८-९)

२. बिहार तथा बंगाल की राजा मानसिंह की सूबेदारी का पूरा वर्णन स्टुअर्ट की 'हिस्ट्री ऑव बंगाल' (पृ० ११४-१२१) में दिया है।

३ अकबरनामा, इलि० डाउ०, जि० ६, पृ० ८५-७।

मूसपषि सहित लकर बिहार लौट गए। यह मंदिर हिंदुओं के प्रसिद्ध तीर्थों में है और परसाराम नगर में समुद्र के पास है। इसमें श्रीकृष्ण जी, उनके भाई और बहिन की चंदन की मूर्तियाँ हैं।

कहते हैं कि इससे चार हजार और कुछ वर्ष पहिले नीलगिरि पर्वत के शासनकर्ता राजा इन्द्रमणि ने किसी महात्मा के कहने पर (कि सृष्टिकर्ता ईश्वर का यह स्थान पसंद आया था) बड़ा नगर बसाया। राजा को एक रात्रि स्वप्न हुआ कि 'उसे एक दिन एक लकड़ी बावन अंगुल लंबी और डेढ़ हाथ चौड़ी मिली है। यह ईश्वर का शरीर है और उस लकड़ी को उसने गृह में सात दिन तक बंद रखा है। इसके अनंतर उसी मंदिर में रख कर उसने उसके पूजन का प्रबंध किया है। जब उसकी निद्रा खुली तब जगन्नाथ जी नाम रखा। कहते हैं कि मुसलमान किरानी के नौकर काला पहाड़ ने जब वहाँ अधिकार किया तब उसने इस लकड़ी को आग में डाल दिया था, पर वह नहीं जली। तब नदी में फेंकवा दिया, पर वह फिर लौट आई। कहते हैं कि इस मूर्ति को छ बार स्नान कराते और नए वस्त्र धारण कराते हैं। पचास साठ ब्राह्मण सेवा में रहते हैं। प्रति वर्ष (जब बड़ा रथ खींचकर उस मूर्ति के सामने लाते हैं तब) बीस सहस्र मनुष्य साथ में रहते हैं। उस रथ में सोलह पहिए लगे हुए हैं। उस पर मूर्तियों को सवार कराते हैं और उपदेश देते हैं कि जो उसे खींचेगा, पाप से छूट हो जायगा। संसार की कठिनाई में देख कर उससे बहुत सी सिद्धाई रखना चाहते हैं।

जब तक कतलू का वकील ईसा जीवित रहा, तब तक उसने राजा के साथ की हुई प्रतिज्ञा की रक्षा की। उसके अनन्तर क़तलू के पुत्रों—ख्वाजा सुलेमान और ख्वाजा उसमान—ने संधि भंग कर विद्रोह आरंभ कर दिया। ३७वें वर्ष राजा ने उनका दमन करने के लिये और उस प्रांत पर अधिकार करने के लिये दृढ़ संकल्प किया। बंगाल का सूबेदार सईद खाँ भी पहुँचा। कड़े युद्धों के अनंतर वे परास्त होकर भागे और राजा रामचंद्र की शरण में (जो उस प्रांत का भारी भूम्याधिकारी था) गए। यद्यपि सईद खाँ बंगाल लौट गया, पर राजा ने पीछा करने से हाथ न उठा कर सारंग गढ़ को (जहाँ उन्होंने शरण ली थी) घेर लिया। निरुपाय होकर उसने राजा से भेंट की। सरकार ख़लीफाबाद में उनके लिये जागीर नियत करके सन् १००० हि० में उड़ीसा प्रांत को साम्राज्य में मिला लिया[1]। ३९वें वर्ष सन् १००२ हि० में (कि सुल्तान ख़ुसरो को पाँच हजारी मन्सब और उड़ीसा जागीर में मिला था) राजा उसका अभिभावक नियुक्त होकर बंगाल और उस प्रांत का शासनकर्त्ता हुआ। राजा ने अपने उपायों और तलवार के बल से भाटी प्रांत और दूसरे भूम्याधिकारियों की बहुत सी भूमि पर अधिकार कर साम्राज्य में मिला लिया। ४०वें वर्ष सन् १००४ हि० में आक महल के पास का स्थान पसंद किया, क्योंकि वहाँ लड़ाई का डर कम था। शेर शाह भी इस स्थान से प्रसन्न रहता था। इसे उस प्रांत की राजधानी नियत कर अकबर

१ अकबरनामा, इलि० डाउ०, जि० ६, पृ० ८६-७।

नगर नाम रखा। इसका नाम राजमहल भी है। ४१वें वर्ष में कूच[1] (जो घोड़ाघाट के उत्तर प्रजा-संपन्न प्रांत है, २०० कोस लंबा और ४० से १०० कोस तक चौड़ा है) के राजा लक्ष्मीनारायण ने अधीनता स्वीकृत कर राजा से भेंट की और अपनी बहिन राजा को ब्याह दी।

४४वें वर्ष सन् १००८ हि० में (जब अकबर दक्षिण को चला, तब सुल्तान सलीम राणा को दंड देने के लिये अजमेर प्रांत पर नियत किया था तब) राजा को बंगाल की सूबेदारी के सहित शाहज़ादे के साथ नियत किया। उस समय ईसा के मरने से (जो वहाँ का बड़ा सरदार था) राजा ने उस प्रांत का शासन सहज समझ कर अपने बड़े पुत्र जगतसिंह को अपना प्रतिनिधि बना कर भेजा। जगतसिंह की मृत्यु रास्ते ही में हो गई। उसके पुत्र महासिंह को (जो अल्पवयस्क था) बंगाल भेजा। ४५वें वर्ष में क़ुतलू के पुत्र ख्वाजा उसमान ने विद्रोह मचाया। राजा के सैनिकों ने सहज समझ कर युद्ध किया, पर परास्त हुए। यद्यपि बंगाल हाथ से नहीं निकल गया, पर उसके बहुत से स्थानों पर वे अधिकृत हो गए। शाहज़ादा सुल्तान सलीम (जो शारीरिक सुख, मद्यपान और बुरे संग-साथ के कारण बहुत दिन अजमेर में ठहर कर उदयपुर चला गया था) कार्य पूर्ण होने के पहले ही स्वयं

[1] कूचबिहार से तात्पर्य है। इसी वर्ष वे घोड़ाघाट के पास अधिक बीमार हो गए थे। अफ़गानों ने आक्रमण किया पर इनके पुत्र हिम्मतसिंह ने उन्हें परास्त कर दिया।

अपने मन से पंजाब चला गया। वहाँ एकाएक बंगाल के विद्रोह का समाचार मिला। राजा मानसिंह को उस ओर बिदा किया और कुछ लोगों के बहकाने से शाहजादा आगरा लेने चला। जब मरिअम मकानी उसे समझाने के लिए जाने को दुर्ग में सवार हुई, तब शाहजादा लज्जा के मारे राजधानी के चार कोस इधर ही से लौट कर नाव पर सवार हो कर प्रयाग चला गया[1]। राजा शाहजादे से अलग होकर बंगाल के विद्रोहियों को दंड देने चला और उसने शेरपुर के पास युद्ध कर शत्रु को पूर्णतया परास्त किया। मीर अब्दुर्रज्जाक मामूरी, जो बंगाल प्रांत का बख्शी था, युद्ध में हथकड़ी-बेड़ी सहित पकड़ा गया। इसके अनंतर (जब उस प्रांत का प्रबंध ठीक हो गया तब) दरबार पहुँचकर राजा मानसिंह सात हज़ारी ७००० सवार का मन्सब (कि उस समय तक कोई भारी सरदार पाँच हज़ारी मन्सब से बढ़कर नहीं था, पर इसके अनंतर मिरज़ा शाहरुख़ और मिरज़ा अज़ीज़ कोका को भी यह पद मिला था) पाकर सम्मानित हुए[2]।

---

१ अकबरनामा में लिखा है कि जब जहाँगीर आगरा होता हुआ इलाहाबाद जा रहा था, तब वह अपनी दादी मरिअम मकानी से नियमानुसार मिलने नहीं गया। इससे दुःखित हो वह मिलने आ रही थी कि यह झट प्रयाग चला गया। (इलि० डा०, जि० ६, पृ० ९९)

२ ४७वें वर्ष में उसमान का विद्रोह शांत किया और ४८वें वर्ष में मघ राजा और कैदराय को परास्त किया। (तकमीले अकबरनामा, इलि० डा०, जि० ६, पृ० १०६, ९, ११)

अकबर की मृत्यु के समय राजा मानसिंह ने सुलतान खुसरो को (जो मसा म पुनराम माना जाता था) गद्दी पर बैठाने के विचार से मिरजा अमीज कोका का साथ दिया था; पर जहाँगीर ने बंगाल की नियुक्ति निश्चित रख और स्वदेश आने की छुट्टी देकर अपनी ओर मिला लिया[1]। जहाँगीर की राजगद्दी होने पर यह अपने शासन पर चले गए, परन्तु उसी वर्ष बंगाल से बदल कर फौजों के साथ रोहतास के विद्रोहियों का दमन करने पर नियत हुए। वहाँ से दरबार पहुँचकर ३रे वर्ष (सं० १६८६ वि० सन् १६३० ई०) में इन्हें इसलिए छुट्टी मिली कि दक्षिण की चढ़ाई का सामान ठीक कर खानखानाँ के सहायतार्थ वहाँ जायँ। ये बहुत वर्षों तक दक्षिण में रहे। वहीं ९वें वर्ष में इनकी मृत्यु हो गई और साठ[2] मनुष्य इनके साथ जले।

राजा ने बंगाल के शासन के समय बहुत ऐश्वर्य्य और सामान सञ्चित किया था। यहाँ तक कि इनके भाट के पास सौ हाथी थे और इनके सभी सैनिक सुसज्जित थे। इनके यहाँ बहुत से विश्वासी सेवक थे जो सभी सरदार थे। कहते हैं कि उस समय (जब दक्षिण का कार्य्य खानेजहाँ लोदी के हाथ में आया तब) पन्द्रह बड़े निशानवाले पाँच हजारी (जैसे नवाब अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ, राजा मानसिंह, मिरजा रुस्तम सफवी, आसफ खाँ

1. विमयप: मसरफेरा इषि दा चि ६ पृ १० १।
2. राजा मानसिंह की पन्द्रह सौ रानियों में से साठ साथ में सती हुई थीं।

जाकर और शरीफ खाँ अमीरुलूउमरा) और चार हज़ारी से सौ तक वाले सत्रह सौ मन्सबदार वहाँ सहायतार्थ सेना में उपस्थित थे। जब बालाघाट में अन्न का यहाँ तक अकाल पड़ा (कि एक रुपये का एक सेर भी अन्न नहीं मिलता था) तब एक दिन राजा ने मजलिस में कहा कि यदि मैं मुसलमान होता तो प्रति दिन एक समय तुम लोगों के साथ भोजन करता। पर मैं वृद्ध हुआ , इसलिये मेरा पान ही लीजिए। सबके पहिले खानेजहाँ ने सलाम कर कहा कि मुझे स्वीकार है। दूसरों ने भी इस बात को मान लिया। उसी दिन से राजा ने ऐसा प्रबंध किया कि प्रत्येक पाँच हज़ारी को एक सौ रुपया और इसी हिसाब से सदी मन्सबवालों तक का दैनिक निश्चित कर प्रति रात्रि को वह रुपया खलीते में रखकर और उस पर उनका नाम लिख कर हर एक के पास भेज देते थे। तीन चार महीने तक (कि यह यात्रा होती रही) एक भी नागा नहीं हुआ। कपवालों को रसद पहुँचने तक आमेर के भाव में बराबर अन्न देते रहे। कहते हैं कि राजा की विवाहिता स्त्री रानी कुँअर (जो बड़ी बुद्धिमती थी) देश से सब प्रबन्ध करके भेजती थी। राजा ने यात्रा में मुसलमानों के लिये कपड़े के स्नानागार और मसजिदें खड़ी कराई थीं और उनमें नियुक्त मनुष्यों को एक समय भोजन देते थे।

कहते हैं कि एक दिन एक सैयद एक ब्राह्मण से तर्क करने लगा कि हिंदू धर्म से इस्लाम बढ़कर है। इन दोनों ने राजा को पंच माना। राजा ने कहा कि ' यदि इस्लाम को बड़ा कहता

हूँ तो कहोगे कि बादशाह की चापलूसी है; और यदि इसके ऐसा कहता हूँ तो पक्षपात कहलाएगा।' जब उन लोगों ने हठ किया तब राजा ने कहा कि मुझे ज्ञान नहीं है, पर हिंदू धर्म (जो बहुत दिनों से चला आता है) के महात्मा को मरने पर जला देते हैं और हवा में उड़ा देते हैं, और रात्रि में यदि कोई वहाँ जाता है तो भूत का डर होता है। परन्तु हर एक गाँव और नगर के पास मुसलमान पीरों की क़ब्रें हैं जहाँ मनौती होती है और अमघट लगता है।

कहते हैं कि बंगाल जाते समय मुँगेर में शाह दौलत (नामक एक फकीर जो उस समय वहाँ रहता था) से भेंट की। शाह ने कहा कि इतनी बुद्धि और समझ रहने पर भी मुसलमान क्यों नहीं हुआ? राजा ने कहा कि कुरान में लिखा है कि ईश्वर की मुहर प्रत्येक हृदय पर है। यदि आपकी कृपा से अभाग्य का ताला मेरे हृदय से खुल जाय तो मत मुसलमान हो जाऊँ। एक महीने तक इसी आशा में वहाँ ठहरा रहा; पर भाग्य में इस्लाम ही नहीं लिखा था, इससे कोई लाभ नहीं हुआ।

शेर

फकीरों की कृपा से मुरझाए हुए हृदयों को क्या मिल सकता है? जैसे कीमिया के कारण ताँबा व्यर्थ ही नष्ट होता है।

कहते हैं कि राजा मानसिंह की पन्द्रह सौ रानियाँ थीं और प्रत्येक से दो तीन पुत्र हुए थे परन्तु सब पिता के सामने ही मर

गए। केवल एक भाऊसिंह[१] था; वह भी पिता के कुछ दिन अनंतर मद्यपान के कारण मर गया। उसका वृत्तांत अलग दिया गया है।

---

१ इनके वृत्तांत के लिए ३८ वाँ निबंध देखिए जिसका शीर्षक 'मिरज़ा राजा बहादुरसिंह कछवाहा' है। तुज़ुके जहाँगीरी, पृ० १३० में भी इनका उल्लेख है।

५५–मालोजी[1] और पर्सोजी

ये दोनों खिलाजी[2] के भाई थे (जो निज़ामशाही सरदारों में से था)। शाहजहाँ के राज्य के पहले वर्ष में ये भाग्य की जागृति के कारण बादशाही सेवा में भरती होने की इच्छा से महाबत खाँ खानखानाँ के पुत्र खानज़माँ के पास पहुँचे (जो पिता के प्रतिनिधि स्वरूप होकर बरार और खानदेश से कुल दक्षिण पर हुकूमत करता था)। दरबार से पाँच हजारी ५००० सवार के मन्सब का फरमान, खिलअत, जड़ाऊ जमधर, झंडा, डंका, सुनहला जीनदार घोड़ा और हाथी भेजा गया तथा दक्षिण के नियुक्त अफसरों में नियत होकर बादशाही कार्य में प्रयत्नशील हुआ। आरम्भ ही में दौलताबाद दुर्ग पर अधिकार करने में खानज़माँ के साथ बहुत प्रयत्न किया था और शत्रु पर दो बार धावा कर राजभक्ति दिखलाई थी।

सब वीरों के सम्मिलित प्रयत्नों से जब इस दुर्ग के (जो निज़ामशाहियों की राजधानी थी) विजय होने का समय प्रति दिन निकट आने लगा, तब खिलोजी को इस शंका से (कि दुर्ग

१ पाठ मालो भी।

२ पाठ खिलो भी।

दौलताबाद पर अधिकार हो जाने से निज़ामशाही राज्य पर चोट पहुँचेगा) याकूत खाँ हब्शी की तरफ भाग गए और आदिलशाही नौकरों से मिलकर एक रात बादशाही सेना पर धावा कर दिया; पर सिवा लज्जा और हानि के कुछ हाथ न लगा। कहते हैं कि उसकी स्त्री गंगा-स्नान के लिये आने पर पकड़ी गई। महाबत खाँ ने उसे प्रतिष्ठापूर्वक रख कर खिलोजी से कहलाया कि 'स्त्री के लिये धन निछावर है। यदि एक लाख हूण दो तो उसे प्रतिष्ठा के साथ तुम्हारे पास भेज दें।' उसने निरुपाय होकर धन भेजा, तब महाबत खाँ ने उसकी स्त्री को बड़ी इज्जत से विदा कर दिया। इसके अनन्तर (जब आदिलशाह ने बादशाही हुक्मों को शांति से सुना और मित्रता तथा राजभक्ति की संधि कर ली तब) खील्लू जी को अपने यहाँ से निकाल दिया। इसके बाद वह बहुत दिनों तक बादशाही राज्य में लूट मार कर जीवन व्यतीत करता रहा। शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर ने १६वें वर्ष में अपनी दक्षिण की सूबेदारी के पहले ही वर्ष में उसको पकड़ कर मरवा डाला।

उसके छोटे भाई मालोजी और पर्सोजी दोनों ही निजामशाही राज्य में वीरता तथा साहस के लिये प्रसिद्ध थे। उस समय (जब खील्लूजी बादशाही नौकरी छोड़कर आदिलशाहियों के यहाँ गया था तब) ये बुद्धिमत्ता तथा भाग्य से उसके साथी नहीं हुए और महाबत खाँ खानखानाँ के पास आकर सेवा करने की प्रतिज्ञा की। महाबत खाँ ने उन लोगों का हर प्रकार से स्वागत

किया। पहले को पाँच हजारी ५००० सवार का और दूसरे को तीन हजारी २००० सवार का मन्सब दिलवाया। इस प्रकार शाही सेवा में आने से झण्डा और डंका मिलने पर ऐश्वर्य तथा सेना खूब बढ़ाई। दोनों अपनी बुद्धि और चतुराई से दक्षिण के सभी सूबेदारों को प्रसन्न कर उनके कृपा-पात्र बने रहे। मालोजी की योग्यता और शील से शाहजी नहीं थे और मित्रता का निर्वाह भी करते थे, इससे (कुल दक्षिणियों में इनके अधिक प्रबल होने पर भी) वे सब इनसे मित्रता रखते थे।

११वें वर्ष (जब शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब ने बगलाना प्रांत विजय करने की इच्छा की तब) इनको तीन हजार वार शाही सेना के सहित मुहम्मद ताहिर वजीर खाँ के साथ (जो औरंगजेब के विश्वसनीय सेवकों में से था) उस प्रांत पर भेजा। मालोजी बड़ी चतुरता से उस कार्य को निपटा कर सफलता सहित लौट आए। इसके अनंतर दक्षिण के सूबेदारों के साथ आवश्यकता पड़ने पर अच्छा कार्य करते थे। मुरादबख्श की अध्यक्षता के समय (जब शाहनवाज खाँ सफवी देवगढ़ पर सेना ले गया तब) ये दोनों दक्षिणी सरदारों के प्रधान थे। २९वें वर्ष में शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब ने बरार के नाजिम मिरजा खाँ को *तेलिंगाना* के सूबेदार हादीदाद के साथ देवगढ़ की पेशगी वसूल करने के लिये (क्योंकि वहाँ का जमींदार बहाने कर रहा था) नियुक्त किया और मालोजी को दक्षिण के सरदारों सहित साथ भेजा। वहाँ का काम निपटा कर ३०वें वर्ष इसने स्वयं शाह

ज़ादे के पास पहुँच कर (जो गोलकुंडा के घेरे में लगा हुआ था) अच्छा प्रयत्न किया। उसी समय किसी कारणवश शाहज़ादा उन दोनों भाइयों से बिगड़ गया। इस का कारण यह है कि (उस समय बादशाह ने शाहज़ादा को आदिलशाह बीजापुरी को दंड देने पर नियुक्त किया था और सहायतार्थ प्रबल सेना भी नियत हुई थी पर) ये दोनो भाई बादशाह के आज्ञानुसार दक्षिण से दिल्ली दरबार चले गए और उसी समय एरिज, भाडेर तथा आसपास के कुछ परगने उन्हें जागीर में मिले। (जब महाराज जसवंतसिंह वीर सेना के साथ मालवा में नियुक्त हुए तब) ये भी सहायतार्थ नियुक्त होकर उज्जैन के युद्ध में सामान की रक्षा पर (जो युद्धस्थल के पास ही था) रखे गए। ठीक युद्ध में मुराद-बख्श ने (जो औरंगजेब की सेना के दाहिने भाग में था) धावा करके सामान नष्ट कर दिया। मालोजी और पर्सो जी युद्ध का साहस न कर सके और ऐसा भागे कि आगरे पहुँचने तक बाग न खींची। दारा शिकोह के युद्ध में उसके पुत्र सिपेहर शिकोह के साथ बाएँ भाग में नियुक्त हुए। विजय के अनंतर औरंगजेब की सेवा में पहुँच कर कृपापात्र हुए।

(औरंगजेब का पहले ही से उन लोगों के साथ मनो-मालिन्य था इससे) ३रे वर्ष दोनों को मन्सब से हटा कर पुरानी सेवाओं के विचार से (कि उन लोगों ने सारी उम्र दरबार की सेवा में व्यतीत कर दी थी) पहले के लिये तीस हजार रुपया तथा दूसरे के लिये बीस हजार रुपया वार्षिक नियत कर दिया।

मालोजी ८०वें वर्ष सन् १०७२ हि० (सं० १७१९ वि०, सन् १६६२ ई०) में मरे। दोनों ने औरंगाबाद में पुरे बसाए थे, जिनसे उनका नाम अभी तक चलता है। मालोजीपुरा नगर के बाहर है और परसोजीपुरा दुर्ग में है। कहते हैं कि परसोजी मुगलियों का सा खान-पान रखते थे। बरार के पास चलगाँव की जमींदारी अस्सी हजार रुपए की खरीदी थी।

—

५६—राय मुकुंद नारनौली

यह माथुर कायस्थ था। आरंभ में जब आसफ खाँ यमीनुद्दौला छोटे मन्सब (दो सदी ५ सवार) पर था, तब यह दो तीन रुपए मासिक पर उसके यहाँ नौकर हुआ। स्वामी की उन्नति के साथ साथ यह भी बढ़ता गया और परिश्रमी तथा बुद्धिमान होने के कारण कुछ समय बीतने पर उस भारी सरदार का दीवान हो गया। बड़े साहसवाला मनुष्य था और दूसरों का उपकार करने में भी एक ही था। लोग दोबारा इसका जाली सिफारिशी-पत्र बनाकर सफलता प्राप्त कर लेते थे। जब ऐसा पत्र इस तक पहुँचता तो कह देता कि मेरा लिखा है। कायस्थों में ऐसे कम रहे होंगे जिन्हें इसके कारण जीविका न मिली हो और जो प्रसिद्ध न हुए हों। बहुत रुपया नारनौल (जो इसका वासस्थान था) भेज कर वहाँ बड़ी इमारतें बनवाईं और वहाँ जाकर घूमने की इच्छा भी रखता था। आसफ खाँ की मृत्यु पर शाहजहाँ ने प्रसन्न होकर इसे सरकारी जागीरों का दीवान बनाया। भाग्य उन्नति पर था, इससे दीवाने-तन अर्थात् खालसा का दीवान नियत हुआ।

इसी के देशवाले शत्रुओं ने दरबार में जानेवालों के द्वारा बादशाह से कहलाया कि राय मुकुंद ने नारनौल में अपने

गृहों की नींव में चालीस लाख रुपए गाड़ रखे हैं। इस बात को सत्य मान कर इसके गृहों को खोदने के लिए मनुष्य नियत हुए पर इस खुदाई पर भी (कि ऊँचे नीचे हो गए) एक पैसा नहीं मिला। अब झूठ बोलनेवालों को पादशाह के सामने पकड़ कर लाए तब उन लोगों ने अपना झूठ स्वीकार कर लिया और कहा कि 'य पड़ोसी थे और हमारी भूमि इन्होंने बलात् छीन ली थी; इसलिये इस प्रकार बदला लिया है। अब हम लोगों के योग्य जो दंड हो, दिया जाय।' शाहजहाँ ने उन्हें क्षमा कर दिया। राय मुकुन्द ने बहुत दिनों तक खालसा की दीवानी का कार्य किया और प्रतिष्ठा के साथ अपना जीवन व्यतीत किया।

५७–मुकुंदसिंह हाड़ा

यह माधोसिंह का पुत्र था। पिता की मृत्यु पर शाहजहाँ के २१वें वर्ष (सं० १७०४ वि०, सन् १६४७ ई०) में दरबार आकर यह दो हजारी, १५०० सवार का मन्सब तथा पिता की जागीर पाकर सम्मानित हुआ। फिर ५०० सवार की तरक्की हुई। २२वें वर्ष में सुलतान मुहम्मद औरंगजेब के साथ कंधार की सहायता पर (जिसे कजिलबाशों ने घेर लिया था) नियुक्त हुआ। वहाँ से लौटने पर २४वें वर्ष में पाँच सदी मन्सब बढ़ा तथा झंडा और डंका प्राप्त हुआ। उसी वर्ष सुलतान मुहम्मद औरंगजेब के साथ द्वितीय बार कंधार गया। २६वें वर्ष सुलतान दारा शिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर फिर गया। वहाँ से लौटने पर इसका मन्सब बढ़कर तीन हजारी २००० सवार का हो गया। २८ वें वर्ष में सादुल्ला खाँ के साथ चित्तौड़ दुर्ग की चढ़ाई पर नियत हुआ। ३१वें वर्ष में महाराज जसवंतसिंह के साथ (जो सुलतान मुहम्मद औरंगजेब को रोकने के लिये मालवा में नियुक्त हुए थे) नियत किए गए। युद्ध मे अपने भाई मोहनसिंह हाड़ा के साथ शत्रु के तोपखाने और हरावल को पार कर शाहजादे के सामने पहुँच कर साहस दिखलाया और युद्ध के गुत्थमगुत्थे में रुस्तम का सा वीरत्व प्रकट किया। अंत मे मान पर प्राण निछावर कर दिया।

दोनों[1] भाई सन् १०६८ हि० (सन् १६५६ ई०) में वीरगति को प्राप्त हुए। मुकुंदसिंह के पुत्र जगतसिंह आलमगीर के समय में दो हजारी मन्सब और पैतृक जागीर पाकर बहुत दिन दक्षिण में नियुक्त रहे। २८वें वर्ष में इनकी मृत्यु हुई[2]। इनके स्थान की सरदारी किशोरसिंह को मिली (जिनका वृत्तांत रामसिंह हाड़ा के वृत्तांत में लिखा गया है[3])।

---

१ मुकुन्दसिंह मोहनसिंह, जुझारसिंह कनीराम तथा किशोरसिंह पाँचों भाई इस युद्ध में साथ ही थे। प्रथम चार मारे गए और अंतिम किशोरसिंह बहुत घायल होने पर भी बच गए।

२. टॉड साहब ने सं० १७११ वि० सन् १६६६ ई० में मृत्यु होना लिखा है।

३ जगतसिंह की मृत्यु पर कनीराम का पुत्र प्रेमसिंह गद्दी पर बैठा। पर वह ऐसा अयोग्य था कि अंत में सरदारों ने उसे हटा कर किशोरसिंह ही को गद्दी पर बैठाया। इन्हीं के द्वितीय पुत्र रामसिंह थे, जिनका वृत्तांत ६६वें निबंध में देखिए। (टॉड कृत राजस्थान भा० २ पृ० १४६६)

५८—राजा मुहकमसिंह

यह जाति का खत्री था। अमीरुल्उमरा हुसेन अली खाँ के समय नौकर होकर उसका विश्वासपात्र हो जाने से अच्छे पद पर पहुँच गया। धीरे धीरे उसकी दीवानी के पद तक पहुँच कर सेना का अफ़सर हुआ। दाऊद खाँ के युद्ध मे (जो ११२७ हि० में हुआ था) यह हाथी-सवारों मे था। औरंगाबाद पहुँचने पर (जहाँ खदूदू दिहारिया[1], जो खानदेश का एक रईस और राजा साहू के साथियो मे से था, विद्रोह मचाए हुए था) हुसेन अली खाँ का बख्शी जुल्फ़िक़ार बेग (जो उसे दमन करने को नियुक्त हुआ था) मारा गया। हुसेन अली खाँ ने पूर्वोक्त राजा को अच्छी सेना के साथ उस कार्य पर नियत किया और अपने भाई

---

१ ग्राट डफ ने इसका नाम खंडेराव धावरे लिखा है, पर ठीक शुद्ध धावदे है। फारसी लिपि में धावदे को दिहापरे, दिहायरे आदि कई प्रकार से पढ़ सकते हैं। राजा साहू भोंसला का यह प्रसिद्ध सेनाध्यक्ष था और उसकी ओर से खानदेश सूबे में चौथ की तहसील के लिये नियुक्त था। इसके कुछ उपद्रव मचाने पर जुल्फिकार बेग दस सहस्र सेना के साथ भेजा गया, पर वह कुल सेना के साथ मारा गया। इसके अनंतर मुहकमसिंह तथा सैफ अली खाँ भेजे गए जिन्होंने उसे परास्त किया। (ख़फ़ी ख़ाँ, भा० २, पृ० ७७७–६)

सैफुद्दीन अली खाँ को (जो बुरहानपुर का सूबेदार था) लिखा कि पूर्वोक्त राजा के साथ मिल कर अब्दुल् विहारिया का दमन करें। खानदेश में यद्यपि उस ओर से इच्छानुसार लूट मच चुकी थी, पर मुहकमसिंह ने मरहठों की सेना को (जो अहमदनगर के आस पास लूट मचा रही थी) युद्ध में परास्त कर सितारा दुर्ग (जो राजा साहू का वासस्थान था) तक पहुँचा दिया। इसके अनन्तर हुसेन अली खाँ के साथ राजधानी आया और खाँ के मारे जाने पर हैदरकुली खाँ इसको प्राणरक्षा और प्रतिष्ठा का संदेश देकर बादशाह के पास ले गया[1]। क्षमा किए जाने पर इसने भी हजारी ६००० सवार का मन्सब पाया और फिर इसका सात हजारी मन्सब हो गया। रात्रि में (जिसके दूसरे दिन बादशाही और कुतुबुलमुल्क की सेनाओं में युद्ध हुआ) राजा मुहकमसिंह, जो कुतुबुलमुल्क से पहले ही से लिखा-पढ़ी रखता था, बिजयी सेना का साथ छोड़ कर कुतुबुलमुल्क के यहाँ चला गया। दिन भर युद्ध होता रहा। जब रात्रि के अंधकार ने सूर्य को ढँक लिया, तब रात भर बादशाही तोपों ने गोले बरसाए जिनमें से एक इसकी सवारी के हाथी के हौदे तक पहुँचा[2]। घोड़े पर सवार होकर

---

१. खफी खाँ भाग २, पृ ६१-२ में इस युद्ध का वर्णन है।

२. खफी खाँ भा २ पृ ९२१-४ में लिखा है कि १० मुहर्रम सन् ११३३ हि की रात्रि को मुहकमसिंह मुरादाद खाँ और ख्वाजा मिरजा कुछ सात सौ सैनिकों के साथ सैयद अब्दुल्ला की ओर चले गए। सबेरे के समय एक गोला मुहकमसिंह के हौदे में लगा जिससे वह कूद कर घोड़े

५१--राजा रघुनाथ

यह सादुल्ला खाँ की सहायता से उन्नति करनेवाले लोगों में से था। शाहजहाँ के २३वें वर्ष के अंत में इसने राय की पदवी और सोने का कलमदान पाया और २६वें वर्ष में योग्य मन्सब भी मिला। उसी वर्ष खालसा और बादशाही दफ्तर की अध्यक्षता पाकर यह सम्मानित हुआ। २५वें वर्ष तक मन्सब बढ़कर एक हजारी २०० सवार का हो गया। ३०वें वर्ष सादुल्ला खाँ की मृत्यु पर खिलअत, मन्सब में २०० सवार की तरक्की और रायरायान की पदवी मिली और यह निश्चित हुआ कि प्रधान मंत्री की नियुक्ति तक यही दीवानी की कुल कार्रवाइयाँ बादशाह तक पहुँचाया करे। भाग्य की लगनी चल चुकी थी (अर्थात् राजकार्य औरंगजेब के अधिकार में आ चुका था) इसलिये यह दारा शिकोह के प्रथम युद्ध के अनंतर लेखकों सहित बादशाही सेवा में पहुँचा। खुजाअ के युद्ध में और दारा शिकोह के दूसरे युद्ध में यह सेना के मध्य में था। दूसरी राजगद्दी के समय मन्सब बढ़ कर ढाई हजारी ५० सवार का हो गया और राजा की पदवी मिली। अपने काम दृढ़ता से करता रहा। ६ठे वर्ष आलमगीरी सन् १०७३ हि० (सन् १६६२ ई०) में मर गया।

६०—राव रत्न हाड़ा

यह राव भोज हाड़ा का पुत्र था। किसी अपराध[१] से (जो इसके पिता ने किया था) यह कुछ दिन जहाँगीर के कोप में रहा। ३रे वर्ष (स० १६६५ वि०, सन् १६०८ ई०) मे दरबार मे आकर बादशाह का कृपापात्र हुआ और सरबुलद राय की पदवी पाई। ८वें वर्ष सुलतान खुर्रम के साथ राणा अमरसिंह की चढ़ाई पर नियत हुआ। १०वें वर्ष दक्षिण की चढ़ाई में इसकी नियुक्ति हुई और इसका मन्सब भी योग्यतानुसार बढ़ाया गया। इसके अनन्तर १८वें वर्ष में (जब जहाँगीर लोगों के बहकाने से अपने योग्य पुत्र शाहजहाँ से बिगड़ गया और युद्ध का प्रबध हुआ तथा शाहजादा माँडू से कूच कर नर्मदा पार उतरा और सुलतान पर्वेज महाबत खाँ की अभिभावकता में पीछा करने पर नियत हुआ तब) यह भी उसी चढ़ाई में नियत हुआ। जब नर्मदा नदी उतरने पर शाहजहाँ तेलिंगाना की सीमा से बगाल की ओर गया और पिता के आज्ञानुसार सुलतान पर्वेज बिहार को चला, तब

---

१. राव भोज के वृत्तात में लिखा गया है कि किस प्रकार इसने राजा मानसिंह की पुत्री का जहाँगीर से विवाह होने के प्रस्ताव पर अपनी अस्वीकृति दी थी, जो इसकी नतिनी थी। इसी कारण यह जहाँगीर का कोप-भाजन रहा।

महाबत खाँ इसे १९वें वर्ष में बुरहानपुर के रक्षार्थ छोड़ गया। जब शाहजहाँ का बंगाल से दक्षिण को लौटने का समाचार फैलने लगा, तब इसने नगर से निकल कर युद्ध करने का विचार किया। इस समाचार के मिलने पर जहाँगीर ने आज्ञापत्र भेजा कि सहायता पहुँचने तक नगर की रक्षा करो और युद्ध के लिये कभी बाहर न निकलो। २०वें वर्ष जब शाहजहाँ बालाघाट बरार के पास देवलगाँव से अम्बर की सेना सहित याकूब खाँ हबशी को साथ लेकर बुरहानपुर के पास पहुँचा तब लालबाग में सेना उतारी। एक ओर से अब्दुल्ला खाँ बहादुर को और दूसरी ओर से मुहम्मद तकी चाँदीसाज, प्रसिद्ध नाम शाह कुली खाँ, को नगर घेर कर धावा करने को आज्ञा हुई। शाहकुली खाँ चार सौ मनुष्यों के साथ नगर में चला आया और कोतवाली के चौतरे पर बैठकर ढिंढोरा पिटवाया कि शाहजहाँ का अधिकार है। सर बुलंदराय दूसरी ओर के मोर्चों पर था। उसने अपने पुत्र को भेजा, पर वह युद्ध कर परास्त हुआ। राव अकस्मात हाथी को भगाकर चौक में युद्ध करने के लिये पहुँचा और अच्छी वीरता दिखलाई। मुहम्मद तकी (जो सहायता से निराश हो गया था) दुर्ग में चला गया और प्रतिज्ञा कराकर उससे भेंट की[1]। कहते हैं कि राव उस युद्ध के समय यह शब्द जिह्वा पर रखता—"मैं"।

---

1 मुहम्मद हाजी कृत तत्मए वाकआते जहाँगीरी, इलि डा० भा० ६ पृ० ३९१। इसमें यह घटना २२वें वर्ष में सन् १६२७ में हुई

जब सुलतान पर्वेज भारी सेना के साथ (जो बादशाह के आज्ञानुसार इलाहाबाद से दक्षिण को गया था और इसी समय बादशाह को कड़ी बीमारी भी हो गई थी) कूच करके बालाघाट के रोहनखोरा[1] में पहुँचा, तब सरबुलंद राय को पाँच हजारी ५००० सवार का मन्सब और राम राजा की पदवी (जो दक्षिण में सब पदवियों से बढ कर मानी जाती है) दी[2]। शाहजहाँ के बादशाह होने पर उसके जलूस के प्रथम वर्ष में अपने देश बूँदी

लिखी गई है। उसमें याकूतखाँ हबशी का नाम याकूब खाँ लिखा है। यह भी लिखा है कि शाहजहाँ ने स्वयं तीन बार धावे किए, पर तीनों बार परास्त हुआ। इक़बालनामा में यूसुफ हबशी लिखा है।

१. रोहनगढ़ नाम है। यहीं पहुँच कर शाहजहाँ ने अपने पिता से क्षमा माँगी थी। इक़बालनामा में तथा इस ग्रन्थ में भी इसका उल्लेख नहीं है, पर 'ततम.' में दिया है। (इलि० डा०, भा० ६, पृ० ४१८) इक़बालनामा में यह घटना बीसवें व[illegible] [illegible] में होना लिखा है, जो १० मार्च सन् १६२४ से आरंभ होता है। सन् [illegible]नों ही का ठीक है, केवल जलूस के सन की संख्या में भेद है। इसका कारण है। अकबर की मृत्यु सन् १६०५ ई० के अक्टूबर में हुई थी, इसलिये सन् १६२४ ई० की घटना २०वें वर्ष की हुई। पर जहाँगीर इलाही सन् के अनुसार १ फरवरदीन से जुलूस का आरम्भ मानता था, इससे उसका प्रथम जलूसी वर्ष ११ मार्च सन् १६०६ से आरंभ हुआ और सन् १६२४ ई० उसका १९वाँ वर्ष हुआ।

२. बीसवें वर्ष में जहाँगीर ने यह समाचार सुनकर स्वयं यह मन्सब और पदवी आदि दी थी। रामराजा ठीक नहीं है, राव राजा होना चाहिए।

स आकर इसने सेवा की और खिलअत, जड़ाऊ जमधर, पाँच हजारी ५००० सवार का पुराना मन्सब, झंडा, डंका, सुनहली जीन सहित घोड़ा और हाथी पाकर सम्मानित हुआ। इसी वर्ष महाबत खाँ खानखानाँ के साथ उजबेगों को दंड देने के लिये (झिन्होंन काबुल के पास गजनवी मचा रखी थी) नियुक्त हुआ। ३२ वें वर्ष यह अपनी अधीनता में कई दूसरे सरदारों के साथ सफदर तलिंगाना की ओर नियत हुआ। आज्ञा पहुँची कि बरार नामक परगने में ठहर कर तेलिंगाना प्रांत पर अधिकार कर लो और आने जाने के रास्तों को विद्रोहियों स साफ कर दो। जब उस प्रांत की चढ़ाई नसीरी खाँ के प्रार्थनानुसार उसी के नाम निश्चित हुई तब यह आज्ञा आने पर दरबार चला गया। इसके अनंतर (जब दक्षिण की सेना का अध्यक्ष यमीनुद्दौला आसफ खाँ हुआ तब) राव पूर्वोक्त खाँ के साथ नियुक्त हुआ। ४वें वर्ष सन् १ ४० हि० में बालाघाट के पड़ाव पर इसकी मृत्यु हो गई। सत्तर साल (जो इसका पौत्र और उत्तराधिकारी था) और दूसरे पुत्र माधोसिंह पर बादशाह ने बहुत कृपाएँ कीं। हर एक का वृत्तांत अलग अलग[1] दिया गया है।

---

१ ८१ वाँ और ५१ वाँ निबन्ध देखिए।

६१—राजा राजरूप

यह राजा वासू के पुत्र राजा जगतसिंह का पुत्र था। शाहजहाँ के राजत्व के १२वें वर्ष में यह काँगडे के पार्वत्य प्रदेश का फौजदार नियत हुआ। जब इसका पिता विद्रोही हुआ, तब इसने भी पिता का साथ देकर बादशाह के विरुद्ध विद्रोह किया। पिता के दोषों के क्षमा होने पर यह भी उसके साथ सेवा में आया। १९वें वर्ष में पिता की मृत्यु क अनतर डेढ़ हजारी १००० सवार का मन्सब हो गया और राजा को पदवी, अपना देश और घोड़ा पाकर सम्मानित हुआ। चोर्बी दुर्ग (जिसे उसके पिता ने सरेआब और अदरआब के बीच बनवा कर इसे उसके रक्षार्थ उसमे छोड़ आया था) की अध्यक्षता पर नियुक्त रहने पर डेढ़ हजार सवारों और दो हजार पैदलों में से (जो उसके पिता के सहायतार्थ नियत किए गए थे) पाँच सौ सवारों और दो हजार पैदलो का वेतन काबुल के कोष से मिलना निश्चित हुआ। उसी वर्ष यह शाहजादा मुरादबख्श के साथ (जो बलख और बदख्शाँ की चढ़ाई पर नियत हुआ था) नियुक्त होकर कधार पहुँचने पर वहाँ का अध्यक्ष बनाया गया और वहाँ का प्रबध ठीक करने के लिये इसे दो लाख रुपया दिया गया। इसका मन्सब बढ कर दो हजारी १५०० सवार का हुआ और जड़ाऊ जमधर और

मोती की माला पाकर सम्मानित हुआ। उसी समय उज्बगों और अलअमानों का (जो लूट मार की इच्छा से कुछ के साथ इस प्रांत में भाव आते थे) युद्ध कर किला से भगा दिया और पीछा कर बहुतों को मार डाला। २०वें वर्ष में पाँच सौ सवार का मन्सब और बढ़ाकर इस डंका प्रदान किया गया। उसी समय कुलीज खाँ से मिलने का यह कंधार से तालिकान आया और तभी अलअमानों के एक बड़े झुंड ने तालिकान घेर लिया तथा हर एक ओर युद्ध होने लगा। एक दिन (जब वे व्यूह बना कर इसके घेरे की ओर बढ़े थे तब) साहस की अधिकता से इसने धन पर धावा कर दिया। कड़ा युद्ध हुआ। इसके कई मनुष्य मारे गए। स्वयं इसे तीन घाव लगे और अंत में लड़ते भिड़ते अपने को घेरे के भीतर पहुँचाया। इसके अनंतर (घेरनेवाले जब निराश होकर नगर के चारों ओर से चले गए तब) २२वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़कर ढाई हजारी २५०० सवार का हो गया और खलील बेग की बदली पर समरकंद का दुर्गाध्यक्ष हुआ। २५वें वर्ष पाँच सदी बढ़ने पर शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ कंधार की चढ़ाई पर गया, जिसके घेरे में एक मोर्चे का यह अध्यक्ष था। वहाँ से लौटने पर सुलेमान शिकोह के साथ काबुल पर नियुक्त हुआ। २६वें वर्ष में यह शाहजादा दारा शिकोह के साथ फिर कंधार गया और उसके घेरे में इसने कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा। २९वें वर्ष आज्ञानुसार समरकंद से चल कर दरबार आता हुआ मेरा गया।

जब आलमगीर बादशाह से परास्त होकर दारा शिकोह लाहौर चला, तब यह (जो आज्ञा पाने पर युद्ध के पहिले देश से चल चुका था) दिल्ली और लाहौर के बीच उससे मिला और उसकी बातचीत में फँस कर इसने उसका साथ दिया। इसके अनंतर (जब दारा शिकोह ने लाहौर पहुँच कर मुलतान जाने का विचार किया तब) इसने उसकी बुरी हालत से उसका दुर्भाग्य समझ कर इस बहाने से कि देश जाकर सेना का प्रबंध करूँगा, उसका साथ छोड़ दिया। फिर अच्छी नीयत से देश से चल कर व्यास नदी के किनारे खलीलुल्ला खाँ (जो दारा शिकोह का पीछा कर रहा था) के पास पहुँच कर उसके आश्रय से आलमगीर की सेवा में पहुँचा और दरबार से इसका मन्सब साढ़े तीन हजारी ३५०० सवार का हुआ। यह श्रीनगर की सीमा पर (क्योंकि सुलेमान शिकोह इलाहाबाद से चल कर चाहता था कि सहारनपुर के रास्ते से पंजाब की सीमा पर पहुँच कर पिता से जा मिले, परन्तु आलमगीर की सेनाओं के कारण न जा सकने पर उसी पहाड़ी स्थान में जा रहा था) चाँदी[१] मौजे की थानेदारी पर भेजा गया कि उस पर्वत के नीचे प्रबंध के साथ ठहर कर सुलेमान शिकोह को निकलने से रोके। इसके अनंतर दरबार पहुँच कर दारा शिकोह के साथ के दूसरे युद्ध में दाहिनी ओर की हरावली में नियुक्त हुआ। दारा शिकोह के सैनिकों का रक्षास्थान कोकिला पहाड़ी था, इसलिये राजा ने अपने पैदल सिपाहियों को (जो

१ यह श्रीनगर के अन्तर्गत है।

पहाड़ी चढ़ने में कुशल थे) कोकिल्ला पहाड़ी के पीछे से भेजा और उनकी सहायता को स्वयं सवार होकर गया। शत्रु कोई मनुष्यों को हताहत कर निडर हो मोर्चे से निकल आए और युद्ध होने लगा। बादशाही सरदार पीछे पहुँच कर तीन घड़ी तक युद्ध करते रहे। अभी मोर्चा ज्यों का त्यों था कि सुलेमान शिकोह का साहस छूट गया और वह भाग गया। श्रीनगर का राजा पृथ्वीपति सुलेमान शिकोह को अदूरदर्शिता और मूर्खता से अपने राज्य में स्थान देकर उसकी सहायता करने लगा था; इसलिये यह राजा दूसरे वर्ष विजयी सेना के साथ श्रीनगर के पार्वत्य प्रदेश पर नियुक्त हुआ कि यदि पूर्वोक्त भूम्याधिकारी समझाने से न मानकर उसकी सहायता में हठ करे, तो उसके राज्य को लूट कर उस पर अधिकार कर ले। जब उसने मूर्खता और उद्दंडता से नहीं माना, तब सरबिलन्द खाँ और रादअन्दाज खाँ भी नियुक्त होकर उसे कष्ट देने लगे। निरुपाय होकर मिरजा राजा से क्षमा-प्रार्थी हुआ और उस फंदे में फँसे हुए (सुलेमान शिकोह) को निज क्षमा का द्वार बनाया (अर्थात् उसे औरंगज़ेब को सौंप कर क्षमा प्राप्त की)। चौथे वर्ष सैयद शहामत खाँ के स्थान पर गजनी की सीमा का अध्यक्ष हुआ और वहाँ पहुँचने पर उसी वर्ष १०७१ हि० (सं० १७१८ वि०, सन् १६६१ ई०) में मर गया। इसका पिता साहस और वीरता से हीन नहीं था तथा धैर्य और उत्साह से पूर्ण था, इसलिये उसके छोटे भाई मानसिंह का (जिसने अपने पिता के साथ बदख्शाँ की चढ़ाई में वीरता

दिखलाई थी और अपनी अधिक अवस्था हिंदू धर्म ही में बिताई थी, पर तीसरे वर्ष के अंत में औरंगजेब के समझाने से मुसलमान हो गया था) बादशाही कृपापात्र बना कर मुरीद खाँ की पदवी दी। बहुत दिन गोरबंद का चौकीदार रहा। उसकी संतानों में, जो शाहपुर अर्थात भरोयन (जो तारागढ के पश्चिम है) में रहती है, जो राजा होता है, वह मुरीद खाँ कहलाता है।

———

६२—राजा राजसिंह कछवाहा

यह राजा भारामल के भाई आसकरन का पुत्र था। जब राजा भारामल अकबर के कृपापात्र हुए, तब उनके सभी आपसवालों का उनके पदानुसार उसने उन्नति की। राजा आसकरन २२वें वर्ष में सादिक खाँ के साथ राजा मधुकर को दंड देने पर नियुक्त हुआ था। २४वें वर्ष राजा टोडरमल के साथ बिहार में नियत हुआ। ३०वें वर्ष उसे हजारी मन्सब मिला। उसी वर्ष खानेआज़म कोका के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर नियत हुआ। जब ३१वें वर्ष बादशाह ने प्रत्येक प्रांत में दो सरदार नियुक्त किए, तब आगरा प्रांत में यह और इब्राहीम खाँ नियत हुए। ३३वें वर्ष शहाबुद्दीन अहमद खाँ के साथ राजा मधुकर को दंड देने गया और लौटते समय इसकी मृत्यु हो गई[1]। राजसिंह राजा की पदवी और योग्य मन्सब पाकर बहुत दिन दक्षिण की चढ़ाई में नियत रहा। इसके अनंतर (इनके इच्छानुसार बुलाने का आज्ञापत्र भेजा गया तब यह) ४४वें वर्ष दरबार में आए और उसके बाद ग्वालियर के दुर्गाध्यक्ष नियत हुए। ४५वें वर्ष में (जब बादशाह आसीरगढ़ घेरे हुए थे तब) यह बादशाह के पास आए। ४६वें वर्ष में राय

[1] आईन अकबरी में सरदारों की सूची में इसका नाम नहीं दिया है, पर तबकात अकबरी में तीन हजारी मन्सबदारों में नाम है।

रायान पत्रदास के साथ वीरसिंह देव बुँदेला का (जिसने चोरी से रास्ते पर आकर अबुलफ़ज़ल को मार डाला था) पीछा करने पर नियत हुए। बुँदेला जाति का दमन करने में बहुत परिश्रम और प्रयत्न किया था, इससे इनका मन्सब बराबर बढ़ता हुआ ५०वें वर्ष में चार हज़ारी ३००० सवार तक पहुँच गया और डंका भी मिल गया। जहाँगीर के ३रे वर्ष यह दक्षिण भेजे गए। वहीं १०वें वर्ष सन् १०२४ ई० (सन् १६१५ ई०) में इनकी मृत्यु हो गई। इनके पुत्र रामदास को हज़ारी, ४०० का मन्सब मिला। १२वें वर्ष में इन्हें राजा की पदवी भी प्राप्त हो गई। उसी वर्ष के अंत में इनका मन्सब बढ़ कर डेढ़ हज़ारी ७०० सवार का हो गया। इसका एक पौत्र (जिसका नाम परसोतमसिंह था) शाह-जहाँ के समय में मुसल्मान होकर सआदतमन्द[1] कहलाया और खिलअत, घोड़ा और सिक्का पाकर कृपापात्र हुआ।

— —

१ ब्लोकमैन ने 'इबादतमंद' लिखा है। (ब्लौकमैन, आईन-अकबरी, पृ० ४५८)

६२—रामचद्र चौहान

यह जगनसिंह के पुत्र थे। अकबर के समय इन्हें पाँच सदी मन्सब प्राप्त था। १८वें वर्ष म (जब बादशाह मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका के सहायतार्थ गुजरात पर चढ़ाई करने चले तब) यह बादशाह के साथ थे। २६वें वर्ष में सुलतान मुराद के साथ मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम को ठीक करने और ३८वें वर्ष में मालवा के सूबेदार मिर्ज़ा शाहरुख के साथ दक्षिण म नियत हुए। जब दक्षिण की सेना की गड़बड़ी का वृत्तांत और शाहज़ादा सुल्तान मुराद से बिना आज्ञा लिए शाहबाज़ खाँ कम्बू का सेना स मालवा लौट आना[1] सुना गया, तब उसे बादशाह ने बरार में नियत किया। एक लाख अशरफी (जो रास्ते की गड़बड़ी से ग्वालियर दुर्ग में पड़ी हुई थी) सना के सामान के लिये रक्षार्थ साथ ले गए। मालवा की सना का दक्षिण भेजा और यह भी

१ यह सुल्तान मुराद और अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ के साथ अहमदनगर की चढ़ाई पर गया था। बिना आज्ञा पाए इसने अहमदनगर की बस्ती को लूट लिया जिस पर शाहज़ादे ने इस पर क्रोध किया था। खान खाना इसकी सम्मति नहीं सुनता था, इससे चिढ़ कर यह अपनी जागीर पर लौट गया था।

१ आश्टा का प्रसिद्ध युद्ध, जिसमें नवाब अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ ने दक्षिण के तीनों सुलतानों की सम्मिलित सेना को, जो मलिकुद्दौला सुहेल खाँ के अधीन थी, परास्त किया था।

२ यह खानदेश का स्वतंत्र नवाब था और खानखानाँ के साथ सहायतार्थ ससैन्य आया था।

१४—राजा रामचंद्र बघेला

यह भट्टा प्रांत का भूस्वामी और हिन्दुस्थान के बड़े राजाओं में था। बाबर बादशाह ने अपने आत्मचरित्र में (जो तीन बड़े राजे गिनाए हैं उनमें) इन्हीं रामचंद्र[1] को तीसरा रखा है। तानसेन नामक कलावंत (जो गान विद्या का आचार्य था और जिसके समान आवाज़ और सूक्ष्म विचार उसके पहिले किसी में नहीं सुनने में आया था) इसी के दरबार में था। राजा उसका गुणग्राहक और प्रेमी था। जब उसके गुणों की प्रशंसा अकबर ने सुनी, तब ७वें वर्ष में जलाल खाँ राजाध्यक्ष को उसके पास भेज कर तानसेन को बुलवाया। राजा ने विद्रोह करना अपनी शक्ति के बाहर समझ कर इन्हें पूरे साज और सामान के साथ बादशाह के लिये भेंट आदि देकर बिदा किया। जब यह बादशाह के पास पहुँचे तब पहिले दिन दो करोड़ दाम (जो उस समय के दो

---

१. उस समय इनके पिता वीरभानु राजा थे। बाबर भी लिखता है कि खनुआ युद्ध में पराजय होने के अनंतर वीरभानु ने हुमायूँ की सहायता की थी। गुलबदन बेगम ने भी यह उल्लेख किया है। प्रथम पानीपत युद्ध सं. १५८३ वि. में हुआ था और रामचंद्र की आयु सं. १६[illegible]० वि. में हुई थी इससे इनका बाबर के समय राजा होना असंभव है।

लाख रुपये[1] के बराबर होगा) पुरस्कार दिए। इस प्रकार के पुरस्कारों से वह यहीं फँस गया। उसके ग्रथ (जो बहुधा अकबर के नाम पर हैं) आज तक प्रचलित हैं।

८वें वर्ष (कि आसफ खाँ अब्दुल मजीद गढ़ा विजय करने पर नियत हुआ) जब गाजी खाँ तन्नोज राजा रामचद्र की शरण में गया, तब पहिले राजा को लिखा गया कि उसको बादशाह के पास भेज दो ; नहीं तो अपने किए का फल पाओगे। परतु राजा ने युद्ध ही की ठानी। गाजी खाँ के साथ राजपूतों और अफगानो की सेना एकत्र करके युद्ध की तैयारी की। बहुत लड़ाई के अनतर गाजी खाँ मारा गया और राजा परास्त होकर दुर्ग बाधव में (जो उस प्रात के दृढ़तर दुर्गों में से है) जा बैठा। आसफखाँ ने घेरने का विचार किया। इसी समय विश्वासी राजाओं की (जो बादशाही दरबार में थे) मध्यस्थता मे यह निश्चित हुआ कि राजा दरबार मे आकर बादशाही सेवकों में परिगणित हो जायगा। तब उसके प्रात पर अधिकार करने से हाथ खींच लिया गया।

१४वें वर्ष जब सरदारों ने दुर्ग कालिंजर (जिसे राजा रामचद्र ने अफगानो के समय में पहाड़ खाँ के शिष्य-पुत्र बिजली खाँ स बहुत धन देकर ले लिया था और वह उसी समय से उस पर अधिकृत था) घेर लिया और दुर्गवाले कष्ट पाने लगे, तब राजा

---

१. अकबर के समय ४० दाम का एक रुपया होता था, जिस हिसाब से दो करोड़ दाम पाँच रुपए लाख के बराबर होता है।

बिना दुर्ग दिए संधि का कोई उपाय न देख कर दुर्ग के बाहर निकला और उसकी कुंजी योग्य भेंट के साथ अपने आदमियों के हाथ दरबार में भेजी। बादशाह ने उन पर कृपाएँ कीं और लौटने की आज्ञा भेज दी। यद्यपि राजा ने अपने पुत्र वीरभद्र को दरबार भेज कर आज्ञा पालन करना स्वीकार कर लिया था, पर वह स्वयं नहीं आया; इससे २८वें वर्ष में (जब बादशाही सेना इलाहाबाद में भी जमी) बादशाह ने इस पर सेना नियत करना चाहा। इसके पुत्र ने दरबारियों के द्वारा कहलाया कि यदि कोई सरदार उन्हें लाने के लिये नियत हो तो वह आपके विश्वास दिलाने पर दरबार अवश्य आवेंगे। तब बादशाह ने जैनखाँ कोका और राजा बीरबर को उसे लाने के लिये नियुक्त किया। वह दरबार में आया और उसे १०१ घोड़े पुरस्कार में मिले।

३०वें वर्ष में राजा की मृत्यु हुई और उसके पुत्र वीरभद्र को, जो दरबार में था, राजा की पदवी देकर बिदा किया। रास्ते में वह सुखासन[१] से गिर पड़ा और औषधि करने से उसका रक्त बिगड़ गया। असमय पर नहाने धोने से उसका रोग बढ़ता गया और ८वें वर्ष सन् १००१ हि० (सन् १५९३ ई०) में वह मर गया। यह राय रायसिंह राठौर का संबंधी था, इससे शोक मनाने के लिये बादशाह इसके गृह पर गए। जब यह समाचार मिला (कि उस प्रांत के बलवाइयों ने राजा रामचंद्र के विक्रमाजीत नामक अल्पवयस्क पौत्र को गद्दी पर बैठाकर गड़बड़ मचाना

१ एक प्रकार की पालकी।

चाहा है) तब राय पत्रदास बाबव दुर्ग विजय करने के लिये नियत हुए। वहाँ पहुँचने पर (उस प्रांत के उजाड़ होने से बहुधा स्थानों पर बादशाही थाने बैठाए गए) मनुष्यों ने प्रार्थना की कि एक सरदार बादशाह की ओर से नियत होकर उस लड़के को ले जाय। तब इस्माइल कुली खाँ आज्ञानुसार उसको लेकर ४१ वें वर्ष बादशाह के पास आया। उन लोगों की इच्छा थी (कि कृपा होने से दुर्ग का विजय करना रुक जायगा) पर बादशाह को जब यह ठीक नहीं जँचा, तब उस लड़के को विदा कर दिया। आठ महीने और कई दिन के घेरे पर ४२वें वर्ष में दुर्ग टूटा। ४७वें वर्ष में उसी राजा के पौत्र दुर्योधन[१] को राजा की पदवी और अध्यक्षता दी तथा भारतीचद्र को उसका अभिभावक नियत किया। जहाँगीर के बादशाह होने पर २१वें वर्ष में जब पूर्वोक्त राजा के पौत्र राजा अमरसिंह ने दरबार में आने की इच्छा प्रकट की, तब बुलाने का आज्ञापत्र, खिलअत और घोड़ा कान्ह राठौर की रक्षा में (जो बातचीत करने में बुद्धिमान् सेवक माना जाता था) उसके लिये भेजा गया। शाहजहाँ के समय ८वें वर्ष में यह अब्दुल्ला खाँ बहादुर के साथ रत्नपुर के जमींदार को दंड देने पर नियुक्त हुआ। इसके मध्यस्थ होने पर उस जमींदार ने आकर खाँ से भेंट की। इसके अनन्तर यह दरबार

१ रीवाँ-नरेश महाराज रघुराजसिंह ने अपनी वंशावली में इनका नाम नहीं दिया है। शायद यह एकाध वर्ष नाम मात्र के लिये राजा बनाए गए हों।

गया और जुझारसिंह बुंदेला के विद्रोह में उसी खाँ के साथ नियत हुआ। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र अनूपसिंह इसका स्थानापन्न हुआ। २४वें वर्ष जब चौरागढ़ के जागीरदार राजा पहाड़सिंह बुंदेला ने, वहाँ (चौरागढ़ के) के जमींदार हृदयराम के अनूपसिंह की (जो दुर्ग बांधव के उजाड़ होने पर वहाँ से चालीस कोस पर रीवाँ नामक स्थान में रहता था) शरण लेने पर, उस पर चढ़ाई की, तब वह बाल-बच्चों सहित रतनपुर के पहाड़ों में भाग गया। ३०वें वर्ष इलाहाबाद के सूबेदार सलाबत खाँ सैयद के साथ दरबार में आया। खिलअत, जड़ाऊ जमधर, मीना की हुई ढाल, तीन हजारी २००० सवार का मन्सब और बांधव आदि उसका राज्य जागीर में मिला।

—— ——

६५—राजा रामदास कछवाहा

इसका पिता उरुदत्त एक कम योग्यतावाला और दरिद्र मनुष्य था। अपने देश[१] में रग के व्यापार से जीवन व्यतीत करता था। उसी अवस्था में रामदास रायसाल दरबारी के यहाँ नौकर होकर उसी राजा के द्वारा अकबर के सेवकों में भर्ती हो गया और थोड़े ही दिनों में उन्नति कर पाँच सदी मन्सब पा गया। धीरे धीरे विश्वास बढ़ने पर १८वें वर्ष (जब राजा टोडरमल खानखानाँ[२] की सहायता और उसकी सेना का प्रबध करने के लिये, जो बिहार को विजय करने जा रही थी, नियत हुआ तब) इसे राजा का नायब बना कर दीवानी का कार्य सौंपा गया। धीरे धीरे अपनी सेवा के कारण बादशाह के मन में स्थान कर लिया जिससे इसकी और उन्नति हुई[३]। राजपूत आदि सरदारों का काम भी करता और धन भी सचित करता था। कहते

---

१. मौज़ा लूनी या बौनली में रहता था।

२ मुनइम ख़ाँ खानखानाँ से तात्पर्य है।

३ तबक़ाते अकबरी में लिखा है कि जब अकबर गुजरात से लौटते समय साँगानेर के तीन कोस इधर पूना गाँव पहुँचा, जो राजा रामदास कछवाहा की जागीर में था, तब यहाँ इन्होंने बादशाह तथा बादशाही नौकरों का सत्कार किया था। (इलि० डा०, भा० ५, पृ० ३६६)

हैं कि आगरा दुर्ग के भीतर बहुत बड़ी और अच्छी हवेली हथियापोल के पास बनाई थी, पर वह स्वयं बराबर चौकी पर रहता था। अकबर के महल में आने जाने का कोई निश्चित समय नहीं था और कभी वह भीतर आता और कभी बाहर जाता था। रामदास दो सौ राजपूतों के साथ भाला हाथ में लिए बराबर प्रतीक्षा में तैयार रहता था।

उस बादशाह की मृत्यु के समय जब खान आज़म और राजा मानसिंह खुसरू को राजगद्दी देने के लिये प्रयत्न कर रहे थे, तब रामदास ने शाहज़ादा सलीम का पक्ष ग्रहण करके अपने मनुष्यों को कोष और कारखाने के पहरे पर खड़ा कर दिया था जिसमें प्रतिद्वंद्वी उन पर अधिकार न कर सकें। इस कारण जहाँगीर के समय मन्सब बढ़ा और पस्वम्मोदि में उन्नति हुई[1]। छठे वर्ष सन् १०२० हि० (सन् १६११ ई०) में गुजरात के सूबेदार अब्दुल्ला खाँ के साथ नियत होने पर इसे राजा की पदवी, डंका और रणथंभौर दुर्ग (जो हिन्दुस्तान के बड़े दुर्गों में है) मिला[2]। ऐसा प्रसिद्ध है कि इसे राजा कर्ण की पदवी मिली थी, पर इकबाल-नामा में ऐसा नहीं लिखा है। नासिक से होते हुए ये लोग दौलताबाद पहुँचे पर जब मलिक अंबर के विजयी होने से ये लोग भाग कर लौटे, तब जहाँगीर ने क्रोध करके उन सब सरदारों

१ ब्लकमैन कृत [illegible], भा १ पृ १७

२ तुजुके जहाँगीरी पृ ४८.

के चित्र (जिन्होंने उस चढ़ाई में भाग कर अपने को बदनाम किया था) खिंचवा कर मँगाए थे। प्रत्येक चित्र को देख कर कुछ कहता था। जब राजा के चित्र की पारी आई, तब दीवान का सिर हाथ से पकड़ कर कहा कि 'तू एक तनका दैनिक वेतन पर रायसाल का नौकर था। पिता ने शिक्षा देकर सरदार बनाया। राजपूत जाति के लिये भागना पाप है। दुःख है कि राजा करण की पदवी की लज्जा नहीं रक्खी। आशा करता हूँ कि तू धर्म और संसार दोनों से निष्फल रहेगा।' इसके अनंतर उसको उस कार्य्य से हटा कर बंगश की चढ़ाई पर नियुक्त किया। राजा उसी वर्ष सन् १०२२ हि० (सन् १६१३ ई०) में मर गया। बादशाह ने कहा—'मेरी प्रार्थना ने काम किया, क्योंकि हिन्दुओं के मत में है कि सिंध नदी के उस पार जो मरता है, वह नरक में जाता है।' अंत में जलालाबाद में राजा की पगड़ी के साथ पद्रह स्त्रियाँ और बीस पुरुष जले।

उस समय दान-पुण्य में यह अपना जोड़ नहीं रखता था। एक एक क़िस्से पर बहुत सा धन देता था। कवियों, भाटों और गवैयों को जो कुछ एक बार पुरस्कार देता था, उतना ही प्रति वर्ष उसी महीने में वे आकर उसके कोषाध्यक्ष से ले जाते थे। नई वस्तु के निकालने की इच्छा नहीं रहती थी। चौसर खेलने का बड़ा प्रेमी था, यहाँ तक कि दो दो दिन और रात खेलता रहता था। यदि कोई हरा देता तो यह उसे गाली देता और क्रोध करता था, मुख्य कर अपने मित्रों पर। भूमि पर हाथ पटकता और

सकता था। इसका पुत्र रामनदास[1] अकबर के ४६वें वर्ष में बिना छुट्टी लिए डेरा आकर निर्बलों को सताने लगा। पिता के इच्छानुसार बादशाह ने आज्ञा दी कि शाह कुली खाँ के नौकर उसे दरबार में ले आवें। उसने यह समाचार सुन कर फाँसी लगा कर अपने प्राण दे दिए[2]। पुत्र की मृत्यु से रामदास को शोक हुआ। अकबर ने उसके द्वार तक आकर शोक मनाया था। दूसरा पुत्र दिलीप नरायन था जो सरदार होकर सब कामों में पिता के समान था। ठीक जवानी में उसकी मृत्यु हुई।

---

१ ब्लौकमैन ने रामदास लिखा है, पर दोनों ही ठीक नहीं जँचते। शायद रामनदास हो।

२ रामनदास ने शाहकुली खाँ का मुकाबिला किया और कट कर मारा गया (ब्लौकमैन कृत आईने अकबरी पृ ४८१)। तुजुके जहाँगीरी में लिखा है कि अकबर ने कश्मीर में रामपुर और ... पुर के बीच एक महल इसे दिया था।

६६–राजा रामदास नरवरी[1]

यह जहाँगीर के समय का एक मन्सबदार है। शाहजहाँ के राज्य के प्रथम वर्ष में यह महाबत खाँ खानखानाँ के साथ जुझारसिंह बुँदेला को (जिसने आगरे से भाग कर विद्रोह का झंडा खड़ा किया था) दंड देने के लिये नियत हुआ। ३रे वर्ष राव रत्न हाड़ा के साथ बरार के पास बासम में ठहरने और दक्षिणी सेना को रोकने के लिये नियत हुआ। ६ठे वर्ष के अंत में सुल्तान शुजाअ के साथ दक्षिण प्रांत के परेंदा दुर्ग को विजय करने गया। ८वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़ कर दो हजारी १०००

१. दसवीं शताब्दी में नरवर तथा ग्वालियर पर कछवाहों का अधिकार हो गया था। बारहवीं शताब्दी के आरम्भ में परिहारों का उस पर अधिकार हुआ। सन् १२३२ ई० में गुलाम वंश के शाह अल्तमश ने परिहारों को परास्त किया था। सन् १२५१ ई० में चाहड़देव ने हार कर यह दुर्ग नसीरुद्दीन को दे दिया था। तैमूर की चढ़ाई के समय तँवर राजपूतों ने इस पर अधिकार कर लिया। सन् १५०७ ई० में सिकंदर लोदी ने बारह महीने के घेरे के बाद नरवर दुर्ग पर अधिकार करके इसे राजसिंह कछवाहा को दे दिया। मुगल बादशाहों के समय में यह इसी वंश के हाथ में बराबर बना रहा। केवल शाहजहाँ के समय में कुछ दिन उस वंश के हाथ से निकल गया था। मराठों का उत्कर्ष होने पर दौलतराव सिंधिया ने इस पर अधिकार कर लिया।

सवार का हो गया और सैयद खानजहाँ बारह: के साथ आदिल खानी राज्य को नष्ट करने पर नियत हुआ। १३वें वर्ष सन् १०४९ हि० (सन् १६३९ ई०) में इसकी मृत्यु हो गई। बादशाह ने इसके पौत्र अमरसिंह का मन्सब बढ़ा कर एक हजारी ६०० सवार का कर दिया और राजा की पदवी देकर नरवर दुर्ग[1] की अध्यक्षता पर इसके दादा की तरह इसे भी नियुक्त कर आस पास की भूमि दी। १९वें वर्ष में सुल्तान मुराद बख्श के साथ यह बलख बदख्शाँ की चढ़ाई पर गया। २२वें वर्ष सुल्तान औरंगजेब बहादुर के साथ (जो कंधार की दूसरी चढ़ाई पर नियत हुआ था) उस प्रांत को गया। २६ वें वर्ष सुल्तान दारा शिकोह के साथ उसी प्रांत को गया और वहाँ से रुस्तम खाँ के साथ बुस्त की विजय को गया। ३०वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़ कर डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया। इसी वर्ष (स० १०६६ हि०, सन् १६५६ ई०) मुअज्जम खाँ के साथ सुल्तान औरंगजेब बहादुर के सहायतार्थ दक्षिण गया। प्रथम वर्ष आलमगीरी में सेवा में पहुँच कर शाहजादा सुल्तान मुहम्मद के साथ सुल्तान शुजाअ का पीछा करने को नियुक्त हुआ। वहाँ के कार्यों में और आसाम की चढ़ाई पर इसने बहुत प्रयत्न किया। इसके अनंतर शमशेर खाँ तरीं के साथ अफगानों

---

१ विन्ध्याचल पर्वतमाला के एक ढालुएँ अंश पर, जो यहाँ की भूमि से चार सौ फुट और समुद्र तल से ११ फुट ऊँचा है, बना हुआ है। इसकी दीवार पाँच मील लंबी है। आगरा प्रांत की नरवर सरकार में यह दुर्ग है।

की चढ़ाई पर नियुक्त होकर अच्छी सेवा के पुरस्कार में इसका मन्सब बढ़ कर हजारी ३५० सवार का हो गया। इसके मन्सब में जो यह भिन्नता है (दस वर्षवाले आलमगीरनामा से लिया गया है) वह स्यात् इसके पुराने मन्सब में कमी हो जाने से हुई हो या लिखने की अशुद्धि हो[१]।

— —

१. खफी खाँ, भा० २, पृ० ८७४–८० में दिलावर अली खाँ सैयद तथा निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह के बीच सन् १६२० ई० में रत्नपुर के पास जिस युद्ध का वर्णन दिया गया है, उसमें गजसिंह नरवरी के मारे जाने का उल्लेख है। यह गजसिंह इसी वंश के ज्ञात होते हैं।

सवार का हो गया और सैयद खानजहाँ बारह के साथ आदिल खानी राज्य को नष्ट करने पर नियत हुआ। १३वें वर्ष सन् १०४९ हि० (सन् १६३९ ई०) में इसकी मृत्यु हो गई। बादशाह ने इसके पौत्र अमरसिंह का मन्सब बढ़ा कर एक हजारी ६०० सवार का कर दिया और राजा की पदवी देकर नरवर दुर्ग[1] की अध्यक्षता पर इसके दादा की तरह इसे भी नियुक्त कर आस पास की भूमि दी। १९वें वर्ष में सुल्तान मुराद बख्श के साथ यह बलख बदख्शाँ की चढ़ाई पर गया। २१वें वर्ष सुल्तान औरंगजेब बहादुर के साथ (जो कंधार की दूसरी चढ़ाई पर नियत हुआ था) उस प्रांत को गया। २६ वें वर्ष सुल्तान दारा शिकोह के साथ उसी प्रांत को गया और वहाँ से रुस्तम खाँ के साथ बुस्त की विजय को गया। ३०वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़ कर डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया। इसी वर्ष (स० १०१३ हि०, सन् १६५६ ई०) मुअज्जम खाँ के साथ सुल्तान औरंगजेब बहादुर के सहायतार्थ दक्षिण गया। प्रथम वर्ष आलमगीरी में सेवा में पहुँच कर शाहजादा सुलतान मुहम्मद के साथ सुल्तान शुजाअ का पीछा करने को नियुक्त हुआ। वहाँ के कार्यों में और आसाम की चढ़ाई पर इसने बहुत प्रयत्न किया। इसके अनन्तर शमशेर खाँ तरीं के साथ अफगानों

१ विध्याचल पर्वतमाला के एक शृंग पर भी यहाँ की भूमि से चार सौ फुट और समुद्र तल से ११ फुट ऊँचा है, बना हुआ है। इसकी दीवार पाँच मील लंबी है। ग्वालियर प्रांत की नरवर सरकार में यह दुर्ग है।

वहाँ के राजा के पुत्र के साथ दरबार आया[1]। मिरज़ा राजा के दक्षिण में नियुक्त होने पर यह दरबार ही में रहा।

८वें वर्ष जब शिवाजी और इसके पिता की भेंट होने का समाचार आया, तब इसे खिलअत, जड़ाऊ गहने और हथिनी मिली। जब शिवाजी अपने पुत्र शंभाजी के साथ दक्षिण से आकर दरबार में गए, तब बादशाह ने पहले दिन उनके मुख पर घमड देखकर रामसिंह को (जो सेवा के लिये वहाँ उपस्थित था) आज्ञा दी कि 'इसे अपने पास डेरा देना और इससे होशियार रहना।' जब उन्होंने चालाकी से (जिसका हाल राजा साहू भोंसला की जीवनी में लिखा गया है) वहाँ से गुप्त रूप से निकल कर रास्ता लिया, तब इसकी असावधानी[2] के कारण इसका मन्सब छिन गया और इसे दरबार जाने की मनाही हो गई। पिता की मृत्यु पर १०वें वर्ष[3] मे बादशाह ने इसका दोष

---

१ ख़फ़ी ख़ाँ, भा० २, पृ० १२३। सुलेमान शिकोह और श्रीनगर के राजकुमार दोनों को साथ ले आया था।

२ ख़फ़ीख़ाँ, भा० २, पृ० १८६—९० और पृ० १९८—२००। रामसिंह की असावधानी बतलाना तथ्य को छिपाना मात्र है। वास्तव में 'शठ प्रति शाठ्य' वाली नीति में शिवाजी का औरंगज़ेब से बढ़ जाना ही कारण था। बादशाही आज्ञा से कोतवाल का कड़ा पहरा रहता था, जो आलमगीर-नामा पृ० ९७० के अनुसार राजा जयसिंह का वसर आने पर उठा लिया गया था।

३. सन् १६८७ ई० में यह दक्षिण ही में मृत्युलोक को सिधारे।

६७-राजा रामसिंह कछवाहा

यह मिरज़ा राजा जयसिंह के बड़े पुत्र थे। राज्य के १६वें वर्ष में जब शाहजहाँ अजमेर की ओर गए तब यह पिता के साथ दरबार गए। १९वें वर्ष (जब बादशाह लाहौर से काबुल की ओर चले तब) पाँच सौ सवारों के साथ देश से आने पर इन्हें एक हजारी १००० सवार का मन्सब मिला। मन्सब बराबर बढ़ने के कारण दो हजारी १५०० सवार का हो गया और झंडा भी मिल गया। २६वें वर्ष पाँच सदी मन्सब और बढ़ा। २७वें वर्ष भी पाँच सदी मन्सब बढ़ा। सामूगढ़ के युद्ध में यह दारा शिकोह के साथ था, जिसके पराजित होने पर यह औरंगजेब के पास पहुँच कर पहले वर्ष शाहजादा मुहम्मद सुलतान और मुअज्जम खाँ के साथ शुजाअ का पीछा करने पर नियुक्त हुआ। रास्ते में झूठी गप्पें सुनकर (जो दारा शिकोह के दूसरे युद्ध के बाद उड़ रही थीं) कुछ दिन इसने शाहजादे के यहाँ आना-जाना और साहब-सलामत छोड़ दी थी तथा वहाँ से लौट भी गया था। ३रे वर्ष सुलेमान शिकोह (जो श्रीनगर के राजा के पास था और जिसने मिरज़ा राजा जयसिंह के कहने से उसे भेजना निश्चित किया था) को लाने के लिये गया और

वहाँ के राजा के पुत्र के साथ दरबार आया[1]। मिरजा राजा के दक्षिण मे नियुक्त होने पर यह दरबार ही में रहा।

८वें वर्ष जब शिवाजी और इसके पिता की भेंट होने का समाचार आया, तब इसे खिलअत, जड़ाऊ गहने और हथिनी मिली। जब शिवाजी अपने पुत्र शंभाजी के साथ दक्षिण से आकर दरबार में गए, तब बादशाह ने पहले दिन उनके मुख पर घमंड देखकर रामसिंह को (जो सेवा के लिये वहाँ उपस्थित था) आज्ञा दी कि 'इसे अपने पास डेरा देना और इससे होशियार रहना।' जब उन्होंने चालाकी से (जिसका हाल राजा साहू भोंसला की जीवनी मे लिखा गया है) वहाँ से गुप्त रूप से निकल कर रास्ता लिया, तब इसकी असावधानी[2] के कारण इसका मन्सब छिन गया और इसे दरबार आने की मनाही हो गई। पिता की मृत्यु पर १०वें वर्ष[3] मे बादशाह ने इसका दोष

---

१ खफी खाँ, भा० २, पृ० १२३। सुलेमान शिकोह और श्रीनगर के राजकुमार दोनों को साथ ले आया था।

२ खफीखाँ, भा० २, पृ० १८६—१० और पृ० १९८—२००। रामसिंह की असावधानी बतलाना तथ्य को छिपाना मात्र है। वास्तव में 'शठ प्रति शाठ्य' वाली नीति में शिवाजी का औरंगजेब से बढ़ जाना ही कारण था। बादशाही आज्ञा से कोतवाल का कड़ा पहरा रहता था, जो आलमगीर-नामा पृ० ६७० के अनुसार राजा जयसिंह का उत्तर आने पर उठा लिया गया था।

३. सन् १६८७ ई० में यह दक्षिण ही मे मृत्युलोक को सिधारे।

क्षमा करके इसे खिलअत, मोती की लड़ियाँ सहित जड़ाऊ जमधर, जड़ाऊ साज सहित तलवार, सोने की जीन सहित अरबी घोड़ा, चाँदी के साज और चारजामे की मूल सहित हाथी, राजा की पदवी और चार हजारी ४००० सवार का मन्सब देकर सम्मानित किया।

इसी वर्ष के अंत में जब बंगाल की सीमा पर गाढ़ो में भासामियों के विद्रोह और वहाँ के थानेदार फीरोज खाँ के मारे जाने का समाचार बादशाह को मिला, तब इन्हें भारी सेना के साथ उस प्रांत पर नियुक्त किया और एक हजारी १००० सवार का मन्सब बढ़ गया। १९वें वर्ष वहाँ से लौट कर दरबार आया और उसी वर्ष मर गया। इसका पुत्र कुँअर कृष्णसिंह[1] पिता के जीवन ही में योग्य मन्सब पाकर काबुल में नियत हो चुका था जिसके अफसर बड़ खरेश्व भगड़े में घायल होकर मर गया। इसका पुत्र विष्णुसिंह एक हजारी ४०० सवार का मन्सब पा चुका था और दादा की मृत्यु पर राजा की पदवी और अन्य कृपाओं से सम्मानित हुआ। कुछ दिन राठौरों के दमन में और बहुत दिन इस्लामाबाद की फौजदारी पर इसने काम किया। इसके बाद (कि उसकी मृत्यु हो गई थी) ४४वें वर्ष में इसके पुत्र विजयसिंह को राजा जयसिंह की पदवी सहित डेढ़ हजारी १०००

१ टॉड राजस्थान पृ० १२७। इनका नाम टॉड साहब ने नहीं लिया है और न रामसिंह तथा विष्णुसिंह का सम्बन्ध ही बतलाया है।

सवार का मन्सब मिला[१]। ४५वें वर्ष जुमलतुलमुल्क के साथ दुर्ग खेलना लेने पर नियुक्त हुआ जिसका वृत्तांत दिया गया है।

---

१. सन् १६९९ ई० में यह धिराज राजा जयसिंह के नाम से गद्दी पर बैठे, जिनकी जीवनी के लिए २४वाँ निबंध देखिए।

६८–रामसिंह

यह कर्मसी राठौर का पुत्र और राणा जगतसिंह का भांजा था। इसका पिता बादशाही सेवा में रहता था। यह शाहजहाँ बादशाह के १२वें वर्ष के अंत में दरबार आया और इसने एक हजारी ६०० सवार का मन्सब पाया। १४वें वर्ष १०० सवार बढ़ाए गए और १६वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़कर डेढ़ हजारी ८०० सवार का हो गया। १९वें वर्ष में यह शाहजादा मुरादबख्श के साथ बलख और बदख्शाँ की चढ़ाई पर नियत हुआ और बलख पहुँचने पर सब बहादुरखाँ और एसालत खाँ और बलख के शासनकर्त्ता नज़रमुहम्मद खाँ का पीछा करने के लिये नियुक्त हुए, तब इसने शाहजादे की आज्ञा के बिना ही उनका साथ दिया। दो बार पूर्वोक्त युद्ध और अलअमाना के युद्ध में अच्छा प्रयत्न किया, जिस पर मन्सब बढ़कर ढाई हजारी १२०० सवार का प्राप्त कर शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियत हुआ। वहाँ पहुँचने पर रुस्तमखाँ के साथ यह जमींदावर विजय करने गया और इसका मन्सब बढ़कर तीन हजारी १५ सवार का हो गया। २५वें वर्ष में उसी चढ़ाई पर पूर्वोक्त शाहजादे के साथ द्वितीय बार गया। २६वें वर्ष में हाथी पाने से सम्मानित

होकर दारा शिकोह के साथ तीसरी बार उसी प्रांत मे नियुक्त हुआ और वहाँ पहुँचने पर वह रुस्तम खाँ के साथ बुस्त दुर्ग लेने गया। २८वें वर्ष मे खलीलुल्ला खाँ के साथ श्रीनगर के भूम्याधिकारी को (जो राजधानी शाहजहानाबाद के उत्तरी पहाड़ों में है) दंड देने पर नियत हुआ। सन् १०६८ हि० (सन् १६५६ ई०) में सामूगढ के युद्ध में दारा शिकोह के हरावल मे नियुक्त होने पर इसने युद्ध में वीरता से स्वामिभक्ति को हाथ से नहीं जाने दिया और प्रतिद्वंद्वियों से लड़कर मारा गया।

६१—राजा रामसिंह हाडा

यह माधोसिंह हाडा[1] का पौत्र था। जब औरंगज़ेब के राज्य के २०वें वर्ष में मुकुन्दसिंह हाडा के पुत्र जगतसिंह की मृत्यु हो गई और उसका अन्य पुत्र नहीं थे, तब बादशाह ने कोटा का राज्य मुकुन्दसिंह के भाई किशोरसिंह को (जो स्वर्गीय राजा का चाचा था) दिया। वह मुहम्मद आज़मशाह के साथ बीजापुर के घेरे पर नियत हुआ। एक दिन (जब अलीवर्दी खाँ का पुत्र अमानुल्ला मारा गया तब) यह भी घायल हुआ था। ३०वें वर्ष सुलतान मुअज्ज़म के साथ हैदराबाद गया और ३६वें वर्ष ढाका प्राप्त करने के बाद मर गया[2]। ज़ुल्फ़िक़ार खाँ बहादुर की प्रार्थना पर कोटा का राज्य उसके वंश की परंपरागत बात पर उसके पुत्र रामसिंह (जो अपने राज्य में था; आरम्भ में ढाई सदी, फिर [illegible] सदी और उस समय एक हज़ारी मन्सब पर था)

---

१ कोटा राज्य के संस्थापक माधोसिंह का ५३वें निबंध में तथा उसके पुत्र मुकुंदसिंह और पौत्र जगतसिंह का वृत्तांत ५०वें निबंध में दिया गया है।

२ सन् १६९६ ई० में जजोर दुर्ग पर आक्रमण करते समय मारे गए। टॉड (राजस्थान भा० २ पृ० १५१६) में मृत्यु संवत् १७५१ वि० (सन् १६९४ ई०) दिया है।

को मिला[१]। पूर्वोक्त खाँ के साथ नियुक्त होकर सन्ता घोरपदे के पुत्र रानो और दूसरे मरहठों का दमन करने में अच्छा कार्य किया। ४४वें वर्ष में इसे डंका मिला। ४८वें वर्ष में यह ढाई हज़ारी मन्सब पर नियत हुआ और राव बुद्धसिंह के बदले में मोमीन्नाना की जमींदारी (जिसके लिये उसकी बड़ी इच्छा थी) की रक्षा करने की शर्त पर उसके मन्सब में एक हजार सवार बढ़ाए गए। औरंगज़ेब की मृत्यु पर मुहम्मद आज़मशाह का पक्ष लेने से चार हज़ारी मन्सब हो गया। युद्ध[२] में सुलतान अज़ीमुश्शान का वीरता से सामना करके मारा गया। इसका पुत्र भीमसिंह राजा हुआ[३]। युद्ध में (जो ११३१ हि०, सन् १७१९ ई० में दिलावर अली खाँ और निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह के बीच हुआ था) पूर्वोक्त खाँ के मारे जाने पर भागना उचित न समझ कर वीरता से लड़कर मारा गया[४]। लिखते समय इसका प्रपौत्र

१ किशोरसिंह के तीन पुत्र थे—विष्णुसिंह, रामसिंह और हरनाथ सिंह। प्रथम को इस कारण राज्य नहीं मिला कि वह पिता के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर नहीं गया था। ज़ुल्फ़िकार की प्रार्थना का स्यात् यही प्रधान कारण रहा हो।

२. सन् १७०७ ई० का जाजऊ युद्ध।

३ इसने अपने राज्य की बड़ी उन्नति की थी और सैयद भ्राताओं तथा राजा जयसिंह से मिल कर बूँदी के राज्य का नाश करने में भी कुछ उठा नहीं रखा था।

४ सैयद भ्राताओं के बख़्शी दिलावर अली ख़ाँ तथा निज़ामुलमुल्क

गुमानसिंह कोटा का राजा था, जो दुर्जनसाल का पौत्र और छत्रसाल का पुत्र था[2]।

का रमपुर से दो तीन कोस इधर ही सामना हुआ था। सन् १७२० ई० की ११ मई को यहाँ युद्ध हुआ जिसमें दिलावरअली खाँ भीमसिंह तथा गजसिंह नरूकी आदि मारे गए। (एनाल्स भा २ पृ ८०५-८)

२ भीमसिंह के बड़े पुत्र अर्जुन गद्दी पर बैठे, पर चार वर्ष के बाद सन् १७२४ ई० में निस्सन्तान मर गए। तब इनके दोनों भाई श्यामसिंह और दुर्जनसाल में राज्य के लिये झगड़ा हुआ जिसमें पहला मारा गया। जब यह भी निस्सन्तान मरे तब किशोरसिंह के पुत्र विष्णुसिंह के प्रपौत्र छत्रसाल को इन्होंने गोद लिया था। परन्तु सरदारों की राय थी कि छत्रसाल के पिता अजीतसिंह के रहते पुत्र को गद्दी न मिलना चाहिए। अन्त में अजीतसिंह गद्दी पर बैठे पर दो ही वर्ष बाद चल बसे। इनके तीन पुत्र छत्रसाल गुमानसिंह और राजसिंह थे। छत्रसाल गद्दी पर बैठे पर निस्सन्तान मर गए। तब सन् १७६८ ई० में गुमानसिंह राजा हुए। (गहलोत, राजस्थान भा २ पृ ११०६-९)

७०-राजा रायसाल दरबारी

इसका पिता राजा सूजा राय रायमल शेखावत का पुत्र था। प्रसिद्ध शेर शाह का पिता हसन खाँ सूर उस समय इसका नौकर था। कछवाहों के दो भाग[१] हैं। एक को राजावत कहते हैं जिसमें मानसिंह आदि हैं; और दूसरा शेखावत जिसमें राजा लूनकरण, राजा रायसाल और उसके सम्बन्धी हैं। कहते हैं कि इनके किसी पूर्वज को पुत्र नहीं होता था। एक फकीर समय पर आ पहुँचा और वृत्तान्त जानकर पुत्र होने की दुआ देकर उसे प्रसन्न किया। उस सिद्ध के दुआ देने के कुछ दिन अनन्तर एक पुत्र हुआ, जिसका शेख नाम रखा गया। इसके वंशवाले शेखावत कहलाए।

राजा रायसाल सौभाग्य[२] से अकबर का कृपा-पात्र होकर अपने बराबर वालों से विश्वास में आगे बढ़ गया। जितना ही

---

१ आमेर के राजा उदयकरण के तृतीय पुत्र बालोजी के पौत्र शेखजी शेख बुरहान की दुआ से उत्पन्न हुए थे, इसलिये इन के वंशज शेखावत कहलाए। (टाड कृत राजस्थान, भा० २, पृ० १२४२)

२ टाड लिखते हैं कि इन्होंने एक युद्ध में शत्रु के एक सरदार को बादशाही सेनापति के सामने मारा था जिससे प्रसन्न होकर इन्हें बादशाह ने मन्सब दिया था। अकबरनामा पृ० ३३३, ३८२, ४१६ में लिखा है

इसका मुसलमान और स्वभाव पहिचानने की शक्ति बढ़ती गई, उतना ही इसका विश्वास बढ़ा और बादशाही महल का प्रबंध इसी राजा की दृढ़ सम्मति पर होने लगा। अकबर के इतिहास में ४०वें वर्ष तक इसका मन्सब सवा हजारी लिखा है[1]। उस समय इस प्रकार का मन्सब प्रचलित था। इसके अनन्तर यह निश्चित हुआ था कि हजारी और उसके ऊपर की वृद्धि पाँच सदी से कम न की जाय। जहाँगीर के समय में मन्सब और सरदारी बढ़ने पर दक्षिण में नियत हुआ और बहुत दिन व्यतीत करने पर वहीं उसकी मृत्यु हो गई। इसने अवस्था अधिक पाई थी और इस इकोस[2] पुत्र थे। इनमें से प्रत्येक को बहुत से पुत्र हुए थे। जब यह दक्षिण में शाही कामों पर नियत था, तब माधोसिंह आदि पौत्रों ने विद्रोह करके और बहुत से मनचलों को एकत्र करके अपने देश की सीमा के कुछ स्थानों पर (जो संधार आदि नाम से आंबेर के पास प्रसिद्ध हैं) बलात्

कि इन्होंने सर्नाल तथा शेराबाद के युद्ध में योग दिया था और अकबर के साथ पटन के धावे में भी उपस्थित थे।

१ अबुलफजल ने इस ग्रंथ के अनुसार ४० वें वर्ष में इन्हें डेढ़-हजारी मन्सबदारों की सूची में लिखा है, पर उस सूची में केवल इन्हीं का नाम है। तबकाते अकबरी में लिखा है कि सन् १ १ हि० (सन् १५६१ ई०) में यह दो हजारी मंसबदार थे जो ३८ वाँ वर्ष था। बादशाहनामा की सूची में इनका नाम ही नहीं दिया है।

२ टाड कृत राजस्थान में केवल ७ पुत्र लिखे गए हैं, जिनसे सात वंश चले।

अधिकार कर लिया। मथुरादास बंगाली ने (जो धार्मिक तथा सुलेखक था और राजा की जागीर का प्रबन्धकर्त्ता था तथा जो राजा की ओर से दरबार में रहा करता था) बुद्धिमानी से थोड़े ही प्रयत्न से विद्रोहियों से कुछ अंश छीन लिया। राजा की मृत्यु पर उसके पुत्रों में से राजा गिरधर आदि दो तीन[1] मनुष्य ऐश्वर्य और राज-पद को पहुँचे और बचे हुए पुत्र तथा पौत्रगण (जो झुंड के झुंड थे) अपने देश में जमींदारों की तरह दिन व्यतीत करते थे और लूट मार तथा विद्रोह भी करते रहते थे।

---

१ गिरिधर ही सबसे बड़े पुत्र थे, इससे वही गद्दी पर बैठे और खंडेला के राजा कहलाए। बादशाही आज्ञा से मेवात के मेव डाँकुओं को इन्होंने बड़ी वीरता से खोज खोज कर मारा और वहाँ शांति स्थापित की थी। जमुनाजी के किनारे संध्या-वंदन करते समय एक मुसलमान सरदार ने नीचता से इन्हें मार डाला। रायसाल के तृतीय पुत्र भोजराज को बादशाह-नामा भाग १ पृ० ३१४ में आठ सदी ४०० का मन्सबदार लिखा है। इनके वंशवाले उदयपुर के ठाकुर कहलाते हैं, जो ऐश्वर्य आदि में गिरधर के वंशवालों से बढ़ गए थे। गिरिधर के पुत्र द्वारिकादास के विषय में कहा जाता है कि यह खानेजहाँ लोदी के हाथ मारा गया था तथा इसी ने उसको भी मारा था। पर इतिहासों में माधोसिंह हाड़ा के बरछे से खानेजहाँ का मारा जाना लिखा है।

७१—राय रायसिंह

यह बीकानेर के राजा राय कल्याणमल[1] का पुत्र था और राठौर-वंशी था। राव मालदेव की चौथी पीढ़ी से इसका वंश आरम्भ होता है। जब अकबर की गुणग्राहकता की ख्याति चारों ओर फैलने लगी और उस बादशाह का प्रताप छोटे और बड़े सबके मन में जम गया, तब पूर्वोक्त राय ने अपने पुत्र रायसिंह के साथ १५वें वर्ष अजमेर में (जब बादशाह अजमेर में थे) बादशाह के दरबार में पहुँच कर अधीनता स्वीकृत कर ली[2]। अपने भाई की पुत्री का बादशाह से विवाह कर संबंध भी कर लिया।

---

१. सन् १५५१ ई० में जब बैराम खाँ खानखानाँ मक्के जा रहा था और गुजरात के मार्ग में जोधपुर के राजा मालदेव का जोर था, तब वह नागोर से मोड़ कर बीकानेर चला आया। राव कल्याणमल तथा राय रायसिंह ने इसका अच्छा स्वागत किया था। कुछ दिन यहाँ रह कर बैराम खाँ पंजाब गया जहाँ उसने अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया था। तबकाते, इलि० डा०, भा० ५ पृ० २६५।

२. जब अकबर नागौर में ठहरा हुआ कुछ तालाब खुदवा रहा था तब ये दोनों पिता पुत्र उसके पास गए थे। बादशाह ने वहीं कल्याणमल की पुत्री से अपना विवाह किया था। पचीस दिन नागौर में रह कर अकबर [illegible]। कल्याणमल बहुत मोटे थे इसी से उन्हें बीकानेर जाने की छुट्टी मिल गई और रायसिंह साथ गए। (इलि० डा० भा० ५, पृ० ३३५-३६)

महाराज रामसिंह

अकबर के ४०वें वर्ष मे दो हजारी मन्सब तक पहुँचा था। १७वें वर्ष में (जब बादशाह ने गुजरात की चढ़ाई का विचार किया तब) रायसिंह बहुत से मनुष्यों सहित इस काम पर नियत हुआ कि मालदेव के देश जोधपुर के पास ठहरकर गुजरात का रास्ता रोके, जिसमें बलवाई उस प्रांत से बादशाही राज्य मे न आने पावें। यह दूसरों के साथ उस सीमा पर दृढ़ता से जा डटा[१]। इसके अनंतर (जब इब्राहीम हुसेन मिर्जा सर्नाल के युद्ध मे परास्त होकर बादशाही राज्य की ओर चला और नागौर को, जो खानेकलाँ की जागीर में था और जिसकी ओर से उसका पुत्र फर्रुख खाँ उसकी अध्यक्षता कर रहा था, घेर लिया तब) राय रायसिंह ने उन सरदारों के साथ (जो उस प्रांत में थे) एकत्र हो मिर्जा पर आक्रमण किया। मिर्जा ने घेरे से हाथ उठा कर आगे का रास्ता लिया, पर रायसिंह ने पीछा कर उसे जा लिया। अंत में बड़ी वीरता दिखला कर इन्होंने मिर्जा को परास्त कर दिया। १८वें वर्ष (जब गुजरात की चढ़ाई निश्चित हो गई तब) बादशाह ने इन्हें आगे भेजा। इन्होंने बादशाही अगली सेना के साथ सेवा में पहुँच कर मुहम्मद हुसेन मिर्जा के युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई[२]। १९वें वर्ष (सन् १५७४ ई०) में

१. बीकानेर के रायसिंह जोधपुर इसलिये भेजे गए कि गुजरात का रास्ता खुला रखें और राणा कीका को उपद्रव करने से रोकें। (बदाऊनी भा० २, पृ० १४६) तबकात लिखता है कि रास्ता खुला रखने तथा किसी राणा को हानि पहुँचाने से रोकने को यह भेजे गए थे।

२. टाड साहब लिखते हैं कि इन्होंने अहमदाबाद लेते समय मिर्जा

यह शाहकुली खाँ महरम के साथ राजा मालदेव के पुत्र चंद्रसेन को दंड देने पर नियत हुआ। उसका दंड देने और उसके राज्य पर अधिकार करने में इसने कुछ उठा नहीं रखा; पर कुछ न कर सकने पर (जब कि यह सेना दुर्ग सिवाना को, जो चंद्रसेन का वासस्थान था, घेरने का साहस नहीं कर सकी और चंद्रसेन को दंड देने के लिये, जो अभी युद्ध स्थान में फिर रहा था, दूसरी सेना की आवश्यकता हुई तब) उसी वर्ष के अंत में रायसिंह ने अकेले आकर बादशाह से सब वृत्तांत कहा। बादशाह ने चंद्रसेन पर दूसरी सेना के साथ इसे फिर भेजा। जब सिवाने का घेरा बहुत दिन बीतने पर भी सफल नहीं हुआ[1], तब २१वें वर्ष के आरंभ में (जब शाहबाज खाँ इस कार्य पर नियत हुआ तब) रायसिंह और दूसरे सरदार बादशाह के पास लौट आए। इसके अनंतर उसी वर्ष तर्सून मुहम्मद खाँ के साथ जालौर और सिरोही के जमींदार को दंड देने पर नियुक्त हुए। जब उन्होंने मार्जना करके क्षमा माँग ली और दरबार आने की तैयारी की, तब यह सय्यद हाशिम बारहः के साथ बादशाह के आदेश से नाडोल में जाकर ठहर गए। उदयपुर के राणा के आने जाने का रास्ता बन्द करके उस ओर के बलवाइयों का दमन

मुहम्मद हुसेन भी इस युद्ध में मारा गया था। अन्य इतिहासों में यह भी लिखा है कि इसके पुरस्कार स्वरूप इन्हें राजा की पदवी मिली थी और इनके भाई रामसिंह को मन्सब मिला था।

१ मुन्तखबुत्तवारीख अकबरनामा भा० ३ पृ० १४०-१।

करने में इन्होंने बहुत प्रयत्न किया। सिरोही का राजा सुलतान देवद: (सुर्तान देवडा) अपनी जातीय घृणा के कारण दुर्भाग्य से देश लौट गया। रायसिंह ने उस पर विजय प्राप्त करने के लिये नियुक्त होने पर उसे घेरने का साहस किया और धाक जमाने के लिये अपने राज्य से बहुत सा सामान मँगवाया। (सुलतान देवद ने इस काफले पर आक्रमण कर युद्ध की तैयारी की, पर कुछ मनुष्यो के मारे जाने पर वह परास्त होकर वायुगढ़[१] चला गया। यह दुर्ग सिरोही के पास अजमेर प्रांत की सीमा पर गुजरात की ओर है। वास्तव में इसका नाम अर्बुदाचल था। हिन्दुओं के विश्वास के अनुसार अर्बुद आत्मा सबंधी शब्द है, और अचल का अर्थ पर्वत है। सांसारिक परिवर्तनों मे यह नाम भी लुप्त हो गया। इसका घेरा सात कोस का है जिस पर पहिले राणा ने दुर्ग बनवा कर उसके आने की राह दुर्गम कर दी। अच्छे तालाब, मीठे पानी के कूएँ और उपजाऊ भूमि इतनी थी कि दुर्गवालो के लिये काफी थी। वहाँ बहुत प्रकार के सुगंधित पुष्प और मन प्रसन्न करनेवाली हवा भी बराबर रहती थी।) रायसिंह सिरोही पर अधिकार कर वायुगढ गया और उसके थोड़े ही प्रयत्न से दुर्गवालो के छक्के छूट गए। सुलतान देवद ने परास्त होकर दुर्ग की कुंजी दे दी। राय रायसिंह कुछ मनुष्यों को वहीं छोड कर उनको साथ लेकर दरबार आए। २६वें वर्ष (जब मिर्जा हकीम के पजाब की सीमा पर आने की बातें चल रही थीं

१. ब्लौकमैन ने आबूगढ़ लिखा है।

और अकबर का उस प्रांत में जाना निश्चित हुआ तब) राय राय सिंह और दूसरे सरदारों का प्रसिद्ध हाथियों के साथ आगे भेजा। यह सुलतान मुराद के साथ (जो मिर्ज़ा हकीम का दमन करने के लिये नियत हुआ था) नियुक्त हुआ। उसी वर्ष के अंत में (जब शाही सेना राजधानी को लौटी तब) यह भी दूसरे जागीरदारों के साथ उसी प्रांत में नियत हुए। ३०वें वर्ष में यह इस्माइल कुलीखाँ के साथ बलोचिस्तान पर नियत हुआ[1]। ३१वें वर्ष में इसकी पुत्री का सुलतान सलीम से विवाह हुआ[2]। ३५वें वर्ष में इन्होंने अपने वतन बीकानेर जाने की छुट्टी ली और वहाँ से दरबार लौट कर ३६वें वर्ष के अंत में वीरों के साथ खानखानाँ अब्दुर्रहीम के सहायतार्थ (जो ठट्टा की विजय में लगे हुए थे) नियत हुआ। ३८वें वर्ष इसका समधी (जो राजा रामचंद्र बघेला[3] का पुत्र था और जिसे उक्त राजा की मृत्यु पर बादशाह ने कृपा करके अपने पैतृक राज्य बांधव जाने की आज्ञा दी थी) रास्ते में सुखासन से गिर पड़ा। यद्यपि दवा करने से उसका रक्त बन्द हो गया था, पर जब असमय में स्नान करने से रोग के बढ़ने पर उसकी मृत्यु हो गई, तब गुणग्राहक बादशाह ने उसके

---

१ इलि डाउ भा ५, पृ ४५।

२ इलि डाउ भा ५ पृ ४५४। इन दो संबंधों के सिवा राय-सिंह अकबर के साढ़ू भी लगते थे, क्योंकि दोनों को जैसल्मेर की राजकुमारियाँ ब्याही थीं।

३ ६४वाँ निबंध देखिए।

घर पर जाकर बहुत तरह की कृपाओं से उसे सम्मानित किया। इसके अनंतर नियमानुसार अलग हुआ।

इसी समय इसके एक नौकर के अत्याचार का समाचार बादशाह को मिला, जिससे उन्हें बुरा मालूम हुआ और उससे पूछ-ताछ करने के लिये उसे दरबार मे बुलवाया। राय रायसिंह ने उसे छिपाकर उसके भागने का प्रबन्ध कर दिया। इस कारण कुछ दिन इसके लिये दरबार जाना बन्द रहा, पर फिर इसे कृपापात्र होने पर सोरठ मिला और दक्षिण में इसकी नियुक्ति हुई[1]। अपनी भूल से स्वदेश बीकानेर मे पहुँच कर वहीं समय व्यतीत करने लगा। इसके अनतर जब चला, तब भी रास्ते मे ठहरने लगा। अकबर ने कई बार समझाया, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। तब उस ने सिलाहुद्दीन को इसके पास भेजा कि जब यह उस कार्य्य पर नहीं जाते तों दरबार लौट आवें। निरुपाय होकर राजधानी चले आये। अपने इस कुव्यवहार का ठीक उत्तर न रखने के कारण यह दरबार न जा सके। अत में बादशाह ने उसकी पहिली सेवाओं का विचार करके उसके दोष क्षमा कर उस पर विश्वास बढ़ाया। ४५वें वर्ष (जब बादशाही सेना बुरहानपुर मे थी और शेख अबुलफ़ज़ल नासिक की ओर नियत हुआ था तब) यह भी शेख के साथ नियत हुआ। इसके पुत्र दलपत ने इसके राज्य में विद्रोह कर रखा था, इसलिये यह उस पर आक्रमण

१. ३८वें वर्ष शाहज़ादा दानियाल, खानखानाँ आदि के साथ दक्षिण में नियुक्त हुआ था। (इलि० डा०, भा० ६, पृ० ९१)

फरल भेजा गया[१] । ४६वें वर्ष यह फिर लौट कर आया और ४८वें वर्ष शाहज़ादा सुलतान सलीम के साथ राणा की चढ़ाई पर नियत हुआ । अकबर के समय यह चार हज़ारी मन्सब तक पहुँचा था ; पर जहाँगीर के प्रथम ही वर्ष में यह पाँच हज़ारी हो गया ।

जब जहाँगीर ख़ुसरो का पीछा करने के लिये पंजाब चला, तब इसे महल के साथ आने की आज्ञा दी । यह बिना आज्ञा लिए रास्ते से अलग होकर अपने देश चला गया । ३रे वर्ष बादशाह के काबुल से लौटने पर शरीफ़ख़ाँ अमीरुल्उमरा के साथ दरबार में आया । ७वें वर्ष सन् १०२१ हि० (सन् १६१२ ई०) में इसकी मृत्यु हुई[१] । इसका बड़ा पुत्र दलपति था जिसे अकबर के समय पाँच सदी मन्सब प्राप्त हो चुका था । ३६वें वर्ष ठट्टा की चढ़ाई के लिये ख़ानख़ानाँ के सहायतार्थ नियत होकर युद्ध के दिन साहस नहीं होने से अपने अधीनस्थ सेना सहित खड़ा हुआ तमाशा देखता रहा । ४५वें वर्ष (जब अकबर दक्षिण में था और मुज़फ़्फ़र हुसेन मिर्ज़ा ऊँची नीची बातें देखने पर भी फ़तहुल्ला ख़्वाजा के साथ गड़बड़ मचा रहा था तब) यह मिरज़ा का

---

१ रायसिंह के मंत्री कर्मचंद मेहता तथा अन्य लोगों ने दलपति को गद्दी देने के लिये षड्यंत्र रचा था पर वह भेद खुल गया । इसके अनंतर पिता पुत्र में अनबन रहने लगी । जब इसने राज्य के कुछ परगनों पर अधिकार कर लिया तब ४५वें वर्ष सन् १६ ई में रायसिंह इसका दमन करने भेजे गए ।

दमन करने के बहाने अपने मनुष्यों के साथ स्वदेश लौट गया। ४६वें वर्ष इसका पिता इसे दड देने पर नियत हुआ। जब इसने दरबार में आने का प्रयत्न किया, तब बादशाह ने इसका दोष क्षमा करके इसे बुलाने का आज्ञापत्र भेज दिया। यह दरबार में आया। जहाँगीर के ३रे वर्ष खानेजहाँ लोदी के द्वारा इसे क्षमा प्राप्त हुई। पिता की मृत्यु पर जब दक्षिण से आया, तब खिलअत और राय की पदवी पाकर पिता का उत्तराधिकारी हुआ।

जहाँगीर नामा में लिखा है कि राय रायसिंह के एक पुत्र सूरसिंह नामक और था[1] और यद्यपि दलपति उसका बड़ा पुत्र था, पर वह चाहता था कि सूरसिंह ही उसका उत्तराधिकारी हो, क्योंकि उसकी माता पर उसका अधिक प्रेम था[2]। (जिस समय उसके पिता की मृत्यु का समाचार मिला, उसी समय) सूरसिंह ने मूर्खता से यह प्रकट किया कि पिता ने मुझे उत्तराधिकारी बना कर टीका दिया है। बादशाह को यह पसंद नहीं आया और उसने कहा कि यदि तुझे पिता ने टीका दिया है तो हम दलपत पर कृपा करते हैं[3]। यह कह कर बादशाह ने अपने हाथ से दलपत के माथे में टीका लगा कर उसके पिता का राज्य उसे

१ भारत के प्राचीन राजवंश में इनके चार पुत्रों को नाम दलपतिसिंह, सूरसिंह, कृष्णसिंह और भूपतिसिंह दिए हैं।

२. पत्नी प्रेम के सिवा दलपति का पिता के विरुद्ध कुचक्र चलाना भी एक प्रधान कारण था।

३ राजहठ का नमूना है। केवल सूरसिंह के कुछ उद्दतता के साथ पिता के विचार प्रकट करने के कारण जहाँगीर रुष्ट हो गया था।

मागीर म दे दिया। ४८वें वर्ष उसका मन्सब में पाँच सदी ५०० सवार बढ़ा कर मिर्जा रुस्तम सफवी (जो ठट्टा का शासनकर्ता नियुक्त हुआ था) के साथ नियत किया। ८वें वर्ष में जब समाचार मिला (कि वह अपने छोटे भाई सूरसिंह से युद्ध करके परास्त हुआ है) और उस ओर का फौजदार हाशिम खाँ खोस्ती उसे पकड़ कर लाया है, तब इस कारण कि उससे दूसरी बार भी बुराइयाँ हुई थीं, वह अपने दंड को पहुँचा[1]। इस कार्य्य के पुरस्कार में सूरसिंह का मन्सब पाँच सदी ५०० सवार का बढ़ाया गया। राव सूर का वृत्तांत अलग दिया हुआ है[2]।

---

१ राज्य पाने के बाद केवल एक बार दरबार आया था इससे बादशाह इससे अप्रसन्न थे। सूरसिंह से हारने तथा कैद होकर आने पर बादशाह ने इसे दंड दिया और सूरसिंह को बीकानेर का राजा बना दिया।

२ निबंध ६१वाँ देखिए।

७२—राजा रायसिंह सिसोदिया

यह महाराणा अमरसिंह के पुत्र महाराज भीम का पुत्र था। जहाँगीर के राज्य के ९वें वर्ष में जब शाहजादा शाहजहाँ राणा अमरसिंह पर चढ़ाई करने के लिये नियुक्त हुआ और राणा पराजित होने पर क्षमाप्रार्थी होकर शाहजादे से मिला, तब भीम शाहजादा की सेवा में नियुक्त हुआ[1]। इसने गुजरात के जमींदार का दमन करने, दक्षिण के युद्धों और गोंडवाने से कर वसूल करने में प्रयत्न कर साहस और वीरता से प्रसिद्धि प्राप्त की। जब बादशाह और शाहजादे में वैमनस्य हो गया, तब भी इन्होंने शाहजादे का साथ नहीं छोड़ा और उस समय (अब

---

१ मूता नैणसी की ख्यात, भा० १, पृ० ७३ में लिखा है—'राजा भीम (टोडे का) बड़ा राजपूत हुआ, राणा के आपत्काल में ठौड़ ठौड़ शाही सेना से लड़ाइयाँ कीं, फिर शाहजादा खुर्रम की चाकरी में रहा, स० १६७६ वि० में राजा की पदवी पाया और मेडता जागीर में मिला। बगावत में खुर्रम के साथ रहा। स० १६८१ कार्तिक सुदी पूर्व में ५ दस नदी पर शाहज़ादे पर्वेज और महाबत खाँ के साथ खुर्रम की लड़ाई हुई, वहाँ भीम काम आया। भीम के पुत्र—किशनसिंह, राजा रायसिंह स० १६६४ में राजाई पाया, पातावत नारायण दास का दोहिता था।' उसी ग्रंथ के पृ० ७१–७२ में भीम ने किस प्रकार वीरता से मुगल सेनापति अब्दुल्ला खाँ पर धावा किया था, इसका पूरा विवरण दिया हुआ है।

बढ़आया बंगाल से इलाहाबाद की ओर बढ़ा[1] और इधर से जहाँगीर की आज्ञा से सुलतान पर्वेज महाबत खाँ के साथ शाही सेना सहित पहुँच कर युद्ध को तैयार हुआ तब) वीरता से अन्य स्वामिभक्तों के साथ उसने प्राण निछावर कर दिए[2]।

शाहजहाँ की राजगद्दी के पहले वर्ष में रायसिंह दरबार म

१ जब शाहजहाँ बंगाल गया तब उसने राजा भीम के अधीन कुछ सेना पटना विजय करने भेजी। उस समय तक उसकी वीरता इतनी प्रसिद्ध हो गई थी कि वहाँ के फ़ौजदार इख़्तखार खाँ तथा शेख़ अलावद आदि उसके पहुँचने के पहले ही डर कर पटना दुर्ग छोड़ कर भाग गए। राजा भीम ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया और बिहार प्रांत पर शाहजहाँ का दखल हो गया। (इकबालनामाए जहाँगीरी इलि डाउ जि ६ पृ ४१)

२ राजा भीम बिहार प्रांत की विजय के अनंतर इलाहाबाद की ओर बढ़े और तत्समय वाक़ेआत जहाँगीरी के अनुसार उससे पाँच कोस पूर्व की ओर पहुँच कर ठहरे। सन १६२४ ई स १६८१ वि में इलाहाबाद की दूसरी ओर कूसी में दोनों सेनाओं का सामना हुआ। शाहजादा पर्वेज के साथ महाबत खाँ चालीस सहस्र सेना के साथ आ पहुँचा था और शाहजहाँ की ओर केवल दस सहस्र सेना थी। इसके पक्षपातों में युद्ध की राय कम थी पर राजा भीम की सम्मति युद्ध की ओर थी इससे अंत में युद्ध ही निश्चित हुआ। राजा ने अपने राजपूतों के साथ बड़ी वीरता से आक्रमण किया और लड़ते समय मारा गया। (इलि डाउ जि ६ पृ ४११–४) कूसी को इस ग्रन्थ में झाँसी सा लिखा है। काशी ना प्र सभा द्वारा प्रकाशित मुंशी देवीप्रसाद की ख़्यात के हिन्दी अनुवाद पृ ७१ में इस युद्ध का वर्णन है। अन्य-टिप्पणकार ने युद्धस्थल का नाम झाँसी लिखा है जो अशुद्ध है। कूसी ही में युद्ध हुआ था।

पहुँचा और अल्पवयस्क होने पर भी पिता की कृतियों के कारण यह अच्छा खिलअत, जड़ाऊ सरपेंच, जड़ाऊ जमधर, दो हजारी हजार सवार का मन्सब, राजा की पदवी, घोड़ा, हाथी और बीस सहस्र रुपया पाकर सम्मानित हुआ। ५ वर्ष एक हजारी २०० सवार का मन्सब बढ़ा। छठे वर्ष शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ (जो जुझारसिंह का दमन करने के लिये नियुक्त की गई सेना के सहायतार्थ नियत हुआ था) इसकी नियुक्ति हुई। ९वें वर्ष इसके मन्सब में ३०० सवार बढ़ाए गए। १२वें वर्ष यह शाहजादा दारा शिकोह के साथ कंधार गया। १४वें वर्ष इसे डंका मिला और सईद खाँ जफरजंग के साथ जम्मू के जमींदार जगतसिंह को (जो विद्रोही हो गया था) दंड देने पर नियत हुआ। १५वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़ाकर चार हजारी दो हजार सवार का कर दिया गया और यह शाहजादा दारा शिकोह के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ। १८वें वर्ष (सन् १६४५ ई०) में अमीरुल्उमरा अलीमर्दां खाँ के साथ बलख और बदख्शाँ की चढाई पर नियत होकर शाहजादा मुरादबख्श के साथ वहाँ गया।

बलख पर अधिकार होने के अनंतर जब पूर्वोक्त शाहजादा का मन वहाँ से उचाट हो गया और वह दरबार को लौटा, तब यह भी पेशावर चला आया, पर वहीं (क्योंकि इस चढ़ाई पर नियुक्त मनुष्यों को अटक पार करने से मना किया गया था) ठहर गया। इसके अनन्तर यह शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर

के साथ यहाँ से बलख और बदख्शाँ लौटा और उजबगों के युद्ध में वीरता दिखलाई। शाहजादा के उस प्रांत से लौटने पर इसने घर जाने की छुट्टी पाई। २२वें वर्ष शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर की अधीनता में कंधार की चढ़ाई पर गया जहाँ से रुस्तम खाँ के साथ कजिलबाशों का दमन करने के लिए आगे बढ़ कर अच्छा कार्य दिखलाया। इससे इसका मन्सब बढ़ कर पाँच हजारी ढाई हजार सवार का हो गया। दूसरी बार पूर्वोक्त शाहजादे के साथ उसी चढ़ाई पर नियुक्त हुआ, पर बीमार हो जाने से पेशावर ही में यह रह गया। शाही सेना के पास पहुँचने पर दरबार गया और घर जाने की छुट्टी पाई। तीसरी बार यह शाहजादा दारा शिकोह के साथ कंधार की चढ़ाई पर गया और वहाँ से यह रुस्तम खाँ के साथ बुस्त दुर्ग विजय करने गया। २८वें वर्ष अल्लामी सादुल्ला खाँ के साथ यह चित्तौड़ तोड़ने गया। ३१वें वर्ष मुअज्जम खाँ आदि के साथ दक्षिण प्रांत में शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के पास जाकर आदिलशाहियों के युद्ध में इसने वीरता दिखलाई और अपने प्रतिद्वंद्वी को मारकर यह बहुत घायल हो गया। इसके पुरस्कार में इसका मन्सब पाँच हजारी चार हजार का हो गया। अच्छा खिलअत, जड़ाऊ तलवार, सोने की जीन सहित अरबी घोड़ा, हाथी और हथिनी पाई। साथ ही एक लाख रुपया सिक्का पाकर इसे घर जाने की छुट्टी मिल गई। महाराज जसवंतसिंह और औरंगजेब के बीच के युद्ध में राजपूतों के साथ दाहिने भाग में था। पर जब युद्ध बिगड़ता देखा, तब हँसी होने का

विचार न कर यह अपने देश को चल दिया। दारा शिकोह के साथ युद्ध होने पर यह आलमगीर के दरबार में गया। दारा शिकोह के साथ दूसरे युद्ध के समय जब इसको जागीर कस्बः तोर' मे बचे हुए सामान और बेगमो को छोड़ने का ठीक हुआ, तब यह वहाँ का रक्षक नियुक्त हुआ। २रे वर्ष अमीरुलउमरा शायस्ता खाँ के साथ और ७वें वर्ष मिर्जा राजा जयसिंह के साथ दक्षिण में नियुक्त होकर शिवा जी भोसला के दुर्ग लेने और आदिल खाँ के राज्य के कुछ भागों पर अधिकार करने में अच्छी वीरता दिखलाने के कारण इसका मन्सब पाँच हजारी पाँच हजार सवार का, जिसके पाँच सौ सवार दो और तीन घोड़ेवाले थे, हो गया। १०वें वर्ष शाहजादा मुअज्जम के साथ उसी प्रांत को जाकर, १६वें वर्ष सन् १०८३ हि० (सन १६७२ ई०) में यह वहीं मर गया। इसके पुत्र मानसिंह, महासिंह और अनूपसिंह ने दरबार आकर खिलअत पाया[१]।

---

१. मआसिरे आलमगीरी में लिखा है—'मानसिंह, जहानसिंह तथा अनूपसिंह, राजा रायसिंह के बेटे, बाप के मरने पर हुजूर में आए। तीनों को खिलअत मिले।' एक प्रति में जहानसिंह के स्थान पर माहसिंह है, पर ठीक नाम महासिंह ही है। हिंदी अनु०, भा० २, पृ० ४५।

७३—रूपसिंह राठौर

यह राजा सूरजसिंह के छोटे भाई किशनसिंह राठौर का पौत्र था[1]। शाहजहाँ के राजत्व के १७वें वर्ष (सं० १७०० वि०, सन् १६४४ ई०) में जब इसके चाचा हरीसिंह की मृत्यु हो गई और उसे कोई पुत्र नहीं था, तब बादशाह ने उसके भतीजे रूपसिंह को खिलअत, मन्सब की वृद्धि और चाँदी के साज सहित घोड़ा प्रदान कर कृष्णगढ़ जागीर में दिया। १८वें वर्ष में बादशाह की बड़ी पुत्री बेगम साहिबा के अच्छे होने की खुशी में (जो दीपक की लौ के आँचल में लग जाने से जल गई थी और अच्छी नहीं हुई थी) इसका मन्सब बढ़ कर एक हजारी ७०० सवार का हो गया। १९वें वर्ष में यह शाहजादा मुरादबख्श के साथ बलख और बदख्शाँ की विजय को गया। बलख पहुँचने पर जब वहाँ का शासनकर्ता नज़र मुहम्मद खाँ बिना सामना

---

१ जोधपुर नरेश महाराज उदयसिंह मोटा राजा के पुत्र कृष्णसिंह ने कृष्णगढ़ राज्य स्थापित किया था जिसका वृत्तांत ६वें निबंध में दिया गया है। इनके पुत्र सहसमल तथा जगमाल क्रमशः गद्दी पर बैठे पर निस्संतान मरे। तब कृष्णसिंह के छोटे पुत्र हरिसिंह भी गद्दी पर बैठे, पर वे भी निस्संतान मर गए। इसके बाद हरिसिंह के बड़े भाई भारमल के पुत्र रूपसिंह २१ वर्ष की अवस्था में सन् १६४३ ई० में गद्दी पर बैठे।

किए भाग गया और शाहज़ादे के आज्ञानुसार बहादुर खाँ और एसालत खाँ उसका पीछा करने गए, तब यह भी बिना आज्ञा के साथ चला गया। नजर मुहम्मद खाँ के युद्ध और अलअमानों को दड देने के अनतर (कि दूसरी बार ऐसा हुआ था) पुरस्कार मे २० वें वर्ष इसका मन्सब डेढ़ हज़ारी १००० सवार का कर दिया गया। २१ वें वर्ष इसे झडा मिला। २२ वें वर्ष ढाई हजारी १२०० सवार का मन्सब पा कर यह शाहज़ादा मुहम्मद औरगजेब बहादुर के साथ कधार प्रांत को गया। वहाँ पहुँचने पर रुस्तम खाँ के साथ जमींदावर पहुँच कर कज़िलबाशों के युद्ध में अच्छा प्रयत्न किया। २३ वें वर्ष मे इसका मन्सब बढ़ कर तीन हजारी १५०० सवार का हो गया। २५वें वर्ष में एक हजारी ५०० सवार का मन्सब और बढ़ाया गया और डंका प्रदान करके पूर्वोक्त शाहज़ादे के साथ कधार की चढ़ाई पर नियुक्त किया। २६ वें वर्ष तीसरी बार शाहजादा दारा शिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर नियुक्त होकर यह चार हजारी २५०० सवार के मन्सब तक पहुँच गया। २८वें वर्ष में यह अल्लामी सादुल्ला खाँ के साथ चित्तौड़ को नष्ट करने पर नियत हुआ और इसका मन्सब बढ़ कर चार हजारी ३००० सवार का हुआ। चित्तौड़ सरकार के अतर्गत परगना माडलगढ़, जिसकी आमदनी अस्सी लाख दाम थी, राणा के बदले इसे जागीर में मिला। सामूगढ़ के युद्ध में यह दाराशिकोह के हरावल में था। युद्ध में वीरता दिखलाते हुए शत्रु के तोपखाने, हरावल और मध्यस्थ सेना को पार

करके औरंगज़ेब के हाथी के सामने यथा-संभव पहुँचने का यत्न किया। अंत में पैदल होकर बादशाही हाथी के नीचे इस इच्छा से पहुँचा कि अम्मारी का रस्सा काट दे। बादशाह ने उसका साहस देखकर अपने मनुष्यों को कितना मना किया (कि उसे मारें नहीं जीवित पकड़ लें) पर उन लोगों ने अवसर न देकर उसे सन् १०६८ हि० (सं० १७१५ वि०, सन् १६५८ ई०) में मार डाला[1]। उसका पुत्र मानसिंह औरंगज़ेब के राजत्व में तीन हज़ारी मन्सब तक पहुँच कर ४५वें वर्ष जुल्फिकार खाँ के साथ दुर्ग जिंजी की विजय को गया[2]। जब बहादुर शाह बादशाह हुआ तब कृष्णगढ़ का सरदार राजसिंह था। राजा बहादुर (जो सुलतान अज़ीमुश्शान का मामा था और काबुल में बहादुर शाह के साथ अपने राज्य की आशा में लगा था) हुआ, तब यह तीन हज़ारी मन्सब पर था। ग्रंथ-लेखन के समय राजा बहादुर का छोटा पुत्र बहादुरसिंह वहाँ का राजा था।

---

१ इन्होंने मनोहरा स्थान पर रूपनगर बसाया था। ये श्रीकृष्ण जी के उपासक थे और इन्होंने वृन्दावन से भी कल्याण जी की मूर्ति लाकर रूपनगर में स्थापित की थी। इनकी वीरता का बखान हर कवि ने रूपसिंह जी की वचनिका नामक पुस्तक में किया है।

२ इनकी मृत्यु सन् १७०६ ई० में हुई। इनके पुत्र राजसिंह १९ वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठे। राजसिंह के पाँच पुत्र थे जिनमें से सबसे बड़े सामंतसिंह इनकी मृत्यु पर राजा हुए। इनके पुत्र सरदारसिंह के निस्संतान मरने पर सामंतसिंह के छोटे भाई बहादुरसिंह राज्य पर अभिषिक्त हुए।

७४—रूपसी

यह राजा बिहारीमल (भारमल) का भतीजा था[१]। ६ठे वर्ष के अंत मे अकबर की सेवा में पहुँच कर उसका कृपापात्र हुआ। २० वें वर्ष (जब मिरज़ा सुलेमान ने सहायता पाने से निराश होकर काबे की ओर जाने की इच्छा की तब) यह मिरज़ा के साथ रक्षक नियत हुआ। इसका पुत्र जयमल अपने संबंधियों के पहिले बादशाह की सेवा मे पहुँचा और मिरज़ा शरफ़ुद्दीन हुसेन (जो अजमेर के पास जागीरदार था) के साथ कुछ दिन रहा। मिरज़ा ने उसे मेरठ का थानेदार बना दिया था। जब उसका कार्य बिगड़ा[२] तब १७ वें वर्ष (सं० १६२९ वि०, सन् १५७२ ई०) में बादशाह के पास पहुँच कर लौटनेवाली सेना के साथ (जो खानेकलाँ के सेनापतित्व मे गुजरात पर नियत हुई थी) गया। गुजरात के धावे में (जो १८ वें वर्ष मे हुआ था) यह भी बादशाह के साथ था। २१वें वर्ष औरों के साथ राव सुर्जन के पुत्र दूदा (जिसने अपने देश बूँदी मे जाकर लूट मार आरंभ कर दी थी) को दंड देने पर नियत हुआ।

१ अबुल फ़ज़ल ने इसका नाम रूपसी बैरागी लिखा है और इसे भारमल का भाई बतलाया है।

२ जब शरफ़ुद्दीन ने विद्रोह किया, तब जयमल दरबार चला गया।

वहाँ से डाक के घोड़ों पर बंगाल भेजा गया कि वहाँ के सरदारों को समझावे और समाचार कहे। फुर्ती से यात्रा करने और सूर्य्य की गर्मी के कारण चौसा घाट पहुँच कर मर गया।

कहते हैं कि उसकी स्त्री ने (जो मोटा राजा की पुत्री थी) यह समाचार सुन कर सती की प्रथा पर (जो हिंदुस्थान में जारी थी) घृणा प्रकट की। उसके पुत्र उदयसिंह ने कुछ लोगों की सम्मति से यह चाहा कि उसकी इच्छा या अनिच्छा का विचार न करके उसे जलावें। जब बादशाह ने यह वृत्तांत सुना तब वहाँ से (कि समय नहीं था) स्वयं घोड़े पर सवार होकर उधर चले, यहाँ तक कि चौकीदार भी साथ न पहुँच सके। जब पास पहुँचे तब जगन्नाथ और रायसाल[1] उसे पकड़ कर सामने लाए। उसे *(कि उसके मुख से घबराहट झलकती थी)* इस कारण कारागार भेजा।

अकबरनामा का लेखक लिखता है कि जब बादशाह धावा कर अहमदाबाद पहुँचे, तब एक दिन (जब कि मुहम्मद हुसेन मिरजा से युद्ध हो रहा था) जयमल भारी कवच पहने हुए था जिससे उसपर अकबर ने दया करके अपने अस्त्रालय से उसे जिरह दिया और उसका कवच मालदेव के पौत्र कर्ण को (जो कुछ नहीं पहने था) दे दिया। रूपसी ने यह वृत्तांत जान कर जोधेपन से अपना कवच लाने के लिये आदमी भेजा। बादशाह ने कहा कि मैंने उसका बदला दे दिया है। रूपसी ने जोधेपन को और

१ इनके वृत्तांत के लिये २१वाँ तथा ७ वाँ निबंध देखिए।

बढ़ा कर अस्त्र (जो शरीर पर था) उतार दिया। बादशाह ने भी (कि प्रतिष्ठा करनी चाहिए) स्थान के विचार से अपना कवच भी उतार दिया कि जब मेरे सेवक बिना कवच युद्ध कर रहे हैं, तब मेरा पहनना उचित नहीं है। राजा भगवतदास ने यह समाचार सुन कर प्रार्थना की और उसके भाँग पीने की बात कह कर उसका दोष क्षमा कराया। बादशाह ने उसकी प्रार्थना पर उसे क्षमा कर दिया।

७५—राजा रोज़अफ़ज़ूँ

यह बिहार प्रांत के परगनों के मुख्याधिकारी राजा संग्राम[1] का पुत्र था। अकबर के समय में जब शाहबाज़ खाँ कंबू पूर्व के प्रांत में नियुक्त हुआ और बादशाही सेना दुर्ग महदा के (जो उसके अधीन था) पास से गुज़री, तब एकाएक खाँ ने उस दुर्ग को घेर लिया। उसने दुर्ग को ख़ाली सौंप कर अपना विश्वास बढ़ाया। यद्यपि यह सेवा में नहीं आया था, पर वहाँ के शासन कर्त्ताओं से बराबर बर्ताव रखता था। जहाँगीर के राज्यत्व के प्रथम वर्ष (सन् १६०५ ई०) में पूर्वोक्त प्रांत के नाज़िम जहाँगीर कुली खाँ लाला बेग ने उस पर चढ़ाई की। वह युद्ध में गोली खा कर मर गया। राजा रोज़ अफ़ज़ूँ[2] बुद्धिमानी से उस बादशाह की सेवा में आकर मुसल्मान हो गया। ८वें वर्ष में देश का शासन और हाथी पाने से यह सम्मानित हुआ। उस बादशाह

१ यह खड़गपुर का राजा था। (ब्लाकमैन कृत आईन अकबरी पृ० ४४६) इसने बिहार के सूबेदार मुज़फ़्फ़र खाँ के एक संबंधी ख़्वाजा शम्सुद्दीन की खाँ के विरोधियों से रक्षा की थी।

२ यह संग्राम का पुत्र था जिसे मुसलमान होने पर यह नाम मिला था। इसका अर्थ प्रति दिन बढ़नेवाला है। इसके हिंदू नाम का पता नहीं लगा।

के राजत्व के अंत मे डेढ़ हजारी ८०० सवार के मन्सब तक पहुँचा था। शाहजहाँ के राजत्व के प्रथम वर्ष में महाबत खाँ खानखानाँ के साथ बलख के शासनकर्ता नजरमुहम्मद खाँ का (जिसने विद्रोह किया था) दमन करने के लिये वह काबुल प्रांत में भेजा गया और उसके अनंतर जुझारसिंह बुँदेला को दंड देने के लिये नियुक्त हुआ था। ३रे वर्ष आज़म खाँ के साथ सेना में (जो शायस्ता खाँ की अधीनता में थी) जाने पर इसके मन्सब में एक सौ सवार की उन्नति हुई। ४थे वर्ष यह नसीरी खाँ के साथ नानदेर की ओर भेजा गया। ६ठे वर्ष मुहम्मद शुजाअ के साथ दक्षिण की चढ़ाई मे नियुक्त होकर इसने परेंदा दुर्ग के घेरे में अच्छा काम किया। ८वें वर्ष में इसका मन्सब बढ कर दो हजारी १००० सवार का हो गया। उसी वर्ष सन् १०४४ हि० में इसकी मृत्यु हुई। उसका पुत्र बेहरोज[१] शाहजहाँ के राज्य के ३०वें वर्ष तक सात सदी ७०० सवार के मन्सब तक पहुँचा था और कंधार की चढ़ाई तथा दूसरे कामो पर नियुक्त हो चुका था। औरंगजेब के समय में भी यह शाहजादा मुहम्मद सुल्तान और मुअज्जम खाँ[२] के साथ सेना को दूसरी ओर से बंगाल ले जाने के लिये नियत हुआ। शुजाअ के साथ युद्धों में (जिसने औरंगजेब की सेना का सामना किया था) भी मुअज्जम खाँ के

१. बेहरोज भी फारसी शब्द है। इसका तात्पर्य है—प्रति दिन उत्तमतर होनेवाला।

२ मीर जुमला मुअज्जम खाँ से अभिप्राय है।

साथ अच्छा कार्य दिखलाया। ४थे वर्ष बिहार प्रांत के पास पालामऊ के लेने में बहुत प्रयत्न किया था। ८वें वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई।

७६—राय लूनकरण कछवाहा

यह शेखावत कछवाहा था। परगना साँभर में इसकी जमींदारी थी। यह अकबर की सेवा में पहुँच कर उसका कृपापात्र हुआ। २१वें वर्ष में कुँअर मानसिंह के साथ नियत होकर यह उसी वर्ष राजा बीरबर के साथ राजा डूँगरपुर की पुत्री को लाने के लिये (जो चाहता था कि वह बादशाही महल में ली जाय) भेजा गया। २२ वें वर्ष में उसके साथ लौटने पर इसने बादशाह को भेंट दी। २४ वें वर्ष राजा टोडरमल के साथ यह पश्चिमी प्रांत के विद्रोहियों को दंड देने पर नियत हुआ। २८वें वर्ष यह बैराम खाँ के पुत्र मिरजा खाँ के साथ गुजरात गया था। इसका पुत्र राय मनोहरदास बादशाह का अधिक कृपापात्र था। २२वें वर्ष में (जिस समय बादशाही सेना आमेर में थी) यह समाचार मिला कि उस प्रांत में एक पुराना नगर है, जो कई घटनाओं के कारण खँडहर हो रहा है[१]। बादशाह ने उसे बनवाने की दृढ़ इच्छा करके उसकी नींव डाली और कई सरदार उसे बनवाने पर नियत हुए। थोड़े समय में वह कार्य पूरा हो गया। इस कारण (कि उसकी जमींदारी लूनकरण को

१. ब्लोकमैन कृत आईन में लिखा है कि इसी मनोहरदास ने यह समाचार दिया था और उसे बसाने की अपनी इच्छा प्रकट की थी।

अधीनता में थी) उसके पुत्र के नाम पर उसका नाम मनोहर-नगर[1] रखा।

जब मुजफ्फर हुसेन मिर्ज़ा बुरे विचार से भागा और कोई सरदार उसका पीछा करने का साहस नहीं कर सका, तब यह राय दुर्गा[2] के साथ ९८१ वर्ष में इस कार्य पर नियत हुआ। यद्यपि इच्छानुसार वैसी न मिर्ज़ा को पकड़ रखा था, पर यह भी सुल्तानपुर के पास पहुँच गया था। अकबर की मृत्यु पर जहाँगीर का कृपापात्र होकर पहिले वर्ष सुल्तान पर्वेज के साथ राणा अमरसिंह को दंड देने गया। २रे वर्ष इसे हजारी ५६० सवार का मन्सब मिला। बहुत दिनों तक दक्षिण में नियुक्त रहकर ११वें वर्ष (सन् १६१६ ई०) में यह वहीं मर गया। इसके पुत्र[3] को पाँच सदी ६०० सवार का मन्सब मिला था। पूर्वोक्त राय शेर भी कहता था और उपनाम 'तौसन' रखा था[4]। यह शेर उसी का है—

> यगाने बूदनो यकता शुदन जे चश्म आमोख्त।
> कि हर दो चश्म जुदा ओ जुदा नमी न गिरद॥

---

१ मानचित्रों में अमेर के उत्तर कुछ दूर पर एक मनोहरपुर मिलता है।

२. राय दुर्गा सिसोदिया जिसकी जीवनी १४वें निबंध में दी गई है।

३ इसका नाम पृथ्वीचंद था जिसे राय की पदवी भी मिली थी।

४ यह फारसी का कवि था और दरबार में मिर्ज़ा मनोहर कहा जाता था। तौसन का अर्थ घोड़े का चपल और तेज़ होना है।

अर्थ—अकेला होना और एक हो रहना आँखो से सीखो कि दोनो आँखें अलग अलग आँसू कभी नहीं गिरातीं।

इसके दो भाई ईश्वरदास और साँवलदास से इसका वश चला, क्योकि इसे स्वय एक भी सतान नहीं थो।

७७—राजा विक्रमाजीत

इसका नाम पत्रदास[1] था और यह खत्रि का सत्री था। आरम्भ में यह अकबर के हाथीखाने का मुशरिफ हुआ। पहिले इसे राय रायान की पदवी मिली और फिर इसने पद प्राप्त किया। १२वें वर्ष में चित्तौड़ दुर्ग के घेरे में यह इसन खाँ चगत्ता के साथ बादशाही मोर्चे का प्रबन्धकर्ता नियत हुआ। २४वें वर्ष में मीर अबहम के साथ बंगाल का दीवान नियुक्त हुआ। २५वें वर्ष में जब विद्रोहियों ने मुजफ्फर खाँ को मार डाला और इसे कैद कर दिया, तब यह किसी उपाय से निकल भागा और कुछ दिन तक उसी प्रान्त में काम करता रहा। ३१वें वर्ष में यह बिहार का दीवान बनाया गया। ३८वें वर्ष में यह बांधव दुर्ग (जो अपने समय का अजेय दुर्ग था और राजा रामचन्द्र बघेला और उसके पुत्र की मृत्यु पर लोगों ने उसके अल्पवयस्क पौत्र को जिसका उत्तराधिकारी बना दिया था) विजय करने के लिये नियुक्त हुआ। आठ महीने पचीस दिन के घेरे के अनन्तर सामान न रहने से दुर्गवाले बाहर निकल आए और दुर्ग विजय हो गया। ४१वें

---

[1] इलियट डाउसन के प्रसिद्ध इतिहास में फारसी अक्षरों की कृपा से पत्रदास का इख्लास हो गया है।

वर्ष में दीवाने-कुल[1] बनाया गया। ४४वें वर्ष में उस पद से हटाया जाकर यह फिर बांधव भेजा गया। ४६वें वर्ष में इसने तीन हज़ारी मन्सब पाया। ४७वें वर्ष में जब अकबर को वीरसिंह देव बुँदेला के द्वारा शेख अबुल फ़जल के मारे जाने का समाचार मिला, तब इसे आज्ञा हुई कि उस हत्याकारी को नष्ट करने का प्रयत्न करे, और जब तक उसका सिर न भेजे, इस काम से हाथ न उठावे[2]। राजा ने कई युद्धों में वीरता दिखला कर उसे पराजित किया और जब वह दुर्ग एरिछ में जा बैठा, तब उसे वहाँ जा घेरा। जब वह दुर्ग की दीवार तोड़ कर बाहर निकला, तब राजा ने उसका पीछा किया, पर वह जगलों में चला गया। ४८वें वर्ष में राजा के आज्ञानुसार दरबार आकर सलाम किया। ४९वें वर्ष में पाँच हजारी मन्सब और राजा विक्रमाजीत की पदवी पाकर सम्मानित हुआ[3]। जहाँगीर के बादशाह होने पर यह (मीर-

---

१. ब्लाकमैन ने दीवानेकुल को "दीवाने काबुल" पढ़ कर अनुवाद किया है। (आईन पृ० ४७०) इसके दीवानेकुल होने का उल्लेख अकबरनामा भा० ३, पृ० ७४१, ७४८ में है।

२ यह और राय रायसिंह ससैन्य उस समय अंतरी ही में थे, जो अबुलफजल के मारे जाने के स्थान के पास ही है।

३. जहाँगीर लिखता है कि 'हरदास राय, जिसे पिता जो ने राय रायान की पदवी और हमने राजा विक्रमाजीत की पदवी दी थी, हमारे द्वारा पुरस्कृत होकर सम्मानित हुआ। हमने उसे मीर आतिश बना कर ५०००० तोपची और ३००० तोप-गाड़ियाँ तैयार रखने की आज्ञा दी।' इलि० डा०, भा० ६, पृ० २८७।

आतिश) तोपखाने का मुख्य अध्यक्ष नियत हुआ और इसे ५०००० तोपवाले सैनिक एकत्र करने की आज्ञा मिली। १५ परगने[1] इन सब के व्यय के लिये जागीर में नियत हुए। जब मुजफ्फर गुजराती के पुत्रों[2] के बलवे और वहीम बहादुर के मारे जाने का समाचार गुजरात से आया, तब यह बहुत सी सेना के साथ उधर भेजा गया और इसको आज्ञा मिली कि वह कुछ को (जो अहमदाबाद में उसके पास आवें) एक सदी तक का मन्सब दे सकता है, और जो इससे अधिक की योग्यता रखता हो, उसका वृत्तान्त लिखे। इसकी मृत्यु का समय ज्ञात नहीं हुआ[3]।

---

१ जहाँगीर अपने आत्मचरित में इन परगनों के देने का उल्लेख नहीं करता।

२. तुजुके जहाँगीरी पृ० ११ में प्रथम वर्ष में केवल एक पुत्र का तथा वहीम के मारे जाने का वृत्तांत लिखा है। वहीम का मिस्र तथा शाहजाम पाठांतर मिलता है। यूज-बाशी अर्थात् एक सदी तक के मन्सब देने का भी उल्लेख उसमें नहीं है। मीराते अहमदी पृ० १६२ में मुजफ्फर के दो पुत्रों तथा दो कन्याओं का वृत्त दिया है।

३ इकबालनामा तथा तुजुके-जहाँगीरी पृ० ४ में वर्णित पत्र मोहम्मदशाह इसका पुत्र ज्ञात होता है। जहाँगीर इसके एक पुत्र नस्रुल्ला का भी नाम लेता है, जिसे उसने चकोर कैद किया था।

७८—राजा विक्रमाजीत रायरायान

यह सुन्दरदास नामक ब्राह्मण था[१]। युवराज शाहजहाँ के सेवकों में यह एक लेखक था और कार्यदक्ष होने के कारण मीरे-सामान बनाया गया था। चतुरता और साहस के साथ कई बड़े बड़े कार्य करके लेखनी से तलवार के काम पर प्रतिष्ठित हुआ। राणा की चढ़ाई पर इसने लड़ाकू सेना के साथ उसके ग्रामों पर धावे करके लूट-मार की और कुछ को मारा तथा कुछ को क़ैद किया। इसी के द्वारा राणा ने शाहजादे की अधीनता स्वीकृत कर ली। बादशाह ने इन अच्छे कार्यों के पुरस्कार में राय सुन्दर-दास का मन्सब बढ़ा दिया और उसे राय रायान की पदवी दी[२]। जब शाहज़ादा पहिली बार दक्षिण पर नियत हुआ, तब इसको अफ़ज़ल ख़ाँ के साथ इब्राहीम आदिलशाह को समझाने के लिये बीजापुर भेजा। उसने यह कार्य ऐसी अच्छी तरह से पूरा किया कि पन्द्रह लाख रुपये का सिक्का और सामान भेंट मे लाया। दो लाख रुपए का (जो आदिलशाह ने उसे दिया था) एक लाल जिसकी तौल सत्रह मिसकाल और साढ़े पाँच सुर्ख़ थी, (जो पानी, चमक, रंग, काट छाँट और स्वच्छता में अद्वितीय

१ तुज़ुक में लिखा है कि यह वाघव का रहनेवाला था।

२ वाक़िआते जहाँगीरी, इलि० डा०, भा० ६, पृ० ३३६।

था) गोवा बन्दर से क्रय किया और सेवा के समय शाहजादे को भेंट किया। शाहजादे ने अपने पिता को जो भेंट भेजी थी, उसका इसे नायक बनाया। इसके लिये राजा का मन्सब बढ़ाया गया और राजा विक्रमाजीत[1] (जो हिन्दोस्थान की श्रेष्ठ पदवियों में से है) की पदवी दी गई।

इसी वर्ष सन् १०२६ हि० (१६१७ ई०) में जब शाहजहाँ की जागीर गुजरात में नियत हुई, तब राजा उसका प्रतिनिधि होकर उस प्रांत के शासन पर नियुक्त हुआ। इसने जाम और बिहार (जो गुजरात प्रान्त के भारी जमींदार हैं) पर चढ़ाई की। पहिले के राज्य की सीमा एक ओर सोरठ तक और दूसरी ओर समुद्र तक पहुँची है और दूसरा राज्य समुद्र के किनारे पर ठट्टा की ओर है। दोनों वैभवशाली हैं और हर एक, जो उनका अध्यक्ष होता है, जाम और बिहारा कहलाता है। अब तक ये लोग किसी सुलतान के यहाँ नहीं गए थे, पर राजा के प्रयत्न से इन दोनों ने अहमदाबाद जाकर जहाँगीर को भेंट दी।

जब राजा बासू का पुत्र सूरजमल (जो काँगड़ा विजय करने के लिये भेजा गया था) विद्रोही होकर गड़बड़ मचाने लगा, तब यह राजा १३वें वर्ष के अन्त में सेना के साथ, जिसमें शाहजहाँ और बादशाह के सैनिक जैसे शहबाज खाँ लोदी आदि थे, उस अजेय दुर्ग को (जिस पर दिल्ली के किसी सुलतान की विजय का झंडा नहीं पहुँचा था) विजय करने के लिये भेजा गया। राजा ने पहिले

[1] तुजुके जहाँगीरी, अनु० पृ० ४०१।

सूरजमल का दमन करने का विचार करके उस पर चढ़ाई की और थोड़े समय में उसे पराजित करके भगा दिया और दुर्ग मऊ और महरी (जो उसका वास-स्थान था) विजय किया। इसके पुरस्कार में इसे डंका मिला। १६वें वर्ष में सन् १०२९ हि० (१६२० ई०) के शव्वाल महीने में यह काँगड़ा दुर्ग (जिसे नगरकोट भी कहते हैं) घेरने के लिये भेजा गया। जब दुर्गवालों को इसने कड़ाई के साथ घेर लिया, तब उन लोगों ने कष्ट पाकर १ मुहर्रम १०३० हि० (सन् १६२१ ई०) को एक वर्ष दो महीने और कुछ दिनों पर अपनी रक्षा के लिये वचन लेकर दुर्ग दे दिया।

यह दुर्ग अजेयता और दृढ़ता के लिये सुप्रसिद्ध है और लाहौर के उत्तरीय पार्वत्य प्रान्त में स्थित है। पंजाब प्रान्त के जमींदारों का यह विश्वास है कि इस दुर्ग के बनाने का समय सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर के सिवा और कोई नहीं जानता। इस बीच यह दुर्ग न अन्य किसी जाति के अधिकार में गया और न किसी दूसरे के हाथ में गया। मुसलमान सुलतानों में सुलतान फ़ीरोज़शाह बड़ी तैयारी के साथ इसे विजय करने गया था। बहुत दिन घेरा रहने पर जब उसे विश्वास हो गया (कि इस दुर्ग का विजय करना असम्भव है[1] तब) राजा से भेंट ले कर इस कार्य से हाथ हटा लिया।

---

१ शम्स शीराज के इतिहास में लिखा है कि राजा ने दुर्ग दे दिया था। देखिए इलि० डा०, भा० ३, पृ० ३१७।

कहते हैं कि जब राजा सुलतान का कुछ मनुष्यों के साथ दुर्ग के भीतर आतिथ्य करने लिया ले गया, तब सुलतान ने राजा से कहा कि इस प्रकार मुझे दुर्ग में ले आना नीति के विरुद्ध है। यदि ये लोग, जो मेरे साथ हैं, तुम पर आक्रमण करें और दुर्ग पर अधिकार कर लें तो क्या उपाय है? राजा ने अपने मनुष्यों को कुछ संकेत किया जिस पर झुण्ड के झुण्ड शस्त्रधारी मनुष्य गुप्त स्थानों से बाहर निकल आए। यह देखकर सुलतान सशङ्कित हुआ। तब राजा ने कहा कि सेवा के सिवा मेरा और कुछ विचार नहीं है, पर ऐसे समय में सावधान रहना उचित है। इसके अनन्तर कोई सुलतान सेना के ओर से इस दुर्ग पर अधिकार नहीं कर सका।

अकबर ने प्रान्तों को विजय करने की उत्सुकता रखते हुए और इतने दिनों तक राज्य करने पर भी (साथ ही यह कि यह उसके राज्य की सीमा पर था) उस पर अधिकार नहीं किया। एक बार (कि वहाँ का राजा उसके क्रोध का पात्र हुआ था) यह प्रान्त राजा बीरबल को मिला था जिसे अधिकार दिलाने के लिये एक सेना हुसेन कुली खाँ खानजहाँ पंजाब के सूबेदार के अधीन नियत हुई थी। जिस समय दुर्गवालों के लिये घेरा असह्य हो रहा था, उसी समय इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा का बलवा उठ खड़ा हुआ था, जिससे निरुपाय होकर हुसेन कुली खाँ ने राजा से सन्धि कर उसका पीछा किया। इसके अनन्तर वहाँ के अध्यक्ष राजा जयचन्द ने भेंट भेज कर और दरबार आकर अधीनता स्वीकृत करली।

२६वें वर्ष सन् ९९० हि० (१५८२ ई०) के आरम्भ में (जब सिन्ध नदी के प्रान्त की ओर जा रहा था तब) अकबर रास्ते ही से नगरकोट के मन्दिर का आश्चर्यजनक दृश्य देखने (जो उस प्रान्त का प्राचीन मन्दिर है) के लिये वहाँ गया। पहिले पड़ाव पर राजा जयचंद सेवा में आया। रात्रि देसूथ ग्राम में (जो राजा बीरबर की जागीर में है) व्यतीत हुई जहाँ उसी रात्रि को वह आत्मशरीर (जिसके कितने अजीब कार्य्य बतलाए जाते हैं) उसे स्वप्न में दिखलाई पड़ा और बादशाह का बड़प्पन प्रकट करते हुए यह कार्य्य न करने के लिये उससे कहा। सुबह होते ही स्वप्न का हाल कह कर वह लौट गया। साथवालों को (जो रास्ते की कठिनाइयों और घाटियों के चढ़ाव उतार से घबरा गए थे और बादशाही इक़बाल के कारण, कि बहुत कम बोल सकते हैं, कुछ कह नहीं सकते थे) इससे बड़ी प्रसन्नता हुई[१]।

जब जहाँगीर बादशाह हुआ, तब इसे लेने के विचार से उसने पहिले शेख फ़रीद मुर्तजा खाँ को (जो पंजाब का सूबेदार था) इसे घेरने के लिये भेजा। वह इस कार्य्य को पूर्ण नहीं कर सका था कि उसकी मृत्यु हो गई। इसके अनंतर राजा सूरजमल इस कार्य्य पर नियत हुआ। प्रत्येक बात के होने का समय निर्दिष्ट है और प्रत्येक कार्य्य उसी समय के अधीन है, इससे यह भी विद्रोही हो गया। इसी समय युवराज शाहजादा के जाने और

१ अकबरनामा भा० ३, पृ० ३४८।

राजा विक्रमाजीत के प्रयत्न से यह दुर्ग में सुलतानाली गाँठ मद खुल गई और १६४ वर्ष में जहाँगीर दुर्ग में गए और मुसलमानी धर्म जारी कर मसजिद की नींव डाली।

यह दुर्ग पहाड़ पर बना हुआ है, जिसमें देवता के लिए २२ बुर्ज और ७ फाटक हैं। भीतर से इसका घेरा एक कोस और १५ तनाव है। इसकी लंबाई चौड़ाई एक कोस और दो तनाव है तथा चौड़ाई २२ तनाव से अधिक और १५ से कम नहीं है[1]। इसकी ऊँचाई ११४ हाथ है। इसके भीतर दो बड़े तालाब हैं। नगर के पास महामाया का मंदिर है[2] जो दुर्गा भवानी के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हें शक्ति का अवतार मानते हैं और दूर देशों से लोग इनके दर्शन के लिये आकर इच्छानुसार फल पाते हैं। सबसे आश्चर्यजनक यह बात है कि ये यात्री अपनी इच्छापूर्ति के लिये जीभ काट कर चढ़ाते हैं, जिसपर कुछ को कुछ दो घड़ी में और बचे हुओं को दो तीन दिन में जीभ फिर आ जाती है। यद्यपि हकीम लोग कहते हैं कि जीभ कट जाने पर पुनः बढ़ जाती है, पर इतनी जल्दी बढ़ना भी आश्चर्य है। कथाओं में इन्हें महादेव जी की पत्नी लिखा है और इस मत के बुद्धिमान इन्हें उनकी शक्ति कहते हैं।

---

१ मिस्टर बेवरिज ने अर्थ किया है— चौड़ाई २२ तनाव से अधिक है और १५ से कम है यह अर्थ असंभव है।

२ आईने अकबरी जैरेट, भा २, पृ ३१२।

ऐसा कहा जाता है[1] कि जब उन्होंने देखा कि मैंने (पति के साथ) अनुचित वर्ताव किया है, तब अपना शरीर त्याग दिया। उनका शरीर चार स्थानों मे गिरा। शिर और कुछ भाग काश्मीर के उत्तरी पहाडो में स्थित कामराज मे गिरा जो शारदा के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ अंश दक्षिण में बीजापुर के पास गिरा, जिसे तुलजा भवानी कहते हैं। जो अंश पूर्व की ओर गया, वह कानू के पास मच्छा[2] कहलाया और जो उसी स्थान पर रह गया, वह जालंधरी कहलाया। इसी स्थान के पास कहीं कहीं ज्वाला की लपटें निकलती हैं और चरबी के समान जला करती हैं। इस स्थान को ज्वालामुखी कहते हैं, जहाँ मनुष्य दर्शन को जाते हैं और ज्वाला मे भिन्न भिन्न वस्तुएँ डाल कर शकुन विचारते हैं। उस ऊँचाई पर एक बड़ा गुंबद बना है, जहाँ बडी भीड़ एकत्र होती है। वस्तुत वह गधक की खान है, पर उसे लोग दैवी शक्ति समझते हैं। मुसल्मान भी वहाँ इकट्ठे होते हैं और इस दृश्य में योग देते हैं।

कुछ ऐसा भी कहते हैं कि जब महादेव जी की स्त्री की अवस्था पूरी हो गई, तब वह प्रेम के मारे बहुत दिनों तक उनका शव लिये फिरे। जब शरीर के अवयवों का आपस का तनाव कम हुआ, तब हर एक अग एक एक स्थान पर गिरने लगा। अवयव की श्रेष्ठता के अनुसार स्थान की प्रतिष्ठा होने लगी। इसलिये

१ आईने अकबरी, जैरेट, भा० २, पृ० ३१३ टि० २।

२ कामरूप नामक स्थान आसाम में है जहाँ की कामाख्या देवी प्रसिद्ध हैं।

राजा मिक्रमाजीत के प्रयत्न से यह दुर्ग में मुसलमानी गाँठ मध्द सुल गई और १६४ वर्ष में जहाँगीर दुर्ग में गए और मुसल्मानी धर्म जारी कर मसजिद की नींव डाली।

यह दुर्ग पहाड़ पर बना हुआ है, जिसमें दृढ़ता के लिए २१ बुर्ज और ७ फाटक हैं। भीतर से इसका घेरा एक कोस और १५ तनाव है। इसकी लंबाई चौड़ाई एक कोस और दो तनाव है तथा चौड़ाई २२ तनाव से अधिक और १५ से कम नहीं है[1]। इसकी ऊँचाई ११४ हाथ है। इसके भीतर दो बड़े तालाब हैं। नगर के पास महामाया का मंदिर है[2] जो दुर्गा भवानी के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हें शक्ति का अवतार मानते हैं और दूर देशों से लोग इनके दर्शन के लिये आकर इच्छानुसार फल पाते हैं। सबसे आश्चर्यजनक यह बात है कि ये यात्री अपनी इच्छापूर्ति के लिये जीभ काट कर चढ़ाते हैं, जिसपर कुछ को कुछ ही घड़ी में और बचे हुआ को दो तीन दिन में जीभ फिर आ जाती है। यद्यपि हकीम लोग कहते हैं कि जीभ कट जाने पर पुनः बढ़ जाती है, पर इतनी जल्दी बढ़ना भी आश्चर्य है। कथाओं में इन्हें महादेव जी की पत्नी लिखा है और उस मत के बुद्धिमान इन्हें उनकी शक्ति कहते हैं।

---

१ मिस्टर बेवरिज ने अर्थ किया है— चौड़ाई २२ तनाव से अधिक है और १४ से कम है। यह अर्थ असंभव है।

२. आईने अकबरी, जैरेट, भा २, पृ ११६।

ऐसा कहा जाता है[1] कि जब उन्होंने देखा कि मैंने (पति के साथ) अनुचित वर्ताव किया है, तब अपना शरीर त्याग दिया। उनका शरीर चार स्थानों में गिरा। शिर और कुछ भाग काश्मीर के उत्तरी पहाड़ों में स्थित कामराज मे गिरा जो शारदा के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ अश दक्षिण मे बीजापुर के पास गिरा, जिसे तुलजा भवानी कहते हैं। जो अंश पूर्व की ओर गया, वह कानू के पास मच्छा[2] कहलाया और जो उसी स्थान पर रह गया, वह जालंधरी कहलाया। इसी स्थान के पास कहीं कहीं ज्वाला की लपटें निकलती हैं और चरबी के समान जला करती हैं। इस स्थान को ज्वालामुखी कहते हैं, जहाँ मनुष्य दर्शन को जाते हैं और ज्वाला में भिन्न भिन्न वस्तुएँ डाल कर शकुन विचारते हैं। उस ऊँचाई पर एक बड़ा गुंबद बना है, जहाँ बड़ी भीड़ एकत्र होती है। वस्तुत' वह गधक की खान है, पर उसे लोग दैवी शक्ति समझते हैं। मुसलमान भी वहाँ इकट्ठे होते हैं और इस दृश्य में योग देते हैं।

कुछ ऐसा भी कहते हैं कि जब महादेव जी की स्त्री को अवस्था पूरी हो गई, तब वह प्रेम के मारे बहुत दिनों तक उनका शव लिये फिरे। जब शरीर के अवयवों का आपस का तनाव कम हुआ, तब हर एक अग एक एक स्थान पर गिरने लगा। अवयव की श्रेष्ठता के अनुसार स्थान की प्रतिष्ठा होने लगी। इसलिये

---

१ आईने अकबरी, जैरेट, भा० २, पृ० ३१३ टि० २।

२ कामरूप नामक स्थान आसाम में है जहाँ की कामाचा देवी प्रसिद्ध हैं।

कि बाती (जो सब अवयवों से भ्रष्ट है) यहाँ गिरी थी, वह स्थान और स्थानों से अधिक पवित्र माना गया। कुछ यों कहते हैं कि एक पत्थर (जिसे काफ़िर पूजते थे) मुसल्मानों ने उठा कर नदी में डाल दिया था। इसके अनंतर पुजारी लोग दूसरा पत्थर उसी के नाम पर ले आए। राजा ने सिधाई से या लोभ से (जो चढ़ावे से उचित मन का था) उसे प्रतिष्ठा के साथ उसी स्थान पर प्रतिष्ठित किया और फिर से मुलावे की दूकान खुल गई। इतिहासों में लिखा गया है कि जब सुल्तान फीरोज़ शाह वहाँ पहुँचा, तब उसने सुना कि यहाँ के भाचण्य उस समय से (जब सिकन्दर जुल्करनैन यहाँ आया था) नौशाब[१] की मूर्ति बनवा कर उसकी पूजा करते हैं। सुलतान ने नौशाब की मूर्ति मदीना भेज दी कि सड़क पर डाल दी गई कि सबके पैरों तले पड़े। फरिश्ता[२] के लेखक ने लिखा है कि उस मंदिर में प्राचीन समय के भाचण्यों की लिखी हुई १३०० पुस्तकें थीं। सुल्तान फीरोज़ शाह ने उस जाति के विद्वानों को बुला कर कुछ का अनुवाद कराया। इन्हीं में से इज्जुद्दीन खालिदखानी ने (जो उस समय का एक कवि था) एक पुस्तक कविता में बुद्धि और शकुन के फलादेश पर लिखी और उसका नाम दलायल-फीरोज़शाही रखा। वस्तुतः उस पुस्तक में कई प्रकार के लिखित और करणीय विज्ञानों का समावेश है।

---

१ नरारा की रा ो को जिसने सिन्दर से भेंट की थी।

२ नवलकिशोर प्रेस की छपी प्रति भा १ पृ १४८।

कॉगड़ा विजय के उपरांत जब १५वें वर्ष में राजा विक्रमाजीत सेना के साथ शाहजहाँ से मिले, तभी समाचार आया कि दक्षिण के अधिकारियों ने अदूरदर्शिता से जहाँगीर बादशाह के सैर के लिये काश्मीर चले जाने का (जो देश की सीमा पर और राजधानी से दूर है) समाचार सुनकर विद्रोह कर दिया है और उनमें मुख्य मलिक अंबर है, जिसने अहमदनगर और बरार के आसपास अधिकार कर लिया है। शाही नौकर (जो मेहकर में एकत्र होकर शत्रु से लड़े थे) रसद की कमी से बालापुर चले आए, पर जब वहाँ भी नहीं ठहर सके, तब बुरहानपुर में खानखानाँ के पास आ पहुँचे। शत्रु ने बादशाही राज्य पर आक्रमण कर बुरहानपुर को घेर लिया। बखेड़ों से भरे हुए दक्षिण का प्रबंध युवराज शाहजहाँ के ही ऊपर निर्भर था, इससे उसी वर्ष सन् १०३० हि० (१६२१ ई०) में यह कई बड़े सरदारों के साथ बिदा हुआ।

शाहजादा ने बुरहानपुर पहुँच कर ३०००० सवारों की पाँच सेनाएँ दाराब खाँ, अब्दुल्ला खाँ, ख्वाज अबुलहसन, राजा विक्रमाजीत और राजा भीम के सेनापतित्व में शत्रुओं का दमन करने के लिये नियत कीं। यद्यपि प्रकट में कुल सेना की अध्यक्षता दाराब खाँ के नाम थी, पर वस्तुतः सेना का कुल कार्य्य राजा विक्रमाजीत ही के हाथ में था[१]। राजा आठ दिन में बुरहानपुर से खिरकी पहुँचा (जो निजामशाह और मलिक अंबर का

१ खफी खाँ, भा० १, पृ० ३१७

वासस्थान था) और उसको जड़ से खोद डाला। जब मलिक अंबर ने अपने नाश की तैयारी देखी तब लज्जा और पश्चात्ताप प्रकट कर क्षमाप्रार्थी हुआ। तब यह निश्चित हुआ कि चौदह करोड़ दाम के मूल्य की भूमि दक्षिण प्रांत के महालों से (जो दक्षिणियों के अधीन हैं) बिना साम्राज्य के, जो बादशाही प्रांत की सीमा पर हो, छोड़ दें और पचास लाख रुपए आदिलशाही और कुतुबशाही कोषों से भेंट लेकर भेज दें[1]। राजा सेना सहित तुरन्त कस्बे तक लौट कर वहीं ठहर गया। शाहजहाँ के आज्ञानुसार उसी कस्बे के पास लरफपूर्णा न- की नदी के किनारे पर भूमि पसंद करके दुर्ग की दृढ़ता के लिये पत्थर और चूने की नीव डाली और उसका नाम जफरनगर रख कर वर्षा ऋतु वहीं व्यतीत की।

जब शाहजहाँ के कारण दक्षिण का प्रबंध ठीक हो गया, तब समय ने दूसरा खेल निकाला। उसका विवरण यों है कि जब नूरजहाँ बेगम का पूर्ण प्रभाव हो गया और राज्य तथा कोष के सब कार्य उसके हाथ में आ गए तथा जहाँगीर नाम मात्र के लिये बादशाह रह गया, तब बेगम ने दूरदर्शिता से विचारा कि इस समय (क्योंकि जहाँगीर की बीमारी दूनी हो गई थी) यदि कर्मानुसार कोई घटना हो जाय तो युवराज शाहजादा बादशाह होंगे और यद्यपि वह हमसे मित्रता रखते हैं, पर वह इतना अधिकार और प्रतिष्ठा उस कैसे दे सकेंगे। इसलिये

१ अकबरी दर्बार भा० १ पृ० ३३१।

अपनी पुत्री का (जो शेर अफगन खाँ से हुई थी) सुल्तान शहरयार (जो बादशाह का सब से छोटा पुत्र था) से विवाह करके उसका पक्ष लिया और शाहजहाँ कधार के कार्य के लिये बुलाया गया। जब वह दक्खिण से माण्डू पहुँचा, तब पिता को लिखा कि मालवा की मिट्टी और कीचड़ के कारण मेरा वर्षा भर यहाँ ठहरना उचित है और (इस कारण कि फारस के शाह से सामना है) साज और सामान भी ठीक करना अति आवश्यक है। रणथम्भौर का दुर्ग हरम और सरदारों के परिवार के रक्षार्थ मुझे मिलना चाहिए। लाहौर प्रांत (जो कधार के रास्ते पर है) मुझे जागीर में मिले, जिससे रसद और दूसरे सामान सहज में प्राप्त हो सकें और जब तक यह कार्य पूरा न हो, तब तक के लिये उन सरदारों की (जो इस चढ़ाई में नियत हों) नियुक्ति, हटाना, मन्सब बढ़ाना या घटाना मेरे हाथ में रहे, जिससे वे डर और आशा से ठीक काम करें।

बेगम (जिनका सब पर अधिकार था) ने इन बातों को बादशाह से कठोर शब्दों में कह कर इस प्रकार मन में बैठा दिया कि मानो शाहजादे की इच्छा कुल साम्राज्य ले लेने की है। जहाँगीर को उसने ऐसा पाठ पढ़ाया कि उसने कंधार की चढ़ाई शहरयार के नाम कर दी और युवराज शाहजादे की जो जागीर (उत्तरी भारत में) थी, वह ले ली। उसके साथ दक्खिण में जो सरदार थे, उन्हें बुलवा भेजा। यद्यपि जहाँगीर इन कार्यों की कठिनाई को समझता था, पर बेगम के विरुद्ध भी चलने का कोई उपाय नहीं

था; इससे जो वह करहीं, वही होता था। फल यह हुआ कि दोनों ओर से युद्ध की तैयारी हुई। इधर जहाँगीर दिल्ली से निकला और उधर शाहजहाँ बिलूचपुर पहुँचा। दोनों के बीच में केवल दस कोस का फासला रह गया था। शाहजहाँ के साथवालों ने एक मत होकर प्रार्थना की कि अब बात बहुत बढ़ गई है, इससे जहाँगीर चुप नहीं बैठेंगे; और इस समय अपनी सेना संख्या और तैयारी में बादशाही सेना से बढ़ कर है, इससे युद्ध ही करना चाहिए। शाहजादे ने उत्तर दिया कि इस प्रकार का कार्य्य (जो ईश्वर और संसार दोनों के सामने दूषित समझा जाता है) मैं स्वयं नहीं कर सकता। यदि बादशाह परास्त हुए और मेरी विजय हुई तो ऐसे साम्राज्य से क्या फल ? और मुझे कौन सी प्रसन्नता होगी ? इसके सिवा मेरी और कोई इच्छा नहीं है कि उन बहकानेवालों को दंड दिया जाय।

इसके अनन्तर यही निश्चित हुआ कि शाहजादा चार पाँच सहस्र सवारों के साथ रास्ते से चार कोस बायें हट कर कोटला (जो मेवात में है) में ठहरे। तीन सेनायें दाराब खाँ, राजा विक्रमाजीत और राजा भीम की अधीनता में नियत हुई कि बादशाही कैंप के चारों ओर लूट मार कर रसद सामान न पहुँचने दें, जिससे शांति का रास्ता खुले। जब बादशाह की ओर से आसफ खाँ, जिसके हरावल में अब्दुल्ला खाँ था, बराबर पहुँचे तब अब्दुल्ला खाँ ने, जिसने पहिले ही वचन दिया था कि युद्ध के समय तुम्हारी ओर चला आऊँगा और इस बात को सिवा शाहजादे

और राजा के दूसरा कोई नहीं जानता था, प्रतिज्ञानुसार घोड़ा इनको ओर बढ़ाया। राजा यह देख कर दाराब खाँ के पास गया कि उसे जता दे। एकाएक सईद खाँ चगत्ता का पुत्र नवाज़िश खाँ भी (जो शाही हरावल में नियुक्त था) यह समझ कर कि अब्दुल्ला खाँ ने युद्ध के लिये धावा किया है, सवारों सहित चढ़ दौड़ा। राजा (जो चार पाँच सवारों के साथ दाराब खाँ के पास से लौटा आ रहा था) से सामना हो गया। यह भी लड़ने को तैयार हो गया। जब तक सहायता पहुँचे, तब तक एक गोली मृत्यु की चलाई हुई उसके सिर में लगी जिससे उसने अपना प्राण प्राणदाता को सौंप दिया। दोनों ओरवाले युद्ध से रुक गए और अपने अपने स्थान पर चले गए। राजा पाँच हज़ारी मन्सब तक पहुँच चुका था और शाहजहाँ के दरबार में उससे बड़ा कोई सरदार नहीं था। इसका भाई कुँअरदास अहमदाबाद में राजा की ओर से नायब था।

७१—राजा वीरसिंह देव बुँदेला

यह राजा मधुकर का पुत्र है[1]। आरम्भ ही से शाहज़ादा सुल्तान सलीम के यहाँ पहुँच कर उसी की सेवा में रहा। जब इसने शेख अबुलफ़ज़्ल को मार डालने का साहस दिखलाया तब अकबर ने दो बार इस पर सेना भेजी[2]। ५०वें वर्ष में यह सूचना मिली कि यह थोड़े से मनुष्यों के साथ जंगलों में मारा फिरता है और बादशाही सेना भी पीछा कर रही है। जब जहाँगीर बादशाह हुआ, तब पहिले वर्ष वीरसिंह देव को तीन हज़ारी मन्सब मिला[3]। तीसरे वर्ष यह महाबत खाँ के साथ राणा पर नियुक्त हुआ और खिलअत और घोड़ा पाकर सम्मानित

---

१ राजा मधुकर शाह के यह सबसे छोटे पुत्र थे। फ़ारसी अक्षरों के कारण इनका नाम नरसिंह देव भी अंग्रेज़ी इतिहासों में मिलता है। ४५वें निबंध में मधुकर शाह का सक्षा वृत्तांत दिया है। इनका विशेष वृत्तांत जानने के लिये ना० प्र० पत्रिका भा० ३ अं० ४ देखिए। महाकवि केशवदास का वीरसिंह-चरित-काव्य भी यही आशय है।

२. इलियट डाउसन इति० भा० ६ पृ० १४८-६ तथा पृ० १०७। तुज़ुके जहाँगीरी इलि० डा० भा० ६ पृ० १८८-६। वीर सिंह चरित पृ० ४।

३. सन् ११ ७ ई० में ओड़छा का राज्य रामचन्द्र से लेकर इन्हें दे दिया गया था।

ओड़छा-नरेश वीरसिंह देव

हुआ[१]। चौथे वर्ष खानेजहाँ के साथ दक्षिण भेजा गया। ७वें वर्ष मे इसका मन्सब बढ़ कर चार हज़ारी २२०० सवार का हो गया। ८ वें वर्ष मे सुल्तान खुर्रम के साथ नियुक्त होने पर (जो राणा अमरसिंह का दमन करने पर नियत हुआ था) दक्षिण से चला आया, पर फिर दक्षिण जाना पड़ा। १४वें वर्ष मे (जब पूर्वोक्त शाहज़ादा दक्षिण गया तब) इसने दखिनियों के साथ के युद्धों मे दो तीन हज़ार सवार और पाँच हज़ार पैदल के साथ बड़ी वीरता दिखलाई। उस समय (जब जहाँगीर और शाहजहाँ मे मनोमालिन्य हो गया तब) यह अपनी सज्जित सेना के साथ १८ वें वर्ष मे सुल्तान पर्वेज़ के साथ शाहजहाँ का पीछा करने पर नियुक्त हुआ।

जहाँगीर के राज्य के अंत मे जब कार्य दूसरो के हाथ में चला गया और षडयंत्र चलने लगा, तब इसने घूस देकर और बलात् आसपास के ज़मींदारो के इलाक़ों पर अधिकार करके बहुत बड़ा प्रांत अपने अधीन कर लिया। इसने ऐसा ऐश्वर्य और प्रभाव प्राप्त कर लिया कि किसी हिंदुस्थानी राजा को उस समय नहीं प्राप्त हो सका था। २२ वें वर्ष सन् १०३६ हि० (१६२७ ई०) में इसकी मृत्यु हुई। मथुरा का मदिर (जिसे औरगजेब के समय मसजिद बना दिया गया था) वीरसिंह देव के बनवाए हुओ मे से है। जहाँगीर उसके अच्छे कार्य से

---

१. तुजुक में लिखा है कि इसी वर्ष इन्होंने एक सफेद चीता जहाँगीर को भेंट किया था।

प्रसन्न था, इससे बेपरवाही से उसके कृत्य को मुसलमानी धर्म से वह कर समझ के उस मूल हुए को मंदिर बनाने की आज्ञा देकर प्रसन्न किया[1]। उसने तेंतीस लाख रुपया लगा कर बड़ी तैयारी और टहस्स के साथ यह मंदिर बनवाया। मुख्य कर सजावट और पच्चीकारी में अधिक लगा था। ओड़छा में भी बड़ी बड़ी इमारतें (जो लंबाई, चौड़ाई और सजावट के लिये सबसे बढ़कर हैं) बनवाईं। उनमें एक मंदिर है जो उसके महल के पास बहुत बड़ा और ऊँचा है[2]।

---

१ यह अच्छा कार्य मुख्य कर अबुलफ़ज़ल को मारना था। मथुरा के इस बड़े मन्दिर को तोड़ कर उस पर मसजिद बनाने का वृत्तांत मआसिरे आलमगीरी पृ० ९५-६ से लिया गया है। वीरसिंहदेव दानी भी पूरे थे। इन्होंने अपने भाई का राज्य छीन लिया था, इसलिये इसके प्रायश्चित्त स्वरूप केशव वंशकम में कहा जाता है कि इन्होंने एक मन पक्का सोना दान किया था। इन्होंने तीर्थाटन बहुत किया चांद्रायण व्रत रखे और सहस्र सुने। यह बड़े तपस्वी भी थे। कहते हैं कि इनके बड़े पुत्र जगदेव ने क्रोध में एक ब्राह्मण को शिकारी कुत्तों द्वारा मरवा डाला था। यह सुनकर महाराज ने उसे कुत्तों ही द्वारा मारे जाने का दंड दिया था।

२ चतुर्भुज जी के मंदिर से तात्पर्य है, जो कम से कम बुंदेलखंड में सबसे अच्छा है। यह ऊँची कुर्सी पर बनाया गया है और सर्वतोभद्र के आकार का है। यह बाहर और भीतर दोनों ओर सादा है और बहुत ऊँची ही गई है। इसमें दो बड़े और चार छोटे गुम्बज हैं।

महाराज वीरसिंहदेव केवल बड़े वीर साहसी और युद्धप्रिय ही नहीं थे किंतु बड़ी बड़ी इमारतों मंदिरों और महलों के बनवाने में भी एक ही हो गए हैं। ओड़छा के पास बेतवा नदी दो धाराओं में विभक्त होकर एक

इस पर बहुत रुपया व्यय हुआ है। शेरसागर तालाव (जो घेरे में साढ़े पाँच कोस बादशाही है) और समुंदर सागर (जिसका घेरा बीस कोस है) परगना मथुरा में है। उस महाल में लगभग तीन सौ के तालाब हैं[१]। बहुत से पुत्र थे, जिनमें जुझारसिंह और पहाड़सिंह[२] भी हैं। इन दोनों का वृत्तांत अलग दिया गया है।

मील लंबा एक पथरीला टापू छोड़ देती है जिस पर महाराज ने दुर्ग बनवाया था। पत्थर की दृढ़ दीवार से वह टापू घेर दिया गया और नगर से उसपर जाने के लिये चौदह मेहराबों का एक पुल तैयार किया गया। इसके भीतर कई महल हैं जिनमें राजमंदिर और जहाँगीर महल सबसे अच्छे हैं।

दतिया का राजमहल भी इन्हीं का बनवाया है जिसके चारों ओर चौंतीस फुट ऊँची दृढ़ दीवार दी गई है। इसके बनने में लगभग नौ वर्ष लगे थे और पैंतीस लाख से अधिक रुपए व्यय हुए थे।

१. राजा वीरसिंह देव ने अपने राज्य में बावन तालाव बनवाए थे।

२ इनके ग्यारह पुत्र थे जिनके नाम वीरसिंहचरित्र में क्रम से जुझारसिंह, हरधौरसिंह, (हरदौल) पहाड़सिंह, दुर्जनलाल, चंद्रभानु, भगवानराय, हरीदास, कृष्णदास, माधोदास, तुलसीदास और हरीसिंह दिए हैं।

८०–राणा सगर

यह राणा साँगा के पुत्र राणा उदयसिंह का पुत्र था। जब इसके भाई राणा प्रताप ने अकबर से शत्रुता की, तब यह सेवा में आकर दो सदी मन्सब पाकर सम्मानित हुआ। जहाँगीर के प्रथम वर्ष में बारह सहस्र रुपया पुरस्कार पाकर सुलतान पर्वेज़ के साथ राणा की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ[1]। उसी वर्ष के अंत में कुछ लोगों के साथ दलपत बुरटिया को दंड देने पर नियुक्त होकर विजयी हुआ। दूसरे वर्ष इसने ढाई हजारी १००० सवार का मन्सब पाया। ११वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़कर तीन हजारी २००० सवार का हो गया[2]।

---

१. यह अभागा वह राणा भाई था, जिसे सं० ११५ में हल्दी के युद्ध में राव सुरतान ने मारा था। राणा अमरसिंह ने राज ले इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जिससे उदास होकर यह जहाँगीर के पास चला आया और उसे मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिये उभाड़ा। जहाँगीर ने इसे राणा बना कर चित्तौड़ दे दिया। इसका जन्म सं० १५११ वि० की माघ सु० १ को हुआ था। (मुहता नैणसी की ख्यात, भा० १, पृ० ११)

२. टॉड साहब लिखते हैं कि जहाँगीर ने इसे भरे दरबार में मेवाड़ को अधीन न कर सकने के कारण धिक्कारा था जिससे इसने कटार मार कर आत्महत्या कर ली। इसने पुष्कर तीर्थ में वाराह जी का मंदिर बनवाया था।

८१—राव सत्रुसाल[1] हाड़ा

ये राव रत्न के पौत्र[2] हैं। इनके पिता गोपीनाथ दुबले होने पर भी इतनी शक्ति रखते थे कि वृक्ष की दो शाखों के बीच (जिनमें से प्रत्येक मुटाई मे शामियाने के खंभों के ऐसा होता था) बैठकर एक से पीठ लगाकर,और एक मे पाँव अड़ाकर अलग कर देते थे। परन्तु इसी बल के आधिक्य से वे बीमार हुए और पिता के सामने ही उनकी मृत्यु हो गई। जब शाहजहाँ के राजत्व के ४थे वर्ष (स० १६८७ वि०, सन १६३१ ई०) में राव रत्न की मृत्यु हुई, तब राजपूतों के प्रथानुसार (कि जब बड़ा पुत्र मर जाता है, तब मृत पिता का यौवराज्य उसके पुत्र को प्राप्त होता है) बादशाह ने उसको तीन हज़ारी २००० सवार का मन्सब और

---

१ शत्रुशाल शब्द ठीक है जो बिगड़ कर फ़ारसी में सतरसाल हो गया था। महाकवि भूषण ने तो इन्हें भी 'छत्रसाल' ही नाम से लिखा है जो छतसाल शब्द से जोड़ मिलाने के लिये आवश्यक था। कैप्टेन टॉड ने भी 'राजस्थान' में यही नाम दिया है।

२ राव रत्न के चार पुत्र थे। सबसे बड़े गोपीनाथ थे। इनके छोटे भाई माधोसिंह को कोटा राज्य मिला जिनके वृत्तान्त के लिये ५३वाँ निबंध देखो। गोपीनाथ के बारह पुत्र थे जिनमें सबसे बड़े शत्रुसाल थे। इनके तीन छोटे भाइयों को जागीरें मिली थीं जो सब कोटा के जालिमसिंह के षडयंत्र से बूँदी राज्य से अलग हो गई।

राव की पदवी देकर बूँदी, खटकर और उसके पास के परगने (जो राव रतन का देश था) उन्हें जागीर में दिए। इसके अनंतर (जब यह बालाघाट से आकर सेवा में पहुँचा तब) चालीस हाथी (जो उसके दादा के समय के बचे हुए थे) बादशाह को भेंट दिए। अठारह हाथी (जिनका मूल्य ढाई लाख रुपया था) बादशाह ने लेकर बचे हुए हाथी इन्हें दिए और खिलअत, चाँदी के जीन सहित घोड़ा, झंडा और डंका देकर सम्मानित किया। इसके अनंतर दक्षिण प्रांत में नियुक्त होकर खानेजमाँ के साथ छठे वर्ष में दुर्ग दौलताबाद के घेरे के समय मोर्चों की रक्षा, हर एक बार आवश्यकता पड़ने पर सहायता पहुँचाना और जफ़र नगर से रसद लाना आदि जो कुछ कार्य किए, सब में इनकी स्वामिभक्ति दिखलाई दी।

एक रात्रि (जब दक्षिणियों ने अरक्षित पाकर खानेजमाँ के खेमे पर, जिनकी रक्षा पर राव नियुक्त थे, धावा किया तब) इन्होंने दृढ़ता से बढ़कर वीरता प्रदर्शित की। बहलोल के भतीजे के मारे जाने पर दक्षिणी भाग गए। ७वें वर्ष इन्होंने दुर्ग परेंदा के घेरे में अच्छा काम किया। ८वें वर्ष (जब खानेजमाँ बालाघाट का सूबेदार हुआ तब) यह पूर्वोक्त खाँ के साथ नियुक्त हुए। जब ९वें वर्ष बादशाह साहू भोंसला का दृढ़ दंड देने के लिये और दक्षिण के सुलतानों का दमन करने के लिये, खानदौरा गए, तब उनके बुरहानपुर नगर में पहुँचने पर राव खाँ के साथ सेवा में पहुँचे। फिर (जब तीन सेनाएँ तीन सरदारों के

आधिपत्य में नियुक्त हुई तब) उनमें से एक सेना की (जो खाने-जमाँ की अधीनता में थी) हरावली राव को मिली। सभी स्थानों और समयों पर पूर्वोक्त खाँ के साथ शत्रुओं को दंड देने में इन्होंने वीरता दिखलाई। इसके कुछ वर्ष बाद दक्षिण की नियुक्ति से छुट्टी पाकर १५वें वर्ष में दक्षिण के सूबेदार शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब के साथ सेवा में आए और उसी वर्ष सुलतान दाराशिकोह के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियुक्त हुए। वहाँ से लौटने पर १८वें वर्ष में इन्हें खिलअत सहित देश जाने की छुट्टी मिली। १९वें वर्ष मे शाहजादा मुराद बख्श के साथ बलख और बदख्शाँ की चढ़ाई पर नियुक्त हुए। जब शाहजादा ने अनुभव न होने के कारण उस प्रांत को छोड़ दिया, तब यह भी वहाँ के जलवायु के अनुकूल न होने या देश-प्रेम के कारण पेशावर चले आए। बादशाह ने अटक के मुतसद्दियों को आज्ञा दी कि इन्हें पार न उतरने दें। २०वें वर्ष (जब सुलतान औरंगजेब उस प्रांत में नियुक्त हुआ, तब) यह भी शाहजादे के साथ लौट गए और उजबेगों तथा अलअमानो के युद्ध में सभी समय अच्छा प्रयत्न किया। जब शाहजादा पिता के आज्ञानुसार उस प्रांत को नजर मुहम्मद खाँ के लिये छोड़ कर काबुल पहुँचा, तब यह आज्ञानुसार २१ वें वर्ष मे दरबार पहुँच कर देश पर नियुक्त हुए। बुलाए जाने पर यह २२ वें वर्ष सेवा में पहुँचे और मन्सब के साढ़े तीन हजारी ३५०० सवार तक बढ़ाए जाने पर शाहज़ादा मुहम्मद औरंगजेब के साथ कंधार की चढाई पर (जो क़ज़िल-

रयों के अधिकार में चला गया था) गए। रुस्तमखाँ और
लीज खाँ के साथ युद्ध की ओर नियुक्त होकर कजिलबाशों के
द्धों में बढ़ कर वीरता दिखलाई। २५ वें वर्ष में फिर पूर्वोक्त
शाहजादे के साथ और २६ वें वर्ष में शाहजादा दाराशिकोह के
साथ यह इसी चढ़ाई पर नियुक्त रहे। २९ वें वर्ष में दक्षिण प्रांत
(जो शाहजादा औरंगजेब के अधीन था) नियुक्त हुए और
दर[1] दुर्ग तथा कल्यानी[2] की विजय में दोनों बार दक्षिणियों से
ढ़ कर साहस का कार्य किया। ३१वें वर्ष (कि सिलाही
माकारा ने नया खेल फैलाया[3] और सुल्तान दाराशिकोह ने
बादशाहों की आज्ञा होने के कारण मूर्खता से सबके आज्ञापत्र भेजे
के दक्षिण में नियुक्त सरदारों को दरबार बिदा कर दें) जब

---

१ यह मांजरा नदी के किनारे बड़ा नगर तथा दुर्ग है। १७°५५' उ. ७७°१५' पू. अक्षांश पर स्थित है। यह बरीदशाही राज्य की राजधानी थी। आजकल निज़ाम हैदराबाद के राज्य के अंतर्गत है।

२ कल्यानी बीदर से अड़तीस मील पश्चिम है और नलदुर्ग से लगभग चालीस मील पूर्व है। यह भी हैदराबाद राज्य ही में है।

३ जब नया खेल शाहजहाँ के चारों पुत्रों में साम्राज्य के लिये झगड़ा था। चारों ही अपने अपने स्थान पर युद्ध की तैयारी करने लगे। दारा ने बड़े पुत्र होने के कारण बादशाही बड़े बड़े सरदारों को आज्ञापत्र भेज कर इसलिये दरबार में बुलाया था कि उन्हें मिला कर अपना पक्ष दृढ़ करे और साथ ही अपने भाइयों का पक्ष निर्बल करता रहे। इसके इस विचार को प्राय सभी भाइयों तथा सरदारों ने समझ लिया था और इससे जिस जिसका पक्ष जैसा होता था वह उसी के अनुसार इस आज्ञा को मानता या न मानता था।

सुलतान औरंगजेब बीजापुर घेरे हुए थे और उसके विजय होने में दो एक दिन की ही कसर थी कि यह शाहजादे से बिना छुट्टी लिए दरबार चले गए। यह दोनों भाइयों के युद्ध[१] में (जो आगरे के पास हुआ था) सन् १०६८ हि० (स० १७१५ वि० सन् १६५८ ई०) में दाराशिकोह के हरावल में लड़ते हुए बड़ी वीरता दिखला कर सुलतान औरंगजेब की सेना के मध्य में पहुँचे और वहीं उस सेना के वीरों के हाथ मारे गए[२]।

— —

१. धौलपुर के पास सामूगढ़ में युद्ध हुआ था।

२. राव शत्रुशाल के चार पुत्र थे जिनके नाम भावसिंह, भीमसिंह, भगवतसिंह तथा भारतसिंह थे। प्रथम को बूँदी की गद्दी मिली जिनका वृत्तांत ४४वें निबंध में देखिए। अंतिम सामूगढ़ युद्ध मे पिता के साथ मारे गए।

८२–सबलसिंह सिसोदिया

यह राणा अमरसिंह का पौत्र था[१]। कुछ दिन दाराशिकोह की सेवा में रहा। २३ वें वर्ष शाहजादे की प्रार्थना पर शाहजहाँ ने बादशाही नौकरी देकर दो हजारी १००० सवार का मन्सबदार बनाया। २५ वें वर्ष पाँच सदी बढ़ाया गया और झंडा मिला, जिसके बाद शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ (जो दूसरी बार कंधार की चढ़ाई पर नियत हुआ था) नियुक्त हुआ। २६ वें वर्ष शाहजादा दाराशिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर गया। बादशाह नामा से मालूम होता है कि तीसवें वर्ष तक जीवित था। आगे का हाल नहीं मालूम हुआ। आलमगीर नामा से मालूम होता है कि आसाम की चढ़ाई में मुअज्जम खाँ खानखानाँ के साथ था[२]।

---

१. मुंता नैणसी लिखता है कि राणा अमरसिंह के प्रथम पुत्र भागसिंह अमरसिंहोत सं० १६६५ वि० में एक बार महाराजा जसवंतसिंह के पास आया था, गाँव ९ जागीर में दिए थे परंतु वह रहा नहीं। इसका पुत्र सबलसिंह बादशाही चाकर हुआ यह पृथ्वीराज के पुत्र अचल का दोहिता था।

२. औरंगजेब के ४ थे वर्ष सन् १६६१ ई० में मीर जुमला मुअज्जम खाँ ने कूचबिहार तथा आसाम पर चढ़ाई कर विजय प्राप्त की थी। देखिए मआसिरे आलमगीरी हिंदी अनु० भाग १ पृ० ४४ और इलियट डॉ० हि० इं० भा० ७ पृ० १४४–१६४।

मआसिरुल् उमरा

महाराजा साहू जी तथा बाजीराव पेशवा

८३—राजा साहूजी भोंसला

कहते हैं कि इनकी वंश-परंपरा चित्तौड़ के राजाओं तक पहुँचती है जो सिसौदिया[१] कहलाते हैं। इनका एक पूर्वज सूरसेन चित्तौड़ से किसी कारण निकल कर दक्षिण गया[२] जहाँ कुछ दिन औरंगाबाद प्रांत के अंतर्गत परेंदा सर्कार के करकनब पर्गने के भोंसा ग्राम में रहा और अपना अल्ल भोंसला रखा[३]। पूर्वोक्त राजा के पूर्वजों में दादा जी भोंसला को (जो मौजा हकनी और बुद्धि देवलगाँव तथा पर्गना पूना के कुछ अंश में रहता था) दो पुत्र थे—मालो जी और विठो जी। ये लोग वहाँ की प्रजा से लाचार होकर दौलताबाद के पास एलोरा कस्बे में जा रहे

---

१. मूल ग्रंथ में सिसोदिय है, पर वह अशुद्ध है।

२. ये मेवाड के राणा लछमणसिंह के पौत्र सज्जनसिंह से अपना वंश आरंभ होना बतलाते हैं। इनके कोई वंशज देवराज जी राणा से किसी कारण बिगड़ कर दक्षिण चले गए। शिवदिग्विजय बखर में इनका नाम काका जी दिया हुआ है। स्यात् ये तत्कालीन राणा के पितृव्य थे और इसी से इनका नाम काका जी लिखा गया है।

३. इस ग्रंथ में भोंसा ग्राम में बसने के कारण भोंसले कहलाने का उल्लेख है जो दक्षिण की प्रथा के अनुकूल है। खफी खाँ लिखता है कि यह अल्ल घोंसला है जिसका अर्थ स्पष्ट है; पर यह उसकी मूर्खता मात्र है। कुछ

बहुत विश्वास था, इसलिये एक का शाह जी और दूसरे का शरफ़ोजी नाम रखा था। लखी जादो (जिसे भ्रजावा[१] नाम्नी पुत्री के सिवा कोई संतान नहीं थी) शाह जी पर (जो सुंदर था) पुत्रवत् कृपा कर उसे अच्छे वस्त्र और सोने का तथा जड़ाऊ आभूषण देता था।

एक दिन जादो के मुख से निकल गया कि मैं अपनी पुत्री का शाह जी से संबंध करता हूँ। शाह जी के पिता मालो जी और चाचा बिठो जी ने उठ कर कहा कि संबंध ठीक हो गया, इसलिये अब कह कर फिरना न चाहिए। परंतु जादो के संबंधियों ने कह सुन कर उसका मिज़ाज बिगाड़ दिया, जिससे उसने अप्रसन्न होकर मालो जी और बिठो जी को सनदखेड़ से निकाल दिया। वे दोनों अनगपाल बिनालकर (जो भारी ज़मींदार था) की शरण जाकर उसकी सेना सहित दौलताबाद के पास पहुँचे और वहाँ के हाकिम के सामने न्याय चाहा। इस पर शाह जी और जादो की पुत्री का संबंध निश्चित हो गया और शाह जी भोसला विश्वासी पुरुष हो गए[२]।

---

१. लाखा जी यादव की पुत्री तथा शिवा जी की माता का नाम जीजा बाई था जिसे दक्षिणी भाषा के अनुसार जीजा वा भी पुकारते थे। उसी का यह बिगड़ा हुआ रूप है।

२ देवगिरि के यादव राजवंश के होने से लाखा जी इन्हें अपने से निम्न कुल का समझ कर विवाह नहीं करना चाहते थे, पर मुर्तज़ा निज़ाम शाह ने मालो जी को पाँच हज़ारी मन्सब, राजा की पदवी तथा चाकण और शिवनेर दुर्गों के साथ पूना और सूपा जागीर में देकर उसे उसके समकक्ष कर दिया जिससे यह विवाह हो गया।

जब निजामुलमुल्क ने जादो को धोखा दिया तब यह (शाह जी) उससे बिगड़ कर शाहजहाँ के राजत्व के १ले वर्ष में दक्षिण के नाज़िम आज़म खाँ के पास पहुँचा और पाँच हजारी ५००० सवार का मन्सब, अड़ाऊ खमधर, डंका, झंडा, घोड़ा, हाथी और दो लाख रुपया पाकर सम्मानित हुआ। यहाँ से बुरा सोच कर यह जल्द लौट गया और निज़ामुलमुल्क के पास पहुँचा[१]। धीरे धीरे इसने निज़ामशाही दरबार में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की। इस कारण जादो आदि सरदार इससे द्वेष रखने लगे और शाहजहाँ के समय बादशाही सेना को शाहजी पर चढ़ा ले आकर उसे दुर्ग माहोली में घेर लिया। यह सिकन्दर आदिल शाह से प्रार्थना करके एकाएक दुर्ग से बाहर निकला और बीजापुर का रास्ता

१ सन् १६२९ ई० में मुर्तजा निजाम शाह ने लखूजी जादव को धोखा देकर मार डाला था जिससे यह उससे बिगड़ गए थे। मलिक अंबर की मृत्यु पर तीन वर्ष तक मुर्तजा नीज़ाम शाह द्वितीय का साथ दिया पर अंत में वहाँ रहना व्यर्थ समझ कर सन् १६३० ई० में शाह-जहाँ के यहाँ आकर पंजहज़ार सरदार हो गया। सन् १६३२ ई० में अंबर के पुत्र फतह खाँ ने अपने स्वामी मुर्तजा शाह को मार डाला और उसके पुत्र हुसेन को बादशाह को सौंप दिया, तब उसे बादशाह ने वह स्थान जागीर में दिया जो पहिले यह शाह जी को दे चुका था। इससे क्रुद्ध होकर शाह जी ने नासिक त्र्यंबक आदि कोंकण तक के प्रांतों पर अधिकार कर लिया और अंतिम निज़ाम के एक संबंधी को गद्दी पर बैठा कर विद्रोह कर दिया। (बादशाहनामा भा० १ पृ० ४४२)

लिया[१]। उस समय (जब आदिल शाह के कार्यकर्ता मुरारी ने मलिक अंबर का पीछा करते हुए चाकण, पूना आदि कस्बों पर अधिकार कर लिया था तब) शाह जी भोंसला (जो उसके साथ नियुक्त थे) वहाँ के जागीरदार नियत हुए। फिर शाह जी भोंसला कर्णाटक पर नियत हुए। पहले पाल कनकगिरि पर अधिकार करके वहाँ के जमींदार को निकाल दिया और वहीं उस मारे गए जमींदार की पुत्री तुका बाई से विवाह कर लिया[२]। इन्हें जीजी बाई से दो पुत्र हुए। एक शंभा था जो कनकगिरि के युद्ध में गोला लगने से मर गया[३]। दूसरे शिवा जी थे जिन्हें

---

१. सन् १६३६ ई० में इसने खानेज़माँ को माहुली दुर्ग देना चाहा था, जो थाना ज़िले में है, पर बादशाही आज्ञानुसार इसे आदिल शाह से संधि करने की सम्मति दी गई। अंत में शाह जी ने निज़ाम को खानेज़माँ को सौंप दिया और रणदूलह ख़ाँ के साथ बीजापुर चले गए। (इलि० डाउ०, जि० ७, पृ० ५९-६०) इस युद्ध का विवरण पारसनीस-किनकेड कृत मराठों का इतिहास पृ० ११८-२० में देखिए।

२. यह मोहिते वंश की थी। इसका भाई शंभा जी मोहिते था जिसे शाह जी ने सूपा का अध्यक्ष नियत किया था।

३. यह शाह जी के बड़े पुत्र थे तथा सन् १६२३ ई० में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने बीजापुर में नौकरी कर ली। शिवा जी के उपद्रव से जब बीजापुर में शाह जी क़ैद हुए और शिवा जी ने मुगलों से संधि की बात की, तब शंभा जी को भी शाहजहाँ ने मन्सब दिया था। सन् १६५३ ई० में मुस्तफ़ा ख़ाँ से कनकगिरि के पास युद्ध करते समय धोखे से मारे गए। संधि का प्रस्ताव हो रहा था कि अफ़ज़ल ख़ाँ के कहने से मुस्तफ़ा ने इस प्रकार गोला फेंकवाया कि इन्हीं के पास वह आ गिरा था।

छोटी अवस्था होने पर भी अपने कार्यकर्ता के साथ पूना आदि महालों की जागीर पर छोड़ दिया था। तुका बाई से केवल एक पुत्र एक्को जी था[1]।

जब शाह जी कोलार और बालापुर में ठहरे हुए थे, तब वे (कि सौभाग्य उसी के पक्ष में था) उसी समय त्रिचनापल्ली के राजा (जो तंजावर के जमींदार पंची राघो से युद्ध कर पराजित हुआ था) की प्रार्थना पर सहायता के लिये वहाँ पहुँच कर विजय का झंडा खड़ा किया और दोनों राज्यों पर अधिकार करके अपने पुत्र एक्को जी को वहाँ छोड़ कर कोलार लौट गया[2]। एक्को जी के तीन पुत्र थे। पहले शाह जी और दूसरे शरफो जी निस्संतान रहे। तीसरे पुत्र तुको जी थे जिनके वंश में दोनों राज्यों का अधिकार चला आता है। इसी समय शिवा जी ने (जो सोलह वर्ष के थे) पिता के कार्यकर्ताओं से उन महालों का प्रबंध अपने हाथ में लेकर विद्रोह आरंभ कर दिया और थोड़े ही समय में बीजापुर के अन्य सरदारों से अपना ऐश्वर्य बढ़ा कर पंद्रह हजार सवार एकत्र कर लिए[3]। उस ओर (जिधर

१ ठीक नाम व्यंको जी है। एक प्रति में एंको जी पाठ है।

२. शाह जी की मृत्यु के समय व्यंको जी ने उसकी जागीर पर अधिकार कर लिया जिसमें बँगलोर, कोलार, बालापोर आदि अनेक स्थान थे। ये सब मैसूर प्रांत में थे। सन् १६७४ ई० में इसने तंजौर को राजधानी बनाया।

३ शिवा जी की जीवनी पर प्राप्त ग्रंथ की टिप्पणी देना ठीक

मुल्ला अहमद नायत या नातियः की जागीर थी) सेना (जो जागीरदार के बुलाने पर बीजापुर चली गई थी) नहीं थी, इससे वहाँ के बहुत से स्थानों पर अधिकार कर लिया[१] । मुहम्मद आदिल खाँ की मृत्यु और अली आदिल खाँ की सुस्ती से बीजापुरियो का प्रभुत्व ढीला पड गया था , इसलिये उससे झगड़ने से हाथ खींच कर चुप हो बैठे । इसके अनतर (जब अली आदिल खाँ ने दृढ़ता दिखलाई तब) मन में कपट रख कर नम्रता और दोष क्षमा कराने के लिये प्रार्थनापत्र भेज कर आदिल खाँ के प्रसिद्ध सरदार अफजल खाँ के आने की प्रार्थना की । जब पूर्वोक्त खाँ कोकण पहुँचा, तब नम्रता और कपटपूर्ण बातों से खाँ को थोड़े मनुष्यों के साथ अपने वासस्थान के पास बुला कर स्वयं भयभीत होने का स्वाँग दिखा कर काँपते हुए पालकी के पास गए । छुरे से (जो अपने पास छिपा रखा था) खाँ का काम तमाम किया[२] । अपने सशस्त्र मनुष्यों को (जो पास ही छिपे

नहीं ज्ञात होता, इसलिये केवल वैसी ही टिप्पणियाँ दी जायँगी जो मूल ग्रथ के समझने के लिये आवश्यक समझी जायँगी ।

१ कोंकण के उत्तरी भाग में थाना प्रात में कल्याण नगर में यह मौलाना अहमद रहता था जो उस प्रात का फौजदार था । सन् १६४८ ई० में शिवा जी के एक सरदार आबा जी सोनदेव ने इसे कैद कर लिया और उस प्रात पर शिवा जी का अधिकार हो गया । यह अहमद नवायत खेल का अरब था ।

२ पक्षपात की वजह से यह वर्णन कुछ रजित कर दिया गया है । इसके लिये प्रो० सरकार कृत शिवाजी पृ० ६२-८१ देखिए ।

भ) निश्चित इशारे से बुलाया जिन्होंने पहुँच कर खाँ के बचे हुए मनुष्यों को बाँध काट कर सेना का नाश कर डाला। ऐसी घटना हो जाने के बाद सब सामान लूट कर फिर विद्रोह आरंभ कर दिया। जब बादशाही महाला को भी लूटने लगा, तब औरंगजेब ने अपने जुलूस के तीसरे वर्ष दक्षिण के सूबेदार अमीरुल्-उमरा शायस्ता खाँ को उसका दमन करने के लिये नियुक्त किया। ४थ वर्ष गुजरात के सूबेदार महाराज जसवंतसिंह को सहायता के लिये वहाँ से भेजा और शिवा जी से आक्रमण ले लिया।

कहते हैं कि उस समय (जब पूर्वोक्त खाँ पूना में ठहरा हुआ था तब) रात्रि-आक्रमण के लिये शिवा जी ने मनुष्य नियुक्त किए थे कि किसी बहाने भीतर घुसें। रात्रि में मकान के पीछे के छोटे द्वार को (जो मिट्टी से बंद किया हुआ था) खोल कर ये लोग भीतर चले गए। छिपे हुए लोगों ने शोर मचाया। खाँ जाग कर उसी ओर गया। एक ने तलवार चलाई जिससे खाँ का अँगूठा और उसके पास की उँगली कट गई। उसका पुत्र अबुल फतह मारा गया। उसी समय बाहरी चौकीदार भी भीतर पहुँचे, तब ये आदमी हवा की तरह भाग गए[१]। जब जब (जब मिरजा राजा जयसिंह उसका दमन करने के लिये नियुक्त हुए और उन्होंने उसके

शायस्ता खाँ की पूना में दुर्दशा होने पर औरंगजेब ने उसे बुला लिया और शाहजादा मुअज्जम को दक्षिण का सूबेदार बना कर भेजा। इसी की सहायता के लिये महाराज जसवंतसिंह नियुक्त हुए थे। जब ये लोग भी कुछ न कर सके, तब जयपुर-नरेश महाराज जयसिंह भेजे गए।

राज्य के दुर्गों पर सेना ले जाकर दुर्ग पुरधर को घेर लिया तब) उसने निरुपाय होकर संधि की प्रार्थना की कि मैं तेईस दुर्ग बादशाह को देता हूँ। अब चाहिए कि मेरे ऊपर कृपा करें। सवाल जवाब के बाद दुर्गों की तालियाँ भेज दीं और स्वयं नि:शस्त्र आकर राजा से भेंट की। मिरज़ा राजा ने बहुत आदर किया और तलवार तथा वस्त्र दिए। बीजापुर की चढ़ाई मे यह मिरजा राजा के साथ गए[1]।

जब बादशाह ने यह सुना, तब उसे दरबार आने की आज्ञा भेजी। यह अपने पुत्र शंभा जी के साथ दरबार को गए। हाज़िरी के दिन (कि यह आज्ञानुसार पाँच हजारी दरजे मे खड़े किए गए थे) दुस्साहस से कोने मे जाकर लेट गए और कहा कि पेट में पीडा है। आज्ञा हुई कि उसके स्थान पर (जो उसके ठहरने के लिये नियत था) ले जावें। वहाँ पहुँचने पर अपना दुःख प्रकट किया। जब बादशाह ने यह वृत्तांत सुना, तब मिर्ज़ा राजा के पुत्र कुँअर रामसिंह को उसकी ख़बरदारी पर नियत किया। फिर फौलाद खाँ कोतवाल के आदमियों को पहरे पर नियुक्त किया। उसने हर एक के दिल को अपने संतोष से बेफिक्र कर दिया। एक रात्रि अपने पुत्र के साथ कपडे बदल कर बाहर निकले और रास्ते में घोड़ों पर (जिन्हे पहले से ठीक किया था) सवार होकर मथुरा पहुँचे। डाढ़ी मोंछ बनवा कर काशी, बगाल

---

१. संधि की एक शर्त यह भी थी कि शिवा जी अपनी सेना के साथ बीजापुर की चढ़ाई में मुग़ल वाहिनी की सहायता करेंगे।

उदासी होते हुए हैदराबाद प्रांत में पहुँचे। शंभा जी का ... में कवि कलश के यहाँ ठहर गए थे और अच्छा पुरस्कार की उसे आशा दी थी कि जब बुलावें, तब वह वहाँ पहुँचे[1]।

जब १०वें वर्ष में सुलतान मुहम्मद मुअज्जम दक्षिण का ... दार होकर महाराज जसवंतसिंह के साथ नियत हुआ तब ... जी ने गड़बड़ मचाना आरंभ कर दिया। बहुत से बाद... री महाल लूटे गए और सूरत का बंदर भी लूटा गया। महा... जसवंतसिंह के साथ शाहजादे के पहुँचने पर उसने संधि प्रार्थना की कि 'मैं अपने पुत्र शंभा जी को भेजता हूँ जिसे ... सब दीजिए और वह सेना सहित नियुक्त होकर काम करे।' ... बात के मान लिए जाने पर अपने पुत्र को प्रतापराव नामक ... नापति के साथ एक हजार सवार सहित भेजा। सेवा करने पर ... इसे पाँच हजारी ५००० सवार का मन्सब, मयारूफ सामान सहित ... थी और बरार में जागीर पाई। कुछ दिन बाद पुत्र को बुला ... या और सेना सहित कार्यकर्त्ता वहीं रह गया। फिर जब शंभा ... की जागीर में से कुछ महाल एक लाख रुपए के बदले में (जो ... वाओं का दरबार जाते समय दिया गया था) छिन गया, तब ... पने कार्यकर्त्ता को बुला लिया और बादशाही देश में लूट मार ... चाना आरंभ कर दिया। दाऊद खाँ कुरेशी उसका पीछा करने ... र नियुक्त हुआ। युद्ध भाग-भाग कर होता था। इसके अनंतर

१ इसका पूरा वृत्तांत आप तीस पृष्ठ में भी दरबार के शिवाजी ... दिया गया है। पृ० १४१-१७६ देखिए।

हैदराबाद के सुलतान से मिल कर दोनों ने साथ ही बादशाही सेना से लड़ना निश्चित किया। पहले दुर्गों के लेने का विचार करके उससे सेना और धन लेकर तंजावर[1] गए। अपने भाई वेंकोजी को भेंट करने के लिये और सहायता देने के लिये बुलाया। वह चिंची[2] के पास आया और इनसे भेंट की। शिवाजी ने उससे पिता की संपत्ति में से अपना हिस्सा माँगा। उसने नम्रता से बातचीत की और अर्द्ध रात्रि को कुछ मनुष्यों के साथ तंजावर भाग गया। शिवा जी ने उसकी सेना को नष्ट कर दिया और चिंची आदि दुर्गों पर अधिकार करके अपने आदमियों को सौंपा। इसके बाद हैदराबाद की सेना को लौटा दिया। १७ वें वर्ष दक्षिण के सूबेदार बहादुर खाँ कोका ने संधि की बात फिर उठाई और बादशाह को लिखा। संधि के मान्य होने तक इन्होंने अपने अधिकृत दुर्गों मे रसद का सामान ठीक कर लिया और बीजापुरियों से पर्नाला दुर्ग छीन लिया। उस मनुष्य का (जिससे पूर्वोक्त सूबेदार की ओर से बातचीत चल रही थी) अच्छा सत्कार कर संधि के बारे में साफ जवाब दे दिया। २०वें वर्ष शंभाजी पिता से बिगड़ कर दिलेर खाँ के पास चला गया। २१वें वर्ष वह पिता के पास लौट गया। उसी वर्ष शिवा जी ने बादशाही राज्य में घुस कर जालना परगने को लूट लिया। कुछ दिन बीमार रह कर यह संसार से उठ गए। कहते हैं कि वहाँ के

---

१. तंजावर का नाम मानचित्रों में तंजौर दिया रहता है।

२ कर्णाटक का प्रसिद्ध दुर्ग जिसे जिंजी कहते हैं।

रहनेवाले शाह जानुल्ला दर्वेश ने (जो सिपाहियों में एक थे और मना करने पर भी शिवा जी और उनके सैनिकों ने जिनका तकिया अर्थात् स्थान लूट लिया था) इसी लिये उसे शाप दे दिया था[१]।

शिवाजी न्याय करने, गुणग्राहकता और वीरता में प्रसिद्ध थे। इनकी घुड़साल में बहुत से घोड़े बँधे रहते थे और उनकी रखवाली के लिये बहुत से नौकर नियत थे। दस घोड़ों पर एक पखालवार, एक भिश्ती और एक मशालची खिलाने पिलाने को नियुक्त रहता था और एक हजार पर एक मजमूअदार रहता था। सैनिक जागीर की घास के होते थे। जब सेना किसी सेनापति के साथ कहीं भेजी जाती थी, तब हर एक का सामान लिख लिया जाता था। लूट के अनंतर जो कुछ ज्यादा होता, वह ले लिया जाता था। गुप्तचर भी नियत रहते थे।

शिवा जी की मृत्यु पर शंभा जी राजा हुए पर अपने हठ से पिता के साथवालों को दुःखित कर दिया और उनसे वैमनस्य कर लिया। वह कवि कलश नामक ब्राह्मण पर अधिक विश्वास रखता और बुरे कर्मों का साथी था[२]। २४वें वर्ष (जब सुलतान

---

१ औरंगाबाद के ठीक पूर्व चालीस मील पर जालना स्थित है। इसे सन् ११७९ ई॰ में दिसंबर महीने में लूट लिया था। कहा जाता है कि यहीं के एक फ़क़ीर सैयद जान मुहम्मद ने इन्हें बद्दुआ दी थी जिसके पाँच महीने बाद इनकी मृत्यु हुई। जो हो, २४ मार्च सन् ११८० ई॰ को महाराज शिवाजी स्वर्ग सिधारे।

२. शिवा जी की मृत्यु पर शंभा जी राजा हुए, पर इनके लिये इन्हें

मुहम्मद अकबर पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दक्षिण आया तब) शंभाजी ने उसे शरण दी थी[1] । ३०वें वर्ष खानेजमाँ शेख निज़ाम (जो परनाला के पास कोल्हापुर का फौजदार था) ने उसके एक जासूस को पकड़ कर दूर से उस पर पहुँच कर धावा किया और उसको कवि कलश सहित पकड लिया। हमीदुद्दीन खाँ जाकर बादशाह के पास लाया। (जिस दिन वह बादशाही सेना में पहुँचा) उसी दिन आज्ञानुसार कैद किया गया। इस समाचार से बादशाही सेना के छोटे वडे सभी प्रसन्न थे। इस घटना की तारीख इस मिसरे से निकलती है—बा जनो फर्जंद संभा शुद असीर । (इसका अर्थ हुआ—स्त्री पुत्र सहित शंभा जो पकड़े गए[2]) ३१वें वर्ष में बादशाह के हुक्म से वह मारा गया[3] । राहिरी गढ़ (जिसे विजय करने के लिये जुल्फिकार खाँ पहले से नियत था) उसी वर्ष विजय हुआ। शंभा जी की स्त्रियाँ और

कई युद्ध करने पड़े थे जिससे वह शिवा जी के समय के सरदारों पर शंका करके कवि कलश को अपना विश्वसनीय मित्र मानता था। यह उसे विषय-वासना में फँसाए रहने का प्रयत्न करता रहता था।

१ सन् १६८६ ई० में शाहज़ादा अकबर राजपूताने से भाग कर दक्षिण चला आया जहाँ से फारस चला गया।

२. सन् १६८८ ई० में शंभा जी संगमेश्वर में कलश के बनवाए महलों में अपनी काम-वासना तृप्त कर रहे थे कि शेख निज़ाम हैदराबादी अपने पुत्र इखलास खाँ के साथ इनके यहाँ रहने का समाचार पाकर पहुँचा और उसी वर्ष २८ दिसंबर को इन्हें कैद कर लिया।

३ ११ मार्च सन् १६८९ ई० को शंभा जी मारे गए।

पुत्र साहू बादशाह के यहाँ लाए गए। उस राजा की पदवी और सात हजारी ७००० सवार का मन्सब देकर गुलाल बाड़ा[1] में रहने की आज्ञा दी। उसने दरबार ही में शिक्षा पाई।

औरंगज़ेब की मृत्यु के अनंतर जुल्फ़िक़ार ख़ाँ की प्रार्थना पर मुहम्मद आज़म शाह से छुट्टी लेकर यह दक्षिण गए। मरहठे इकट्ठे हो गए। पहले औरंगज़ेब की क़ब्र तक जाकर उसे देखा; पर उसी समय उसके साथवालों ने औरंगाबाद के बाहरी महालों में लूट मार मचाना आरंभ कर दिया[2]। फिर यह सितारा आकर बैठा और बहुत दिन तक वहीं सुख करता रहा। इसके मंत्रियों[3] ने (जिन्हें हिन्दू प्रधान कहते हैं और राजा को इन अष्टप्रधान पर विश्वास करना पड़ता है) पहाड़ और लूट जारी रखी, यहाँ तक कि बहादुर शाह के समय में जुल्फ़िक़ार ख़ाँ के कहने से औरंगाबाद, खानदेश, बरार, बीदर और बीजापुर के प्रांतों की आय में से दस रुपया सैकड़ा इन्हें दिया जाना निश्चित हुआ।

---

१ १८ अक्तूबर सन् १६८६ ई० को एतक़ाद ख़ाँ ने रायगढ़ पर अधिकार कर लिया। शंभा जी की स्त्री येसू बाई तथा पुत्र शिवा जी भी क़ैद हुए। ये दोनों औरंगज़ेब की पुत्री ज़ीनतुन्निसा के साथ गए। शिवा का नाम साहू रखा गया। इसी एतक़ाद ख़ाँ को जुल्फ़िक़ार ख़ाँ की पदवी मिली जिस नाम से यह बाद को बहुत प्रसिद्ध हुआ।

२ सन् १७०७ ई० में औरंगज़ेब की मृत्यु पर बहादुर शाह ने इसे बिदा कर दिया था।

३ यहाँ पेशवाओं से तात्पर्य है जो वास्तव में साहू जी के प्रधान अमात्य और मराठा राज्य के कर्णधार थे।

पर राजा साहू और राजाराम की स्त्री तारा बाई के झगड़े के कारण कुछ न हो सका। इसके बाद हुसेन अली खाँ अमीरुल्-उमरा की सूबेदारी के समय पचीस रुपया सैंकड़ा चौथ के नाम से बढ़ाया गया और अमीरुल्-उमरा की मुहर सहित इन्हें सनद मिल गई। उस समय से इन लोगों ने लूट से हाथ उठाया। राजा साहू सन् ११६३ हि० (सं० वि० १८०४) में निस्संतान मर गया। उसके चाचा का पुत्र रामराजा दुर्ग परनाला में बच गया था।

इस ओर के पुराने सरदार धन्ना जादव और संता घोरपदे थे जो साथ ही चढ़ाई करते थे और देश को लूटते थे। दूसरे को (जिसे घमंड हो गया था) शिवाजी के पुत्र राजाराम की मृत्यु पर उसकी स्त्री की आज्ञा से (जो नियमानुसार पुत्र के अल्पवयस्क होने के कारण राज्यकार्य सँभालती थी) धन्ना जी आदि ने मार डाला[१]। उसका पुत्र रानो घोरपदे पिता के बदले कुछ दिन लूट मार करता रहा और उससे प्रसिद्ध हो गया। उसकी संतान और जातिवाले दक्षिण में हैं। उसके प्रधानों में से एक बाला जी

१. शिवा जी के पुत्र राजाराम की फाल्गुन व० ६ शके १६२१ (५ मार्च सन् १७०० ई०) को मृत्यु हुई थी। इनकी स्त्री तारा बाई ने मराठों के स्वातंत्र्य-युद्ध को बराबर जारी रखा। राजाराम की मृत्यु के पहिले ही सन् १६६८ ई० में संता जी घोरपदे धन्ना जी जादव द्वारा मारे जा चुके थे जिसके अनंतर राजाराम ही ने धन्ना जी को प्रधान सेनापति नियुक्त किया था।

विश्वनाथ नामक ब्राह्मण था[1]। सन् ११३० हि० (सन् १७१८ ०) में जब हुसेन अली खाँ ने राजा साहू से चौथ और सिरदेशमुखी देना निश्चित करके अपनी मुहर सहित सनद दे दी तब बाला जी पन्द्रह हजार सवार सहित पूर्वोक्त खाँ के साथ देहली गए। सन् ११३९ हि० (सं० १७८४ वि० सन् १७२७ ई०) में बाला जी के पुत्र बाजीराव के (जो पिता की मृत्यु पर उसके स्थानापन्न हुए थे) एक सहकारी मल्हार राव होलकर ने मालवा जाकर वहाँ के सूबेदार गिरधर बहादुर को युद्ध में मार डाला[2]। जब मुहम्मद खाँ बंगश वहाँ का सूबेदार हुआ, तब भी इन्होंने मार कर उसको नाम मात्र का अधिकारी छोड़ दिया। सन् ११४९ हि० में (जब राजा जयसिंह प्रांताध्यक्ष हुए तब) एक जाति के होने से बाजीराव के बल बढ़ाने में इन्होंने सहायता दी[3]।

---

१ बाला जी विश्वनाथ भट्ट चित्पावन ब्राह्मण थे। यह राजा की सेना के एक सहकारी थे जिनके पुत्र चन्द्रसेन जाधव से जब इनकी नहीं पटी तब ये साहू जी के पास चले गए। यह प्रथम पेशवा नियुक्त हुए।

२ बाजीराव के भाई चिमना जी अप्पा तथा ऊदा जी पवार ने देवास के पास सारंगपुर के युद्ध में राजा गिरिधर को मार डाला। सन् १७३१ ई० में मल्हार राव होलकर ने धार के पास एक युद्ध में राजा गिरिधर के भतीजे भाई दया बहादुर को परास्त कर मार डाला।

३ दिल्ली के सम्राट् नाम मात्र के सम्राट् थे और दूर के प्रान्ताध्यक्षों की पर कुछ सहायता नहीं कर सकते थे इससे वे सूबेदार भी अपने काम पर विशेष दृष्टि रखते थे। सवाई जयसिंह अपने राज्य के विस्तार में लगे थे और इससे इस प्रान्त की रक्षा पर कम ध्यान रखते थे। अन्त में सन् १७३४ ई० में इन्हीं की राय से मालवा मराठों को दे दिया गया।

सन् ११४६ हि० मे बाजीराव ने दक्षिण से हिंदुस्तान पर चढ़ाई की। जब खानेदौराँ का भाई मुजफ्फर खाँ उसे दमन करने पर नियुक्त होकर सिरोंज पहुँचा, तब यह सामना न कर दक्षिण लौट गए। सन् ११४७ हि० (सं० १७९१ वि० सन् १७३४ ई०) मे जब इन्होंने फिर चढ़ाई की, तब बादशाह ने दो सेनाएँ एक एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ के अधीन और दूसरी खानेदौराँ के सेनापतित्व मे इन्हें दमन करने के लिये भेजीं। बाजीराव ने भी एक सेना बेला जी जादव के अधीन कमरुद्दीन खाँ पर और दूसरी मल्हारराव के साथ खानदौराँ पर भेजी[१]। कमरुद्दीन खाँ ने बढ़ कर तीन चार युद्ध किए। खानदौराँ ने डर से संधि करना चाहा और दोनों पीछे हट आए। फिर राजा जयसिंह के कहने पर (जो चाहता था कि मालवा की अध्यक्षता उसके बदले में बाजीराव को दी जाय) खानदौराँ ने भी मुहम्मद शाह का विचार वैसा कर लिया, तब सन् ११४८ हि० में मालवा का प्रबंध बाजीराव को सौंप दिया गया। दूसरे वर्ष बड़ी सेना के साथ बाजीराव ने मालवा पहुँच कर वहाँ का प्रबंध ठीक कर लिया और तब भदावर के राजा पर चढ़ाई की। राजा दुर्ग में जा बैठा। इसने मौजा आवतर को (जो राजा का वासस्थान था) विजय कर लिया[२] और बेला जी जादव को

१ इन सब युद्धों का इतना संक्षिप्त उल्लेख किया गया है कि कुछ ठीक नहीं समझ पड़ेगा। इन सब का विवरण देखने के लिये मराठों का इतिहास देखना चाहिए।

२ सं० १७९३ वि० में भदावर के राजा अमृतसिंह ने बाजीराव का सामना किया। मराठों ने अतेर पर अधिकार कर लिया। अंत में बारह लाख रुपया देकर छुट्टी पाई। (तारीखे हिंदी, इलि० डा०, भा० ८, पृ० ५३)

यमुना पार भेजा कि अंतर्वेदी को लूटे। उसने बुरहानुलमुल्क को (जो आगरे के पास पहुँच गया था) सामना किया और बहुत आदमी कटा कर अंत में भागा और बाजीराव से जा मिला। बाजीराव ने क्रुद्ध होकर दिल्ली की ओर कूच किया। लूट मार होने पर खानदौराँ नगर में से निकला। बाजीराव ने युद्ध में कुछ लाभ न देख कर आगरे की ओर कूच किया। सन् ११५० हि० (सन् १७३७ ई०) में मुहम्मद शाह के बुलाने पर आसफ़जाह दक्षिण से राजधानी पहुँचा और बाजीराव के बदले में मालवा का सूबेदार नियत होकर वहाँ गया। भूपाल के पास बाजीराव से युद्ध हुआ और संधि होने पर अब सूबेदारी उसी को मिली तब वह राजधानी को लौट गया[1]। सन् ११५२ हि० में बाजीराव ने नासिरजंग से औरंगाबाद के पास युद्ध किया और उस वर्ष के आखिर महीने की १४ ता० को संधि होने पर खानदेश के पास की सरकार खरगून मालीगढ़ पर अधिकार कर लिया। नर्मदा के किनारे पहुँचने पर सन् ११५३ हि० में उसकी मृत्यु हो गई[2]।

---

१ भूपाल के पास निजामुलमुल्क आसफजाह की सेना को बाजीराव ने घेर लिया जिससे उस में दोनों ओर की बहुत सी सेना काम आने पर ११ फरवरी सन् १७३८ ई० को संधि हुई जिससे मालवा प्रांत बाजीराव को मिल गया।

२ सन् १७४० ई० के आरंभ में गोदावरी के किनारे निजामुलमुल्क के पुत्र नासिरजंग से युद्ध हुआ जिसमें वह पराजित हो कर औरंगाबाद दुर्ग में जा बैठा। अंत में दुर्ग के टूटने का समय आने पर संधि कर ली। २८ अप्रैल सन् १७४० ई० को बाजीराव की मृत्यु हुई।

इसके बाद इसका पुत्र बाला जो उस स्थान पर नियत हुआ। बाजीराव के भाई जमना जी[१] का पुत्र सदाशिव राव उपनाम भाऊ कार्यकर्त्ता नियुक्त हुआ। साहू राजा तक नियम दृढ़ थे। नासिरजंग के मारे जाने और राजा साहू की मृत्यु तक (जो सन् ११६३ हि० में हुई थी) यद्यपि इनमें कई बार विद्रोह के चिह्न दिखलाई पड़े थे, पर आप ही मिट गए थे। राजा की मृत्यु पर उसके एक संबधी को गद्दी पर बैठा कर राज्यप्रबंध अपने हाथ मे लिया और पुराने मराठा सरदारों को भी मिला लिया। सन् ११६४ हि० मे (जब होलकर और जयप्पा सींधिया अबुन्नासिर खाँ[२] के सहायतार्थ इलाहाबाद और अवध गए तथा अहमद खाँ बंगिश हार गया तब) खाँ ने इनाम में कोल, जलेसर और कन्नौज से कड़ा जहानाबाद तक का प्रांत इन्हें दे दिया। धीरे धीरे इलाहाबाद तक इनका अधिकार हो गया। लगभग दस वर्ष तक वहाँ मराठों का अधिकार रहा। उसी वर्ष बाला जी ने औरंगाबाद पर चढ़ाई कर निजामों के कोष से बहुत धन लूटा। सन् ११६५ हि० में अमीरुलउमरा फीरोजजंग की सनद के अनुसार लगभग कुल खानदेश प्रांत और औरंगाबाद प्रांत के कुछ महाल इनके अधिकार में चले आए। सन् ११७१ हि० में दक्षिण के निजामुद्दौला आसफ़जाह से युद्ध किया जिससे संधि होने पर

१. अन्य प्रति में चिमना जी लिखा है।

२. यहाँ एक प्रति में इतना और है—'जो अहमद खाँ बंगिश से युद्ध कर रहा था।'

सत्ताइस लाख रुपए आय की भूमि मराठा के अधिकार में आ गई। उसी वर्ष जयप्पा के भाई दत्ता जी सींधिया और पुत्र जनको जी ने सकरताल[1] में नजीबुद्दौला का घेर लिया। उसी वर्ष रघुनाथ राव, शमशेर बहादुर और होलकर दिल्ली के पास पहुँचे और आदीना बेग खाँ के मुझान पर पंजाब आकर अहमद शाह दुरानी के पुत्र तैमूर शाह और जहाँ खाँ को लाहौर से भगा दिया। इन्होंने लाहौर में अपना प्रतिनिधि भी नियुक्त किया। सन् ११७२ हि० में शाह दुरानी के आने का समाचार सुन कर वह घरहिंद आकर मर गया। दक्षिण में दुर्ग अहमदनगर मराठों के अधिकार में चला आया। बाला जी और सदाशिव राव ने अमीरुलमुमालिक निजामुद्दौला आसफजाह से युद्ध किया। कर्म योग से चंदावल के मुसलमान सरदार मारे गए और साठ लाख रुपए आय की भूमि तथा तीन दुर्ग—दौलताबाद, आसीर और बीजापुर—मराठों के हाथ लगे।

जब उसी वर्ष शाह दुरानी ने पंजाब से मराठा का अधिकार उठा दिया और दत्ता सींधिया मारा गया तथा होलकर की सेना नष्ट कर दी गई, तब सदाशिव राव बाला जी के पुत्र विश्वास राव के सहित प्रयत्न करने के लिये हिंदुस्तान गए। पहले दिल्ली आकर दुर्ग पर अधिकार किया और कामबख्श के पौत्र और मुहीउस्सुन्नत के पुत्र मुहीउलमिल्लत को (जिसे इमादुलमुल्क ने आलमगीर द्वितीय को मार कर गद्दी पर बैठाया था) हटा

१ अन्य प्रति में सकरताल है।

कर उसके स्थान पर शाह आलम बादशाह के पुत्र जवाँ बख्त को नियमानुसार बैठाया। सन् ११७४ हि० (स० १८१८ वि० सम् १७६१ ई०) में शाह दुर्रानी से सामना हुआ। जब रसद न मिलने के कारण कष्ट हुआ, तब इसने निरुपाय होने से युद्ध किया जिसमें वह, विश्वास राव, अन्य सरदार और बहुत से सैनिक आदि मारे गए, और जो भागे, उन्हे देहातियों ने नहीं छोड़ा[1]। यह समाचार सुन कर बाला जी की दुःख से मृत्यु हो गई[2]। दूसरा पुत्र माधो राव उसके स्थान पर बैठा। कुछ दिन से उसके चाचा रघुनाथ राव से उससे वैमनस्य था, इसलिये उसने उसे क़ैद कर दिया। कुछ वर्ष दृढ़ता से बीतने पर रोग से उसकी मृत्यु हो गई[3]। अपने छोटे भाई नारायण राव को वह अपने स्थान पर बैठा गया था, परंतु रघुनाथ राव ने उसे अपने आदमियों से मरवा डाला[4]। इस वंश के कार्यकर्त्ता उससे प्रसन्न नहीं थे, इसलिये झगड़ा उठा और रघुनाथ राव हार कर टोपीवाले फिर-

१. पानीपत का तृतीय युद्ध।

२ उसी वर्ष अर्थात सन् १७६१ ई० में इनकी मृत्यु हो गई।

३. बाला जी के प्रथम पुत्र विश्वास राव मारे जा चुके थे, इससे द्वितीय पुत्र माधव राव बल्लाल पेशवा हुए। सन् १७७३ ई० में इनकी मृत्यु हो गई जिस पर इनका छोटा भाई नारायण राव पेशवा हुआ।

४ रघुनाथराव नारायणराव का चाचा था और पेशवा की गद्दी पर बैठना चाहता था। इस कारण माधवराव ने भी इसे क़ैद किया था और नारायणराव ने भी गद्दी पर बैठते ही उसे क़ैद कर दिया। परंतु उसी वर्ष उसे रघुनाथराव ने मरवा डाला और आप पेशवा बन बैठा।

गियों का शरण में गया। जिसके समय उनकी सहायता से आर्येन्द्रों से युद्ध करने पर उनके हाथ पड़ गया और शारीरिक व्यय के लिये मालवा में जागीर पाकर उस प्रान्त को गया। रास्ते में रघुनाथ से युद्ध कर सूरत बंदर के फिरंगियों के पास चला गया। इस कारण टोपीवालों और मराठों में युद्ध आरम्भ हो गया। नारायण राव का अल्पवयस्क पुत्र माधोराव अपने पूर्वजों के स्थान पर बैठा।

राजा साहू के अन्य सरदारों में दाभाड़िया भी थे[1]। जब गुजरात प्रांत का सूबेदार सरबुलन्द खाँ था, तब उस प्रांत पर चढ़ाई कर उसने उसके बहुत से भाग पर अधिकार कर लिया था। राजा साहू के एक दूसरे सरदार रघू जी भोंसला थे जो राजा ही के वंश के थे। बरार प्रांत उनके अधिकार में था और देवगढ़ और चाँदा पर भी कब्जा कर वह बंगाल गए। चौथ के बदले उड़ीसा प्रांत छीन लिया। उनकी मृत्यु पर उनका बड़ा पुत्र जानो जी उत्तराधिकारी हुआ। जब उसकी मृत्यु हुई, तब उसके भाइयों में झगड़ा हुआ। जिसके समय रघू जी का पुत्र मोमू अधिकारी था[2]।

---

१ दाभाड़िया शब्द अशुद्ध है। खांडेराव का पावड़े अथवा दाभाड़े था जिसने गुजरात पर चढ़ाई कर वहाँ लूट मार की थी। इसी के एक सरदार पीलाजी गायकवाड़ थे जिनके वंश में वर्तमान बड़ौदा नरेश हैं।

२ जानो जी ने अपने भाई मुधो जी के पुत्र रघू जी को गोद लिया। इसके बाद जब वह सन् १७७२ ई० में मर गए, तब दो वर्ष बाद मुधो जी और साबा जी दोनों भाइयों में झगड़े हुए जिसमें साबा जी मारा गया। सन् १७८८ ई० में मुधो जी की मृत्यु हो गई।

अपने पूर्वजों के हाथ की चौथ के ताल्लुक़े को सनद मराठा राज्य से अपने पुत्र रघू जी के नाम करा दी। उसके अन्य सरदारों में मुरार राव घोरपदे था जो बीजापुर प्रांत के सरा आदि महालों का ताल्लुक़ेदार था। इसने सरदारों में प्रसिद्धि प्राप्त कर दुर्ग केती आदि बहुत से महालों पर अधिकार कर लिया था। यह हैदरअली खाँ द्वारा सन् ११९० हि० (सन् १७७६ ई०) में उस दुर्ग में घिर कर पकड़ा गया और कैद में मर गया। छोटे छोटे सरदार गणना के बाहर हैं।

८४—राजा शिवराम गोर

यह राजा गोपालदास के पुत्र बलराम का पुत्र था। इसके पिता और दादा दोनों शाहजादों की शाहजादगी में ठट्ठा की चढ़ाई[1] में मारे गए थे, इससे यह बादशाह का अत्यन्त कृपापात्र हुआ। सरदारी मिलने के अनन्तर योग्य मन्सब पाकर पैंदेरा प्रांत (जो मालवा के अन्तर्गत सरकार सारंगपुर के परगनों में से है) इसको डेरा नियत हुआ[2]। १०वें वर्ष तक इसका मन्सब डेढ़ हजारी १० ० सवार तक पहुँचा था। कुछ दिन यह आसीर दुर्ग का दुर्गाध्यक्ष रहा। १८वें वर्ष में वहाँ से हटाया जाकर १९वें वर्ष यह शाहजादा मुराद बख्श के साथ बलख और बदख्शाँ की चढ़ाई पर नियत हुआ। फिर दरबार पहुँच कर यह २०वें वर्ष में काबुल के किले का रक्षक नियत हुआ। २१वें वर्ष में वहाँ से हटाया गया, पर जब उसी वर्ष के अन्त में अब्दुल अज़ीज़ खाँ और नज़र मुहम्मद खाँ में झगड़ा होने का समाचार बादशाह को

१ इस युद्ध में राजा गोपालदास तथा उनके अन्य सात पुत्र मारे गए थे। बलराम सबसे बड़ा पुत्र था। इसी का योग्य भाई विट्ठलदास था। इसका वृत्तांत ४०वें निबंध में दिया गया है।

२ इस प्रांत पर इसका किस प्रकार अधिकार हुआ यह जानने के लिये राजा विट्ठलदास की जीवनी देखिए।

मिला और दृढ़ता के लिये बहुत से सरदार काबुल मे नियुक्त हुए, तब यह भी वहीं नियत किया गया था। २२वें वर्ष मन्सब में २०० सवार बढ़ा कर शाहज़ादा मुहम्मद औरंगजेब के साथ यह दक्षिण को चढ़ाई पर नियत हुआ। २५ वें वर्ष में जब इसके चाचा राजा विट्ठलदास की मृत्यु हुई, तब इसका मन्सब बढ़कर दो हज़ारी १५०० सवार का हो गया और यह राजा की पदवी के साथ दूसरी बार पूर्वोक्त शाहज़ादे की अधीनता में उसी चढ़ाई पर गया। २६वें वर्ष शाहज़ादा दारा शिकोह के साथ भी उसी चढ़ाई पर गया और वहाँ से रुस्तम खाँ फ़ीरोज जंग के साथ बुस्त दुर्ग के विजयार्थ भेजा गया। २८वें वर्ष में सादुल्ला खाँ के साथ इसने चित्तौड़ दुर्ग को गिराने मे वीरता प्रकट की। ३१वें वर्ष इसका मन्सब बढ़कर ढाई हजारी २५०० सवार का हो गया और इसे मांडू की दुर्गाध्यक्षता मिली। सामूगढ़ के युद्ध में (जहाँ यह दारा शिकोह के हरावल मे था) सन् १०६८ हि० (सन् १६५७ ई०) में इसने वीरगति पाई।

८४—सुजानसिंह

राणा अमरसिंह के द्वितीय[1] पुत्र सूरजमल सिसोदिया का यह और वीरमदेव दोनों पुत्र थे। पहला इस सल्तनत का पुराना सेवक है। इसने शाहजहाँ के राजत्व के १० वें वर्ष में छ सदी ३०० सवार का मन्सब पाया था और १७वें वर्ष में इसका मन्सब एक हजारी ४ सवार का हो गया। १८वें वर्ष में इसके मन्सब में १०० सवार और बढ़ाए गए। १९वें वर्ष यह शाहजादा मुराद बख्श के साथ बलख बदख्शाँ की चढ़ाई पर नियत हुआ। २२वें वर्ष में इसे डेढ़ हजारी ७०० सवार का मन्सब देकर शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ कंधार में नियत किया। २५वें वर्ष में जब इसका मन्सब दो हजारी ८०० सवार का हो गया, तब यह पूर्वोक्त शाहजादे के साथ उसी दुर्ग की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ। २६ वें वर्ष में यह तीसरी बार शाहजादा दारा शिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर भेजा गया। २९ वें वर्ष जब महाराज जसवंत सिंह का विवाह इसकी भतीजी के साथ निश्चित हुआ, तब इसे मथुरा से छुट्टी मिली। ३०वें वर्ष मुअज्जम खाँ के साथ औरंग-

---

[1] मूता नैणसी ने इन्हें तृतीय पुत्र लिखा है और यह भी लिखा है कि सुजानसिंह को फूलिया पट्टे में मिला था।

जेब बहादुर के पास दक्षिण जाकर इसने अच्छा काम किया और आदिलखानियों के युद्ध में बहादुरी दिखलाई। वहाँ से दरबार आकर महाराज जसवन्तसिंह के साथ मालवा गया और सन् १०६८ हि० (सन् १६५६ ई०) मे पूर्वोक्त शाहजादे और राजपूतों से जो युद्ध हुआ, उसी मे यह मारा गया[१]। इसका पुत्र फतेहसिह नीचे के मन्सबदारो मे था।

दूसरा (वीरम देव) राणा की नौकरी छोड़ कर २१वें वर्ष दरबार में आया और उसे आठ सदी ४०० सवार का मन्सब मिला। २२वें वर्ष में मन्सब के एक हजारी ५०० सवार का होने पर यह शाहजादा औरंगजेब बहादुर के साथ कंधार गया। २३वें वर्ष पाँच सदी और २५वें वर्ष २०० सवार के मन्सब में बढ़ाये जाने पर दूसरी बार उसी शाहजादे के साथ उसी चढ़ाई पर नियुक्त हुआ। २६वें वर्ष इसका मन्सब दो हजारी ८०० सवार का हो गया। २७वें वर्ष २०० सवार और बढ़ाए गए। २८वें वर्ष इसका मन्सब पाँच सदी और बढ़ाया गया तथा दस हजार रुपए के रत्न पाकर यह सम्मानित हुआ। २९वें वर्ष इसको पुत्री के विवाह (जो महाराज जसवन्तसिंह के साथ ठीक हुआ था) के लिये इसे मथुरा जाने की छुट्टी मिली। ३१वें वर्ष मन्सब के तीन हजारी १००० सवार का हो जाने पर यह शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के पास दक्षिण गया। आदिलखानियों के युद्ध में जब राजा

---

१. औरंगजेब और जसवन्तसिंह के बीच धर्मत में जो युद्ध हुआ था, उसी में यह मारा गया था।

रामसिंह सिसोदिया कष्ट में पड़ गया, तब इसने पैदल होकर युद्ध किया था। सामूगढ़ की लड़ाई में यह दाराशिकोह के हरावल में था। इसके बाद यह औरंगज़ेब की ओर हो गया। शुजाअ के युद्ध में और दारा शिकोह के साथ के दूसरे युद्ध में बादशाह के साथ था। फिर दक्षिण में नियत होकर यह १०वें वर्ष राजा रामसिंह कछवाहा के साथ आसामियों की चढ़ाई पर गया[1]। १२वें वर्ष यह सफशिकन खाँ के साथ (जो मथुरा का फौजदार था) नियत हुआ[2] और काल आने पर मर गया।

---

१ सन् १६६७ ई० में यह चढ़ाई हुई थी। मआसिरे आलमगीरी में रामसिंह के साथ जानेवाले मन्सबदारों में इसका नाम भी दिया है।

२ वीरमदेव सिसोदिया को सफशिकन खाँ के साथ जाने का निशान मिला। औरंगज़ेब नामा हिंदी भा० २, पृ० १४।

८६–राजा सुजानसिंह बुँदेला

यह राजा पहाड़सिंह बुँदेला[१] का पुत्र था। पिता के सामने ही शाहजहाँ का कृपापात्र होकर कामों पर नियुक्त होता था। पिता की मृत्यु पर जलूस के २८वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़ कर दो हजारी २००० सवार दो अस्प सेहअस्पः का हो गया और राजा की पदवी मिली। २९वें वर्ष क़ासिम खाँ मीर आतिश के साथ श्रीनगर के भूम्याधिकारी को दंड देने के लिये नियुक्त होने पर डंका और निशान पाया। ३०वें वर्ष अनुल्लंघनीय आज्ञानुसार दक्षिण के नाज़िम सुलतान औरंगज़ेब के पास गया और फिर बुलाए जाने पर दरबार पहुँचकर महाराज के साथ दक्षिण से आनेवाली सेना के रास्ते की रुकावट में नियुक्त हुआ। औरंगज़ेब से युद्ध के दिन लड़ाई के समय भाग कर स्वदेश चला गया। कुछ दिन अनंतर औरंगज़ेब से दोष क्षमा करा के और योग्य मन्सब प्राप्त कर शाह शुजाअ के युद्ध में दाहिनी ओर स्थित था। परास्त होने पर जब शुजाअ बंगाल की ओर गया और शाहज़ादा मुहम्मद सुलतान पीछा करने पर नियुक्त हुआ, तब यह भी उसके सहायकों में नियुक्त होकर साथ गया और उस प्रांत में अच्छा कार्य

---

१ इनका वृत्तांत अलग ३७वें निबंध में दिया गया है।

किया। ४थे वर्ष मुअज्जम खाँ की अधीनस्थ सेना के साथ कूच-बिहार पर अधिकार करने और वहाँ के जमींदार को दंड देने पर नियत हुआ, पर उसकी सेना के साथ जब वह कार्य नहीं कर सका, तब खानखानाँ के पहुँचने पर उससे आ मिला। उस कार्य के होने पर आसाम के लोगों पर चढ़ाइयाँ करके वीरता में नाम लिखाया[1]। ७वें वर्ष यह मिर्जा राजा जयसिंह के साथ दक्षिण के प्रांत में नियुक्त हुआ और पुरंदर दुर्ग के घेरे में अच्छा कार्य किया। ८वें वर्ष इसका मनसब बढ़ कर तीन हजारी ३००० सवार दो अस्प सेहअस्पः हो गया। इसके अनंतर आदिलशाहियों की सेना के साथ युद्धों में अच्छी वीरता दिखलाई और ९वें वर्ष यह दिलेर खाँ के साथ चाँदा (जो बरार के पास है) प्रांत पर अधिकार करने पर नियुक्त हुआ। ११वें वर्ष सन् १०७८ हि० (सन् १६६८ ई०) में दक्षिण में इसकी मृत्यु हुई[2]।

इसे कोई पुत्र नहीं था, इसलिए इसके छोटे भाई इन्द्रमणि का

---

१ इलि० डा० जि० ७ पृ० २६४-६।

२ इम्पी० गजे० जि० १६ पृ० २४४ में इसकी मृत्यु सन् १६७२ ई० में और सन् १८७२ ई० के जर्नल एशियाटिक सोसाइटी में सन् १६७१ में होना लिखा है। छत्रप्रकाश में लिखा है कि जब औरंगजेब के आज्ञानुसार बुंदेलखंड के मंदिरों को गिराने के लिये फिदाई खाँ अपार सेना सहित आया तब सुजानसिंह ने उसे परास्त कर भगा दिया। सुजानसिंह यह सुन कर डरे कि बादशाह यह समाचार पाकर क्रुद्ध होंगे। इसी समय छत्रसाल ने दक्षिण से लौट कर स्वतंत्रता के लिये बुंदेलखंड में सेना एकत्र करना और बुंदेल सरदारों को मिलाना आरंभ किया। छत्रसाल ने

(जो अपने पिता पहाड़सिंह की मृत्यु पर शाहजहाँ के समय पाँच सदी ४०० सवार का मन्सब पाकर २९वें वर्ष कासिम खाँ मीर आतिश के साथ श्रीनगर के भूम्याधिकारी को दंड देने पर नियुक्त हुआ था, ३०वें वर्ष दक्षिण की चढ़ाई में सुलतान औरंगजेब बहादुर के पास भेजा गया था, औरंगजेब के राज्य के १म वर्ष में शुभकरण बुंदेला के साथ चंपत बुंदेला को दंड देने पर नियत हुआ और फिर दक्षिण की नियुक्ति होने पर मिर्जा राजा जयसिंह के साथ अच्छा कार्य करता था) मन्सब बढ़ाकर उसे राजा की पदवी और उसका इलाका जागीर में दिया। उस समय खानेजहाँ की सूबेदारी में यह कुछ दिन गुलशनाबाद[1] का थानेदार रहा। १९वें वर्ष में इसकी मृत्यु होने पर इसके पुत्र जसवंतसिंह को (जो अपने इलाके पर था) राजा की पदवी और इलाके की सरदारी मिली।

उसी वर्ष के अंत में अच्छी सेना के साथ जसवंतसिंह दक्षिण में बादशाह के पास पहुँचा। २१वें वर्ष में चंपत बुंदेला

सुजानसिंह से भेंट की और इन्होंने भी उनका इस शुभ कार्य में उत्साह बढ़ाया।

सन् १६६६ ई० में राज्य दृढ़ होने और महाराज जयसिंह की मृत्यु होने के अनंतर औरंगजेब ने मंदिरों के ढाने की आज्ञा प्रचारित की थी और महाराज छत्रसाल भी जयसिंह की मृत्यु के बाद शाही मन्सब छोड़कर स्वदेश लौटे थे, इससे सुजानसिंह का सन् १६६६ ई० तक जीवित रहना निश्चित ज्ञात होता है।

१. जूनेर के पास बगलाने में है।

के पुत्रों[1] को दंड देने के लिये (जिन्होंने बुंदेलखंड में विद्रोह मचा रखा था) यह नियत हुआ। २९वें वर्ष[2] यह खानेजहाँ बहादुर कोकलताश के पुत्र हिम्मत खाँ के साथ बीजापुर गया। जाते समय खिलअत और डंका पाकर यह सम्मानित हुआ। मालखेड़ दुर्ग की चढ़ाई में इसने अच्छा कार्य किया। ३०वें वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। यद्यपि इसके पुत्र भगवंतसिंह को राजा की पदवी और जागीर मिली थी, पर ३१वें वर्ष में उसकी भी मृत्यु हो गई जिस पर उसकी दादी रानी अमर कुँअर[3] के प्रार्थना-पत्र पर उस तालुके की सरदारी प्रतापसिंह (जिसका वंश मधुकरशाह से चला था और प्रतापसिंह ओड़छा के एक छोटे

---

१ पन्ना आदि राज्यों के संस्थापक प्रसिद्ध छत्रसाल से तात्पर्य है।

२ २९वाँ वर्ष सन् १६८५ ई० होता है और मआसिरुलउमरा भा० २ पृ० ५११ की पाद-टिप्पणी में संपादक लिखता है कि अन्य प्रति में सन् १६८ है। खाफी खाँ के अनुसार हिम्मत खाँ १८वें वर्ष के अंत में दक्षिण में संता घोरपड़े से युद्ध करते समय गोली लगने से मारा जा चुका था। २५वें वर्ष (सन् १६८ ई०) में शाहजादा अकबर विद्रोह कर दक्षिण पहुँचा और उस समय खानेजहाँ बहादुर ही दक्षिण का सूबेदार था। इस समय तक औरंगजेब बराबर दक्षिण में सहायक सेना तथा अकबर को पकड़ने के लिये सेनाएँ भेज रहा था। इससे अधिक संभव है कि यह इसी वर्ष हिम्मत खाँ के साथ भेजा गया हो।

३ अपने अल्पवयस्क पौत्र भगवंतसिंह की यही अभिभाविका नियत हुई थी।

परगना मे दिन व्यतीत करता था) के पुत्र उदयसिंह[१] को राजा की पदवी सहित मिली। ३३वें वर्ष में यह दरबार मे आया। ४७वें वर्ष इसका मन्सब बढ़ कर साढ़े तीन हजारी १५०० सवार का हो गया और यह खेलना (जिसे सखरलना भी कहते हैं) का दुर्गाध्यक्ष नियुक्त हुआ। औरंगजेब की मृत्यु पर जब साम्राज्य का प्रबध ढीला पड़ गया, तब यह उस दुर्ग को मरहठों के हाथ सौंप कर स्वदेश लौट आया। इसके अनतर इसका पुत्र पृथ्वीसिंह और पौत्र साँवलसिंह ओड़छे के इलाके के सरदार रहे[२]। इस ग्रथ (मूल) के लिखने के समय पंचमसिंह उस राज्य पर अधिकृत था।

---

१ विजयसाह के पुत्र प्रतापसिंह बनगाँव में रहते थे। उदयसिंह का नाम जर्नल एशाटिक सोसाइटी में उद्योतसिंह, तवारीखे बुंदेलखंड में उदित-सिंह और इम्पीरिअल गजेटिअर में उदोतसिंह लिखा है, पर शुद्ध नाम इनके आश्रित कवि बसी ने 'तिहि कुल नृपति उद्योतसिंह अब छिति पर धर्म चढ़ावै' लिखा है। कवि हरिसेवक, कोविद आदि ने भी यही नाम लिखा है।

२ सन् १७३६ ई० में उदयसिंह की मृत्यु पर पृथ्वीसिंह राजा हुए, जो सन् १७५२ ई० में मरे। इनके पुत्र गधर्वसिंह पिता के सामने ही मर चुके थे, इससे पृथ्वीसिंह के पौत्र सावतसिंह गद्दी पर बैठे। सन् १७६५ ई० में सावतसिंह की मृत्यु हुई। यह निस्सतान मरे, इसलिये इनकी रानी हरिवशकुँअरि ने हाथीसिंह को गोद लिया। पर जब दो वर्ष बाद इनसे कुछ झगड़ा हो गया, तब यह भाग गए और पजनसिंह गोद लिए गए। यही पजनसिंह इस ग्रथ मे पचमसिंह के नाम से उल्लिखित हैं।

८७—राय सुर्जन हाड़ा[1]

हाड़ा चौहानों की एक शाखा विशेष है। हाड़ावती रण-थम्भौर सरकार में एक दुर्ग है, जो अजमेर प्रांत के पास है और इस जाति की राजधानी है। आरंभ में यह (राय सुर्जन) राणा के अधीन था, पर अकबर के समय दुर्ग रणथम्भौर में बादशाह के साथ सामना करने के लिये डट गया[2]। चित्तौड़ विजय के अन-

---

१ इस ग्रंथ में आठ निबंध हाड़ा राजाओं पर हैं जिनमें पाँच बूँदी राजवंश तथा तीन कोटा राजवंश के सम्बन्ध में हैं। कोटा राज्य संस्थापक माधोसिंह उनके पुत्रों मुकुन्दसिंह तथा किशोरसिंह और पौत्र रामसिंह की जीवनी ४१, ५० और ११२वें निबंध में है। ८७, ७८, १ ८१ तथा ४४वें इन पाँच निबंधों में राव सुर्जन से ले कर राव राजा बुधसिंह तक सात पीढ़ियों का उल्लेख किया गया है। राव राजा बुधसिंह के बाद के भी दो एक राजाओं का उल्लेख है।

२. यह राव अर्जुन का बड़ा पुत्र था और सन् १५५४ ई० में गद्दी पर बैठा था। रणथंभौर दुर्ग शेरशाही सरदारों से सावंतसिंह तथा भैरव के प्रबन्ध के द्वारा राव सुर्जन को मिला था। (टाड कृत राजस्थान भा० १ पृ० १११-२) इस्लाम शाह सूरी के एक सरदार ने जो इस दुर्ग का अध्यक्ष था इसे राव सुर्जन को दे दिया। बदायूनी भा० २, पृ० ११ में लिखा है कि जब ग्वालियर पर अकबर का अधिकार हो गया, तब सन् १५५९ ई० में रणथंभौर के दुर्गाध्यक्ष सलाम खाँ ने इस दुर्ग को

तर जब बादशाह इस दुर्ग को लेने की इच्छा से[1] १२वें वर्ष इधर आए, तब स्वयं पहाड़ी पर चढ़ कर दुर्ग की ऊँचाई और नीचाई का विचार करके मोर्चे लगवाए। मोर्चे लगाने के एक महीने बाद विजय हुई।

कहते हैं कि रमजान के अंतिम दिन बादशाह ने कहा था कि यदि दुर्गवाले आज अधीनता स्वीकृत न करेंगे तो कल (कि ईद है) दुर्ग गोले और गोलियों का निशाना बनेगा। इससे सुर्जन डर गया और दरबारियों से प्रार्थना कर अपने पुत्रों—दूदा और भोज—को बादशाह के पास भेजा। दरबार में आने पर दोनों को खिलअत पहनने की आज्ञा हुई। जब खिलअत पहनाने के लिये लोग इन दोनों को बादशाही कनात के बाहर लाए, तब इनके एक साथी ने (जो कुछ पागल था) विचार किया कि सुर्जन के पुत्रों को पकड़ने की आज्ञा हुई है, इसलिये उसने अपने स्थान से हटकर तलवार खींची। भगवंतदास के एक नौकर ने उसे बहुत समझाया, पर उसने उसी के ऊपर तलवार चलाई और बादशाही खेमे की ओर दौड़ा। कान्ह शेखावत के पुत्र पूरनमल को दो मनुष्यों के साथ घायल किया और शेख

सुर्जन हाडा के हाथ बेंच दिया। इस सरदार का नाम तारीख़े अलफी में हिजाज खाँ और तबक़ाते अकबरी में हाजी ख़ाँ लिखा है।

१. तबक़ाते अकबरी में लिखा है कि सन् १५५६ ई० में हबीब अली ख़ाँ ने इस दुर्ग को बादशाही आज्ञा से घेरा था, पर सफल नहीं हुआ। (इलि० डा०, भा० ५, पृ० २६०)

बहाउद्दीन बदायूनी का तलवार को चाट से दो टुकड़े कर दिया। इसी समय मुजफ्फर खाँ के एक नौकर ने पहुँच कर उसे मार डाला।

इस घटना से सुर्जन के पुत्र बड़े लज्जित हुए, पर इसमें उनका कुछ दोष नहीं था, इससे बादशाह ने उन्हें क्षमा कर खिलअत के अनंतर पिता के पास भेज दिया। पुत्रों के आने पर राय सुर्जन ने कहलाया कि यदि एक सरदार यहाँ आवे तो उसके साथ मैं भी सेवा में आऊँ। तब अकबर ने हुसेन कुली खाँ को इस कार्य पर नियत किया। खाँ के आने पर राय सुर्जन ने अगवानी कर उसका सत्कार किया और उसके साथ आकर बहुत सी कृपाओं का पात्र हुआ[1]। इसके अनंतर आवश्यक सामान लेने के लिए तीन दिन की छुट्टी लेकर दुर्ग को लौट गया। जैसा निश्चित हुआ था उस के अनुसार दुर्ग बादशाही नौकरों को सौंप दिया गया। इसे बादशाही कृपा से गढ़ा की जागीर मिली[2]। २०वें वर्ष गढ़ा के बदले चुनार इसकी जागीर नियत हुआ।

---

१ तारीखे अलफी तथा तबकात अकबरी में (इलि डा, भा ५, पृ १७०-१ तथा ३३२) इस विजय का वर्णन है। प्रथम में ११वाँ वर्ष (सन् १५१८ ई) और दूसरे में १४वाँ वर्ष (सन् १५६६ ई) दिया है। दोनों ही के अनुसार मेहतर खाँ रणथम्भौर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ था। बदायूनी भा २ पृ १ १-८ में इसका विस्तृत वर्णन है।

२. गढ़ा पर ९वें वर्ष ही में बादशाही अधिकार हो चुका था इससे ज्ञात होता है कि रणथम्भौर लेते ही अकबर ने इन्हें गढ़ा का अध्यक्ष बना दिया होगा।

इसका बड़ा पुत्र दूदा बिना छुट्टी लिए अपने देश बूँदी को लौट गया और वहाँ अत्याचार करने लगा। यद्यपि उसे दंड देने के लिये सेना पहिले नियत हुई थी, पर २२वें वर्ष में बादशाह ने बूँदी विजय करने के विचार से जैन खाँ कोकल्ताश को राय सुर्जन के साथ नियत किया। बूँदी विजय होने पर राय सुर्जन जब लौट कर दरबार गया, तब दो हजारी मन्सब तक पहुँचा। दूदा ने इस विफलता के अनतर फिर कुराह पकड़ी और गड़बड़ मचाने लगा। २३वें वर्ष में शहबाज खाँ कबू के मध्यस्थ होने से इसके दोष क्षमा हुए और यह दरबार में आया। बादशाह इसे पंजाब में छोड़ कर राजधानी गए। वहाँ पास पहुँचने पर शंका के मारे फिर भाग गया और ३०वें वर्ष इसकी मृत्यु हो गई[१]।

---

१ २५वें वर्ष में मुजफ्फर खाँ की मृत्यु पर राव सुर्जन ने बिहार में भी कुछ कार्य किया था। इनकी मृत्यु के विषय में इस ग्रंथ में कुछ नहीं लिखा है, पर तबक़ाते अकबरी से ज्ञात होता है कि यह सन् १००१ हि० (सन् १५९३ ई०) के बहुत पहिले मर चुके थे। इनकी मृत्यु सं० १६४२ वि० में हुई थी।

८८—राजा सुलतान जी

यह महाराष्ट्र था और निंबालकर इसका अल्ल था। बणा जी नायक[1] का, जो अनंगपाल का पौत्र था, (जिसे औरंगजेब के १५वें वर्ष में बहादुर खाँ कोका के कहने से बादशाही नौकरी मिल गई थी) भी यही अल्ल था। अनंगपाल दक्षिण के बड़े जमींदारों में से था। पूर्वोक्त राजा (सुलतान जी) आरंभ में राजा साहू की नौकरी में था और उसका प्रसिद्ध सरदार था। निजामुलमुल्क आसफजाह के समय मुबारिज खाँ के युद्ध के अनंतर बादशाही नौकरी मिलने पर इसने सात हजारी मन्सब और सरकार बीर, औरंगाबाद प्रांत के अंतर्गत फतेहाबाद सरकार के कुछ महाल और बरार प्रांत का सबेली पाथरी परगना जागीर में पाया। तीन

---

१ दूसरी प्रति में बजा जी नायक भी पाठ मिलता है। यह जिस अनंगपाल का पौत्र लिखा गया है, वह अनंगपालराव अर्थात् अनंगपाल निंबालकर था जिसके वंश में फलटन के वर्तमान राजा हैं। यह वीरता के लिये विशेष प्रसिद्ध था और मराठी में कहावत है कि 'राव अनंगपाल बारा वजीरांचा काल' अर्थात् बारह वजीरों की मृत्यु के समान राव अनंगपाल था। यह सोलहवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में वर्तमान था। इसी की कन्या दीपा बाई का मालो जी भोंसले से विवाह हुआ था जिनसे सन् १५९४ ई० तथा सन् १५९७ ई० में क्रमशः शाह जी और शरफो जी का जन्म हुआ था।

हज़ार सवारों के साथ यह नौकरी बजाता था। (जिस वर्ष पूर्वोक्त सरदार—निज़ामुलमुल्क आसफ़ जाह—की मृत्यु हुई) उसी वर्ष के कुछ महीने बाद सन् ११६१ हि० (सन् १७४८ ई०) में यह भी मर गया। इसके अनंतर (जिस समय नासिरजंग शहीद फुलमरी जाने का विचार कर उसके स्थान के पास पहुँचा, उस समय) इसका पुत्र हनुमंतराव अपनी सेना सहित बाहर निकल कर मुसलमानी सेना के पास उतरा। नासिरजंग उसके सरदारों का विचार करके शोक मनाने के लिये पहले उसके स्थान पर गया और वह मन्सब, पैतृक पदवी और पिता के महाल जागीर में पाकर प्रसन्न हुआ। सलाबतजंग के समय धिराज शब्द पदवी में बढ़ाया गया। सन् ११७६ हि० में यह मर गया। इसका छोटा पुत्र (केवल यही बच गया था) इसके स्थान पर नियुक्त हुआ, परन्तु उसमें पहले लोगों की तरह कार्य करने की शक्ति नहीं थी, इसलिये महालों का प्रबन्ध और अपना सेवा कार्य नहीं कर सका। तब दो एक वर्ष बाद उसको जागीर का थोड़ा अंश छोड़ कर बाकी राज्य में मिला लिया गया। लिखते समय पूर्वोक्त लड़के को (जो अब यौवन को पहुँच चुका था और जिसका नाम धनपत राव[१] था) बरार प्रांत से कुछ महाल जागीर में दिए गए थे, परन्तु उनका प्रबन्ध भी वह ठीक तरह से नहीं करता था।

---

१ पाठांतर धनवंत या धीयतराय भी मिलता है।

८१—राजा सूरजमल

यह राजा बासू[1] का बड़ा पुत्र था। अपने विद्रोह और बुरे आचरण से पिता को अपनी ओर से दुःखित रखता था, इससे अंत में शंका के कारण (जो बुरे कर्मों का फल था) उसे कारागार भेज दिया। पिता की मृत्यु पर उसके दूसरे[2] पुत्रों में योग्यता न देख निरुपाय हो कर जहाँगीर ने उसे जमींदारी का प्रबंध और उस राज्य की सरदारी पर इसे राजा की पदवी और दो हजारी मंसब सहित नियुक्त किया और वह राज्य और कोष (जिसे कई वर्षों में इसके पिता ने संचित किया था) इसे अकेले ही प्रदान कर दिया। मुर्तजा खाँ शेख फरीद के साथ इसकी नियुक्ति हुई (जो काँगड़ा का दुर्ग विजय करने पर नियत हुआ था)। जब शेख के प्रबंध से दुर्गवालों का कार्य कठिन हो गया और इसने देखा कि विजय होने ही वाली है, तब अनैक्य और काम बिगाड़ने से कपट का परदा उठा दिया और शेख ही के मनुष्यों से लड़ने लगा। मुर्तजा खाँ ने बादशाह को लिखा कि सूरजमल की

---

१. १६वें निबंध में राजा बासू की जीवनी दी गई है।

२. मूल ग्रंथ की दूसरी प्रतियों में यहाँ लिखा है कि दूसरे दो पुत्रों में।

चाल से विद्रोह के चिह्न पाए जाते हैं। उसके मुर्तजा खाँ के बराबर होने से ही एक बड़ा सरदार भारी सेना के साथ उस पार्वत्य प्रदेश में विद्रोह शाति के लिये भेजा गया। उसने निरुपाय होकर शाहजादा शाहजहाँ का प्रार्थी हो उन्हे प्रार्थनापत्र लिखा कि मुर्तजा खाँ ने अपने स्वार्थ के लिये मुझ से मन-मुटाव कर लिया है और विद्रोह की शका करके मुझे उखाड़ने के विचार में है। आशा है कि इस अभागे के जीवन और मुक्ति के कारण होकर मुझे दरबार बुला लेंगे। इसी समय ११वें वर्ष के आरभ मे मुर्तजा खाँ की मृत्यु हो गई और दुर्ग का विजय होना कुछ दिन के लिये रुक गया। यह शाहजादो के प्रार्थनानुसार दरबार पहुँच कर सम्मानित हुआ। उसी समय शाहजादे के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ। उस चढ़ाई से लौटने पर कुछ युक्ति मिल जाने से यह काँगड़ा विजय का अगुआ हो गया। इसे उस पहाड़ी देश में फिर से भेजना युद्ध की नीति के विरुद्ध था, पर वह चढ़ाई शाहजाद के प्रबध मे हो रही थी और उन्होंने इसे अपनी सरकार के बख्शी शाह कुली खाँ महम्मद तकी के साथ इस चढ़ाई पर नियुक्त किया था। स्थान पर पहुँचते ही शाहकुली खाँ से लड़ कर शाहजादे को लिखा कि मेरा उसका साथ ठीक नहीं है और यह कार्य उससे नहीं पूरा हो सकता। यदि दूसरा सरदार नियुक्त करें तो सहज में विजय हो सकती है। तब शाहकुली खाँ को दरबार बुलाकर राजा विक्रमाजीत को (जो शाहजहाँ के अच्छे सरदारों मे से था) नई सेना के साथ वहाँ भेजा।

सूरजमल ने राजा के पहुँचने तक के समय को सुअवसर समझ कर बादशाही नौकरों को इस बहाने से कि बहुत दिनों तक दूर करते हुए व बिना सामान के हो गए हैं, उन्हें लौटा दिया जिसमें वे अपनी जागीरों पर चले जायें और राजा के आने तक सामान सहित चले आवें। इस गड़बड़ के अनंतर अवसर पाकर विद्रोह का चिह्न प्रकट कर इसने लूट मार आरंभ कर दी। पहाड़ के नीचे के परगनों को (जो एतमादुद्दौला की जागीर थे) लूट कर जो सिक्का और सामान पाया, वह ले लिया। सैयद सफी बारहा अन्य सहायकों के साथ (जो बिदा किए जाने पर भी अभी तक अपनी जागीरों पर नहीं लौटे थे) उसके आपसवालों से युद्ध कर कुछ मारे गए, कुछ घायल हुए और कुछ भाग गए।

जब १२वें वर्ष के अंत में राजा विक्रमाजीत[1] वहाँ पहुँचे तब उस कपटी ने चाहा कि कुछ दिन बातें बनाकर व्यतीत कर दे। राजा ने (जो इस कार्य का तत्व जानता था) इसकी बात का विश्वास न करके युद्ध की तैयारी की। सूरजमल ने भी आत्म-विश्वास न होने के कारण बिना कुछ विचारे साहस कर युद्ध की तैयारी की। कुछ ही देर में बहुत आदमियों के मारे जाने पर वह भागा। दुर्ग मऊ और मुहरी (जिसपर उसे बहुत भरोसा

---

१ राव रायान पत्रदास विक्रमाजीत का वृत्तांत ७८वें निबंध में देखिए।

था) विजय होने के अनतर उसके राज्य पर (जो उसे उसके पूर्वजो से मिला था) बादशाही सेना का अधिकार हो गया। वह इसी प्रकार इधर उधर भागता फिरता था और अप्रतिष्ठित हो चुका था। इसी समय में उसकी मृत्यु हो गई।

१०—राजा सूरजसिंह राठौर

यह मारवाड़ के भूम्याधिकारी राव मालदेव का पौत्र तथा उदयसिंह उपनाम मोटा राजा का पुत्र था। यह राज्य अजमेर प्रांत के अन्तर्गत है जो सौ कोस लंबा और साठ कोस चौड़ा है। सरकार अजमेर जोधपुर, सिरोही, नागौर और बीकानेर इसी में हैं। पूर्वोक्त राव भारत के बड़े राजाओं में थे और सेना तथा ऐश्वर्य के लिए प्रसिद्ध थे। कहते हैं कि जब मुइज्जुद्दीन साम पिथौरा के युद्ध से खाली हुआ, तब उसने कन्नौज के राजा जयचंद्र से युद्ध करना निश्चय किया। राजा भाग कर गंगा में डूब मरा[1]। उसके वंशधर[2] मारे फिरते थे। उसका भतीजा सहिया शम्साबाद में था। वह भी शत्रुओं के साथ मारा गया[3]। उसके तीन पुत्र सानिग,

१ सन् ११९४ ई॰ में चंदावर युद्ध में परास्त होने पर इन्होंने गंगाप्रवेश कर जलसमाधि ले ली थी।

२ प्रति में भाई है।

३ जयचंद की मृत्यु पर उसका पुत्र हरिश्चंद्र कुछ दिन कन्नौज में राज्य करता रहा पर सन् ११९९ ई॰ में शम्सुद्दीन अल्तमश ने उस पर अधिकार कर लिया। इस हरिश्चंद्र का एक पुत्र सेतराम था जिसका पुत्र सीहा जी हुआ। यही पश्चिम की ओर मुसलमानों से हारने पर द्वारिका यात्रा के लिये गया। मार्ग में भीनमाल के ब्राह्मणों की सहायता करता हुआ द्वारिका को गया और वहाँ से लौट कर पाटन में ठहरा। [illegible]

अश्वत्थामा और अच्छ गुजरात को चले और सोजत के पास पाली[1] में रहे। उसी समय मीना[2] जाति ने वहाँ के निवासियों पर (जो ब्राह्मण थे) चढ़ाई की। इन लोगों ने निकल कर उन्हें वीरता के साथ परास्त किया। ब्राह्मणों ने प्रशंसा करके अच्छा आतिथ्य किया और जब सामान ठीक हो गया, तब फुर्ती करके खेड़ प्रांत कोलों से ले लिया[3]। सोनिक ने अलग होकर मीनो से ईडर छीन लिया। अच्छ ने बकुलाना जाकर कोलियों से उसका अधिकार ले लिया और उसके वंशधर वहीं बस गये[4]। अश्वत्थामा के (जो मारवाड़ में रह गया था) पुत्रों का कार्य्य धीरे धीरे बढ़ता गया। उसकी १६वीं पीढ़ी में राय मालदेव हुआ। उसकी मृत्यु पर उसका छोटा पुत्र चंद्रसेन उत्तराधिकारी हुआ[5]। अकबर

में भी सोहा को जयचद्र का भतीजा लिखा है और टॉड साहब ने पुत्र, पौत्र सभी लिखा है। सीहा जी के मारवाड़ में जाने का समय फार्ब्स कृत रासमाला में सन् १२१२ ई० दिया है, पर वह ठीक नहीं ज्ञात होता।

१ दूसरी प्रति में 'पाली'। २ दूसरी प्रतियों में 'मनिया' है।

३. दाभी राजपूतों के मिल जाने से इन्होंने गोहिलों को मार कर खेड़ प्रांत पर अधिकार कर लिया था।

४ द्वारिका के पास उखामंडल के चावड़ों को परास्त कर वहाँ अधिकार कर लिया। इसका नाम ख्यातों में अज दिया है। अश्वत्थामा का आसथान और सोनिक का सोनग नाम दिया है।

५. राव मालदेव प्रसिद्ध राजा हो गए हैं। इनका विवरण देने के लिये एक निबंध ही लिखना पड़ेगा। सन् १५६२ ई० में चद्रसेन गद्दी पर बैठे थे। इनके दो बड़े भाई रामसिंह तथा उदयसिंह वर्त्तमान थे, पर पिता की इच्छानुसार इन्हें ही गद्दी मिली। इन दोनों ने इससे राज्य लेना चाहा और बादशाही सेना उस पर चढ़ा लाए। जोधपुर पर बादशाही अधिकार हो गया।

के राज्य के १५वें वर्ष में (जब बादशाह ने अजमेर पहुँच कर रौजे का दर्शन किया और वहाँ से व नागौर के इस भार के प्रबंध को चले तब) यह बादशाही सेवा में आया[1]। जब १९वें वर्ष इसके विद्रोह का समाचार मिला, तब कई सरदार इसका दमन करने के लिये नियत हुए और इसका भतीजा कल्ला (जो सोजत नगर में था) सरदारों के पीछा करने से निरुपाय होकर बादशाही सेना के पास पहुँचा। जब महेसवारा पर धावा करके दुर्ग सारण[2] के घेरे की तैयारी हुई, तब दूसरी सेना इस दंड देने के लिये नियत हुई। यह पहाड़ों की घाटियों में चला गया[3]। २१वें वर्ष में इसने फिर सेना एकत्र कर दुर्ग सकोर[4] दृढ़ किया और शाहबाजखाँ कंबू ने उसे आकर घेर लिया। २५वें वर्ष (जब चन्द्रसेन ने विद्रोह किया तब) पायदाखाँ मुगल के हाथ (जो दूसरे जागीरदारों के साथ इसके दमन के लिये नियत हुआ था) परास्त हुआ[5]। परन्तु

---

१ सं० १६२७ वि० (सन् १५७० ई०) में अकबर अजमेर गया था।

२ प्रति व में 'धिवाना' है।

३ सन् १५७४ ई० में प्रजा पर मुसलमानों के अत्याचार करने से बिगड़ कर इन्होंने इन्हें दंड दिया जो विद्रोह समझा गया। अजमेर के सूबेदार शाहकुली ने चढ़ाई की और सिवाने का युद्ध हुआ। सिवाना दुर्ग कई वर्ष तक घिरा रहा, पर मुसलमान उसे न ले सके। चन्द्रसेन के भतीजे तथा रायमल के पुत्र कल्ला ने नागौर पर अधिकार कर लिया। बीकानेर के राजा रायसिंह तथा उसके बाद शाहबाज खाँ कंबू इस पर भेजे गए। तब यह मेवाड़ की ओर चला गया।

४ दूसरी प्रतियों में 'कैम्पूर' है।

५ सन् १५८ ई० में मारवाड़ के सरदारों के बुलाने पर चन्द्रसेन

उदयसिंह उपनाम मोटा राजा ने सच्चे हृदय से अधीनता स्वीकृत करके अपनी पुत्री मानमती का विवाह सुलतान सलीम से कर दिया जिससे सुलतान खुर्रम पुत्र हुआ। इसके अनतर इस पर कृपा बढ़ती गई और इसका देश जोधपुर इसे जागीर में मिल गया। २३वें वर्ष सादिक खाँ के साथ राजा मधुकर बुंदेला का दमन करने पर नियत हुआ। २८वें वर्ष बैराम खाँ के पुत्र मिर्जा खाँ के साथ गुजरात को शांत करने और मुजफ्फर खाँ गुजराती का दमन करने पर नियुक्त हुआ। ३८वें वर्ष (सन् १५९३ ई०) मे सिरोही के राजा को दंड देने पर नियत हुआ। ४०वें वर्ष में मृत्यु हुई और उस समय तक यह हजारी मन्सब तक पहुँचा था। चार स्त्रियाँ साथ सती हुई[1]। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र सूरजसिंह योग्य मन्सब से सम्मानित हुआ।

मारवाड़ लौटे, पर इन्हे फिर परास्त होकर लौट जाना पड़ा। सन् १५८१ ई० में इनकी मृत्यु हुई। इनके अनन्तर इनके छोटे पुत्र आसकरन गद्दी पर बैठे, पर उनके बड़े भाई उग्रसेन बूँदी से लौट कर इन्हें मारने में आप भी साथ ही मारे गए। तब सबसे बड़े पुत्र रायसिंह को गद्दी मिली। यह बादशाही अधीनता स्वीकृत कर चुका था। यह अकबर के आज्ञानुसार जगमाल के साथ सिरोही गया था जहाँ राव सुरतान ने अचानक आक्रमण करके दोनों को मार डाला। सन् १५८३ ई० में राव मालदेव के पुत्र उदय-सिंह गद्दी पर बैठे।

१ लाहौर में सन् १६६५ ई० में इनकी मृत्यु हुई थी। इनके दो पुत्रों ने दो राज्य और स्थापित किए थे। कृष्णसिंह ने कृष्णगढ़ का राज्य तथा दलपतिसिंह के पुत्र ने रतलाम का राज्य स्थापित किया था।

जब सुलतान मुराद गुजरात का शासनकर्ता नियत हुआ, तब यह भी उसी के साथ नियुक्त हुए। यहाँ से ४२ वें वर्ष में (जब गुजरात के बहुत से जागीरदार शाहजादा सुलतान मुराद के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर गए थे और मुजफ्फर गुजराती के बड़े पुत्र बहादुर ने बहुत से आपसवालों को एकत्र कर क़स्बा और गाँवों पर धावा किया था तब) यह उससे युद्ध करने अहमदाबाद से चले। दोनों ओर की सेनाएँ तैयार हुईं, पर बहादुर बिना युद्ध किए साहस छोड़ कर भाग गया। जब सुलतान मुराद की मृत्यु पर सुलतान दानियाल दक्षिण के शासन पर नियत हुआ, तब यह भी साथ भेजे गए। ४५वें वर्ष (सन् १६०० ई०) में दौलतखाँ लोदी के साथ राजू दक्खिनी का दंड देने के लिए शाहज़ादा के हरावल में नियत हुए। ४७वें वर्ष में खानखानाँ अब्दुर्रहीम के साथ सुहायद खाँ हब्शी का (जिसने पाथरी और पालम में विद्रोह मचाया था) दमन करने पर नियत हुए[1]। इस प्रांत में इन्होंने अच्छे कार्य किए थे, इससे ४८वें वर्ष में शाहज़ादा दानियाल और खानखानाँ की प्रार्थना पर इन्हें डंका मिला। जहाँगीर के र वर्ष दरबार में आने पर इसका मन्सब बढ़कर चार हज़ारी ३००० सवार का हो गया और दूसरे

१ तबकाते अकबरी, अकबरनामा और मआसिर उमरा में सुहैल हब्शी का नाम दिया है पर वह अशुद्ध है। उसकी मृत्यु इसके तीन वर्ष पहिले ही हो चुकी थी। खुदावंद खाँ था अबसिनियों के पुत्र जिसने बरार व बालापुर के बाद पालम लिया था। (इलि डा भा ६ पृ ९५-८)

मन्सबदारों के साथ दक्षिण के सूबेदार खानखानाँ की सहायता पर नियुक्त हुआ। ८वें वर्ष सुलतान खुर्रम के साथ राणा की चढ़ाई पर गया और फिर उसी शाहज़ादे के साथ दक्षिण गया। १०वें वर्ष में दरबार आकर इसने पाँच हज़ारी मन्सब पाया। इसके भाई कृष्णसिंह को घटना के अनंतर (जो उसके चरित्र मे लिखी गई है) देश जाने के लिये दो महीने की छुट्टी मिली। इसके अनतर अपने पुत्र गजसिंह के साथ दरबार मे आकर दक्षिण में नियत हुआ। १४वें वर्ष सन् १०२८ हि० (सन् १६१९ ई०) में वहीं[1] इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्र गजसिंह का वृत्तात अलग दिया है[2]।

---

१ बरार प्रात के मेहकर स्थान में मृत्यु हुई थी।

२ १२वाँ निबंध देखिए।

६१—राव सूर भुरटिया

बीकानेर के भूम्याधिकारी राय रायसिंह राठौड़ का यह पुत्र था[1]। जहाँगीर के राज्य के अंत में तीन हजारी २००० सवार के मन्सब तक पहुँचा था। शाहजहाँ के राज्य के प्रथम वर्ष में जब यह दरबार में आया, तब इसका मन्सब चार हजारी २५०० सवार तक बढ़ा दिया गया और इसे झंडा तथा डंका भी मिला। महाबत खाँ खानखानाँ के साथ नजर मुहम्मद खाँ का (जिसने काबुल पर चढ़ाई की थी) दमन करने के लिए यह नियत हुआ। इन लोगों के पहुँचने के पहिले ही नजर मुहम्मद खाँ वहाँ से चला गया था, इसलिए आज्ञानुसार ये लोग लौट आए। फिर अब्दुल्ला खाँ बहादुर के साथ यह जुझारसिंह को दंड देने के लिए (जो झूठी शंका के कारण दरबार से भागा था) भेजा गया। तीसरे वर्ष खानेजहाँ लोदी का पीछा करने पर (जो व्यर्थ शंका कर भागने

---

१ राजा रायसिंह के सबसे बड़े पुत्र दलपतिसिंह गद्दी पर बैठे थे, पर जहाँगीर इनसे कुछ अप्रसन्न हो गया था इससे इन पर शाही सेना भेजी गई और दरबार लाए गए। सं० १६६८ वि० में यह गद्दी पर बैठे थे और दो वर्ष बाद कैद हुए थे। इसी कैद से इन्हें छुड़ाते समय इनके सरदार आदि मारे गए और उसी में यह भी वीरगति को प्राप्त हुए। (देखिए ७१वाँ निबंध)

से भाग गया था) नियुक्त हुआ। ३रे वर्ष तीन सेनाओं मे (जो निजामुलमुल्क के राज्य पर अधिकार करने के लिये नियत की गई थी) शायस्ता खाँ के साथ नियुक्त होने पर इसका मन्सब ५०० सवार का और बढ़ाया गया। बीर के पास के युद्ध में (जिसमें आजम खाँ ने खानेजहाँ पर धावा किया था) इसने अच्छा प्रयत्न किया था। ४थे वर्ष सन् १०४० हि० (सन् १६३१ ई०) में इसकी मृत्यु हो गई[१]। बादशाह ने इसके पुत्र कर्ण को दो हजारी १००० सवार का मन्सब, राव की पदवी और उसका देश बीकानेर जागीर मे दिया। इसके दूसरे पुत्र शत्रुसाल को पाँच सदी २०० सवार का मन्सब दिया गया। राव कर्ण[२] का वृत्तात अलग दिया गया है।

---

१ इनकी मृत्यु दक्षिण ही में हुई थी।

२. कर्ण का वृत्तात ७वें निबंध में देखिए।

समाप्ति

ईश्वर का धन्यवाद है कि यह ग्रन्थ 'अस्तव' अच्छी तरह समाप्त हो गया। अब ग्रन्थ-पूर्ति करनेवाली लेखनी प्रार्थना करती है—

शैर—यद्यपि भला नहीं हूँ तो भी भलों के पैर की धूलि हूँ।
आश्चर्य है कि शराब का पुरवा पाने पर भी प्यासा रह जाऊँ।
आप लोगों की कृपा-दृष्टि के लिये यहाँ कुछ अपना वृत्तान्त भी लिख दिया जाता है।

इस अयोग्य का नाम अब्दुल हई है। सन् ११४२ हि० में इसका जन्म हुआ। अवस्था प्राप्त होने पर कुछ दिन पाठशाला में पढ़ता रहा और कुछ दिन अदब क़ायदा तथा अरबी सीखने और न्याय की पुस्तकों के मनन में व्यतीत किया। सन् ११६२ हि० में खान्दानी मन्सब और पदवी पाकर नासिरजंग शहीद की ओर से बरार प्रांत की दीवानी और उस तब पदस्थ सरदार के आमीरी महाला की मुतसद्दीगिरी (जो उस प्रांत में थी) मिली। सलाबत जंग के समय में औरंगाबाद का अध्यक्ष और देवगढ़ का दुर्गाध्यक्ष नियुक्त हुआ।

जब वह घटना पिता पर आई और बुरा चाहनेवालों से काम पड़ा (तब यद्यपि कुछ दिनों तक एकांतवास करना पड़ा और सब-

ओर से निराशा हो गई पर) एकाएक नवाब निजामुलमुल्कनिजामुद्दौला ने इस निराश्रित को सहारा दिया और इस पर बहुत कृपा की। आरंभ में पुराना मन्सब और पैतृक पदवी देकर सम्मानित किया और दक्षिण के सूबों की दीवानी (जो पैतृक थी) देकर प्रतिष्ठा बढ़ाई। मजलिस और युद्ध में साथ रखते और कार्य करने पर प्रशंसा तथा कृपा करते थे। उस अद्वितीय सरदार की इस प्रकार की निरंतर कृपाएँ सम्मान के योग्य हैं। अंत में समय के योग्य मन्सब तथा समसामुलमुल्क की पदवी मिली। मेरा उपनाम सारिम[1] है और अपनी कृति से कुछ शेर यहाँ उद्धृत किए जाते हैं—

(१)

ज्योतिर्मय सौंदर्य को दर्शन सुलभ न होय।
मुख की प्रभा निहारिबे सूरज दरपन होय॥

देखना आसाँ नहीं है हुस्न आतिश खूए का।
आफताब आईना होवे जिल्वए तुम्क रूए का॥

(२)

होत बुराईहू भली जो मन चाहत होय।
बड़वानल की ज्वाल कों ज्यों जल जीवन होय॥

बदी को नेक माने हैं अगर स्वाफिक मिजाज आवे।
समुंद्री आतिशे सोजाँ को पानी भी मिजाज आवे॥

---

१ सारिम का अर्थ तलवार है। मूल ग्रंथ में २८ पद दिए गए हैं, पर यहाँ चुनकर केवल आठ ही पद दिए जाते हैं। फारसी शेरों के ही शब्द अधिकतर उर्दू शेरों में रखे गए हैं, केवल क्रिया आदि का हिंदी अनुवाद कर दिया गया है।

(३)

गुणी पुरुष या जगत में भ्रमत न पावत चैन।
मोती गोलाकार ज्यों लुढ़कत पै ठहरै न॥

हुनरवर मरते के नीचे हैं कब आराम को पाते।
कि जाये इस्तकामत को गुरे ग़लताँ नहीं पाते॥

(४)

चिंता के परि फेर बँध्यो कली सम चित मद।
सक्यो देखि मन फेर नहिं बहार आवरन जब॥

गुञ्च' सा फ़िक्र में छिपा है।
न सका देख फ़स्ल-ए-बहाराँ को॥

(५)

निर्धन को संसार की झंझट से दुख नाहिं।
ज्यों सुख सों तन तैरहीं नदी पार के माहिं॥

नातवानों को नहीं आशोबे दुनिया से है ग़म।
मौजे दरिया बाद को होती है नाख़ुन शिना॥

(६)

भंवर अगर सम वस्तु को सौरभ घटते जाय।
घटे मान सौंदर्य को, सबै मेल न बसाय॥

बाद इस्तमाल घटती इत्र की बू हम बदन।
जज़्बे खूबाँ कम हुई जो कब है सब आमेज़िश है॥

अनुक्रमणिका (क)

(व्यक्तिगत)

ख

य

श

स

अनुक्रमणिका [ख]

(भौगोलिक)

ख

ग

झ

ट

ठ

ड

त

थ

द

र

शुद्धाशुद्ध-पत्र

प्रेस के भारी होने के कारण बहुत-सी मात्राएँ टूट गई हैं और उन सब का उल्लेख करने से यह पत्र बहुत बड़ा हो जायगा। इसलिये पाठकगण उन्हें स्वयं शुद्ध कर लेने का कष्ट स्वीकार करें।

भूमिका

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१८	अकार	प्रकार
१०	२२	सुगयुन	सुगयुन
१४	४	बेगलानामा	बेगलर नामा
२१	१	अबुल हई	अब्दुल हई
२२	१५	लोभ	क्षोभ
३९	४	अबुलफजल्	अबुलफज़ल
४०	१	आसर	असार
५९	१८	जो बहुत	बहुत

मूल

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१२	कहते	कहने
१४	२२	ट्युदा	खुदा
२७	१४	ईसाइय	ईसाइयों
४०	१५	कुछ	कुल
५८	१-२	फखसियर	फर्रुखसियर
७५	८	सुलान	सुल्तान
	२२	रामसिंह	रायसिंह

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७६	१६	रामसिंह	रायसिंह
७८	१०	"	"
८२	११	भादो राम	जादो राय
८६	२३	भाठी	भाटी
१०२	१९	द्धि	बुद्धि
१२२	१७	डाड०	डाड०
१२३	१९	"	"
	२२	"	"
१२७	१३	प्रार्थन	प्रार्थना
१३०	१२	डाड०	डाड०
१३२	१३	रामगढ़	रायगढ़
१४२	१६	जधाम	ऊधामी
१५१	११	प्लोकमौन	प्लौकमैन
१५२	२	ष	थे
१५५	१९	मालमपुर	बुरहानपुर
१५६	१९	पवीार	दीवार
१८७	१५	नाम स	स
१९१	१३	मीरबख्श	मीरबख्शी
१९२	९	मर गया	भाग गया
२०७	१५	गाड़डाड़	गाड़डाड़
"	१९	डाट चौर	चौर
२०८	१५	इलिभड	इलियट
२११	१६	चन्द्रावत	चन्द्रावत
२१२	१३	मालवरा	मालवरा
२१३	१४	माटस	माइस

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१४	२१	हलीसिंह	हठीसिंह
२१५	१५	चाँदा को	को चांदा
	१६	वतलाता	वतलाया
	२२	सयय	समय
२१९	९	आमानत	अमानत
	१७	मान्नबेदा	मान्नदा
२४६	१२	अबुलफजल	अबुलफतह
२८२	८	नानदे	नानदेर
२८५	५	धर्मपुर	धर्मतपुर
२९९	९	नेकनामी से	नेकनाम
३३९	१४	नसीउद्दीन	नसीरुद्दीन
३७५	११	वर्व	वर्ष
३८४	१९	लोदी	कंबो

संशोधन तथा संयोजन

[सूचना—जयपुर के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली कुछ पुस्तकों के मिलने से कुछ नई टिप्पणियाँ देने की आवश्यकता हो गई, अत वे शुद्धाशुद्ध पत्र के साथ दे दी जाती हैं ।]

पृष्ठ १६४—'विविध संग्रह' की एक कुलसिया में दोनों जयसिंह के बीच तीन राजों का नाम है—'रामसिंह, राम, किसनो, विसन, जसो'। तात्पर्य यह कि जयसिंह द्वितीय जय सिंह प्रथम के पुत्र रामसिंह के प्रपौत्र थे।

धिराज का शुद्ध रूप अधिराज है, पर मूल म राजाधिराज के दो टुकडे करने पर, संधिज्ञान के अभाव से, धिराज राजा लिखा गया है, अत अनुवाद में वैसे ही रहने दिया गया है।

पृष्ठ २२२—जयपुर के इतिहासों में भावसिंह नाम ही मिलता है, बहादुरसिंह नहीं। ज्ञात होता है कि बादशाह की ओर से यह नाम मिला था।

पृष्ठ २५१—जयपुर राजवंशावली में भारमल के दो पुत्रों के नाम क्रमश भगवानदास और भगवंतदास लिखे हैं जिनमें से भगवंतदास का राजा होना लिखा गया है।

पृष्ठ २५६—जयपुर राजवंशावली म भगवन्तदास के नौ पुत्रों के नाम दिए गए हैं, जिनमें सब से बड़े मानसिंह हैं।

पृष्ठ २६५—टिप्पणी २—भारमल के चार से अधिक पुत्र थे।

पृष्ठ २६६—रणथम्भौर ही अब रणतभँवर कहलाता है, जो पंचम वर्ण के न प्रयोग करने से रंतभँवर हो गया है।

पृष्ठ ३००—टिप्पणी २—जयपुर राजवंशावली में लिखा है कि मानसिंह की २२ रानियाँ, २ खवासें, ११ कुँवर और ५ लड़कियाँ थीं। इनमें सात रानियाँ और २ खवासें सती हुई थीं। इन सब के नाम उसमें अलग अलग दिए हुए हैं।

पृष्ठ ३४४—विष्णुसिंह के तीन पुत्र जयसिंह, विजयसिंह और चीमोजी थे। अन्तिम पाँच वर्ष के होकर जाते रहे। विजयसिंह को हिंडोन का पट्टा मिला था।

पृष्ठ ३५२—टिप्पणी २—शिखर वंशोत्पत्ति पृ० २६ में लिखा है—रायाँसाल राजा कै समूचा पूत बारा। ना औलाद रैगा पाँच साता का पसारा। अर्थात् रायसाल के बारह पुत्रों में पाँच निस्संतान रह गए और सात का वंश चला।

पृष्ठ ३५३—टिप्पणी १—द्वारिकादास तथा खानजहाँ लोदी दोनों का युद्ध कर एक दूसरे द्वारा मारे जाने का समर्थन केसरीसिंह समर (पृष्ठ ५२) नामक ऐतिहासिक काव्य भी करता है।

केसरीसिंह-समर, शिखरवंशोत्पत्ति, शेखावाटी-प्रकाश तथा सीकर का इतिहास चारों से ज्ञात है कि गिरिधर सब से बड़े नहीं प्रत्युत् बारहवें पुत्र थे।

पृष्ठ ३०१—टिप्पणी १—जयपुर राजवंशावली में रूपसिंह बैरागी भारमल का भाई लिखा गया है।

पृष्ठ ३०८—टिप्पणी ३—शेखावाटी-प्रकाश में इसका नाम राव रायचन्द दिया गया है।

पृष्ठ ३०७—आमेर के पास ग्राम अठारह मील पर अमरसर बस्ती है, जिसके पास मनोहरपुर बसाया गया था। शेखावाटी-प्रकाश।

पृष्ठ ३०९—माधो विलास में राव लूनकरण के ६ पुत्र लिखे गए हैं, जिनमें ५ के नाम दिए हैं। यथा—मनोहरदास, भगवान-दास, नरसिंह दास, साँवलदास तथा किशुनदास। मनोहर-दास का पुत्र रामचन्द्र चौंदी पठानों से युद्ध करता हुआ बक्सर में मारा गया था। इसका पुत्र त्रिलोकचन्द पितामह की गद्दी पर बैठा। मदन कृत रससमुद्र की हस्तलिखित प्रति के आरम्भ में भी यह सब विवरण दिया हुआ है।